
256

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालायास्त्रयोविंशम्पुष्पम्

ार्कण्डेयपुराणम्

——:o:——

सप्तशत्याः शान्तनवीटीकोपेतम्)

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

ीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
द्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्) ॥
ीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
ीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता-१

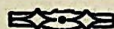
ः प्रथमंसंस्करणम् ख्रैस्ताब्दः

५००० १९६२

* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डल का २३ वां पुष्प

मार्कण्डेय पुराण



(सप्तशती पर शान्तनवी टीका के साथ)

महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासदेवजीकृत

मनसुखरायमोर

५, क्लाइव रो

कलकत्ता—१

मुद्रकः—
सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी-
निवासि श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद-
सूनुभ्यांश्रीव्रजकिशोर श्याम
किशोरसिंहाभ्यां
स्वयन्त्रालये
गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
नामके मुद्रापितवान्
स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

* श्रीगणेशायनमः *

मार्कण्डेयपुराण के विषय में

श्रीनन्दनन्दन वृन्दावन विहारी भगवान् राधामुकुन्द की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के २३वें पुष्प रूप से प्रथित श्रीमार्कण्डेय पुराण विद्वज्जन के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए अतीव आनन्द हो रहा है। इस पुराण के लिये वैदेशिक विद्वानों का मत है कि यह कई स्थानों पर प्रक्षिप्तअंशों से पूर्ण है और सम्बन्धित कथाख्यानों की पूर्वापर सन्दर्भों से समीचीन सङ्गति नहीं बैठती है। सुतरां, यह पुराण महापुराणों की गणना का विषय होकर भी लक्षणों से उस परिभाषा के प्रकोष्ठ में समाविष्ट नहीं होता। यह पुराणों की गणना में सातवां है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥

[मा० पु० अ० १३७]

प्रस्तुत ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका नारदपुराण के पूर्वभाग की ८७ की अध्याय में इसप्रकार प्रतिपादित है :—

मार्कण्डेयपुराण के प्रतिपाद्य विषयों को बताते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि इसमें शकुनिगण (पक्षियों) को उद्दिष्ट कर सभी धर्मों का

यत्राधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम्॥

प्रतिपादन किया गया है। यह विश्रय जैमिनि ऋषि को मार्कण्डेयजी ने पहले बतलाया था। सर्वप्रथम धर्मसञ्ज्ञक पक्षीगण का जन्म-निरूपण, इनके पूर्व-जन्म की कथा और दिवस्पति (इन्द्र) द्वारा इन्हें शाप फिर श्रीबलरामजी की तीर्थयात्रा। द्रौपदी के पुत्रों का आख्यान, पुण्यश्लोक हरिश्चन्द्र का पवित्र चरित्र, आडीवक (गृध्र और वक) का युद्ध, पिता पुत्र का आख्यान फिर श्रीदत्तात्रेय की कथा, हैहय कार्तवीर्यार्जुन का महाख्यानयुक्त चरित्र निरूपित है। महासती मदालसा का अपूर्व आख्यान और चक्रवर्ती सम्राट् अलर्क का चरित्र वर्णन है। आगे पुण्यमयी नव प्रकार की सृष्टि का प्रतिपादन है। सृष्टि के कल्पान्तकाल का निर्देश, यक्ष्म (यक्ष) के द्वारा सृष्टि निरूपण है। रुद्रादि की सृष्टि, द्वीपवर्ष आदि का सम्यक् निरूपण, सम्पूर्ण चतुर्दश-मनुओं की पापहारिणी महत्त्वपूर्ण कथायें उनमें अष्टम मन्वन्तर में भगवती आद्या महाशक्ति के प्रथम मध्यम और उत्तम चरित्रों सहित महाकाली, महा-लक्ष्मी एवं महासरस्वती की पुण्यदायिनी कथा सविस्तर वर्णित है। तत्पश्चात् प्रणव (ओङ्कार) का आविर्भाव और त्रयीतेज के उद्भव का वर्णन सूर्यभगवान् की उत्पत्ति और सूर्य के माहात्म्य का निरूपण वैवस्वत वंश का समा-ख्यान और उसके वाद राजर्षि वत्सप्रीका चरित्र है। महात्मा खनित्र की पुण्य

पक्षिणां धर्मसञ्ज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्।
पूर्वजन्म कथा चैषां विक्रिया च दिवस्पतेः॥
तीर्थयात्रा बलस्याऽतो द्रौपदेयकथानकम्।
हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम्॥

पितापुत्रसमाख्यानंदत्तात्रेयकथाततः। हैहयस्याऽथचरितं महाख्यानसमान्वितम् मदालसा कथाप्रोक्ताह्यलर्कचरिताचिता। सृष्टिसङ्कीर्तनंपुण्यंनवधापरिकीर्तितम् कल्पान्तकालनिर्देशोयक्ष्मसृष्टिनिरूपणम्। रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ताद्वीपवर्षानुकीर्तनम्

कथा, अवीक्षित चरित्र और किमिच्छकव्रत का कीर्तन है। इनके साथ-साथ नरिष्यन्त का चरित्र और परमप्रतापी इक्ष्वाकु राजा का चरित्र वर्णित है। तुलसी के चरित्र के बाद श्रीरामचन्द्र की पुण्य सत्कथा, कुश-वंश का आख्यान और सोमवंश का गुणानुवाद निरूपित है। पुरूरवा राजा की कथा के अनन्तर परमतेजस्वी नहुष राजा का अद्भुत आख्यान और पुण्य-श्लोक परम भागवत ययाति का पवित्रकीर्ति सम्पन्न चरित्र और उसके आज्ञा-कारी पुत्र के नाम से यदुवंश प्रचलित हुआ उसका कीर्तन प्रतिपादन किया गया है। श्रीकृष्णभगवान् का बालचरित्र उनके द्वारा मथुरा में कंसको वध कर उग्रसेन और माता देवकी का दुःख निवारण फिर द्वारका चरित्र और भगवान के सम्पूर्ण अवतारों की कथा वर्णित है। इसके पश्चात् साङ्ख्य का सिद्धान्त और प्रपञ्च असत्त्व का सविस्तर निरूपण है। इसके अनन्तर महर्षिमार्कण्डेय का चरित्र वर्णन है। तत्पश्चात् इस पुराण श्रवण की महिमा का फल निरूपित है। हे वत्स! जो मनुष्य इस श्री मार्कण्डेय नामक पुराण को भक्ति पूर्वक एवं आदर पूर्वक सुनता है वह परमगतिको प्राप्त होता है। जो इसे अवि-कल श्रोतृवृन्द को सुनाता है उसे भगवान् आशुतोष शङ्कर जी का शैवलोक मिलता है। जो कार्तिक मास में सोने के हाथी के सहित इस महापुराण को लिखकर विद्वान् द्विजवर्य को देता है उसे ब्रह्मपद मिलता है। जो इस पवित्र महिमामय मार्कण्डेयपुराण की अनुक्रमणिका को सुनते और सुनाते हैं उन्हें अभिवाञ्छित फल मिलता है।

मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः।
तासु दुर्गाकथाऽत्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे॥
तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजः समुद्भवः।
मार्त्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमाचिता॥

इसप्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त अनुक्रमणिकामें वर्णित नरिष्यन्त चरित्र के बाद दम के आख्यान के अनन्तर प्रस्तुत मार्कण्डेयपुराण में उपसंहारात्मक श्लोकों के साथ-साथ ग्रन्थ समाप्ति हो जाती है। इसके आगे अबतक के प्रकाशित मार्कण्डेयपुराण की प्रतियों में नहीं मिलता। अबतक श्लोक सङ्ख्या प्रायः ७००० उपलब्ध है। मत्स्यपुराण में इसकी श्लोक सङ्ख्या नौ हजार वर्णित है।

"यत्राधिकृत्यशकुनीन् धर्माधर्मविचारणा।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते॥"

अर्थात् पक्षीगण को अधिकृत करके धर्म एवं अधर्म का सिद्धान्ततः प्रतिपादन, धर्म के पालन करने वाले मुनिवृन्द द्वारा प्रश्नोत्तर रूप में श्रीमार्कण्डेय द्वारा सविस्तर कहा गया है। वही ९००० श्लोक वाला मार्कण्डेयपुराण प्रसिद्ध है।

वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सप्रयाश्चरितं ततः।
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः।
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छिव्रतकीर्तनम्॥
नरिष्यन्तस्यचरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः। तुलस्याश्चरितंपश्चाद्रामचन्द्रस्यसत्कथा कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम्। पुरूरवःकथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम्। श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः द्वारकाचरितञ्चाथ कथासर्वावतारजा। ततःसाङ्ख्यसमुद्देशःप्रपञ्चासत्त्वकीर्तनम् मार्कण्डेयस्यचरितंपुराणश्रवणेफलम्। यःशृणोतिनरोभक्त्यापुराणमिदमादरात् मार्कण्डेयाभिधं वत्स! स लभेत् परमां गतिम्।

ऐसी स्थिति में भगवान् वेदव्यास की यह यथावदुपलब्धकृति ही सन्तोषाधायक होगी। हमें बहुत ही प्रसन्नता है कि पुराणों के हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों से हमारे गुरुमण्डल ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुराणों के पाठ-भेद की तुलना के लिये वारम्वार कृपालु विद्वद्वृन्द से सादर प्रार्थना करने का इस वार श्रीमार्कण्डेयपुराणके प्रकाशन समाप्तिपर फण से छत्री माहेश्वर (मध्य प्रदेश)से श्रीमान् परमपूज्य शिवचैतन्यजी वर्णी द्वारा सविशेष मार्कण्डेयपुराण की हस्तलिखित प्रतिके भेजनेका पूर्ण साहाय्य मिला। वर्णीजीके कथनानुसार यह प्रति २०० वर्ष पुरानी है। दुर्गासप्तशती के प्राधानिक, वैकृतिक और मूर्तिरहस्यों का इस हस्तलिखित पुराणप्रति में अविकल अध्याय प्रतिपादन-पुरःसर निरूपण है। अब भी मेरी हार्दिक इच्छा है कि २००० श्लोक जो अनुपलब्ध है उन्हें किसी भी प्रख्यात हस्तलिखित ग्रन्थ भाण्डार में से उपलब्ध करवाकर जो महोदय विद्वद्वर्ग इस पुराण को पूर्ण करने में श्रीमान् शिवचैतन्य जी वर्णी द्वारा प्रस्तुत आदर्शानुसार हमें अपना पथप्रदर्शन करेंगे उन्हें सभी पुराणप्रेमी साभार कृतज्ञता प्रदर्शित करेंगे। सौभाग्य से इस पुराण के उपान्त्य भाग ही अनुपलब्ध हैं। इसलिये उन्हें हम परिशिष्ट में ग्रन्थ में सम्मि-लित कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। वर्णीजी के पुराणोद्धारार्थ इस प्रयत्न का मैं ऋणी हूं।

रहस्य-त्रय हमें परिशिष्ट में इसलिये देना पड़ा कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के

यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ॥
तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ।
कार्तिक्यां द्विजवर्णाय स लभेद् ब्रह्मणः पदम् ॥
शृणोति श्रावयेद्वाऽपि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ।
मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥

प्रकाशन का कार्य समाप्ति पर था और इस हस्तलिखित पुराण ग्रन्थ की हमें तभी प्राप्ति हुई समयोपरान्त अगत्या यही मार्गानुसरण करनेको हम बाध्य हुए कृपालु पाठक क्षमा करें।

भगवती जगदम्बा आद्याशक्ति की अनन्त महिमा भारतीय जनता की अलौकिक श्रद्धा एवं भक्ति की आराध्या के रूप में अनन्तकाल से सर्वतः प्रसिद्ध है। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत ८१ अध्याय से ९३ तक सप्तशती का पूर्ण आख्यान है जो साङ्गोपाङ्गविधि एवं पारायण सहितश्रद्धालु भक्तोंका, तान्त्रिक समुदाय का और दुर्गाभक्ति परायण महानुभावों का अत्युत्तम रत्नहार है। इस दुर्गासप्तशती की उपादेयता सर्वविदित है साथ ही इसमें वर्णित एक एक श्लोक में एक एक अक्षर के विशेष मन्त्र की प्रक्रिया है ऐसा उसके विशिष्ट मर्मज्ञों का मत है। इस सप्तशती की विशेष टीकायें विद्वज्जनानुमोदित प्रायः १५, २० है जिनमें शान्तनवी और गुप्तवती टीकायें सबमें मूर्धन्य हैं। भगवती के साक्षात्कार विना ऐसी मार्मिक व्याख्या का आविर्भाव कठिन ही नहीं असम्भव ही समझिये। ये टीकायें दुर्मिल थी। विद्वद्वृन्द के प्रीत्यर्थ शान्तनवी टीका का समावेश विशेष रूप से किया है। ग्रन्थ की विच्छित्ति इस प्रकार आप महानुभावों की सेवा में निवेदित की है।

मेरी सभी सम्मान्य पुराणप्रेमी सज्जनों से करबद्ध प्रार्थना है कि इस व्यास वाणी को संसार में सिद्धान्ततया प्रसारित कर सच्चे अर्थों में 'सर्वभूतहिते रताः' बनने का अनुग्रह करें। ठोस कार्यों से ही हमारी संस्कृति आजतक अक्षुण्ण है भविष्य में हम इस प्रभु की आज्ञा रूप धर्मशास्त्र और पुराणों में प्रतिपादित अपने कर्तव्य कर्मों का पालन कर ठोस कार्य अपने लिये एवं भावी सन्तान के लिये कर सकते हैं। भगवती पराम्बा हमें इस महान् कार्य में सफलता प्रदान करने की क्षमता प्रदान करे यही सादर प्रार्थना एवं कामना है।

इस महापुराण की आदर्शप्रति कलिकातास्थ जीवानन्दविद्यासागर प्रकाशित संस्करण और वम्बई के श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय से १९४१ विक्रम सम्वत् में छपे मार्कण्डेयपुराण (सप्तशती पर शान्तनवीटीका सहित) दुर्लभ ग्रन्थ हैं। वम्बई की प्रतिप्राप्त करने में हमारे अन्यतम शुभैषी वीकानेरनिवासी श्रीमान् कथाव्यास पं० गोपालदत्तजी रत्ताणी ने अत्यन्त परिश्रम किया तदर्थ हम श्रीमान् पण्डितजी के हृदय से आभारी हैं। भविष्य में सदा ही इसीप्रकार कृपा करते रहेंगे।

अन्त में इस विशाल कार्य के सम्पादनार्थ आरम्भ से व्यापृत श्री पण्डित ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी व्याकरणाचार्य एम० ए० लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासी तथा पण्डित रामनाथजी शास्त्री पुराणसाङ्ख्यस्मृतितीर्थ नवलगढ़-जयपुरनिवासी को इस कार्य में सहयोग देने को धन्यवाद देने की आवश्यकता नहीं, कारण यह तो उनका अपना कार्य है और उसके लिये कोई प्रशस्ति का साधुवाद देना उनकी कार्य-गुरुता को लघु बनाना है। अपनी अपूर्णता के लिये मैं करबद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ।

"कामयेदुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्"

कृपाभिलाषी

शुभमिति फाल्गुन शुक्ला
हरिदोलोत्सव पूर्णिमा बुधवार
२०१८ विक्रमसम्वत्

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता -१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणस्य विषयानुक्रमणिका

—:※:—

परिशिष्टे :—

समाप्ताचेयं मार्कण्डेयमहापुराणस्य विषयानुक्रमणिका ।

इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन (लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि)
ब्रह्मदत्त त्रिवेदि—नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़—जयपुरनिवासि)
रामनाथमिश्रदाधीचौ ।

—:*:—

शुभम्भूयात्



सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

—:*:—

* श्रीगणेशायनमः *

॥ ॐ नमोभगवतेवासुदेवाय ॥

मार्कण्डेयपुराणम्

—:*:—

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणपूर्वकवपुनामाप्सरःशापवर्णनम्

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवःस्वः ॥ १ ॥
पायात् स वः सकलकल्मषभेददक्षःक्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्त्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

तपःस्वाध्यायनिरतंमार्कण्डेयंमहामुनिम् । व्यासशिष्योमहातेजाजैमिनिःपर्य्यपृच्छत
भगवन्!भारताख्यानं व्यासेनोक्तंमहात्मना । पूर्णमस्तमलैःशुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः

जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ।
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥ ३ ॥

त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणोयथा । भूषणानाञ्च सर्वेषां यथाचूड़ामणिर्वरः
यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणांयथामनः । तथेह सर्वशास्त्राणांमहाभारतमुत्तमम्
अत्रार्थश्चैव धर्म्मश्च कामो मोक्षश्चवर्ण्यते । परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्च ते पृथक्

धर्म्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥ ७ ॥

चतुराश्रमधर्म्माणामाचारस्थितिसाधनम् । प्रोक्तमेतन्महाभाग! वेदव्यासेन धीमता
तथा तात! कृतं ह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा । यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते
व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा । वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता
कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम् । कथाविस्तीर्णसलिलंकार्ष्णं वेदमहाह्रदम्
तदिदंभारताख्यानंबह्वर्थंश्रुतिविस्तरम् । तत्त्वतोज्ञातुकामोऽहंभगवंस्त्वामुपस्थितः

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ।
वासुदेवो जगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥ १३ ॥
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ।
पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्र नः संशयो महान् ॥ १४ ॥

भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः
कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः । पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत्
एतत् सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि । भवन्तो मूढबुद्धीनामवबोधकराः सदा
इति तस्य वचः श्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः । दशाष्टदोषरहितो वक्तुं समुपचक्रमे

मार्कण्डेय उवाच

क्रियाकालोऽयमस्माकंसम्प्राप्तोमुनिसत्तम! । विस्तरेचापिवक्तव्येनैषकालःप्रशस्यते
ये तुवक्ष्यन्तिवक्ष्येऽद्य तानहंजैमिने!तव । तथा च नष्टसन्देहंत्वांकरिष्यन्तिपक्षिणः

पिङ्गाक्षश्च विबोधश्च सुपुत्रः सुमुखस्तथा ।
द्रोणपुत्राः खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः ॥ २१ ॥
वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः ।

विन्ध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तदा तेनमार्कण्डेयेन धीमता । प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्! खगवागिव मानुषी । यत् पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम्

तिर्य्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् ।

कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्त्रिणः ॥ २५ ॥

कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्यपुत्रचतुष्टयम् । जातं गुणवतां तेषांधर्मज्ञानंमहात्मनाम्

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा । शक्रस्याप्सरसाञ्चैव नारदस्य च सङ्गमे

नारदोनन्दनेऽपश्यतपुंश्चलीगणमध्यगम् । शक्रंसुराधिराजानंतन्मुखासक्तलोचनम्

स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः । समुत्तस्थौ स्वकं चास्मै ददावासनमादरात्

तं दृष्ट्वावनवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गनाः । प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताःस्थिताः

ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ । यथार्हं कृतसम्भाषःकथाश्चक्रे मनोरमाः

ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम् ।

शक्र उवाच

देह्याज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतेति वै ॥ ३२ ॥

रम्भा वाकर्कशा वाथउर्वश्यथ तिलोत्तमा । घृताची मेनका वापियत्रवाभवतोरुचिः

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वाचं शक्रस्य नारदः ।

विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनताः स्थिताः ॥ ३४ ॥

युष्माकमिहसर्वासांरूपौदार्य्यगुणाधिकम् । आत्मानंमन्यतेयातुसानृत्यतुममाग्रतः

गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै ।

चार्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तद्वाक्यसमकालञ्चएकैकास्तानतास्ततः । अहंगुणाधिकानत्वंनत्वंचान्याब्रवीदिदम्

तासां सम्भ्रममालोक्य भगवान् पाकशासनः ।

पृच्छ्यतां मुनिरित्याह वक्ता यां वो गुणाधिकाम् ॥ ३८ ॥

शक्रच्छन्दानुयाताभिःपृष्टस्ताभिः सनारदः । प्रोवाचयत्तदावाक्यं जैमिनेतन्निबोधमे

तपस्यन्तं नगेन्द्रस्थं या;वः क्षोभयते बलात् ।

दुर्व्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ॥ ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच

तस्यतद्वचनं श्रुत्वासर्व्वा वेपितकन्धराः । अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चक्रिरे कथाः॰

तत्राप्सरा वपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्विता ।

प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्राऽसौ संस्थितो मुनिः ॥ ४२ ॥

अद्य तंदेहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरशस्तगलद्रश्मिं करिष्यामिकुसारथिम्

ब्रह्मा जनार्दनोवापियदिवा नीललोहितः । तमप्यद्य करिष्यामिकामवाणक्षतान्तरम्

इत्युक्त्वा प्रजगामाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा । मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम्

सा पुंस्कोकिलमाधुर्य्यं यत्रास्ते स महामुनिः ।

क्रोशमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ॥ ४६ ॥

तद्गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः । जगाम तत्रयत्रास्ते सा बालारुचिरानना

तां दृष्ट्वा चारुसर्व्वाङ्गीं मुनिःसंस्तभ्यमानसम् ।

क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ॥ ४८ ॥

उवाचेदं ततो वाक्यं महर्षिस्तां महातपाः ॥ ४९ ॥

यस्माद्दुःखार्जितस्येहतपसोविघ्नकारणात् । आगतासिमदोन्मत्तेममदुःखायखेचरि

तस्मात् सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।

जन्म प्राप्स्यसि दुष्प्रज्ञे! यावद्वर्षाणि षोडश ॥ ५१ ॥

निजरूपं परित्यज्यपक्षिणीरूपधारिणी । चत्वारस्ते चतनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सरः

अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि । वासमाप्स्यसिवक्तव्यंनोत्तरन्ते कथञ्चन

इति वचनमसह्यंकोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलवलयां तां मानिनीं श्रावयित्वा ।

तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्यविप्रःप्रथितगुणगणौघां संप्रयातःखगङ्गाम् ॥ ५४॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वपुनानाप्सरःशापवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

चटकोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडो नामपक्षिराट् । गरुडस्याभवत् पुत्रःसम्पातिरितिविश्रुतः
तस्याप्यासीत् सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः।
सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥ २ ॥
तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ॥ ३ ॥
कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् । ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम्
आपानासक्तममलस्त्रग्दामाम्बरधारिणम् । भार्य्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे
तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् ।
प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम! ॥ ६ ॥
स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तंकस्मान्मामुपसर्पसि । नैषधर्मःसुबुद्धीनां मिथोनिष्पाद्यवस्तुषु

कङ्क उवाच

साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथामम । अन्येषाञ्चैव जन्तूनांममताभवतोऽत्र का

मार्कण्डेय उवाच

ब्रुवाणमित्थं खड्गेनकङ्कं चिच्छेदराक्षसः । क्षरत्क्षतजवीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम्
कङ्कं विनिहतं श्रुत्वाकन्धरःक्रोधमूर्च्छितः । विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वरः
स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्रहतःस्थितः । तस्य सङ्कलनश्चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेचरः
कोपामर्षविवृद्धाक्षो नागेन्द्र इव निःश्वसन् ॥ ११ ॥

जगामाथ सयत्रास्ते भ्रातृहातस्यराक्षसः। पक्षवातेन महता चालयन्भूधरान्वरान्
वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षणः। क्षणात्क्षयितशत्रुःसपक्षाभ्यांक्रान्तभूधरः
पानासक्तमतिं तत्र तं ददर्श निशाचरम् । आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्य्यङ्कमाश्रितम्
स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम्। केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥ १५

वामोरुमाश्रितां चास्य ददर्शाऽऽयतलोचनाम्।
पत्नीं मदनिकां नाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् ॥ १६ ॥

ततो रोषपरीतात्मा कन्धरः कन्दरस्थितम्। तमुवाच सुदुष्टात्मन्नेहियुध्यस्ववैमया

यस्माज्जेष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया।
तस्मात्त्वां मद्यसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् ॥ १८ ॥
विश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम्।
यास्यसे निरयान् सर्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः ॥ १६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तं स्त्रीसन्निधौतदा। रक्षःक्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषत पक्षिणम्
यदि ते निहतो भ्राता पौरुषंतद्धि दर्शितम्। त्वामप्यद्यहनिष्येऽहं खड्गेनानेनखेचर!
तिष्ठ क्षणंनात्र जीवन् पतगाधम!यास्यसि। इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलंखड्गमाददे
ततः पतगराजस्य यक्षाधिपभटस्य च। बभूव युद्धमतुलं यथा गरुडशक्रयोः ॥ २३
ततःसराक्षसःक्रोधात्खड्गमाविध्यवेगवत्। चिक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारवर्च्चसम्
पतगेन्द्रश्च तं खड्गं किञ्चिदुत्प्लुत्यभूतलात्। वक्त्रेणजग्राह तदा गरुडः पन्नगं यथा
वक्त्रपादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रेक्षोभमथाण्डजः। तस्मिन् भग्नेततःखड्गे बाहुयुद्धमवर्त्तत
ततः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः । हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजितः

तस्मिन्विनिहते सा स्त्री खगं शरणमभ्यगात्।
किञ्चित् सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्य्या भवामि ते ॥ २८ ॥

तामादायखगश्रेष्ठःस्वकं गृहमगात्पुनः। गत्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात्
कन्धरस्य च सा वेशमप्राप्येच्छारूपधारिणी। मेनकातनया सुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे

तस्यांसजनयामासताक्ष्यीं नामसुतांतदा । मुनिशापाग्निविप्लुष्टां वपुमप्सरसांवराम्
तस्या नाम तदा चक्रे ताक्ष्यींमिति विहङ्गमः ॥ ३१ ॥
मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः । जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ताद्विजसत्तमाः
तेषां जघन्यो धर्म्मात्मावेदवेदाङ्गपारगः । उपयेमे सतांताक्ष्यीं कन्धरानुमतेशुभाम्
कस्यचित्त्वथ कालस्य ताक्ष्यीं गर्भमवाप ह । सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे । भावित्वाच्चैव कार्य्यस्यरणमध्यंविवेशसा
तत्रापश्यत्तदा युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः । निरन्तरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् । तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं चिच्छेदजाठरीम्
भिन्नेकोष्ठेशशाङ्काभं भूमावण्डचतुष्टयम् । आयुषः सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत्
तत्पातसमकालश्च सुप्रतीकाद्गजोत्तमात् । पपात महतीघण्टा वाणसञ्छिन्नवन्धना
समं समन्तात् प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला ।
छादयन्ती खगाण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ॥ ४० ॥
हते च तस्मिन्नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे । बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥ ४१
वृत्तेयुद्धेधर्मपुत्रे गतेशान्तनवान्तिकम् । भीष्मस्यगदतोऽशेषान्श्रोतुंधर्मान्महात्मनः
घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानिद्विजोत्तम! । आजगामतमुद्देशंशमीकोनामसंयमी
स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीति वाशताम् ।
बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ॥ ४४ ॥
अथर्षिःशिष्यसहितोघण्टामुत्पाट्यविस्मितः । अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददर्शह
तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान्मुनिः ।
दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचाऽनुगतान् द्विजान् ॥ ४६ ॥
सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसास्वयम् । पलायनपरंदृष्ट्वादैत्यसैन्यं सुरार्दितम्
नगन्तव्यंनिवर्त्तध्वंकस्माद्व्रजतकातराः । उत्सृज्यशौर्य्ययशसी क्वगतानमरिष्यथ
नश्यतो युद्ध्यतो वापि तावद् भवति जीवितम् ।
यावद्धातासृजत् पूर्वं न यावन्मनसेप्सितम् ॥ ४६ ॥

एके म्रियन्तेस्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः । भुञ्जन्तोऽन्नंतथैवापः पिबन्तोनिधनंगता
विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामयाः । अविक्षताङ्गाःशस्त्रैश्चप्रेतराजवशंगताः
अन्ये तपस्यभिरता नीताः प्रेतनृपानुगैः । योगाभ्यासेरताश्चान्ये नैव प्रापुरमृत्युताम्
शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना । हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुरः
तेनैव खलु वज्रेण तेनैवेन्द्रेण दानवाः । प्राप्तेकालेहता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनं गताः

विदित्वैवं न सन्त्रासः कर्त्तव्यो विनिवर्त्तत ।
ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥ ५५ ॥

इतिशुक्रवचः सत्यं कृतमेभिः खगोत्तमैः । ये युद्धेऽपि न संप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे
काण्डानां पतनं विप्राः क्व घण्टापतनंसमम् । क्व च मांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया
केऽप्येते सर्वथा विप्रा नैते सामान्यपक्षिणः । दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी
एवमुक्त्वा स तान् वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् । निवर्त्ततामंयातगृहीत्वापक्षिबालकान्
मार्जाराखुभयं यत्रनैषामण्डजजन्मनाम् । श्येनतोनकुलाद्वापिस्थाप्यन्तां तत्रपक्षिणः

द्विजा किम्वाऽतियत्नेन मार्य्यन्ते कर्मभिः स्वकैः ।
रक्ष्यन्ते चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः ॥ ६१ ॥

तथापि यत्नःकर्त्तव्यो नरैः सर्वेषुकर्मसु । कुर्व्वन् पुरुषकारन्तुवाच्यतांयातिनोसताम्

इति मुनिवरचोदितास्ततस्ते मुनितनयाः परिगृह्य पक्षिणस्तान् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसङ्घं ययुरथ तापसरम्यमाश्रमं स्वम् ॥ ६३ ॥
स चापि वन्यं मनसाभिकामितं प्रगृह्य मूलं कुसुमं फलं कुशान् ।
चकार चक्रायुधरुद्रवेधसां सुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥ ६४ ॥
अपाम्पतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणोः समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तमः ।
धातुर्विधातुस्त्वथ वैश्वदेविकाः श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रियाः ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चटकोत्पत्तिवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

——:*:——

तृतीयोऽध्यायः

विन्ध्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अहन्यहनि विप्रेन्द्र! सतेषांमुनिसत्तमः । चकाराहारपयसा तथा गुप्त्या चपोषणम्
मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोःस्यन्दनवर्त्मनि । कौतूहलविलोलाक्षैर्द्रष्ट्रामुनिकुमारकैः
द्रष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वरान् । रथचक्रप्रमाणां ते पुनराश्रममागताः

श्रमक्लान्तान्तरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः ।
ज्ञानञ्च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ॥ ४ ॥

ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतोधर्मनिश्चयम् । कृत्वाप्रदक्षिणंसर्वे चरणावभ्यवादयन्

ऊचुश्च मरणाद्घोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने !।
आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः ॥ ६ ॥
गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवाऽपि पालिताः ।
त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः ॥ ७ ॥
क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम् ।
गजघण्टां समुत्पाट्य कृतवान् दुःखरेचनम् ॥ ८ ॥

कथं वर्द्धेयुरबलाःखस्थान् द्रक्ष्याम्यहंकदा । कदाभूमेर्द्रुमंप्राप्तान् द्रक्ष्येवृक्षान्तरंगतान्

कदा मे सहजा कान्तिः पांशुना नाशमेष्यति ।
एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम् ॥ १० ॥

इतिचिन्तयताताता!भवताप्रतिपालिताः । तेसाम्प्रतंप्रवृद्धाःस्मः प्रबुद्धाःकरवामकिम्

इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत् स्फुटम् ।
शिष्यैः परिवृतःसर्वैः सहपुत्रेण श्रृङ्गिणा ॥ १२ ॥

कुतूहलपरो भूत्वा रोमाञ्चपटसम्वृतः । उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः कारणं गिरः ॥

कस्य शापादियं प्राप्ता भवद्भिर्विक्रिया परा। रूपस्य वचसश्चैव तन्मे वक्तुमिहार्हथ

पक्षिण ऊचुः

विपुलस्वानितिख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः। तस्यपुत्रद्वयंजज्ञेसुकृषस्तुम्बुरुस्तथा
सुकृषस्य वयं पुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः। तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्राः सदैव हि

तपश्चरणशक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्य च।
यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥ १७ ॥

समित्पुष्पादिकं सर्वंयच्चैवाभ्यवहारिकम्। एवंतत्राथवसतांतस्यास्माकंचकानने
आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वितः। आताम्रनेत्रःस्रस्तात्मापक्षीभूत्वासुरेश्वरः
सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम्। जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च

पक्ष्युवाच

द्विजेन्द्र !मांक्षुधाविष्टंपरित्रातुमिहार्हसि। भक्षणार्थी महाभाग ! गतिर्भवममातुला
विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन् पत्रिपत्रेरितेन वै। पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरंहसा
सोऽहंमोहसमाविष्टोभूमौसप्ताहमस्मृतिः। स्थितस्तत्राष्टमेनाह्नाचेतनां प्राप्तवानहम्
प्राप्तचेताः क्षुधाविष्टो भवन्तं शरणं गतः। भक्ष्यार्थी विगतानन्दो दूयमानेनचेतसा
तत्कुरुष्वामलमते!मत्त्राणायाचलाम्मतिम्। प्रयच्छभक्ष्यंविप्रर्षे! प्राणायात्राक्षमंमम
सएवमुक्तःप्रोवाचतमिन्द्रंपक्षिरूपिणम्। प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यंतवेप्सितम्

इत्युक्त्वा पुनरप्येनमपृच्छत्स द्विजोत्तमः।
आहारः कस्तवार्थाय उपकल्प्यो भवेन्मया।
सचाऽऽह नरमांसेन तृप्तिर्भवति मे परा ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच

कौमारं ते व्यतिक्रान्तमतीतं यौवनञ्च ते। वयसः परिणामस्ते वर्त्ततेनूनमण्डज!

यस्मिन्नाराणां सर्वेषामशेषेच्छा निवर्त्तते।
स कस्माद् वृद्धभावेऽपि सुनृशंसात्मको भवान् ॥ २६ ॥

क्व मानुषस्य पिशितं क्व वयश्चरमं तव। सर्वथा दुष्टभावानां प्रथमो नोपपद्यते

अथवा किं मयैतेनप्रोक्तेनास्तिप्रयोजनम् । प्रतिश्रुत्य सदादेयमितिनोभावितंमनः

इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः ।
शीघ्रमस्मान् समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ॥ ३२ ॥
उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् ।
विनयावनतान् सर्वान् भक्तियुक्तान् कृताञ्जलीन् ॥ ३३ ॥

कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठाऋणैर्युक्ता मया सह । जातं श्रेष्ठमपत्यंवो यूयंममयथाद्विजाः गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता । ततः कुरुतमे वाक्यंनिर्व्यलीकेनचेतसा तद्वाक्यसमकालंच प्रोक्तमस्माभिरादृतैः । यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम्

ऋषिरुवाच

मामेष शरणं प्राप्तो विहगः क्षुत्तृषान्वितः । युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेतवै तृष्णाक्षयश्चरक्तेनतथाशीघ्रंविधीयताम् । ततोवयंप्रव्यथिताःप्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः

कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत् कर्मेति चाब्रुवन् ॥ ३८ ॥

कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः । विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः

पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै ।
तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥ ४० ॥
तस्मान्नैतत्करिष्यामो नो चीर्णं यत् पुरातनैः ।
जीवन् भद्राण्यवाप्नोति जीवन् पुण्यं करोति च ॥ ४१ ॥

मृतस्य देहनाशश्च धर्माद्युपरतिस्तथा । आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः

इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन् ।
प्रोवाच पुनरप्यस्मान् निर्दहन्निव लोचनैः ॥ ४३ ॥
प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत् करिष्यथ ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौ प्रयास्यथ ॥ ४४ ॥
एवमुक्त्वा तदा सोऽस्मांस्तं विहङ्गमब्रवीत् ।
अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ४५ ॥

भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम ! । आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः
एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते । यावत् पतगजात्यग्र्यस्वसत्यपरिपालनम्
नयज्ञैर्दक्षिणावाद्भिस्ततपुण्यंप्राप्यतेमहत् । कर्मणान्येनवाविप्रैर्यतसत्यपरिपालनात्
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः । प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा
योगमास्थाय विप्रेन्द्र! त्यजेदं स्वंकलेवरम् । जीवज्जन्तुंहिविप्रेन्द्रनभक्षामिकदाचन
तस्यैतद्वचनंश्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनिः । तंतस्यनिश्चयंज्ञात्वाशक्रोऽप्याहस्वदेहभृत्

भो भो विप्रेन्द्र! बुध्यस्व बुद्ध्या बोध्यं बुधात्मक ! ।
जिज्ञासार्थं मयाऽयं ते अपराधः कृतोऽनघ! ॥ ५२ ॥

तत्क्षमस्वामलमतेकाचेच्छाक्रियतां तव । पालनात्सत्यवाक्यस्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि
अद्य प्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति । तपस्यथ तथा धर्मेनतेविघ्नोभविष्यति
इत्युक्त्वा तुगतेशक्रेपिताकोपसमन्वितः । प्रणम्यशिरसास्माभिरिदमुक्तोमहामुनिः
बिभ्यतां मरणात्तात!त्वमस्माकं महामते । क्षन्तुमर्हसि दीनानांजीवितप्रियताहिनः
त्वगस्थिमांससङ्घाते पूयशोणितपूरिते । कर्त्तव्यान रतिर्यत्रतत्रास्माकमियंरतिः
श्रूयताञ्च महाभाग !यथालोकोविमुह्यति । कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशःप्रबलारिभिः
प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं पुरं महत् । चर्मभित्तिमहारोधं मांसशोणितलेपनम्
नवद्वारं महायासं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् । नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः
मन्त्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ । यतेते वैरनाशाय तावुभावितरेतरम्

नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः ॥ ६२ ॥

यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्यतिष्ठति । तदासुस्थबलश्चैवनिरातङ्कश्चजायते

जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाऽभिभूयते ॥ ६४ ॥

यदा तु सर्वद्वाराभि विवृतानि स मुञ्चति । रागो नाम तदाशत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति
सर्वव्यापी महायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः । तस्यानुमार्गं विशति तद्वै घोरं रिपुत्रयम्
प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसञ्ज्ञकैः । रागः संश्लेषमायाति मनसाच सहेतरैः

इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः। द्वाराणिचवशेकृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ
मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात्।
अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोज्झितस्तथा॥ ६६॥

रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति। एवंरागस्तथामोहोलोभःक्रोधस्तथैव च
प्रवर्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः।
रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते॥ ७१॥
लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ ७२॥

एवं प्रणष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्त्तिनाम्। जीविते च सलोभानां प्रसादंकुरु सत्तम!
योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा।
न तामसीं गतिं कष्टां व्रजेम मुनिसत्तम!॥ ७४॥

ऋषिरुवाच

यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यतिकदाचन। न मे वागनृतंप्राह यावदद्येति पुत्रकाः
दैवमत्र परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्। अकार्यं कारितो येन बलादहमचिन्तितम्
यस्माच्चयुष्माभिरहंप्रणिपत्यप्रसादितः। तस्मात्तिर्यक्त्वमापन्नापरंज्ञानमवाप्स्यथ
ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्धूतक्लेशकल्मषाः।
मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ॥ ७८॥
एवं शप्ताः स्म भगवन्! पित्रा दैववशात् पुरा।
ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः॥ ७९॥

जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः। वयमित्थंद्विजश्रेष्ठ! खगत्वं समुपागताः
नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते॥ ८०॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शमीको भगवान् मुनिः।
प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान्॥ ८१॥

पूर्वमेव मयाप्रोक्तं भवतां सन्निधाविदम् । सामान्यपक्षिणोनैतेकेऽप्येते द्विजसत्तमाः

ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताःपञ्चत्वमतिमानुषे ॥ ८२ ॥

ततःप्रीतिमतातेनतेऽनुज्ञातामहात्मना । जग्मुःशिखरिणांश्रेष्ठंविन्ध्यं द्रुमलतायुतम्

यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्मपक्षिणः ।

तपः स्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः ॥ ८४ ॥

इतिमुनिवरलब्धसत्क्रियास्ते मुनितनया विग्रहत्वमभ्युपेताः ।

गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोये यतमनसो निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे ॥ ८५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विन्ध्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

चतुर्व्यूहावतारवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तेद्रोणतनयाःपक्षिणोज्ञानिनोऽभवन् । वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्वचपृच्छच

इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वा मार्कण्डेयस्यजैमिनिः । जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिणः

तन्नगासन्नभूतश्चशुश्रावपठतांध्वनिम् । श्रुत्वाचविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासजैमिनिः

स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् । विस्पष्टमपदोषञ्च पठ्यते द्विजसत्तमैः

वियोनिमपि संप्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् । चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती

बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे । त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वंनजहातिसरस्वती

इति सञ्चिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् । प्रविश्य चददर्शासौशिलापट्टगतान्द्विजान्

पठतस्तान् समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् ।

सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्वानेवाभ्यभाषत ॥ ८ ॥

स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा ! जैमिनिं मां निबोधत ।

व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतां दर्शनोत्सुकम् ॥ ६ ॥

मन्युर्न खलु कर्त्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना। शप्ताःस्वगत्वमापन्नाःसर्वथादिष्टमेवतत्
स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः।
द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शवरेण सुसान्त्विताः॥ ११॥
दत्त्वा याचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे। पातयित्वाचपात्यन्तेतएवतपसःक्षयात्
एतद्दृष्टं सुबहुशो विपरीतं तथा मया। भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत्
इति सञ्चिन्त्य मनसा न शोकं कर्तुमर्हथ। ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता
ततस्ते जैमिनिं सर्वेपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन्। अनामयञ्चपप्रच्छुःप्रणिपत्यमहामुनिम्
अथोचुः खगमाः सर्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम्।
सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहतक्लमम्॥ १६॥

पक्षिण ऊचुः

अद्य नः सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्।
यत् पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम्॥ १७॥
पितृकोपाग्निरुद्धूतो यो नो देहेषु वर्त्तते!
सोऽद्य शान्तिं गतो विप्र! युष्मद्दर्शनवारिणा॥ १८॥
कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु। वृक्षेष्वथ लतागुलमत्वक्सारतृणजातिषु
अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः। भवता सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः
प्रसादञ्च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम्। देवानामिव संसर्गोभवतोऽभ्युदयो महान्
केनाऽस्मद्भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम्॥ २१॥
श्रूयतां द्विजशार्दूलाः! कारणं येन कन्दरम्।
विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम्।
सन्देहान् भारते शास्त्रे तान् प्रष्टुं गतवानहम्॥ २२॥
मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्वं भृगुकुलोद्वहम्। तमहं पृष्टवान् प्राप्यसन्देहान् भारतंप्रति
सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले। द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम्
तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम्।

तत् श्रृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ २५ ॥

पक्षिण ऊचुः

विषये सति वक्ष्यामो निर्विशङ्कः श्रृणुष्व तत् ।

कथं तन्न वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥ २६ ॥

चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैवहि । समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्वेदसम्मितम्

एतेषु गोचरोऽस्माकंबुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम! । प्रतिज्ञान्तुसमावोढुं तथापिनहि शक्नुमः

तस्माद्वदस्व विश्रब्धं सन्दिग्धं यद्धि भारते ।

वक्ष्यामस्तव धर्मज्ञ! न चेन्मोहो भविष्यति ॥ २९ ॥

जैमिनिरुवाच

सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारतं प्रति यानि मे ।

श्रृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ ३० ॥

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ।

वासुदेवोऽखिलाधारः सर्वकारणकारणम् ॥ ३१ ॥

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका साद्रुपदात्मजा । पञ्चानांमहिषीकृष्णासुमहानत्रसंशयः

भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रेहलायुधः

कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथः । पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत्

एतत् सर्वं कथ्यतां मे सन्दिग्धं भारतम्प्रति ।

कृतार्थोऽहं सुखं येन गच्छेयं निजमाश्रमम् ॥ ३५ ॥

पक्षिण ऊचुः

नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषायाऽप्रमेयायशाश्वतायाऽव्ययाय च

चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायाऽगुणाय च । वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायाऽमृतायच

यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ।

येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन जगदादिना ॥ ३८ ॥

आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् । वदन्तियत् सृष्टमिदंतथैवाऽन्ते च संहृतम्

ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ।
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥
प्रणिपत्य तथेशानमेकबाणविनिर्जितैः । यस्यासुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्ते न यज्विनाम्
प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याऽद्भुतकर्मणः ।
येन भारतमुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः ॥ ४२ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ४३ ॥
स देवो भगवान् सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ।
चतुर्द्धा संस्थितो ब्रह्मन् ! सगुणो निर्गुणस्तथा ॥ ४४ ॥
एका मूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।
ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ॥ ४५ ॥
दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥ ४६ ॥
रूपवर्णादयस्तस्यानभावाः कल्पनामयाः । अस्त्येवसा सदाशुद्धासुप्रतिष्ठैकरूपिणी
द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ।
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता ॥ ४८ ॥
तृतीया कर्म्मकुरुते प्रजापालनतत्परा । सत्वोद्रिक्तातुसा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी
चतुर्थीजलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा । रजस्तस्यागुणः सर्गं सा करोतिसदैवहि
यातृतीया हरेर्मूर्त्तिः प्रजापालनतत्परा । सा तु धर्मव्यवस्थानंकरोति नियतं भुवि
प्रोद्धूतानसुरान् हन्ति धर्मविच्छित्तिकारिणः ।
पाति देवान् सतश्चान्यान् धर्मरक्षापरायणान् ॥ ५२ ॥
यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने! । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजत्यसौ
भूत्वा पुरावराहेण तुण्डेनापो निरस्य च । एकयादंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुन्धरा
कृत्वा नृसिंहरूपञ्च हिरण्यकशिपुर्हतः । विप्रचित्तिमुखाश्चान्येदानवा विनिपातिताः

वामनादींस्तथैवान्यान्न संख्यातुमिहोत्सहे। अवतारांश्चतस्येहमाथुरःसाम्प्रतंत्वयम्

इति सा सात्त्विकीमूर्त्तिरवतारान् करोति वै।
प्रद्युम्नेति च साख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥ ५७ ॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्य्यग्योनौ च संस्थिता।
गृह्णाति तत्स्वभावञ्च वासुदेवेच्छया सदा ॥ ५८ ॥

इत्येतत्ते समाख्यातंकृतकृत्योऽपियत्प्रभुः। मानुषत्वंगतोविष्णुश्शृणुष्वास्योत्तरंपुनः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चतुर्व्यूहावतारवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

——:*:——

पञ्चमोऽध्यायः

इन्द्रविक्रियावर्णनम्

पक्षिण उचुः

त्वष्टृपुत्रे हतेपूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजसः । ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत
तद्धर्मं प्रविवेशाऽथ शाक्रतेजोऽपचारतः। निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मे तेजसि निर्गते
ततः पुत्रं हतं श्रुत्वात्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः। अवलुञ्च्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत्
अद्य पश्यन्तुमे वीर्यं त्रयो लोकाःसदेवताः। सच पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः

स्वकर्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः।
इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ॥ ५ ॥

ततो वृत्रःसमुत्तस्थौ ज्वालामालीमहासुरः। महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः
इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्टृ तेजोऽपबृंहितः । अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपातं महाबलः
बधाय चात्मनोदृष्ट्वावृत्रं शक्रोमहासुरम्। प्रेषयामाससप्तर्षीन् सन्धिमिच्छन्भयातुरः
सख्यञ्चक्रुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयांस्तथा। ऋषयः प्रीतमनसः सर्वभूतहिते रताः
समयस्थितिमुल्लङ्घ्ययदाशक्रेण घातितः। वृत्रो हत्याभिभूतस्यतदाबलमशीर्य्यत

तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत् । सर्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम्
अहल्याञ्च यदाशक्रो गौतमं रूपमास्थितः । धर्षयामासदेवेन्द्रस्तदा रूपमहीयत
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यं यदतीव मनोरमम् । विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नासत्यावगमत्ततः
धर्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम् । ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम्
राज्ञामुद्रिक्तवीर्य्याणां देवेन्द्रं विजिगीषवः । कुलेष्वतिबलादैत्या अजायन्तमहामुने
कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणीभारपीड़िता । जगाममेरुशिखरंसदोयत्रदिवौकसाम्
तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीड़िता । दनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः
एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः । ते सर्वे मानुषे लोकेजाता गेहेषु भूभृताम्

अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्त्ता व्रजाम्यधः ।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम ॥ १९ ॥

पक्षिण ऊचुः

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महिम् । प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च
यदिन्द्रदेहजंतेजस्तन्मुमोचस्वयंवृषः । कुन्त्यांजातो महातेजास्ततोराजायुधिष्ठिरः
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत । शक्रवीर्य्यार्द्धतश्चैव जज्ञेपार्थोधनञ्जयः
उत्पन्नौ यमजौ माद्रयां शक्ररूपौ महाद्युती । पञ्चधाभगवानित्थमवतीर्णःशतक्रतुः

तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् ।
शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित् ।
योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि ॥ २५ ॥

पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव । श्रूयतांबलदेवोऽपियथा यातः सरस्वतीम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रियावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

——:*:——

षष्ठोऽध्यायः

बलदेवब्रह्महत्यावर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

रामःपार्थेपरांप्रीतिंज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली । चिन्तयामासबहुधाकिंकृतंसुकृतंभवेत्

कृष्णेन हि विना नाऽहं यास्ये दुर्य्योधनान्तिकम् ।

पाण्डवान् वा समाश्रित्य कथं दुर्य्योधनं नृपम् ॥ २ ॥

जामातरंतथाशिष्यंघातयिष्येनरेश्वरम् । तस्मान्नपार्थं यास्यामिनापिदुर्योधनंनृपम्

तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ।

कुरूणां पाण्डवानाञ्च यावदन्ताय कल्पते ॥ ४ ॥

इत्यामन्त्र्य हृषीकेशं पार्थदुर्योधनावपि । जगामद्वारकां शौरिःस्वसैन्यपरिवारितः

गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् । श्वोगन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः

पीतपानो जगामाथ रैवतोद्यानमृद्धिमत् । हस्ते गृहीत्वासमदांरेवतीमप्सरोपमाम्

स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययौमत्तः पदास्खलन् । ददर्श च वनंवीरो रमणीयमनुत्तमम्

सर्वर्त्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ।

पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्वलमहावनम् ॥ ९ ॥

स श्रृण्वन् प्रीतिजननान् बहून्मदकलान् शुभान् ।

श्रोत्ररम्यान् सुमधुरान् शब्दान् खगमुखेरितान् ॥ १० ॥

सर्वर्त्तुफलभाराढ्यान् सर्वर्त्तु कुसुमोज्ज्वलान् ।

अपश्यत् पादपांस्तत्र विहगैरनुनादितान् ॥ ११ ॥

आम्रानाम्रातकान् भव्यान् नारिकेलान् सतिन्दुकान् ।

आविल्वकांस्तथा जीरान् दाड़िमान् वीजपूरकान् ॥ १२ ॥

पनसान् लकुचान् मोचान् नीपांश्चातिमनोहरान् ।

पारावतांश्च कङ्कोलान् नलिनानम्लवेतसान् ॥ १३ ॥
भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च महाफलान् ॥
इङ्गुदान् करमर्दांश्च हरीतकविभीतकान् ॥ १४ ॥
एतानन्यांश्च स तरून् ददर्श यदुनन्दनः । तथैवाशोकपुन्नागकेतकीवकुलानथ ॥ १५
चम्पकान् सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान् समालतीन् ।
पारिजातान् कोविदारान् मन्दारान् वदरांस्तथा १६ ॥
पाटलान् पुष्पितान् रम्यान् देवदारुद्रुमांस्तथा ।
सालांस्तालांस्तमालांश्च किंशुकान् वञ्जुलान् वरान् ॥ १७ ॥
चकोरैःशातपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः कलविङ्कैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः । श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम्
सरांसिच मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथा नीलोत्पलैः शुभैः
कह्लारैः कमलैश्चापिआचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च ।
एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥ २२ ॥
क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्षमाणो मनोरमम् । जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम्
स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् ।
कौशिकान् भार्गवांश्चैव भारद्वाजान् सगौतमान् ॥ २४ ॥
विविधेषु च सम्भूतान् वंशेषु द्विजसत्तमान् ।
कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सु च ॥ २५ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च वृषीषु च । सूतं च तेषां मध्यस्थंकथयानंकथाःशुभाः
पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चरिताश्रयाः ।
दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥ २७ ॥
मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ।
पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥ २८ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः। निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः

अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन् सूते निपातिते।
निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बराः॥ ३० ॥

अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः। चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम्

ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः।
तथा हीमे द्विजाः सर्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः ॥ ३२ ॥
शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवाऽसुखावहः।
आत्मानञ्चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम् ॥ ३३ ॥

धिगमर्षं तथा मद्यमतिमानमभीरुताम्। यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम्

तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम्।
स्वकर्मख्यापनं कुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥
अथ येयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाऽधुना।
एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥
अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वतीम्।
ततः परं श्रृणुष्वेमं पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे बलदेवब्रह्महत्यावर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनम्

धर्मपक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रेतिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगे पुरा। धर्मात्मापृथिवीपालःप्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः
न दुर्भिक्षंनचव्याधिर्नाकालमरणंनृणाम्। नाधर्मरुचयःपौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे
बभूवुर्न तथोन्मत्ता धनवीर्य्यतपोमदैः। नाजायन्त स्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवनाः

स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन् मृगम्।
शुश्राव शब्दमसकृत्त्रायस्वेति च योषिताम्॥ ४॥

सविहायमृगंराजामाभैषीरित्यभाषत। मयिशासतिदुर्मेधाःकोऽयमन्यायवृत्तिमान्

तत्क्रन्दितानुसारी च सर्वारम्भविघातकृत्।
एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट् समचिन्तयत्॥ ६॥
विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्य्यवान्।
प्रागसिद्धाभवादीनां विद्याः साधयति व्रती॥ ७॥

साध्यमानाःक्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना। तावैभयार्त्ताःक्रन्दन्तिकथंकार्य्यमिदंमया

तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्बलाः।
क्रोशन्त्येतास्तथाभीता दुष्पारं प्रतिभाति मे॥ ९॥

अथवाऽयं नृपः प्राप्तो माभैरितिवदन्मुहुः। इममेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम्
इति सञ्चिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः। तेनाविष्टो नृपः कोपादिदंवचनमब्रवीत्
कोऽयंबध्नातिवस्त्रान्तेपावकंपापकृन्नरः। बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्यावुपस्थिते
सोऽद्यमत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः। शरैर्विभिन्नसर्व्वाङ्गो दीर्घनिद्रांप्रवेक्ष्यति
विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः। क्रुद्धे चर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेनताः
सचापिराजातंदृष्ट्वा विश्वामित्रंतपोनिधिम्। भीतःप्रावेपतात्यर्थंसहसाश्वत्थपर्णवत्

स दुरात्मन्निति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
ततः स राजा विनयात् प्रणिपत्याऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥
भगवन्नेष धर्म्मो मे नापराधो मम प्रभो ! । न क्रोद्धुमर्हसि मुने निजधर्मरतस्य मे
दातव्यं रक्षितव्यञ्च धर्मज्ञेन महीक्षिता । चापंचोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारतः

विश्वामित्र उवाच

दातव्यं कस्य के रक्ष्याःकैर्योद्धव्यञ्च ते नृप !। क्षिप्रमेतत् समाचक्ष्वयद्यधर्मभयंतव

हरिश्चन्द्र उवाच

दातव्यंविप्रमुख्येभ्योयेचान्येकृशवृत्तयः । रक्ष्याभीताःसदायुद्धंकर्तव्यंपरिपन्थिभिः

विश्वामित्र उवाच

यदि राजा भवान् सम्यग्राजधर्ममवेक्षते । निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा

पक्षिण ऊचुः

एतद्राजा वचः श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । पुनर्जातमिवात्मानं मेनेप्राह च कौशिकम्
उच्यतां भगवन्! यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ।
दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥ २३ ॥
हिरण्यं वा सुवर्णंवा पुत्रः पत्नी कलेवरम् । प्राणाराज्यंपुरंलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः

विश्वामित्र उवाच

राजन् !प्रतिगृहीतोऽयंयस्तेदत्तः प्रतिग्रहः । प्रयच्छप्रथमंतावद्दक्षिणांराजसूयिकीम्

राजोवाच ।

ब्रह्मंस्तामपि दास्यामि दक्षिणां भवतो ह्यहम् ।
व्रियतां द्विजशार्दूल ! यस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ॥ २६ ॥

विश्वामित्र उवाच

ससागरां धरामेतां सभूभृद्ग्रामपत्तनाम् । राज्यञ्च सकलंवीर ! रथाश्वगजसङ्कुलम्
कोष्ठागारञ्च कोषञ्च यच्चान्यद्विद्यते तव । विनाभार्य्याञ्च पुत्रञ्च शरीरञ्च तवानघ
धर्मञ्चसर्वधर्मज्ञ ! यो यान्तमनुगच्छति । बहुना वा किमुक्तेन सर्वमेतत् प्रदीयताम्

पक्षिण ऊचुः

प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः । तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः

विश्वामित्र उवाच

सर्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्व्वीबलंधनम् । प्रभुत्वंकस्यराजर्षे! राज्यस्थेतापसेमयि

हरिश्चन्द्र उवाच

यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ।तस्मिन्नपिभवानस्वामीकिमुताद्यमहीपतिः

विश्वामित्र उवाच

यदि राजंस्त्वयादत्तामम सर्व्वा वसुन्धरा । यत्रमेविषयेस्वाम्यंतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हति

श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वाभूषणसङ्ग्रहम् । तरुवल्कलमावध्यसह पत्न्या सुतेनच

पक्षिण उचुः

तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजागन्तुंप्रचक्रमे । स्वपत्न्याशैव्ययासार्द्धंबालकेनात्मजेनच

व्रजतःसततोरुद्धा पन्थानंप्राहतंनृपम् । क्वयास्यसीत्यदत्त्वामेदक्षिणांराजसूयिकीम्

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् ! राज्यमेतत्ते दत्तं निहतकण्टकम् । अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम

विश्वामित्र उवाच

तथापिखलु दातव्या त्वयामेयज्ञदक्षिणा । विशेषतो ब्राह्मणानांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम्

यावत्तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप !। तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी

प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाऽऽततायिभिः ।
रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक् प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् ! साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेणते । प्रसादंकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच

विश्वामित्र उवाच

किम्प्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप !।
शीघ्रमाचक्ष्व शापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ॥ ४२ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

मासेन तव विप्रर्षे ! प्रदास्ये दक्षिणाधनम् । साम्प्रतंनास्तिमेवित्तमनुज्ञांदातुमर्हसि

विश्वामित्र उवाच

गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ ! स्वधर्ममनुपालय । शिवश्च तेऽध्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिनः

पक्षिण ऊचुः

अनुज्ञातः स गच्छेति जगाम वसुधाधिपः । पद्भ्यामनुचितागन्तुमन्वगच्छततंप्रिया

तं सभार्य्यं नृपश्रेष्ठं निर्यान्तं ससुतं पुरात् । दृष्ट्वा प्रचुक्रुशुः पौराराज्ञश्चैवानुयायिनः

हा नाथ ! किं जहास्यस्मान् नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ।

त्वं धर्मतत्परो राजन् ! पौरानुग्रहकृत्तथा ॥ ४७ ॥

नयाऽस्मानपिराजर्षे ! यदि धर्ममवेक्षसे । मुहूर्त्तंतिष्ठराजेन्द्र ! भवतो मुखपङ्कजम्

पिबामो नेत्रभ्रमरैः कदा द्रक्ष्यामहे पुनः । यस्यप्रयातस्यपुरोयान्तिपृष्ठेचपार्थिवाः

तस्याऽनुयाति भार्य्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् ।

यस्य भृत्याः प्रयातस्य यान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ॥ ५० ॥

स एष पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति ।

हा राजन् ! सुकुमारं ते सुभ्रसुत्वचमुन्नसम् ॥ ५१ ॥

पथि पांशुपरिक्लिष्टं मुखं कीदृग्भविष्यति । तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ ! स्वधर्ममनुपालय

आनृशंस्यंपरोधर्मःक्षत्रियाणां विशेषतः । किं दारैः किं सुतैर्नाथधनैर्धान्यैरथापिवा

सर्वमेतत् परित्यज्य छायाभूता वयं तव ।

हा नाथ ! हा महाराज ! हास्वामिन् ! किंजहासि नः ॥ ५४ ॥

यत्र त्वं तत्र हि वयं तत्सुखं यत्र वै भवान् । नगरंतद्भवान् यत्रसस्वर्गोयत्रनोनृपः

इति पौरवचः श्रुत्वा राजाशोकपरिप्लुतः । अतिष्ठत् स तदामार्गेतेषामेवानुकम्पया

विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम् ।

रोषामर्षविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ॥ ५७ ॥

धिक्त्वांदुष्टसमाचारमनृतंजिह्मभाषितम् । ममराज्यंचदत्वायःपुनःप्राक्रष्टुमिच्छसि

इत्युक्तः परुषंतेन गच्छामीति सवेपथुः। ब्रुवन्नेवं ययौ शाघ्रमाकर्षन्दयितां करे
कर्षतस्तां ततो भार्य्यांसुकुमारींश्रमातुराम्। महसादण्डकाष्ठेनताड़यामासकौशिकः

तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत्किञ्चिदुदाहरत्॥ ६१॥
अथ विश्वे तदा देवाः पञ्च प्राहुः कृपालवः।
विश्वामित्रः सुपात्रोऽयं लोकान् कान् समवाप्स्यति॥ ६२॥

येनाऽयं यज्वनां श्रेष्ठःस्वराज्यादवरोपितः। कस्य वा श्रद्धयापूतंसुतंसोमंमहाध्वरे
पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम्॥ ६३॥

पक्षिण ऊचुः।

इति तेषां वचःश्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषान्वितः।
शशाप तान् मनुष्यत्वं सर्वे यूयमवाप्स्यथ॥ ६४॥

प्रसादितंच तैः प्राह पुनरेवमहामुनिः। मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्रीनैव सन्ततिः
न दारसङ्ग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः। कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथ सुराः पुनः
ततोऽवतेरुरंशैः स्वैर्देवास्ते कुरुवेश्मनि। द्रौपदीगर्भसम्भूताः पञ्च वै पाण्डुनन्दनाः
एतस्मात्कारणात्पञ्च पाण्डवेया महारथाः। नदारसङ्ग्रहंप्राप्ताःशापात्तस्यमहामुनेः
एतत्ते सर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम्। प्रश्नंचतुष्टयंगीतंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात्। महत् कौतूहलंमेऽस्तिहरिश्चन्द्रकथांप्रति
अहो महात्मना तेन प्राप्तं कृच्छ्रमनुत्तमम्। कच्चित् सुखमनुप्राप्तं तादृगेवद्विजोत्तमाः

पक्षिण ऊचुः

विश्वामित्रवचःश्रुत्वास राजाप्रययौशनैः। शैव्ययाऽनुगतोदुःखीभार्ययाबालपुत्रया
स गत्वावसुधापालोदिव्यांवाराणसींपुरीम्। नैषामनुष्यभोग्येतिशूलपाणेपरिग्रहः
जगामपद्भ्यांदुखार्त्तःसह पत्न्याऽनुकूलया। पुरीप्रवेशेददृशेविश्वामित्रमुपस्थितम्
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत्। प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वाहरिश्चन्द्रोमहामुनिम्
इमेप्राणाः सुतश्चायमियं पत्नीमुने! मम। येनते कृत्यमस्त्याशुतद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम्
यद्वाऽन्यत् कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि॥ ८॥

विश्वामित्र उवाच

पूर्णः स मासोराजर्षे! दीयतां ममदक्षिणा। राजसूयनिमित्तंहिस्मर्यंतेस्ववचोयदि

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्रह्मन्नद्यैवसम्पूर्णोमासोऽम्लानतपोधन!। तिष्ठत्येतद्दिनार्द्धंयत्तत् प्रतीक्षस्वमाचिरम्

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तुमहाराज! आगमिष्याम्यहं पुनः। शापंतव प्रदास्यामि नचेदद्य प्रदास्यति

पक्षिण ऊचुः

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाऽचिन्तयत्तदा।
कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता॥ १२॥

कुतःपुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थःसाम्प्रतंमम। प्रतिग्रहःप्रदुष्टो मे नाहं यायामधः कथम्

किमु प्राणान् विमुञ्चामि कां दिशं याम्यकिञ्चनः ।
यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥ १४ ॥

ब्रह्मस्वहृत्कृमिःपापो भविष्याम्यधमाधमः । अथवाप्रेष्यतांयास्येवरमेवात्मविक्रयः

पक्षिण ऊचुः

राजानं व्याकुलंदीनं चिन्तयानमधोमुखम् । प्रत्युवाच तदा पत्नीवाष्पगद्गदयागिरा
त्यज चिन्तां महाराज!स्वसत्यमनुपालय । श्मशानवद्वर्जनीयोनरः सत्यबहिष्कृतः
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु । यादृशं पुरुषव्याघ्र! स्वसत्यपरिपालनम्

अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः ।
भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥ १६ ॥

सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषुधीमताम् । तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम्
सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयञ्च पार्थिवः । कृतिर्नामच्युतःस्वर्गादसत्यवचनात्सकृत्
राजन्! जातमपत्यं मे इत्युक्त्वाप्ररुरोदह । वाष्पाम्बुप्लुतनेत्रान्तामुवाचेदंमहीपतिः

हरिश्चन्द्र उवाच

विमुञ्च भद्रे! सन्तापमयंतिष्ठति बालकः । उच्यतांवक्तुकामासियद्वात्वंगजगामिनि

पत्न्युवाच

राजन्!जातमपत्यं मे सतांपुत्रफलाःस्त्रियः । समांप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम्

पक्षिण ऊचुः

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौमोहंमहीपतिः । प्रतिलभ्यचसञ्ज्ञांसविललापाऽतिदुःखितः

महद्दुःखमिदं भद्रे! यत्त्वमेवं ब्रवीषि माम् ।
किन्तवस्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ २६ ॥
हा हा! कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतत् शुचिस्मिते!।
दुर्वाच्यमेतद्वचनं कर्त्तुं शक्नोम्यहं कथम् ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा सनरश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् । निपपातमहीपृष्ठेमूर्च्छयाभिपरिप्लुतः
शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम् । उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता

पत्न्युवाच

हामहाराज!कस्येदमपध्यानमुपस्थितम् । यत्त्वंनिपतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचितः
येन कोटथग्रगोवित्तं विप्राणामपवर्जितम् । सएषपृथिवीनाथोभूमौस्वपितिमेपतिः
हाकष्टं किं तवानेन कृतंदेव!महीक्षिता । यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयंनीतःप्रस्वापनींदशाम्
इत्युक्त्वा सापिसुश्रोणीमूर्च्छितानिपपातह । भर्त्तृदुःखमहाभारेणासह्येननिपीडिता
तौतथापतितौभूमावनाथौपितरौशिशुः । दृष्ट्वात्यन्तंक्षुधाविष्टःप्राहवाक्यंसुदुःखितः
तात तात ददस्वान्नमम्बाम्ब भोजनं दद ! क्षुन्मे वलवती जाताजिह्वाग्रंशुष्यते तथा

पक्षिण ऊचुः

सएतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपाः । दृष्ट्वातुतंहरिश्चन्द्रंपतितंभुविमूर्च्छितम्
स वारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र! तां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥
ऋणं धारयतो दुःखमहन्यहनि वर्द्धते । आप्याय्यमानः स तदा हिमतीर्थेन वारिणा
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च । पुनर्मोहं समापेदेसचक्रोधंययौमुनिः
स समाश्वास्य राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः । दीयतांदक्षिणासामेयदिधर्ममवेक्षसे
सत्येनाऽर्कःप्रतपति सत्येतिष्ठतिमेदिनी । सत्यञ्चोक्तंपरो धर्मःस्वर्गःसत्येप्रतिष्ठितः
अश्वमेधसहस्रं च सत्यञ्च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते
अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम् । अनार्ये पापसङ्कल्पे क्रूरेचानृतवादिनि
त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भावः श्रूयतामयम् ।
अद्य मे दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान् यदि ॥ ४४ ॥
अस्ताचलं प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वां ततो ध्रुवम् ।
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥ ४५ ॥
कां दिग्भूतोऽधमो निःस्वो नृशंसधनिनार्दितः ।
भार्ययास्य भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥ ४६ ॥
मा शापानलनिर्दग्धःपञ्चत्वमुपयास्यसि । स तथाचोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुनःपुनः

प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं तव निर्घृणः । नृशंसैरपियत्कर्त्तुंनशक्यंतत्करोम्यहम्
यदिमे शक्यतेवाणी वक्तुमीदृक् सुदुर्वचः । एवमुक्त्वाततोभार्यांगत्वानगरमातुरः
वाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

राजोवाच

भोभो नागरिकाःसर्वेश्रृणुध्वंवचनंमम । किं मांपृच्छथकस्त्वंभोनृशंसोऽहममानुषः
राक्षसो वाऽतिकठिनस्ततः पापतरोऽपिवा ।
विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ५१ ॥
यदि वः कस्यचित् कार्यं दास्या प्राणेष्टया मम ।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत् सन्धारयाम्यहम् ॥ ५२ ॥

पक्षिण ऊचुः

अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् । समर्पयस्व मेदासीमहं क्रेता धनप्रदः
अस्ति मे वित्तमस्तोकंसुकुमारीचमेप्रिया । गृहकर्मनशक्नोति कर्त्तुमस्मात्प्रयच्छमे
कर्मण्यतावयोरूपशीलानां तव योषितः । अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम्
एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । व्यदीर्यत मनोदुःखान्नचैनंकिञ्चिदब्रवीत्
ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम् । बद्ध्वा केशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत्
रुरोद (रोहिताश्वोऽपि) रहितास्योऽपि दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् ।
हस्तेन वस्त्रमाकर्षन् काकपक्षधरः शिशुः ॥ ५८ ॥

राजपत्न्युवाच

मुञ्चाऽऽर्य मुञ्च तावन्मां यावत् पश्याम्यहं शिशुम् ।
दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ॥ ५९ ॥
पश्यैहि वत्स ! मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ।
मां मास्प्राक्षीर्राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाऽधुना ॥ ६० ॥
ततः स बालःसहसादृष्ट्वाकृष्टान्तुमातरम् । समभ्यधावदम्बेतिरुदन्साम्राविलेक्षणः
तमागतं द्विजः क्रेताबालमभ्याहनत्पदा । वदंस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामुञ्चतमातरम्

राजपत्न्युवाच

प्रसादं कुरु मे नाथ! क्रीणीष्वेमञ्च बालकम् । क्रीतापिनाहंभवतोविनैनंकार्यसाधिका
इत्थं ममाल्पभाग्यायाःप्रसादसुमुखोभव । मां संयोजयबालेन वत्सेनेवपयस्विनीम्

ब्राह्मण उवाच

गृह्यतांवित्तमेतत्ते दीयतां बालको मम । स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैःकृतमेव हि वेतनम्

शतं सहस्रं लक्षञ्च कोटिमूल्यं तथा परैः ॥ ६५ ॥

पक्षिण ऊचुः

तथैव तस्य तद्वित्तं बद्ध्वोत्तरपटे ततः । प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत्
नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्यापुत्रौसपार्थिवः । विललापसुदुःखार्त्तोनिःश्वस्योष्णंपुनः पुनः
यां न वायुर्नचादित्योनेन्दुर्न च पृथग्जनः । दृष्टवन्तःपुरा पत्नीं सेयंदासीत्वमागता
सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकराङ्गुलिः । सम्प्राप्तोविक्रयंबालोधिङ्मामस्तुसुदुर्मतिम्

हा प्रिये! हा शिशो! वत्स! ममानार्यस्य दुर्नयैः ।
दैवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ ७० ॥

पक्षिण ऊचुः

एवं विलपतो राज्ञःसविप्रोऽन्तरधीयत । वृक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादायत्वरान्वितः
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत । तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम्

तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसम्भवम् ।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ७३ ॥

क्षत्रबन्धो! ममेमां त्वं सदृशींयज्ञदक्षिणाम् । मन्यसेयदितत्क्षिप्रंपश्यत्वंमेबलंपरम्
तपसोऽत्रसुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्यच । मत्प्रभावस्यचोग्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्यच

अन्यां दास्यामि भगवन्! कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम् ।
साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ७६ ॥

विश्वामित्र उवाच

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्यनराधिप !। एषएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यंनोत्तरंत्वया

पक्षिण ऊचुः

तमेवमुक्त्वा राजेन्द्रं निष्ठुरंनिर्घृणंवचः। तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिकोययौ
विश्वामित्रे गते राजा भयशोकाब्धिमध्यगः।
सर्वाकारं विनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ ७६ ॥

वित्तक्रीतेनयोह्यर्थीमयाप्रेष्येणमानवः। सब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः
अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक्। दुर्गन्धोविकृतोरूक्षःश्मश्रुलोदन्तुरोघृणी
कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः। गृहीतपक्षिपुञ्जश्च शवमाल्यैरलङ्कृतः
कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन् मुहुः।
श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ॥ ८२ ॥

चण्डाल उवाच

अहमर्थीत्वयाशीघ्रंकथयस्वात्मवेतनम्। स्तोकेनबहुना वाऽपि येन वै लभ्यतेभवान्

पक्षिण ऊचुः

तं तादृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिं सुनिष्ठुरम्। वदन्तमतिदुःशीलंकस्त्वमित्याह पार्थिवः

चण्डाल उवाच

चण्डालोऽहमिहाख्यातःप्रवीरेतिपुरोत्तमे । विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्बलहारकः

हरिश्चन्द्र उवाच

नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम्। वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशंगतः

पक्षिण ऊचुः

तस्यैवं वदतः प्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधिः। कोपामर्षविवृत्ताक्षःप्राहचेदंनराधिपम्

विश्वामित्र उवाच

चण्डालोऽयमनल्पं ते दातुंवित्तमुपस्थितः। कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्! सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक!।
कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः ॥ ९० ॥

विश्वामित्र उवाच

यदिचण्डालवित्तंत्वमात्मविक्रयजं मम । नप्रदास्यसिकालेनशप्स्या मित्वामसंशयम्

पक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रस्ततोराजा चिन्तावस्थितजीवितः । प्रसीदेतिवदन् पादावृषेर्जग्राहविह्वलः

दासोऽस्म्यार्त्तोऽस्मि भीतोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ।

कुरु प्रसादं विप्रर्षे ! कष्टश्चण्डालसङ्करः ॥ ६३ ॥

भवेयं वित्तशेषेण सर्वकर्मकरो वशः । तवैवमुनिशार्दूल! प्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥ ६४

विश्वामित्र उवाच

यदिप्रेष्योममभवान् चण्डालायततोमया । दासभावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्बुदेन वै

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्ते तदातेन श्वपाकोहृष्टमानसः । विश्वामित्रायतद्द्रव्यं दत्त्वाबद्ध्वानरेश्वरम्

दण्डप्रहारसम्भ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् । इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन्निजपत्तनम्

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा वसंश्चण्डालपत्तने । प्रातर्मध्याह्नसमये सायञ्चैतदगायत ॥

बालादीनमुखी दृष्ट्वा बालंदीनमुखं पुरः । मां स्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनौनृपः

उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम् ।

न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं कृतम् ॥ १०० ॥

राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः । प्राप्ता चण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा

एवं स निवसन्नित्यं सस्मारदयितंसुतम् । भार्याञ्चात्मसमाविष्टांहृतसर्वस्वआतुरः

कस्यचित्त्वथ कालस्यमृतचैलापहारकः । हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजाश्मशाने तद्वशानुगः

चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा । शवागमनमन्विच्छन्निह तिष्ठ दिवानिशम्

इदं राज्ञेऽपि देयञ्च षड्भागां तु शवं प्रति । त्रयस्तुममभागाःस्युर्द्वौभागौतववेतनम्

इतिप्रतिसमादिष्टो जगामशवमन्दिरम् । दिशंतुदक्षिणांयत्रवाराणस्यांस्थितंतदा

श्मशानं घोरसंनादं शिवाशतसमाकुलम् । शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम्

पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसङ्कुलम् । गृध्रगोमायुसङ्कीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम्

अस्थिसङ्घातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसङ्कुलम् । नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम्

हा पुत्र ! मित्र ! हा बन्धो ! भ्रातर्वत्स ! प्रियाद्य मे ।

हा पते ! भगिनि! मातर्हा मातुल ! पितामह ! ॥ ११० ॥

मातामह ! पितः ! पौत्र ! क्व गतोऽस्येहि बान्धव ! ।

इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् १११ ॥

ज्वलन्मांसवसामेदच्छमच्छमितसङ्कुलम् ॥ ११२ ॥

अर्द्धदग्धाःशवाःश्यामा विकसद्दन्तपङ्क्तयः ।

हसन्तीवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयं दशा त्विति ॥ ११३ ॥

अग्नेश्चटचटाशब्दो वायसामस्थिपङ्क्तिषु । बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुक्कसेषु प्रहर्षजः

गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् । श्रूयते सुमहान् घोरःकल्पान्तइव निःस्वनः

महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसङ्कुलम् । तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतंसास्थिभिरुन्नतैः ॥

नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपकालिकम् । अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ॥

सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ।

भयं भयस्याप्युपसञ्जनैर्भृशं श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥

स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखितःशौचनोद्यतः ॥ ११८ ॥

हा भृत्या मन्त्रिणो विप्राः क्व तद्राज्यं विधे ! गतम् ॥ ११९ ॥

हा शैव्ये ! पुत्र ! हा बाल ! मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ।

विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ॥ १२० ॥

इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः ।

मलिनो रूक्षसर्वाङ्गः केशवान् गन्धवान् ध्वजी ॥ १२१ ॥

लकुटी कालकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ।

अस्मिन् शवइदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाऽप्युत ॥ १२२ ॥

इदंममइदंराज्ञोमुख्यचण्डालके त्विदम् । इतिधावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरं गतः

जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः । चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराङ्घ्रिकः ॥

नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यङ्गुलिः श्वसन् । नानाशवोदनकृताहारतृप्तिपरायणः ॥
तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः । न रात्रौ न दिवा शेते हा हेति प्रवदन् मुहुः

एवं द्वादशमासास्तु नीताःशतसमोपमाः ।
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान् ॥ १२७ ॥

निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गो निश्चेष्टः सुप्त एव च । तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् ॥
श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य बलवत्तया । अन्यदेहेनदत्त्वातु गुरवे गुरुदक्षिणाम्
तदाद्वादशवर्षाणि दुःखदानात्तुनिष्कृतिः । आत्मानं सददर्शाथपुल्कसीगर्भसम्भवम्

तत्रस्थश्चाऽप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा ।
इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्मं करोम्यहम् ॥ १३१ ॥

अनन्तरं सजातस्तु तदापुल्कसबालकः । श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः ॥
प्राप्तेतु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतो द्विजः । आनीतोबन्धुभिर्दृष्टस्तेनतत्राधनोगुणी

मूल्यार्थिना तु तेनाऽपि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः ।
ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥ १३४ ॥

पापिष्ठमशुभं कर्म्म कुरु त्वं पापकारक! । हरिश्चन्द्रःपुराराजा विश्वामित्रेण पुल्कसः
कृतः पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्वापनाशनात् । यदा न क्षमतेतेषांतैः स शप्तो रुषा तदा
गच्छत्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम! । इत्युक्तमात्रे वचने स्वप्नस्थः स नृपस्तदा
अपश्यद्यमदूतान् वैपाशहस्तान्भयावहान् । तैःसङ्गृहीतमात्मानंनीयमानंतदाबलात्
पश्यति स्मभृशं खिन्नो हामातः!पितरद्यमे । एवंचादीसनरके तैलद्रोण्यां निपातितः
क्रकचैः पाट्यमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यधः । अन्धे तमसिदुःखार्त्तः पूयशोणितभोजनः
सप्तवर्षं मृतात्मानं पुक्कसत्वे ददर्श ह । दिनंदिनंतु नरके दह्यते पच्यतेऽन्यतः ॥

खिद्यते क्षोभ्यतेऽन्यत्र मार्यते पाट्यतेऽन्यतः ।
क्षार्यते दीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यतः ॥ १४२ ॥

एकं दिनं वर्षशतप्रमाणं नरकेऽभवत् । तथा वर्षशतं तत्र श्रावितं नरके भटैः ॥

ततो निपातितो भूमौ विष्ठाशी श्वा व्यजायत ।

वान्ताशी शीतदग्धश्च मासमात्रे मृतोऽपि सः ॥ १४४ ॥
अथापश्यत् खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् ।
छागं विड़ालं कङ्कं च गामविं पक्षिणं कृमिम् ॥ १४५ ॥
मत्स्यं कूर्मंवराहञ्चश्वाविधं कुक्कुटंशुकम् । शारिकांस्थावरांश्चैवसर्पमन्यांश्चदेहिनः
दिवसेदिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्तदा । अपश्यद्दुःखसन्तप्तोदिनं वर्षशतं तथा
एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु । अपश्यच्च कदाचित् सराजाततस्वकुलोद्भवम्
तत्र स्थितस्यतस्यापि राज्यंद्यूतेनहारितम् । भार्याहताच पुत्रश्चसचैकाकीवनंगतः
तत्रापश्यत् ससिंहंवैव्यादितास्यं भयावहम् । बिभक्षयिषुसायातंशरभेणसमन्वितम्
पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्य्यां शोचितुमुद्यतः ।
हा शैव्ये ! क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम् ॥ १५१ ॥
अपश्यत् पुनरेवापिभार्य्यां स्वांसहपुत्रकाम् । त्रायस्वत्वंहरिश्चन्द्र!किंद्यूतेनतवप्रभो
पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तोभार्यया शैव्ययासह । सनापश्यत् पुनरपिधावमानः पुनःपुनः
अथापश्यत् पुनरपि स्वर्गस्थःसनराधिपः । नीयते मुक्तकेशीसादीना विवसनावलात्
हाहावाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।
अथापश्यत् पुनस्तत्र धर्मराजस्य शासनात् ॥ १५५ ॥
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप! । विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजंस्तवार्थतः
इत्युक्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयतेवलवद्भिभुः । श्राद्धदेवेनकथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम्
तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्मोत्था व्यवर्द्धत ।
एताः सर्वादशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः ॥ १५८ ॥
सर्वास्तास्तेन सम्भुक्त्वा यावद्वर्षाणि द्वादश । अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्वलात्
यमं सोऽपश्यदाकाराद्उवाच च नराधिपम् ।
विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्निवार्यो महात्मनः ॥ १६० ॥
पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यति सकौशिकः । गच्छत्वंमानुषं लोकंदुःखशेषंचभुङ्क्ष्ववै
गतस्य तत्र राजेन्द्र! श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १६१ ॥

व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्तेनराधिपः । अन्तरिक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः
पतितो यमलोकाच्चविबुद्धोभयसम्भ्रमात् ॥ अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतेक्षारावसेचनम्
स्वप्नेदुःखंमहद्दृष्टंयस्यान्तोनोपलभ्यते । स्वप्नेदृष्टंमयायत्तुकिन्तुमेद्वादशाः समाः
गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुक्कसांस्तुससंभ्रमात् । नेत्युचुःकेचित्तत्रस्थाएवमेवापरेऽब्रुवन्

श्रुत्वा दुःखी तदा राजा देवान् शरणमीयिवान् ।
स्वस्ति कुर्वन्तु मे देवाः शैव्याया बालकस्य च ॥ १६६ ॥

नमो धर्माय महते नमःकृष्णाय वेधसे । परावराय शुद्धाय पुराणायाव्ययाय च ॥
नमो बृहस्पते!तुभ्यं नमस्ते वासवाय च । एवमुक्त्वा स राजा तुयुक्तः पुक्कसकर्म्मणि
शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा । मलिनो जटिलःकृष्णोलकुटी विह्वलो नृपः
नैवपुत्रोनभार्यातु तस्यवैस्मृतिगोचरे । नष्टोत्साहोराज्यनाशात्श्मशानेनिवसंस्तदा
अथाजगाम स्वसुतं मृतमादाय लापिनी । भार्या तस्यनरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हिबालकम्
हावत्स!हापुत्र!शिशो!इत्येवंवदतीमुहुः । कृशा विवर्णाविमनाः पांशुध्वस्तशिरोरुहा

राजपत्न्युवाच

हा राजन्नाद्य बालं त्वं पश्यसीमं महीतले । रममाणं पुरा दृष्टं दष्टं पुष्टाहिना मृतम्
तस्याविलापशब्दंतमाकर्ण्य सनराधिपः । जगाम त्वरितोऽत्रेतिभवितामृतकम्बलः
सतांरोरुदतींभार्यांनाभ्यजानात्तुपार्थिवः । चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम्
सापि तं चारुकेशान्तं पुरादृष्ट्वा जटालकम् । नाभ्यजानान्नृपसुता शुष्कवृक्षोपमं नृपम्
सोऽपि कृष्णपटेबालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् । नरेन्द्रलक्षणोपेतं चिन्तामाप नरेश्वरः

तस्यास्यं चन्द्रबिम्बाभं सुभ्र रम्यं समुन्नसम् ।
नीलाकेशाः कुञ्चिताश्च समा दीर्घास्तरङ्गिताः ॥ १७८ ॥

राजीवनेत्रयुगलो बिम्बोष्ठपुटसम्वृतः । चतुर्दंष्ट्रश्चतुःकिष्कुर्दीर्घास्योदीर्घबाहुकः
चतुर्लेखःकरोमत्स्ययवयुक् चैवपर्वतः । शिरालुपादोगम्भीरःसूक्ष्मत्वक्त्रिवलीधरः
अहोकष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येषकुलेशिशुः । जातोनीतःकृतान्तेनकामप्याशांदुरात्मना

एवं दृष्ट्वा हि मे बालं मातुरुत्सङ्गशायिनम् ।

स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहितास्यो (श्वो) ऽब्जलोचनः ॥ १८२ ॥
सोऽप्येतामेव मे वत्सो वयोऽवस्थामुपागतः ।
नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ॥ १८३ ॥

राजपत्न्युवाच

हावत्स!कस्य पापस्यअपध्यानादिदंमहत् । दुःखमापतितंघोरंयस्यान्तोनोपलभ्यते
हा नाथ ! राजन् ! भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम् ।
क्वापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थीयते कथम् ॥ १८५ ॥
राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः । हरिश्चचन्द्रस्यराजर्षेः किंविधे!नकृतंत्वया
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः ।
प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रञ्च निधनं गतम् ॥ १८७ ॥
कैषा नामगृहे युक्ता मम योषिद्वरा भवेत् ।
बालश्च स मृतः कः स्यादितिराजा विचारयन् ॥ १८८ ॥
कष्टं शैव्येयमेषा हि स बालोऽयमितीरयन् । रुरोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामभिजगामच
सा चतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् । मूर्च्छितानिपपातार्त्तानिश्चेष्टाधरणीतले
चेतः संप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् । विलेपतुःसुसन्तप्तौ शोकभारावपीडितौ

राजोवाच

हा वत्स!सुकुमारं तेस्वक्षिभ्रूनासिकालकम् । पश्यतोमेमुखं दीनंहृदयंकिंन दीर्य्यते
तात! तातेतिमधुरंब्रुवाणं स्वयमागतम् । उपगुह्य वदिष्येकंवत्स! वत्सेतिसौहृदा
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना । ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनोहृदयनन्दनः ।
मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥ १९५ ॥
हृत्वा राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत् । दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ॥
अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् । निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः । परिष्वज्य च निश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपात ह

राजपत्न्युवाच

अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते । विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः

तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोऽधोमुखं गता ।
दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्त्तेर्महात्मनः ॥ २०० ॥

श्मशानमागतः कस्मादद्यैष स नरेश्वरः । अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत् पतितंपतिम्

प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्त्तृपुत्राधिपीडिता ।
वीक्षन्ती सा ततोऽपश्यत् भर्तृदण्डं जुगुप्सितम् ॥ २०२ ॥

श्वपाकार्हमतो मोहं जगामायतलोचना । प्राप्य चेतश्च शनकैः सगद्गदमभाषत ॥

धिक् त्वां दैवातिकरुणं निर्मर्यादं जुगुप्सितम् ।
येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ २०४ ॥
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ।
प्रापयित्वाऽपि नो मुक्तश्चण्डालोऽयंकृतो नृपः ॥ २०५ ॥
हा राजन् !जातसन्तापामित्थं मां धरणीतलात् ।
उत्थाप्य नाद्य पर्यङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥ २०६ ॥

नाद्य पश्यामि ते छत्रं भृङ्गारमथवा पुनः । चामरंव्यजनञ्चापिकोऽयंविधिविपर्ययः
यस्याग्रे व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतांगताः । स्वोत्तरीयैरकुर्वन्तनीरजस्कंमहीतलम्
सोऽयं कपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे । मृतनिर्माल्यसूत्रान्तगूढकेशे सुदारुणे ॥
वसानिस्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते । भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जसङ्घट्टभीषणे
गृध्रगोमायुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहङ्गमे । चिताधूमाततिरुचा नीलीकृतदिगन्तरे ॥
कुणपास्वादनमुदा सम्प्रहृष्टनिशाचरे । चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः

एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठं राज्ञो नृपात्मजा ।
कष्टशोकशताधारा विललापाऽऽर्त्तया गिरा ॥ २१३ ॥

राजपत्न्युवाच

राजन् ! स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ।

तत् कथ्यतां महाभाग! मनो वै मुह्यते मम ॥ २१४ ॥

यद्येतदेवं धर्मज्ञ ! नास्ति धर्मे सहायता। तथैव विप्रदेवादिपूजने पालने भुवः नास्ति धर्मः कुतः सत्यमार्जवं चानृशंसता। यत्र त्वंधर्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः

इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदम्।
कथयामास तन्वङ्ग्या यथा प्राप्ता श्वपाकता ॥ २१७ ॥
रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णञ्च दुःखिता।
स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ २१८ ॥
श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले।
मृतस्य पुत्रस्य तथा जिह्वया लेलिहन् मुखम् ॥ २१९ ॥

राजोवाच

यमस्य भिक्षां याचावः कृपणौ पुत्रगृद्धनौ।
तस्माच्छीघ्रं व्रजावोऽद्य पुत्रो यत्रप्रियोगतः ॥ २२० ॥

प्रिये!नरोचयेदीर्घंकालंक्लेशमुपासितुम्। नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम् चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि। चण्डालदासतां यास्येपुनरप्यन्यजन्मनि नरके च पतिष्यामिकीटकःकृमिभोजनः। वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले

असिपत्रवने प्राप्य च्छेदं प्राप्स्यामि दारुणम्।
तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ॥ २२४ ॥
मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम्।
एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ २२५ ॥

मम दैवाम्बुवेगेनमग्नःसोऽपिबलीयसा। कथंप्राणान्विमुञ्चामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः अथवा नार्तिनाक्लिष्टोनरःपापमवेक्षते। तिर्यक्त्वेनास्तिततद्दुःखंनासिपत्रवनेतथा वैतरण्यां कुतस्तादृग् यादृशं पुत्रविप्लवे। सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने निपतिष्यामितन्वङ्गि!क्षन्तव्यंकुकृतं मम। अनुज्ञाताचगच्छत्वंविप्रवेशमशुचिस्मिते

मम वाक्यञ्च तन्वङ्गि !निबोधादृतमानसा।

यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ २३० ॥

परत्र सङ्गमो भूयात् पुत्रेण सह च त्वया। इह लोकेकुतस्त्वेतद्भविष्यतिममेङ्गितम्

त्वया सह मम श्रेयोगमनं पुत्रमार्गणे। यन्मया हसताकिञ्चिद्रहस्ये वा शुचिस्मिते

अश्लीलमुक्तं तत् सर्वं क्षन्तव्यं मम याचतः।

राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स ते द्विजः।

सर्वयत्नेन ते तोषय्यः स्वामिदैवतवच्छुभे ॥ २३३ ॥

राजपत्न्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे !दीप्यमाने हुताशने। दुःखभारासहाद्यैव सह यास्यामि वै त्वया

सह स्वर्गं च नरकं सहैवावां हि भुञ्क्ष्वहे।

श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते! ॥ २३५ ॥

पक्षिण ऊचुः

ततःकृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयं स्वकम्। भार्ययासहितश्चासौबद्धाञ्जलिपुटस्तदा

चिन्तयन् परमात्मानमीशं नारायणं हरिम्। हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम्

अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम् ॥ २३७ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः।

धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ २३८ ॥

आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराजन्श्रृणुप्रभो। अयंपितामहःसाक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम्

साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः।

नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥ २४० ॥

एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैवच। विश्वत्रयेण यो मित्रंकर्त्तुं नशकितःपुरा

विश्वामित्रस्तु ते मैत्री मिष्टञ्चाहर्तुमिच्छति।

आरुरोह ततः प्राप्तो धर्मः शक्रोऽथ गाधिजः ॥ २४२ ॥

धर्म उवाच

मा राजन्! साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः।

तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ॥ २४३ ॥

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र! महाभाग ! प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ।

त्वया सभार्यपुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥ २४४ ॥

आरोह त्रिदिवंराजन्! भार्यापुत्रसमन्वितः । सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः

पक्षिण ऊचुः

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् । इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः

पुष्पवर्षञ्च सुमहद्देवदुन्दुभिनिस्वनम् । ततस्ततो वर्त्तमाने समाजे देवसङ्कुले ॥

समुत्तस्थौ ततः पुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः । सुकुमारतनुः सुस्थःप्रसन्नेन्द्रियमानसः

ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् ।

सभार्यः सश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥ २४६ ॥

सुस्थःसम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः । बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभाषत ॥

सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिंपराम् । समारोहमहाभाग!निजानांकर्म्मणांफलैः

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिनाश्वपचेन वै । अगत्वानिष्कृतिंतस्य नारोक्ष्येऽहंसुरालयम्

धर्म उवाच

तवैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया । आत्मा श्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चचापलम्

इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यतेतत्परंस्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि । तदारोह हरिश्चन्द्र!स्थानंपुण्यकृतांनृणाम्

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज!नमस्तुभ्यं वाक्यञ्चैतन्निबोध मे । प्रसादसुमुखं यत्त्वां ब्रवीमिप्रश्रयान्वितः

मच्छोकमग्नमनसः कोशलानगरे जनाः । तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथंयास्याम्यहंदिवम्

ब्रह्महत्यागुरोर्घातोगोवधःस्त्रीवधस्तथा । तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम्

भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतःसुखम् । नेहनामुत्रपश्यामि तस्माच्छक्र!दिवंव्रज

यदितेसहिताः स्वर्गंमयायान्ति सुरेश्वर! । ततोऽहमपि यास्यामिनरकंवापितैःसह

इन्द्र उवाच

बहूनिपुण्यपापानितेषांभिन्नानिवैपृथक् । कथं सङ्घातभोग्यंत्वंभूयःस्वर्गमवाप्स्यसि

हरिश्चन्द्र उवाच

शक्र!भुङ्क्ते नृपो राज्यंप्रभावेण कुटुम्बिनाम् । यजतेच महायज्ञैःकर्मपौर्त्तंकरोतिच

तच्चतेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् । उपकर्तॄन् नसन्त्यक्ष्येतानहंस्वर्गलिप्सया

तस्माद्यन्मम देवेश! किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम् ।
दत्तमिष्टमथोजप्तं सामान्यं तैस्तदस्तुनः ॥ २६३ ॥

बहुकालोपभोग्यं हिफलं यन्ममकर्मणः । तदस्तुदिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥

पक्षिण ऊचुः

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः । प्रसन्नचेताधर्मश्चविश्वामित्रश्चगाधिजः

गत्वाऽऽशु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमायुतम् । हरिश्चन्द्रस्यनिकटेप्रोवाचविबुधाधिपः

आगच्छन्तुजनाःशीघ्रं स्वर्गलोकंसुदुर्लभम् । धर्मप्रसादात्सम्प्राप्तंसर्वैर्युष्माभिरेवतु

विमानकोटिसम्बद्धं स्वर्गलोकान्महीतलम् ।
गत्वाऽयोध्याजनं प्राह दिवमारुह्यतामिति ॥ २६८ ॥
तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीत्या तस्य च भूपतेः ।
आनीय रोहितास्यञ्च विश्वामित्रो महातपाः ॥ २६९ ॥
अयोध्याख्ये पुरे रम्ये सोऽभ्यषिञ्चन्नृपात्मजम् ।
देवैश्च मुनिभिः सिद्धैरभिषिच्य नराधिपम् ॥ २७० ॥

राज्ञा सह तदा सर्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः । सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ २७१

पदे पदे विमानात्ते विमानमगमन्नराः । तदा सम्भूतहर्षोऽसौहरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः

सम्प्राप्य भूतिमतुलां विमानैः समहीपतिः । आसाञ्चक्रे पुराकारे वप्रप्राकारसम्वृते

ततस्तस्यर्द्धिमालोक्य श्लोकं तत्रोशना जगौ ।
दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ २७४ ॥

शुक्र उवाच

हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति।
यश्चैतच्छृणुयाद्‌ भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः॥ २७५॥

तेन वेदापुराणानि सर्वेमन्त्राः सुसङ्ग्रहाः। घुष्टाःस्युःपुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे
देवागारे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः। विषुवद्ग्रहणेचैव यत्फलं जपतो लभेत्

तत्फलं द्विगुणं चैव संयतात्मा श्रृणोति यः।
श्रुत्वा तु पूजयेद्‌ भक्त्या पुराणज्ञं द्विजोत्तमम्॥ २७८॥

गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च तथैवाऽन्नेन जैमिने!। येनैवं यत्कृतंपुण्यंतच्छक्यं नमयोदितुम्
अहो तितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलंमहत्। यदागतोहरिश्चन्द्रः पुरीञ्चेन्द्रत्वमाप्तवान्

पक्षिण ऊचुः

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविचेष्टितम्।
यः श्रृणोति सुदुःखार्त्तः स सुखं महदाप्नुयात्॥ २८१॥
स्वर्गार्थी प्राप्नुयात् स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्।
भार्य्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्य्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्।
अतःपरं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम!॥ २८२॥

विपाको राजसूयस्य पृथिवीक्षयकारणम्। तद्विपाकनिमित्तश्चयुद्धमाडिबकं महत्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

——:*:——

नवमोऽध्यायः

आडिबकयुद्धवर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रे गते चत्रिदशालयम् । निश्चक्राममहातेजाजलवासात्पुरोहितः

वशिष्ठो द्वादशाब्दान्ते गङ्गापर्युषितो मुनिः ।

शुश्राव च समस्तं तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ २ ॥

हरिश्चन्द्रस्य नाशश्चराज्ञश्चोदारकर्मणः । चण्डालसंप्रयोगश्चभार्य्यातनयविक्रयम् ॥

सश्रुत्वा सुमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौ । चकारकोपंतेजस्वी विश्वामित्रमृषिम्प्रति

वशिष्ठ उवाच

मम पुत्रशतं तेनविश्वामित्रेणघातितम् । तत्रापि नाभवत्क्रोधस्तादृशोयादृशोऽद्यमे

श्रुत्वा नराधिपमिमं स्वराज्यादवरोपितम् । महात्मानं महाभागंदेवब्राह्मणपूजकम्

यस्मात् स सत्यवाक् शान्तः शत्रावपि विमत्सरः ।

अनागाश्चैव धर्मात्मा अप्रमत्तो यदाश्रयः ॥ ७ ॥

सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापितोऽन्त्यां दशां नृपः ।

स राज्याच्च्यावितोऽनेन वहुशश्च खिलीकृतः ॥ ८ ॥

तस्माद् दुरात्मा ब्रह्मद्विट् प्राज्ञानामवरोपितः ।

मच्छापोपहतोमूढः स बकत्वमवापस्यति ॥ ९ ॥

पक्षिण ऊचुः

श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिकः ।

त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत ॥ १० ॥

अन्योन्यशापात्तौ प्राप्तौ तिर्यक्त्वं परमद्युती ।

वशिष्ठः स महातेजा विश्वामित्रश्च कौशिकः ॥ ११ ॥

अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौमहाबलपराक्रमौ
योजनानां सहस्रे द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः । यन्नवत्यधिकं ब्रह्मन् सहस्रत्रितयं बकः
तौ तु पक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ । प्रहरन्तौ भयंतीव्रंप्रजानांचक्रतुस्तदा

विधूय पक्षाणि बको रक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ।
आडिं सोऽप्युन्नतग्रीवो बकं पद्भ्यामताडयत् ॥ १५ ॥

तयोः पक्षानिलापास्ताःप्रपेतुर्गिरयो भुवि । गिरिप्रपाताभिहताचकम्पे च वसुन्धरा
क्ष्मा कम्पमाना जलधीनुद्वृत्ताम्बूंश्चकार च । ननामचैकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी

केचिद्गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा ।
केचिन्महीसञ्चलनात् प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥ १८ ॥

इतिसर्वं परित्रस्तंहाहाभूतमचेतनम् । जगदासीत्सुसम्भ्रान्तंपर्यस्तक्षितिमण्डलम्

हा वत्स ! हा कान्त ! शिशो ! प्रयाह्येषोऽस्मि संस्थितः ।
हा प्रिये ! कान्त ! शैलोऽयं पतत्याशु पलायताम् ॥ २० ॥

इत्याकुलीकृते लोके सन्त्रासविमुखे तदा । सुरैः परिवृतःसर्वैराजगाम पितामहः

प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ।
युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च ॥ २२ ॥

शृण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः

ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसङ्क्षयम् ।
तयोश्च हितमन्विच्छन् तिर्यग्भावमपानुदत् ॥ २४ ॥

ततस्तौ पूर्वदेहस्थौ प्राह देवःप्रजापतिः । व्युदस्ते तामसे भावेवशिष्ठकौशिकर्षभौ

जहि वत्स ! वशिष्ठ ! त्वं त्वञ्च कौशिकसत्तम !।
तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ॥ २६ ॥

राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । युवयोर्विग्रहश्चाऽयं पृथिवीक्षयकारकः
नचापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यते । स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थितः
तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ । परित्यजत भद्रं वो ब्रह्म हिप्रचुरंबलम्

एवमुक्तौ ततस्तेनलज्जितौतावुभावपि । क्षमयामासतुःप्रीत्यापरिष्वजन्य परस्परम्

ततः सुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ ।

वशिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रयम् ॥ ३१ ॥

एतदाडिबकंयुद्धंहरिश्चन्द्रकथांतथा । कथयिष्यन्तियेमर्त्याःसम्यक्श्रोष्यन्तिचैवये

तेषां पापापनोदंतु श्रुतं ह्येवकरिष्यति । नचैव विघ्नकार्य्याणि भविष्यन्तिकदाचन

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आडिबकयुद्धवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

पितापुत्रसम्वादवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

संशयं द्विजशार्दूलाः प्रब्रूत ममपृच्छतः । आविर्भावतिरोभावौभूतानांयत्रसंस्थितौ

कथं सञ्जायते जन्तुः कथं वासविवर्द्धते । कथंवोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः

निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्यकथंवावृद्धिमृच्छति । उत्क्रान्तिकालेचकथञ्चिद्भावेनवियुज्यते

कृत्स्नो मृतस्तथाश्नाति उभे सुकृतदुष्कृते ।

कथन्ते च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ॥ ४ ॥

कथं न जीर्यते तत्र पिण्डीकृत इवाशये । स्त्रीकोष्ठे यत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरूण्यपि

भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीर्यते कथमल्पकः ॥ ५ ॥

कथं भोक्ता स सर्वस्य कर्मणः सुकृतस्य वै ॥ ६ ॥

एतन्मे ब्रूत सकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम् । तदेतत्परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्तिजन्तवः

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयाऽस्मासु निवेशितः ।

दुर्भाव्यः सर्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ॥ ८ ॥

तंशृणुष्व महाभाग !यथा प्राह पितुः पुरा । पुत्रः परमधर्म्मात्मा सुमतिर्नामनामतः
ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित् सुतमाह महामतिः । कृतोपनयनंशान्तंसुमतिंजडरूपिणम्
वेदानधीस्व सुमते! यथानुक्रममादितः । गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्टायज्ञाननुत्तमान् । इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथा वनंततः
वनस्थश्चततोवत्स!परिव्राट् निष्परिग्रहः । एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि

पक्षिण ऊचुः

इत्येवमुक्तोवहुशोजडत्वान्नाऽऽहकिञ्चन् । पिताऽपितंसुवहुशः प्राहप्रीत्या पुनः पुनः
इति पित्रा सुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् । सचोद्यमानोवहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत्

तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत्त्वयाऽद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च ॥ १६ ॥

जन्मनामयुतंसाग्रंममस्मृतिपथं गतम् । उत्पन्नज्ञानवोधस्य वेदैः किं मेप्रयोजनम् ?

निर्वेदाः परितोषाश्चक्षयवृद्ध्युदये रताः ।
शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ॥ १८ ॥

अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानिचसहस्रशः । बान्धवावहवःप्राप्ताःपितरश्चपृथग्विधाः

विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम् ।
पीड़ाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणां च सहस्रशः ॥ २० ॥

गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा । वृद्धतायांतथाप्तानि तानिसर्वाणिसंस्मरे
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्चापियोनिषु । पुनश्च पशुकीटानांमृगाणामथपक्षिणाम्
तथैव राजभृत्यानां राज्ञाञ्चाहवशालिनाम् । समुत्पन्नोऽस्मि गेहेषुतथैवतव वेश्मनि

भृत्यतां दासताञ्चैव गतोऽस्मि वहुशो नृणाम् ।
स्वामित्वमीश्वरत्वञ्च दरिद्रत्वं तथा गतः ॥ २४ ॥

हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातितं तथा । दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च । तुष्टोऽसकृत्तथा दैन्यमश्रुधौताननो गतः ॥

एवं संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतातात!सङ्कटे। ज्ञानमेतन्मया प्राप्तंमोक्षसम्प्राप्तिकारकम्

विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुःसामसञ्ज्ञितः।

क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे॥ २८॥

तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किंमेप्रयोजनम्। गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः

षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्चयत्। गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत्प्राप्स्यामि परंपदम्

रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजरातुराम्। विज्ञातां स्वमृगग्राहिसङ्घपाशशताकुलाम्

तस्मात् यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम्।

त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किं पापफलसन्निभम्॥ ३२॥

पक्षिण ऊचुः

तस्यतद्वचनं श्रुत्वा हर्षविस्मयगद्गदम्। पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमानसः

पितोवाच

किमेतद्वदसे वत्स! कुतस्ते ज्ञानसम्भवः। केन ते जड़ता पूर्वमिदानीञ्च प्रबुद्धता

किन्नु शापविकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव। यत्ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम्

पुत्र उवाच

शृणुतात!यथावृत्तंममेदंसुखदुःखदम्। यश्चाहमासमन्यस्मिन् जन्मन्यस्मत्परं तुयत्

अहमासं पुरा विप्रोन्यस्तात्मापरमात्मनि। आत्मविद्याविचारेषु परांनिष्ठामुपागतः

सततं योगयुक्तस्य सतताभ्याससङ्गमात्।

सत्संयोगात् स्वस्वभावाद् विचारविधिशोधनात्॥ ३८॥

तस्मिन्नेव पराप्रीतिर्ममासीत् युञ्जतःसदा। आचार्यतांचसम्प्रातःशिष्यसन्देहहृत्तमः

ततः कालेनमहता ऐकान्तिकमुपागतः। अज्ञानाकृष्टसद्भावो विपन्नश्च प्रमादतः॥ ४०

उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत्।

यावदब्दंगतं चैव जन्मनां स्मृतिमागतम्॥ ४१॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहंतात!जितेन्द्रियः। यतिष्यामितथाकर्तुं नभविष्येयथापुनः

ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम। नह्येतत् प्राप्यते तात! त्रयीधर्म्माश्रितैर्नरैः

सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः ।
एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्ममोक्षणे ॥ ४४ ॥
तद्ब्रूहि त्वं महाभाग ! यत्ते सांशयिकं हृदि ।
एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥

पक्षिण ऊचुः

पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत्तस्य तद्वचः । भवता यद्वयंपृष्टाःसंसारग्रहणाश्रयम्

पुत्र उवाच

शृणु तात! यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत् । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्यनविद्यते
सोऽहं वदामि ते सर्वं तवैवानुज्ञया पितः! ।
उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥ ४८ ॥

उष्माप्रकुपितःकायेतीव्रवायुसमीरितः । भिनत्तिमर्मस्थानानि दीप्यमानोनिरिन्धनः
उदानो नामपवनस्ततश्चोर्द्ध्वं प्रवर्त्तते । भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत्
ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा । दत्ताः सतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते
अन्नानियेन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा । सोऽपि तृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेन वै तदा
येनानृतानिनोक्तानि प्रीतिभेदःकृतोनच । आस्तिकःश्रद्दधानश्च ससुखंमृत्युमृच्छति
देवब्राह्मणपूजायां ये रता नाऽनसूयवः । शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराःसुखमृत्यवः
योनकामान्नसंरम्भान्नद्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् । यथोक्तकारीसौम्यश्चससुखं मृत्युमृच्छति
अवारिदायिनो दाहं क्षुधाश्चानन्नदायिनः ।
प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन् मृत्यावुपस्थिते ॥ ५६ ॥

शीतं जयन्तिधनदास्तापं चन्दनदायिनः । प्राणघ्नीं वेदनांकष्टांये चानुद्वेगकारिणः
मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम् । वेदनाभिरुदग्राभिःप्रपीड्यन्तेऽधमा नराः
कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्तिवै । ते मोहमृत्यवः सर्वेयथा वेदविनिन्दकाः
विभीषणाःपूतिगन्धाःकुटमुद्गरपाणयः । आगच्छन्तिदुरात्मानोयमस्यपुरुषास्तदा
प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः । क्रन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतानथ

साऽस्य वागस्फुटा तात ! एकवर्णा विभाव्यते ।

दृष्टिश्च भ्राम्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥ ६२ ॥

ऊर्ध्वश्वासान्वितःसोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वितः। ततःसवेदनाविष्टस्तच्छरीरंविमुञ्चति

वाय्वग्रसारी तद्रूपं देहमन्यत् प्रपद्यते । तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम्

तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः प्राग्भवं यथा ॥ ६४ ॥

ततो दूतो यमस्याशुपाशैर्बध्नाति दारुणैः । दण्डप्रहारसम्भ्रान्तंकर्षतेदक्षिणांदिशम्

कुशकण्टकवल्मीकशङ्कुपाषाणकर्कशे । तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे

प्रदीप्तादित्यतप्ते च दह्यमाने तदंशुभिः । कृष्यते यमदूतैश्चाशिवसन्नादभीषणैः

विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणःशिवाशतैः । प्रयातिदारुणे मार्गे पापकर्मा यमक्षयम्

छत्रोपानत्प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नराः । ते यान्ति मनुजामार्गं तं सुखेनतथान्नदाः

विमानैः सोज्ज्वलैर्यान्ति भूमिदानप्रदा नराः ।

एवं क्लेशाननुभवन्नवशः पापपीड़ितः । नीयते द्वादशाहेन धर्म्मराजपुरंनरः ।

कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति । ताड्यमाने तथैवार्त्ति छिद्यमानेचदारुणाम्

क्लिद्यमाने चिरतरं जन्तुर्दुःखमवाप्नुते । स्वेनकर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन्

तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह ।

यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ॥ ७३ ॥

तैलाभ्यङ्गोबान्धवानामङ्गसम्वाहनञ्चयत्। तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिसबान्धवाः

भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः ।

दानं दद्भिश्च यथा जन्तुराप्याय्यते मृतः ॥ ७५ ॥

नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति । उपभुङ्क्तेतथादत्तंतोयपिण्डादिकंभुवि

द्वादशाहात्परंघोरमावासं भीषणाकृतिम् । याम्यं पश्यत्यथोजन्तुं कृष्यमाणःपुरंततः

गतमात्रोऽतिरक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयप्रभम् । मृत्युकालान्तकादीनांमध्येपश्यतिवैयमम्

दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटिदारुणाकृतिम् । विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतं व्याधिशतैः प्रभुम्

दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तंसुभैरवम् । तन्निर्दिष्टांततोयातिगतिंजन्तुःशुभाशुभाम्

रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः। तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्यनिशामय
योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः। जानुमात्रप्रमाणश्चततः श्वभ्रःसुदुस्तरः
तत्राङ्गारचयोपेतं कृतश्च धरणीसमम्। जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना
तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्तियमानुगाः। सदह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति
पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यते जीर्यते पुनः। अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासंचगच्छति
एवंसहस्रमुत्तीर्णो योजनानांविमुच्यते। ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतादृङ्निरयमृच्छति
ततः सर्वेषु निस्तीर्णः पापीतिर्य्यक्त्वमश्नुते। कृमिकीटपतङ्गेषुश्वापदेमशकादिषु
गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च। अन्यासु चैव पापासुदुःखदासुच योनिषु
मानुषंप्राप्यकुब्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा। चण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते
अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः। ततश्चारोहणीं जातिं शूद्रवैश्यनृपादिकाम्
विप्रदेवेन्द्रताञ्चापि कदाचिदवरोहणीम्। एवं तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यधः
यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मेनिगदतःशृणु। तेयमेनविनिर्दिष्टां यान्तिपुण्यांगतिंनराः
प्रगीतगन्धर्वगणाः प्रनृत्ताप्सरसां गणाः। हारनूपुरमाधुर्यशोभितान्युत्तमानि च

प्रयान्त्याशु विमानानि नानादिव्यस्रगुज्वलाः।
तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषाञ्च महात्मनाम्॥ ६४॥
जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्तपरिपालकाः।
भोगान् सम्प्राप्नुवन्त्युग्रांस्ततोयान्त्यूर्द्ध्वमन्यथा॥ ६५॥

अवरोहणीञ्च सम्प्राप्य पूर्ववद्यान्ति मानवाः। एतत्ते सर्वमाख्यातंयथाजन्तुर्विपद्यते

अतः शृणुष्व विप्रर्षे! यथा गर्भं प्रपद्यते॥ ६६॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसम्वादेजीवगतिवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

———

एकादशोऽध्यायः

गर्भस्थजन्तोरवस्थावर्णनम्

पुत्र उवाच

निषेकं मानवं स्त्रीणां वीजं प्रोक्तंरजस्यथ। विमुक्तमात्रोनरकात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते
तेनाभिभूतं तत्स्थैर्यं याति वीजद्वयं पित! । कललत्वंवुद्बुदत्वं ततःपेषित्वमेवच
पेषश्यां यथाणुवीजंस्यादङ्कुरस्तद्वदुच्यते । अङ्गानाञ्च तथोत्पत्तिःपञ्चानामनुभागशः
उपाङ्गान्यङ्गुलीनेत्रनासास्यश्रवणानिच । प्ररोहंयान्तिचाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्योनखादिकम्

त्वचि रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् ।
समं समृद्धिमायाति तेनैवोद्भवकोषकम् (:?) ॥ ५ ॥
नारिकेलफलं यद्वत् सकोषं वृद्धिमृच्छति ।
तद्वत् प्रयात्यसौ वृद्धिं स कोषोऽधोमुखः स्थितः ॥ ६ ॥
तले तु जानुपार्श्वाभ्यां करौ न्यस्य स वर्द्धते ।
अङ्गुष्ठो चोपरि न्यस्तौ जान्वोरग्रे तथाङ्गुली ॥ ७ ॥

जानुपृष्ठेतथानेत्रेजानुमध्येचनासिका । स्फिचौपार्ष्णिद्वयस्थेचवाहुजङ्घेबहिः स्थिते

एवं वृद्धिं क्रमाद्याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः ।
अन्यसत्वोदरे जन्तोर्यथा रूपं तथा स्थितिः ॥ ८ ॥
काठिन्यमग्निना याति भुक्तपीतेन जीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ॥ १० ॥

नाड़ीचाप्यायनीनाम नाभ्यांतस्यनिवध्यते। स्त्रीणांतथान्त्रशुषिरेसानिबद्धोपजायते
क्रामन्तिभुक्तपीतानिस्त्रीणांगर्भोदरेयथा। तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैतिवै
स्मृतीस्तस्यप्रयान्त्यस्यवह्व्यःसंसारभूमयः । ततोनिर्वेदमायातिपीड्यमानइतस्ततः
पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात् । तथातथा यतिष्यामिगर्भंनाप्स्याम्यहंयथा

इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै । यानिपूर्वानुभूतानि दैवभूतानियानिवै
ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्त्तत्यधोमुखः । नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते ततः

निष्क्राम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते ।
निष्क्राम्यते च विलपन् हृदि दुःखनिपीड़ितः ॥ १७ ॥
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते ।
प्राप्नोति चेतनां चाऽसौ वायुस्पर्शसमन्वितः ॥ १८ ॥

ततस्तंवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी । तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्रंशमवाप्नुते
भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते । ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि
पुनश्चमरणंतद्वज्जन्मचाप्नोतिमानवः । ततःसंसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यतेघटियन्त्रवत्
कदाचित् स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्निरयंनरः । नरकञ्चैवस्वर्गञ्चकदाचिच्च मृतोऽश्नुते
कदाचिदत्रैव पुनर्जातःस्वं कर्म सोऽश्नुते । कदाचिद्भुक्तकर्माचमृतः स्वल्पेनगच्छति
कदाचिदल्पैश्चततोजायतेऽत्रशुभाशुभैः । स्वर्लोकेनरकेचैव(वापि)भुक्तप्रायोद्विजोत्तम
नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत् स्वर्गवासिनः । दृश्यन्तेतात!मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः । प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन्मनसि वर्त्तते
नारकांश्चैव सम्प्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते । एतां गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥
गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्ययोनितः । जातस्य बालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च

कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धं यौवनं चाऽतिदुःसहम् ।
दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम् ॥ २६ ॥

कृष्यमाणस्य याम्यैश्च नरकेषु चपात्यतः । पुनश्च गर्भो जन्माऽथ मरणं नरकस्तथा

एवं संसारचक्रेऽस्मिन् जन्तवो घटियन्त्रवत् ।
भ्राम्यन्ते प्राकृतैर्बन्धैर्बद्ध्वा वध्यन्ति चासकृत् ॥ ३१ ॥

नास्तिततात!सुखं किञ्चिदत्रदुःखशताकुले । तस्मान्मोक्षाययतताकथंसेव्यामयात्रयी

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे जन्मस्थितिसंसारदुःखवर्णनं नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

महारौरवादिनरकाणामवस्थावर्णनम्

पितोवाच

साधुवत्स ! त्वयाख्यातं संसारगहनं परम् । ज्ञानप्रदानसंभूतं समाश्रित्य महाफलम्
तत्रते नरकाः सर्वे यथा वै रौरवस्तथा । वर्णितास्तान् समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते

पुत्र उवाच

रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मया । महारौरवसञ्ज्ञन्तु शृणुष्व नरकं पितः!
अगम्यागमनेये च अभक्ष्यभक्षणे रताः । मित्रद्रोहकराश्चैव स्वामिविश्रम्भघातकाः
परदाररताश्चैव स्वदारपरिवर्जिनः । मार्गभङ्गकरा ये च तडागारामभेदकाः ॥ ५ ॥
एतेऽन्ये च दुराचारा दह्यन्ते तत्र किङ्करैः ।
योजनानां सहस्राणि सप्तपञ्च समन्ततः । तत्र ताम्रमयी भूमिरधस्तस्य हुताशनः
तत्तापतप्ता सासर्वा प्रोद्यदिन्दुसमप्रभा । विभात्यतिमहारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु
तस्यांबद्धःकराभ्याञ्चपद्भ्याञ्चैवयमानुगैः । मुच्यतेपापकृन्मध्येलुठ्यमानःसगच्छति
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा । भक्ष्यमाणस्तथा गृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते
दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्ताततेति चाकुलः । वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति
एवं तस्मान्नरैर्मोक्षो ह्यतिक्रान्तैरवाप्यते । वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः
तथान्यस्तु तमोनामसोऽतिशीतः स्वभावतः । महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृतः
गोवधश्चकृतो येन भ्रातृणां घात एव च । अवन्नबालघाती च नीयते शीतसङ्करे ॥
शीतार्त्तास्तत्र धावन्तोनरास्तमसिदारुणे । परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्ति च
दन्तास्तेषाञ्च भज्यन्ते शीतार्त्तिपरिकम्पिताः ।
क्षुत्तृष्णाप्रबलास्तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥
हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः ।

मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति क्षुधान्विताः ॥ १६ ॥
लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे। एवंतत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः
प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ!यावद्दुष्कृतसंक्षयः। निकृन्तनइति ख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तमः

तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतं पितः!।
अदृष्टं दृष्टवद् ब्रूयादश्रुतं श्रुतमेव च ॥ १६

एकाक्षरं गुरुं यस्तुदुराचारो न मन्यते। न शृणोतिगुरोर्वाक्यं शास्त्रवाक्यंतथैवच

एते पापा दुराचारास्तत्रतैर्यमपूरुषैः।
तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः ॥ २१ ॥

यमानुगाङ्गुलिस्थेन आपादतलमस्तकम्। नचैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम!
छिन्नानि तेषांशतशः खण्डान्यैक्यंव्रजन्तिच। एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः
तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम्। अप्रतिष्ठञ्च नरकं शृणुष्व गदतो मम
यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते। स्वधर्मरतविप्राणां विघ्नं यस्तु समाचरेत्
सबद्धैर्दारुणैःपाशैर्नीयते चक्रसङ्करैः। तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणिचान्यतः

दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम्।
चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥ २७ ॥

यावद्वर्षसहस्राणि नतेषांस्थितिरन्तरा। घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तःपुनःपुनः। अन्त्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरस्त्रविलम्बिभिः
दुःखानि तेप्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः। असिपत्रवनंनामनरकंशृणु चापरम्

योजनानां सहस्रं यो ज्वलदग्न्यास्तृतावनिः।
ब्रह्मचारिव्रतानाञ्च तपसां विघ्नमाचरेत् ॥ ३१ ॥

असिपत्रवनंयान्ति ये सदोद्वेगकारिणः। तप्ताः सूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणैः
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः। तन्मध्येचवनं रम्यं स्निग्धपत्रंविभाव्यते

पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम!।
श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्ययुतशोभिताः ॥ ३४ ॥

महावक्त्रा महादंष्ट्राव्याघ्राइव भयानकाः । ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः

प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तीव्रतृट् (तृट्पाप) परिपीडिताः ।

हा मातर्हा तात ! इति क्रन्दन्तोऽतीव दुःखिताः ॥ ३६ ॥

दह्यमानाङ्घ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना । तेषांगतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः प्रवाति तेन पात्यन्तेतेषांखड्गास्तथोपरि । ततः पतन्तितेभूमौज्वलत्पावकसञ्चये लेलिह्यमाने चान्यत्र व्याप्ताशेषमहीतले । सारमेयास्ततः शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः तेषामङ्गानि रुदतांत्वचंश्चातीवभीषणाः । असिपत्रवनं तात! मयैतत् कीर्त्तितं तव अतः परंभीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे । समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः ज्वलदग्निचयोद्वृत्ततैलायश्चूर्णपूरिताः । तेषुदुष्कृतकर्माणोयाम्यैःक्षिप्ता ह्यधोमुखाः

दूषयेद्धर्मशास्त्राणि ये चान्ये तीर्थदूषकाः ।

भुक्तभोगान्तु यो नारीमिष्यमाणं प्रियां शुभाम् ॥ ४३ ॥

अदुष्टामपि दोषेण त्यजते मूढचेतनः ।

ते समानीय पच्यन्ते लोहकुम्भेषु शीघ्रतः ॥ ४४ ॥

क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रा ज्वलन्मज्जजलाविलाः ।

स्फुटत्कपालनेत्रास्थिछिद्यमाना विभीषणैः ॥ ४५ ॥

गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः ।

पुनःसिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च ॥ ४६ ॥

द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः । ततोयाम्यैर्भरैराशुदर्व्या घट्टनघट्टिताः कृतावर्त्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्मिणः । एषतेविस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भो मयापितः!

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे महारौरवादिनरकाख्यान-
वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

—:*:—

त्रयोदशोऽध्यायः

सुमतिपुत्रस्यस्वानुभूतनरकप्राप्तिक्लेशवर्णनम्

पुत्र उवाच

अहंवैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तुसप्तमे । समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान् पुरा
विपाकात्कर्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम् ।
सम्प्राप्तोऽग्निशिखाघोर (नाथ) मयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् । विशस्यमानदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम्
पात्यमानस्यमे तत्र साग्रं वर्षशतंगतम् । महातापार्त्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्यच
तत्राह्लादकरः सद्यः पवनःसुखशीतलः । करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थे वै समागतः
तत्सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातना नृणाम् ।
मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निर्वृतिः परा ॥ ६ ॥
किमेतदिति चाह्लादविस्तारस्तिमितैक्षणैः । दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम्
याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोऽशनिप्रभः । पुरतो दर्शयन्मार्गमित एहीति वागथ
ततस्ते जन्तवः सर्वे मत्वा तद्दर्शनात्सुखम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूपं क्षणमात्रं स्थिरो भव ॥ ६ ॥
त्वद्गात्रसङ्गीपवनो ह्यस्माकंसुखकारकः । ततोऽसौनरकाम्याशे उपविष्टःकृपान्वितः
पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसङ्कुलम् । नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः

पुरुष उवाच

भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिं मयादुष्कृतंकृतम् । येनेदं यातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिनरकंपरम्
विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहंकुले । जातो विदेहविषयेसम्यङ्मनुजपालकः
चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मस्थं कृत्वा संरक्षितं मया । धर्मतो धर्मकल्पेन मनुनाऽत्र यथा पुरा
यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पालिता मही । नोत्सृष्टश्चैव संग्रामो नातिथिर्विमुखो गतः

पितृदेवर्षिभृत्याश्च न चापचरिता मया। महातापार्तितप्तस्य तृष्णादाहार्जितस्य च
संर्वस्य जीवभूतस्य कृतं त्राणं सदा मया। कृता स्पृहाचनमया परस्त्रीविभवादिषु
पर्वकालेषु पितरस्तिथिकालेषु देवताः। पुरुषं स्वयमायान्ति निपानमिव धेनवः
यतस्ते विमुखायान्ति निश्वस्यगृहमेधिनः। तस्मादिष्टश्चपूर्त्तश्च धर्मौद्वावपिनश्यतः

पितृनिश्वासविध्वस्तं सप्तजन्मार्जितं शुभम् (धनम्)।
त्रिजन्मप्रभवं दैवो निश्वासो हन्त्यसंशयम् ॥ २० ॥

तस्माद्दैवेचपित्र्येचनित्यमेव हितोऽभवम्। सोऽहंकथमिमं प्राप्तोनरकंभृशदारुणम्
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे सुमतिपुत्रस्यनरकगमनक्लेशवर्णनं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

——:*:——

चतुर्दशोऽध्यायः

विपश्चिद्यमकिङ्करसम्वादे यमकिङ्करप्रोक्तनरकप्राप्तिकारणवर्णनम्

पुत्र उवाच

इति पृष्टस्तदा तेनश्रृण्वतांनो महात्मना। उवाचपुरुषोयाम्यो घोरोऽपिप्रस्तृतं वचः

यमकिङ्कर उवाच

महाराज!यथाऽऽत्थत्वंतथैतन्नात्रसंशयः। किन्तुस्वल्पंकृतंपापंभवतास्मारयामितत्
वैदर्भीतवया पत्नी पीवरीनाम नामतः। ऋतुमत्याऋतुर्वन्ध्यस्त्वयातस्याःकृतःपुरा
सुशोभनायांकैकेय्यामासक्तेन ततोभवान्। ऋतुव्यतिक्रमात् प्राप्तोनरकं घोरमीदृशम्
होमकालेयथा वह्निराज्यपातमवेक्षते। ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते ॥ ५॥

यस्तमुल्लङ्घ्य धर्मात्मा कामेष्वासक्तिमान् भवेत्।
स तु पित्र्याद्दृणात् पापमवाप्य नरकं पतेत् ॥ ६ ॥

एतावदेवते पापं नान्यत् किञ्चनविद्यते। तदेह्यागच्छपुण्यानामुपभोगाय पार्थिव !

राजोवाच

यास्यामि देवानुचर! यत्र त्वं मां नयिष्यसि।

किञ्चित् पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः। पुनःपुनश्चनेत्राणितद्वदेषांभवन्तिहि

किंकर्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम्। हरन्त्येषांतथाजिह्वां जायमानांपुनर्नवाम्

करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेतेऽति दुःखिताः।

करम्भवालुकास्वेते पच्यन्ते तैलगोचराः ॥ ११ ॥

अयोमुखैः खगैश्चैते कृष्यन्ते किंविधावद। विश्लिष्टदेहबन्धार्त्तिमहारावविराविणः

अयश्चञ्चुनिपातेन सर्वाङ्गक्षतदुःखिताः। किमेतेऽनिष्टकर्त्तारस्तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः

एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्मिणाम्। येन कर्मविपाकेनतन्ममोद्देशतो वद

यमकिङ्कर उवाच

यन्मां पृच्छसिभूपाल! पापकर्मफलोदयम्। तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणयथातथम्

पुण्यापुण्ये हिपुरुषः पर्यायेण समश्नुते। भुञ्जतश्चक्षयं यातिपापं पुण्यमथापि वा

नतुभोगादृते पुण्यं पापम्वा कर्म मानवः। पापकंवापुनात्याशुक्षयोभोगात्प्रजायते

परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे।

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम् ॥ १८ ॥

मृतेभ्यः प्रमृतायान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः।

गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवःकर्मबन्धनात् ॥ १९ ॥

उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात् स्वर्गं सुखात् सुखम्।

श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः ॥ २० ॥

व्यालकुञ्जरदुर्गाणि सर्पचौरभयानि तु। हताः पापेन गच्छन्तिपापिनः किमतःपरम्

सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः।

स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि ॥ २२ ॥

अनेकशतसाहस्रजन्मसञ्चयसञ्चितम्। पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत्सुखदुःखाङ्कुरोद्भवम्

यथा बीजं हि भूपाल ! पयांसि समवेक्षते ।
पुण्यापुण्ये तथा कालदेशान्यकर्मकारकम् ॥ २४ ॥
स्वल्पं पापं कृतंपुंसादेशकालोपपादितम् । पादन्यासकृतंदुःखंकण्टकोत्थंप्रयच्छति
तत् प्रभूततरं स्थूलं शूलकीलकसम्भवम् । दुःखंयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम्
अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् । तथान्योन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसङ्गमे
एवं महान्ति पापानि दीर्घरोगादिविक्रियाम् ।
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्त्तिवन्धनादिफलाय वै ॥ २८ ॥
स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेलया सम्प्रयच्छति ।
स्पर्शं वाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा ॥ २६ ॥
चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपि कालजम् । एवञ्च सुखदुःखानिपुण्यापुण्योद्भवानिवै
भुञ्जानोऽनेकसंसारसम्भवानीह तिष्ठति । जातिदेशावरुद्धानि ज्ञानाज्ञानफलानि च
तिष्ठन्ति तत्र युक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि ।
वपुषा मनसा वाचा न कदाचित् क्वचिन्नरः ॥ ३२ ॥
अकुर्वन् पापकं कर्म पुण्यं वाप्यवतिष्ठते । यद्यत् प्राप्नोति पुरुषोदुःखंसुखमथापिवा
प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारि चेतसः । तावता तस्य पुण्यंवापापंवाप्यथचेतरत्
उपभोगात् क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् ।
एवमेते महापापं यातनाभिरहर्न्निशम् ॥ ३५ ॥
क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तर्विवर्त्तिनः । तथैव राजन् पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैःसह
गन्धर्वसिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुञ्जते । देवत्वे मानुषत्वे च तिर्यक्त्वेचशुभाशुभम्
पुण्यपापोद्भवं भुङ्क्ते सुखदुःखोपलक्षणम् ।
यत्त्वं पृच्छसि मां राजन् यातनाः पापकर्मिणाम् ।
केन केनेति पापेन तत् ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३८ ॥
दुष्टेन चक्षुषा दृष्टाः परदारा नराधमैः । मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यं च सस्पृहैः ॥
वज्रतुण्डाः खगास्तेषां हरन्त्येते विलोचने । पुनः पुनश्च संभूतिरक्ष्णोरेषांभवत्यथ

यावतोऽक्षिनिमेषांस्तुपापमेभिर्नृभिःकृतम् । तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रार्त्तिप्राप्नुवन्त्युत
असच्छास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तायैश्चमन्त्रिताः । सम्यग्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपिमानवैः
यैः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता । वेददेवद्विजादीनां गुरोर्निन्दाच यैः कृता
हरन्ति तेषां जिह्वाश्चजायमानाःपुनः पुनः । तावतोवत्सरानेतेवज्रतुण्डाःसुदारुणाः

मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च ।
यज्वोपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः ॥ ४५ ॥

भार्यापत्योश्च ये केचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः । त इमे पश्यपाट्यन्ते करपत्रेणपार्थिव!
परोपतापका ये च ये चाह्लादनिषेधकाः । तालवृन्तानिलस्थानचन्दनोशीरहारिणः
प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानाञ्च येऽधमाः । करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिनः

भुङ्क्ते श्राद्धं तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः ।
दैवे वाऽप्यथवा पैत्र्ये स द्विधा कृष्यते खगैः ॥ ४६ ॥
मर्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ।
तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ॥ ५० ॥

यः करोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः । पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्येत्थंनिशितैःक्षुरैः
मातापित्रोर्गुरूणाञ्च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः । त इमे पूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखाः
देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च । अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत्पित्रग्निपक्षिषु
दुष्टास्ते पूयनिर्यासभुजःसूचीमुखास्तु ते । जायन्तेगिरिवर्ष्माणःपश्यैतेयादृशानराः
एकपङ्क्त्या तु ये विप्रमथवेतरवर्णजम् । विषमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमेयथा
एकसार्थप्रयातं येनिःस्वमर्थार्थिनंनरम् । अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः
गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर !। तेषामेतेऽग्निकुम्भेषुलेलिह्यन्त्याहिताःकराः

सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः ।
तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समिध्यते ॥ ५८ ॥
गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा ।
जामयो गुरवो वृद्धा यैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः ॥ ५९ ॥

बद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लौहैरग्निप्रतापितैः ।
अङ्गारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ॥ ६० ॥
पायसं कृशरं छागं देवान्नानि च यानि वै ।
भुक्तानि यैरसंस्कृत्य तेषां नेत्राणि पापिनाम् ॥ ६१ ॥

निपातितानां भूपृष्ठे उद्वृत्ताक्षिनिरीक्षताम् । सन्दंशैःपश्यकृष्यन्तेनरैर्याम्यैर्मुखात्ततः
गुरुदेवद्विजातीनां वेदानाञ्च नराधमैः । निन्दा निशामिता यैश्चपापानामभिनन्दताम्
तेषामयोमयान् कीलानग्निवर्णान् पुनः पुनः । कर्णेषु प्रेरयन्त्येतेयाम्याविलपतामपि

यैः प्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाः शुभाः ।
भङ्क्त्वा विध्वंसमानीताः क्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ॥ ६५ ॥

तेषामेतैःशितैःशस्त्रैर्मुहुर्विलपतां त्वचः । पृथक् कुर्वन्तिवैयाम्याःशरीरादतिदारुणाः
गोब्राह्मणार्कमार्गांस्तुयेऽवमेहन्तिमानवाः । तेषामेतानिकृष्यन्तेगुदेनान्त्राणिवायसैः

दत्त्वा कन्यां य एकस्मै द्वितीयाय प्रयच्छति ।
स त्वेवं नैकधा छिन्नः क्षारनद्यां प्रवाह्यते ॥ ६८ ॥

स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजतिमानवः । पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिञ्चनम्
दुर्भिक्षे सम्भ्रमेवापिसोऽप्येवंयमकिङ्करैः । उत्कृत्यदत्तानिमुखेस्वमांसान्यश्नुतेक्षुधा

शरणागतान् यस्त्यजति लोभाद्‌ उत्कोचजीविकः ।
सोऽप्येवं यन्त्रपीडाभिः पीड्यते यमकिङ्करैः ॥ ७१ ॥

सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जन्म कृतं नराः । ते पिष्यन्ते शिलापेषैर्यथैते पापकर्मिणः
न्यासापहारिणोवद्धाःसर्वगात्रेषु बन्धनैः । कृमिवृश्चिककाकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशंनराः
क्षुत्क्षामास्तृट्पतज्जिह्वातालवो वेदनातुराः । दिवामैथुनिनः पापाः परदारभुजश्चये

तथैव कण्टकैर्दीर्घैरायसैः पश्य शाल्मलिम् ।
आरोपिता विभिन्नाङ्गाः प्रभूतासृक्स्रवाविलाः ॥ ७५ ॥
मूषायामपि पश्यैतान् ध्मायमानान् यमानुगैः ।
पुरुषैः पुरुषव्याघ्र ! परदारावमर्षिणः ॥ ७६ ॥

उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः।
गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् ॥ ७७ ॥
बिभ्रत् क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीड़ितः।
क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः ॥ ७८ ॥

मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि। त इमे श्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धनरकंगताः

परस्परञ्च मांसान्ति भक्षयन्ति क्षुधान्विताः।
भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्वमेभिःपरस्परम् ॥ ८० ॥

अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः। तइमेशैलशृङ्गाग्रात्पात्यन्तेऽःधपुनःपुनः
पुनर्भूपतयोजीर्णायावज्जीवन्तिये नराः। इमे कृमित्वमापन्नाभक्ष्यन्तेऽत्रपिपीलिकैः
नीचप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात्। पाषाणमध्यकीटत्वं नरः सततमश्नुते

पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्राणामतिथेस्तथा।
एको मिष्टान्नभुग् भुङ्क्ते ज्वलदङ्गारसञ्चयम् ॥ ८४ ॥

वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठंनित्यमस्योपभुज्यते। पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्यभक्षितम्
अन्धोऽथ बधिरोमूकोभ्राम्यतेऽयंक्षुधातुरः। अकृतज्ञोऽधमःपुंसामुपकारेषुवर्त्तताम्
अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्मतिः। तप्तकुम्भेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम्
करम्भवालुकां तस्मात्ततो यन्त्रावपीडनम्। असिपत्रवनंतस्मात् करपत्रेणपाटनम्
कालसूत्रे तथा च्छेदमनेकाश्चैव यातनाः। प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति

श्राद्धेसङ्गतिनो विप्राः समुपेत्य परस्परम्।
दुष्टा हि निःसृतं फेनं सर्वाङ्गेभ्यः पिबन्ति वै ॥ ९० ॥

सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। अधश्चोर्द्ध्वंश्चदीप्ताग्नौदह्यमानाःसमन्ततः

तिष्ठन्त्यब्दसहस्राणि सुबहूनि ततः पुनः।
जायन्ते मानवाः कुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥ ९२ ॥

मृताः पुनश्च नरकं पुनर्जाताश्चतादृशम्। व्याधिमृच्छन्तिकल्पान्तपरिमाणंनराधिप
गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि। तथोपपातकानाञ्च सर्वेषामितिनिश्चयः

नरकप्रच्युता यान्ति यैर्यैर्विहितपातकैः

प्रयान्ति योनिजातानि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ६५ ॥

इतिश्री मार्कण्डेयपुराणे यमकिङ्करसंवादे स्वकृतकर्मभुक्तिवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

कुकृत्यप्रभावान्नानादुष्टयोनिजननवर्णनम्

यमकिङ्कर उवाच

पतितात्प्रतिगृह्यार्थं खरयोनिं व्रजेद्द्विजः । नरकात्प्रतिमुक्तस्तुकृमिःपतितयाजकः

उपाध्यायव्यलीकं तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ।

तज्जायां मनसा वाञ्छन् तद्द्रव्यं चाप्यसंशयम् ॥ २ ॥

गर्द्दभो जायते जन्तुःपित्रोश्चाप्यवमानकः । मातापितरावाक्रुश्यसारिकासम्प्रजायते

भ्रातुः पत्न्यवमन्ता च कपोतत्वं प्रपद्यते । तामेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वंप्रपद्यते

भर्तृ पिण्डमुपाश्नन् यस्तदिष्टं न निषेवते । सोऽपि मोहसमापन्नोजायतेवानरोमृतः

न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः । असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवतिराक्षसः

विश्वासहन्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ।

धान्यं यवांस्तिलान्माषान् कुलत्थान् सर्षपांश्चणान् ॥ ७ ॥

कलायान् कलमान्मुद्गान् गोधूमानतसीस्तथा ।

शस्यान्यन्यानि वा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतनः ॥ ८ ॥

सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रसन्निभः । परदाराभिमर्षात्तु वृकोघोरोऽभिजायते

श्वा शृगालो वको गृध्रो व्यालः कङ्कस्तथा क्रमात् ।

भ्रातृभार्य्यां च दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति पापकृत् ॥ १० ॥

पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः।
सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्याञ्च पापकृत् ॥ ११ ॥

प्रधर्षयित्वा कामात्मा शूकरो जायते नरः। यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ताभवेत्कृमिः
पुनर्द्दाता तु कन्यायाः कृमिरेवोपजायते। देवतापितृविप्राणामदत्त्वायोऽन्नमश्नुते
प्रमुक्तो नरकात्सोऽपिवायसः सम्प्रजायते। ज्येष्ठं पितृसमं वापिभ्रातरंयोऽवमन्यते
नरकात्सोऽपि विभ्रष्टः क्रौञ्चयोनौप्रजायते। शूद्रश्चब्राह्मणींगत्वाकृमियोनौप्रजायते
तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्तःकीटकोभवेत्। शूकरःकृमिकोमद्‌गुश्चण्डालश्चप्रजायते
अकृतज्ञोऽधमःपुंसां विमुक्तोनरकान्नरः। कृतघ्नः कृमिकः कीटःपतङ्गोवृश्चिकस्तथा

मत्स्यस्तु वायसः कूर्मः पुक्कशो जायते ततः।
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः ॥ १८ ॥
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च वालहन्ता च जायते।
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ॥ १९ ॥
तत्राऽप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्व तत्।
हृत्वाऽन्नन्तु स मार्जारो जायते नरकाच्च्युतः ॥ २० ॥

तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नंहृत्वातुमूषकः। घृतं हृत्वाच नकुलःकाकोमद्‌गुरजामिषम्

मत्स्यमांसापहृत्काकः श्येनोमेषोमिषापहृत्।
चीरीवाकस्त्वपहृते लवणे दधनि कृमिः ॥ २२ ॥

चोरयित्वा पयश्चापि बलाका सम्प्रजायते। यस्तुचोरयते तैलं तैलपायी स जायते
मधुहृत्वानरो दंशोऽपूपंहृत्वापिपीलिका। चोरयित्वातुहविष्यान्नंजायतेगृहगोधकः

आसवञ्चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात्।
अयो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते ॥ २५ ॥

पात्रेकांस्येऽपिहारीतः कपोतोरौप्यभाजने। हृत्वातुकाञ्चनंभाण्डंकृमियोनौप्रजायते
कौशेयं चोरयित्वा चक्रवाकत्वमृच्छति। कोषकारश्चकौषेये हृतेवस्त्रेऽभिजायते
दुकूलेशार्ङ्गकः पापो हृतेचैवांशुके शुकः। ऋक्षश्चैवाविकं हृत्वावस्त्रं क्षौमञ्च जायते

कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वाहेर्हर्त्ता बकस्तथा । मयूरो वर्णकान्हृत्वा शाकपत्रञ्च जायते

जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः ।

छुछुन्दरिः शुभान् गन्धान्वासो हृत्वा शशो भवेत् ॥ ३० ॥

खञ्जः पलालहरणात् काष्ठहृद्‌ घुणकीटकः । पुष्पापहृद्दरिद्रश्च पङ्गुर्यानापहृन्नरः ॥

शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः । भूमिहृन्नरकान् गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान्

तृणगुल्मलतावल्लित्वक्सारतरुतां क्रमात् । प्राप्य क्षीणाल्पपापस्तु नरो भवति वै ततः

वृषस्य वृषणौ छित्वा षण्ढत्वम्प्राप्नुयान्नरः ।

परिहृत्य तथा भूयो जन्मनामेकविंशतिः ॥ ३४ ॥

कृमिः कीटः पतङ्गोऽथ पक्षी तोयचरो मृगः ।

गोत्वं प्राप्य च चाण्डालपुल्कसादि जुगुप्सितम् ॥ ३५ ॥

पङ्ग्वन्धो बधिरः कुष्ठी यक्ष्मणा च प्रपीडितः । मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्यते

अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च स गच्छति । एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णापहारिणाम्

विद्यापहारिणां चैव निष्क्रयभ्रंशिनां गुरोः । जायामन्यस्य पुरुषः पारक्यां प्रतिपादयन्

प्राप्नोति षण्ढतां मूढो यातनाभ्यः परिच्युतः । यः करोति नरो होमम समिद्धे विभावसौ

सोऽजीर्णव्याधिदुःखार्त्तो मन्दाग्निः सम्प्रजायते ।

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम् ॥ ४० ॥

नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वञ्च परदारोपसेवनम् । परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम् ॥

निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यञ्च नृणां वधः । यानि च प्रतिषिद्धानि तद्वृत्तिं च प्रशंसताम्

उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु । दया भूतेषु संवादः परलोकप्रतिक्रिया

सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् । गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः

सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुद्ध्येत पण्डितः ।

अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च ॥ ४५ ॥

स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् । एतदुद्देशतो राजन्! भवतः कथितं मया

स्वकर्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनां तथा । तदेह्यन्यत्र गच्छामो दृष्टं सर्वं त्वयाधुना

त्वया दृष्टो हि नरकस्तदेह्यन्यत्र गम्यताम् ॥ ४८ ॥

पुत्र उवाच

ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजागन्तुमुद्यतः । ततश्चसर्वैरुत्क्रुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः

प्रसादंकुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम् । त्वदङ्गसङ्गीपवनो मनो ह्लादयते हि नः ॥

परितापश्च गात्रेषु पीडावाधाश्च कृत्स्नशः । अपहन्तिनरव्याघ्र! दयां कुरुमहीपते

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृपः ।

पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ॥ ५२ ॥

किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत्कृतम् । आह्लाददायिनी दृष्टिर्येनेयं तदुदीरय

यमपुरुष उवाच

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः । पुष्टिमभ्यागता यस्मात्तद्गतञ्च मनो यतः

ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः । पापकर्मकृतोराजन्! यातना न प्रबाधते

अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यतः । ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः

पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्यहेतवः । मृदुत्वमागता राजन्! तेजसोपहतास्तव

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यतेनरैः । यदार्त्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमतिः

यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रबाधते ।

ततो भद्रमुखाऽत्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ॥ ५९ ॥

यमपुरुष उवाच

एहि राजेन्द्र!गच्छामि निजपुण्यसमार्जितान् ।

भुङ्क्ष्व भोगानपास्येह यातनाः पापकर्मणाम् ॥ ६० ॥

राजोवाच

तस्मान्न तावद् यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ।

मत्सन्निधानात्सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ॥ ६१ ॥

धिक् तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमातुरम् । योनार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्

यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये । भवन्ति तस्य यस्यार्त्तपरित्राणे न मानसम्
नरस्य यस्य कठिनं मनोबालातुरादिषु । वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः
एतेषां सन्निकर्षात्तु यद्यग्निपरितापजम् । तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसम्भवम्
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्चमूर्च्छाप्रदंमहत् । विनाशमेतितद्भद्र मन्येस्वर्गसुखात्परम्

प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किन्तु प्राप्तं मया न स्यात्तस्मात्त्वं व्रज मा चिरम् ॥ ६७ ॥

यमपुरुष उवाच

एष धर्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ ।
अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव ! गम्यताम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच

नयामित्वामहं स्वर्गंत्वयासम्यगुपासितः । विमानमेतदारुह्यमाविलम्बस्वगम्यताम्

राजोवाच

नरके मानवा धर्म! पीड्यन्तेऽत्र सहस्रशः ।
त्राहीति चार्त्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥

इन्द्र उवाच

कर्मणा नरकप्राप्तिरेतेषां पापकर्मिणाम् । स्वर्गस्त्वयापिगन्तव्योनृप!पुण्येनकर्मणा

राजोवाच

यदिजानासिधर्म! त्वं त्वं वा शक्र! शचीपते !। ममयावत्प्रमाणं तु शुभंतद्वक्तुमर्हथ

धर्म उवाच

अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवि तारकाः ।
यथा वा वर्षतो धारा गङ्गायां सिकता यथा ॥ ७३ ॥

असङ्ख्येयामहाराजन्नानायोनिषुजन्तवः । तथा तवापिपुण्यस्यसङ्ख्यानैवोपपद्यते
अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वतः । तदेव शतसाहस्रं सङ्ख्यामुपगतं तव ॥
तद्गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ ! तद्भोक्तुममरालयम् । एतेऽपिपापंनरके क्षपयन्तु स्वकर्मजम्

राजोवाच

कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः ।
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते ॥ ७७ ॥
तस्मात् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममाऽस्ति त्रिदशाधिप !।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः ॥ ७८ ॥

इन्द्र उवाच

एवमूर्द्ध्वतरंस्थानंत्वयावाप्तंमहीपते! । एतांश्चनरकात्पश्यविमुक्तान् पापकारिणः

पुत्र उवाच

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः ।
विमानश्चाऽधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥ ८० ॥
अहंचान्ये च ये तत्रयातनाभ्यःपरिच्युताः । स्वकर्मफलनिर्दिष्टंततोजात्यन्तरंगताः
एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम! ।
येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ॥ ८२ ॥
तत्तत् सर्वं समाख्यातं यथादृष्टं मया पुरा । पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्य कथितं तव॥
अतः परं महाभाग! किमन्यत् कथयामि ते ॥ ८३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे नरकोद्धारवर्णनंनाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

पुत्रेणपित्रेमोक्षमार्गशिक्षणवर्णनम्

पितोवाच

कथितंमेत्वयावत्स!संसारस्यव्यवस्थितम् । स्वरूपमतिहेयस्यघटीयन्त्रवदव्ययम्
तदेवमेतदखिलं मयावगतमीदृशम् । किं मया वदकर्त्तव्यमेवमस्मिन् व्यवस्थिते ॥

पुत्र उवाच

यदिमद्वचनं तात! श्रद्धास्यविशङ्कितः । तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यं वानप्रस्थपरो भव
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् । आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः
एकान्तशीलोवश्यात्मा भवभिक्षुरतन्द्रितः । तत्र योगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शविवर्जितः
ततः प्राप्स्यसि तं योगंदुःखसंयोगभेषजम् । मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसङ्गितम्
तत् संयोगान्न ते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ॥ ६ ॥

पितोवाच

वत्स! योगंममाऽऽचक्ष्वमुक्तिहेतुमतःपरम् । येनभूतैः पुनर्भूतोनेदृग्दुःखमवाप्नुयाम्
यत्राशक्तिपरस्यात्मा ममसंसारवन्धनैः । नेतियोगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद
संसारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देह (हि) मानसम् ।
ब्रह्मज्ञानाम्बुशीतेन सिञ्च मां वाक्यवारिणा ॥ ६ ॥

अविद्याकृष्णसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम् । स्ववाक्यामृतदानेन मां जीवयपुनर्मृतम्
पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् । मां मोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैस्त्वरन् ॥

पुत्र उवाच

शृणुतात !यथायोगो दत्तात्रेयेणधीमता । अलर्कायपुराप्रोक्तःसम्यक्पृष्टेनविस्तरात्

पितोवाच

दत्तात्रेयः सुतःकस्यकथंवायोगमुक्तवान् । कश्चालर्को महाभागो योयोगंपरिपृष्टवान्

पुत्र उवाच

कौशिको ब्राह्मणः कश्चित् प्रतिष्ठानेऽभवत् पुरे ।
सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् ॥ १४ ॥
तं तथा व्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्च्चयत् ।
पादाभ्यङ्गाङ्गसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः ॥ १५ ॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेन च । रहश्चैवोपचारेण प्रियसम्भाषणेन च ॥
सततं पूज्यमानोऽपिसदातीवविनीतया । अतीवतीव्रकोपत्वान्निर्भर्त्सयतिनिष्ठुरः
तथापिप्रणता भार्य्यातममन्यतदैवतम् । तं तथाप्यतिवीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत

अचङ्क्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः ।
प्राहभार्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम् ॥ १६ ॥

यासा वेश्यामया दृष्टाराजमार्गे गृहोषिता । तां मां प्रापयधर्मज्ञे! सैव मे हृदि वर्त्तते
दृष्ट्वा सूर्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता । दर्शनानन्तरं सा मे हृदयान्नापसर्पति ॥ २१
यदि साचारुसर्वाङ्गीपीनश्रोणिपयोधरा । नोपगूहतितन्वङ्गी!तन्मांद्रक्ष्यसिवैमृतम्
वामः कामोमनुष्याणां बहुभिःप्रार्थ्यतेचसा । ममाशक्तिश्च गमनेसङ्कुलंप्रतिभातिमे
तत्तदावचनं श्रुत्वाभर्तुः कामातुरस्य सा । तत्पत्नीसत्कुलोत्पन्ना महाभागापतिव्रता
गाढं परिकरंबद्ध्वाशुल्कमादायचाधिकम् । स्कन्धेभर्त्तारमादायजगाममृदुगामिनी

निशि मेघास्तृते व्योम्नि चलद्विद्युत्प्रदर्शिते ।
राजमार्गे प्रियं भर्त्तुश्चिकीर्षन्ती द्विजाङ्गना ॥ २६ ॥

पथि शूले तथाप्रोतमचोरंचोरशङ्कया । माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ सद्विजः

पत्नीस्कन्धे समारूढश्चालयामास कौशिकः ।
पादावमर्षणात् क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥

येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा । दशांकष्टामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः
सूर्योदयेऽवशःप्राणैर्वियोक्ष्यति नसंशयः । भास्करालोकमादेवसविनाशमवाप्स्यति
तस्यभार्याततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम् । प्रोवाच व्यथितासूर्योनैवोदयमुपेष्यति

ततःसूर्योदयाभावादभवत् सन्तता निशा। बह्वन्यहःप्रमाणानि ततोदेवा भयं ययुः

निःस्वाध्मायवषट्कारस्वधास्वाहाविवर्जितम्।

कथं नु खल्विदं सर्वं न गच्छेत् संक्षयं जगत् ॥ ३३ ॥

अहोरात्रव्यवस्थाया विना मासर्तु संक्षयः। तत्संक्षयान्नत्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे

विना चायनविज्ञानात् कालः संवत्सरःकुतः। संवत्सरं विनानान्यत्कालज्ञानंप्रवर्तते

पतिव्रतायावचनान्नोद्गच्छतिदिवाकरः। सूर्योदयंविनानैव स्नानदानादिकाःक्रियाः

नाग्नेर्विहरणं चैव क्रत्वभावश्च लक्ष्यते। न कालेन विनाचेष्टिर्न च यज्ञादिकाक्रियाः

नश्यन्ति सर्वभूतानि तमोभूते चराचरे। नैवाप्यायनमस्माकं विना होमेन जायते

वयमाप्यायिता मर्त्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः।

वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमो मर्त्त्यान् शस्यादिसिद्धये ॥ ३९ ॥

निष्पादितास्वोषधीषु मर्त्त्या यज्ञैर्यजन्तिनः।

तेषां वयं प्रयच्छामः कामान् यज्ञादिपूजिताः ॥ ४० ॥

अधोहि वर्षाम वयं मर्त्त्याश्चोर्द्ध्वंप्रवर्षिणः। तोयवर्षेण हिवयं हविर्वर्षेण मानवाः

येनास्माकं प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः।

क्रतुभागं दुरात्मानः स्वयं चा (वा) श्नन्ति लोलुपाः ॥ ४२ ॥

विनाशाय वयंतेषां तोयसूर्याग्निमारुतान्। क्षितिश्चसन्दूषयामःपापानामपकारिणाम्

दुष्टतोयादिभोगेन तेषां दुष्कृतकर्मिणाम्। उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते मरणाय सुदारुणाः

ये त्वस्मान् प्रीणयित्वा तु भुञ्जते शेषमात्मना।

तेषां पुण्यान् वयं लोकान् विदधाम महात्मनाम् ॥ ४५ ॥

(तेषां पुण्यतमाँल्लोकान् वितरामो महात्मनाम्।)

तन्नास्ति सर्वमेवैतद्व विनैषां व्युष्टिसंस्थितिम्।

कथं नु दिनसर्गः स्यादन्योन्यमवदन् सुराः ॥ ४६ ॥

तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्तिशङ्किनाम्। देवानांवचनंश्रुत्वाप्राह देवः प्रजापतिः

तेजः परं तेजसैव तपसा च तपस्तथा। प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वं वचनं मम

पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोद्गच्छतिदिवाकरः। तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानांभवतांतथा
तस्मात् पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम्। प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया

पुत्र उवाच

तैःसाप्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति। अयाचन्त दिनं देवाभवत्वितियथापुरा

अनसूयोवाच

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथन्त्विति।

सम्मान्य तस्मात्तां साध्वीमहः (तथाप्रेष्याम्यहं) स्रक्ष्याम्यहं सुराः !॥५२

यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते। यथा च तस्याःस्वपतिर्न्न साध्व्यानाशमेष्यति

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वासुरांस्तस्या गत्वा सामन्दिरंशुभा। उवाचकुशलंपृष्ट्वा धर्मंभर्त्तुस्तथात्मनः

अनसूयोवाच

कच्चिन्नन्दसि कल्याणि! स्वभर्त्तुर्मुखदर्शनात् (सुखदायिनी)।

कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसेऽभ्यधिकं पतिम् ॥ ५१ ॥

भर्तृशुश्रूषणादेवमया प्राप्तं महत् फलम्। सर्वकामफलावाप्तिः प्रत्यूहाः परिवर्जिताः
पञ्चर्णानि मनुष्येण साध्वि! देयानि सर्वदा। तथात्मवर्णधर्मेणकर्त्तव्यो धनसञ्चयः
प्राप्तश्चार्थस्ततः पात्रेविनियोज्योविधानतः। सत्यार्जवतपोदानैर्दयायुक्तोभवेत्सदा
क्रियाश्च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्जिताः। कर्त्तव्याअन्वहंश्रद्धापुरस्कारेणशक्तितः

स्वजातिविहितानेवं लोकानाप्नोति मानवः।

क्लेशेन महता साध्वि! प्राजापत्यादिकान् क्रमात् ॥ ६० ॥

स्त्रियस्त्वेवं समस्तस्यनरैर्दुःखार्जितस्यवै। पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यःपतिशुश्रूषयैवहि

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम्।

भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥ ६२ ॥

तस्मात् साध्वि! महाभागे! पतिशुश्रूषणं प्रति।

त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्त्ता परा गतिः ॥ ६३ ॥

यद्देवेभ्यो यच्च पित्राऽऽगतेभ्यः कुर्याद्भर्त्ताभ्यर्च्चनंसत्क्रियातः ।
तस्याप्यर्द्धः केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥ ६४ ॥

पुत्र उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्यतथादरात् । प्रत्युवाचात्रिपत्नीतामनसूयामिदं वचः
धन्याऽस्म्यऽनुगृहीताऽस्मि देवैश्चाऽप्यविलोकिता ।
यन्मे प्रकृतिकल्याणि ! श्रद्धां वर्द्धयसे पुनः ॥ ६६ ॥
जानाम्येतन्ननारीणां काचित् पतिसमागतिः । तत्प्रीतिश्चोपकारायइहलोकेपरत्र च
पतिप्रसादादिह चप्रेत्य चैव यशस्विनि! । नारीसुखमवाप्नोतिनार्याभर्त्ता हि देवता
सा त्वं ब्रूहि महाभागे ! प्राप्ताया मम मन्दिरम् ।
आर्यायाः किन्नुकर्तव्यम्मयाऽऽर्येणाऽपि वा शुभे! ॥ ६९ ॥

अनसूयोवाच

एतेदेवाः महेन्द्रेण मामुपागम्यदुःखिताः । त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणाः
याचन्तेऽहर्निशासंस्थां यथावदविखण्डिताम् । अहंतदर्थमायाताश्रृणुचैतद्वचो मम
दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्मणाम् ।
तदभावात् सुराः पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि ! ॥ ७२ ॥
अहश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्वकर्मणाम् । तदुच्छेदादनावृष्ट्या जगदुच्छेदमेष्यति
तत्त्वमिच्छसि चेदेतत्जगदुद्धर्त्तमापदः । प्रसीद साध्वि!लोकानां पूर्ववद्वर्त्ततांरविः

ब्राह्मण्युवाच

माण्डव्येनमहाभागे!शप्तोभर्त्तामम्मेश्वरः । सूर्योदयेविनाशंत्वंप्राप्स्यसीत्यतिमन्युना

अनसूयोवाच

यदि वा रोचते भद्रे! ततस्त्वद्वचनादहम् । करोमि पूर्ववद्देहं भर्त्तारञ्च नवं तव ॥
मयाहिसर्वथास्त्रीणांमाहात्म्यंवरवर्णिनि! ।पतिव्रतानामाराध्यमितिसम्मानयामिते

पुत्र उवाच

तथेत्युक्ते तया सूर्यमाजुहाव तपस्विनी । अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदशरात्रे तदा निशि

ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः । शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः
समनन्तरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत । पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा

अनसूयोवाच

नविषादस्त्वयाभद्रे !कर्त्तव्यःपश्यमेवलम् । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किञ्चिरेण(ते)मे
यथाभर्तृसमंनान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतःशीलतोबुद्ध्यावाङ्माधुर्यादिभूषणैः
तेनसत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तःपुनर्युवा । प्राप्नोतुजीवितंभार्यासहायःशरदांशतम्
यथाभर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः
कर्मणा मनसा वाचा भर्त्तुराराधनंप्रति । यथाममोद्यमो नित्यंतथायंजीवतां द्विजः

पुत्र उवाच

ततोविप्रःसमुत्तस्थौव्याधिमुक्तःपुनर्युवा । स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृन्दारकइवाजरः
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानि सस्वनुः । लेभिरे च मुदं देवाअनसूयामथाऽब्रुवन्

देवा ऊचुः

वरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यंमहत्कृतम् । आदित्योदयसद्भावाद्वरंवरयसुव्रते !।
त्वया यस्मात्ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि !॥ ८६ ॥

अनसूयोवाच

यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः । वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता
तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । योगंच प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये

पुत्र उवाच

एवमस्त्वतितांदेवाब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रोक्ताजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे अनसूयावरप्राप्तिवर्णनंनाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ *

---

* इतःपरंमोहमयीस्थ वेङ्कटेश्वरयन्त्रालयमुद्रितपुराणग्रन्थे सप्तदशाष्टादशाध्यायौ षोडशेऽस्मिन्नध्यायेऽन्तर्भावंप्रापितौ मुद्रितौतत्वानुसन्धित्सुभिःसुधीभिरवलोकनीयम् ।

सप्तदशोऽध्यायः

दत्तात्रेयोत्पत्तिवर्णनम्

पुत्र उवाच

ततः काले बहुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुतः। स्वभार्यांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत

ऋतुस्नातां सुचार्वङ्गीं लोभनीयोत्तमाकृतिम्।

सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिन्दिताम्॥ २॥

तस्याभिपश्यतस्तां (अभिध्यायतः) तु विकारो योऽन्वजायत।

तमेवोवाह पवनस्तिरश्चोदूर्ध्वश्च वेगवान्॥ ३॥

ब्रह्मरूपश्च शुक्लाभं पतमानं समन्ततः। सोमरूपं रजोपेतं दिशस्तं जगृहुर्दश॥

स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रेः प्रजापतेः। पुत्रः समस्तसत्वानामायुराधारएवच

तुष्टेन विष्णुनायज्ञेदत्तात्रेयोमहात्मना। स्वशरीरात्समुत्पाद्यसत्वोद्रिक्तोद्विजोत्तमः

दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनुसूयास्तनं पपौ।

विष्णुरेवाऽवतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत्॥ ७॥

सप्ताहात्प्रच्युतो मातुरुदरात्कुपितो यतः। हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम्॥

दृष्ट्वात्रौ कुपितः सद्यो दग्धुकामः सहैहयम्। गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः

दुर्वासास्तमसोद्रिक्तो रुद्रांशः समजायत। इति पुत्रत्रयं तस्या जज्ञेब्रह्मेशवैष्णवम्

सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोव्यजायत। दुर्वासाः शङ्करोजज्ञेवरदानाद्दिवौकसाम्

सोमः स्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुधौषधिमानवान्।

आप्याययन् सदा स्वर्गे वर्तते स प्रजापतिः॥ १२॥

दत्तात्रेयः प्रजां पाति दुष्टदैत्यनिबर्हणात्। शिष्टानुग्रहकृद्योगीज्ञेयश्चांशः सवैष्णवः

निर्दहत्यवमन्तारं दुर्वासा भगवानजः। रौद्रं समाश्रित्य वपुर्दृङ्मनोवाग्भिरुद्धतः॥

सोमत्वं भगवानत्रिः पुनश्चक्रे प्रजापतिः। दत्तात्रेयोऽपिविषयान्योगस्थोबुभुजेहरिः

दुर्वासाः पितरं हित्वा मातरं चोत्तमं व्रतम् ।
उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिवभ्राम मेदिनीम् ॥ १६ ॥
मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोऽप्यसङ्गिताम् । अभीप्स्यपमानःसरसिनिममज्जचिरंप्रभुः
तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम् । तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरमाश्रिताः
दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदातेनत्यजन्तितम् । ततःप्रीत्यासरसस्तीरंसर्वैमुनिकुमारकाः
ततो दिव्याम्बरधरां सुरूपां सुनितम्बिनीम् ।
नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः ॥ २० ॥
स्त्रीसन्निकर्षाद्यद्येते परित्यक्ष्यन्ति मामिति ।
मुनिपुत्रास्ततो योगे स्थास्यामीति विचिन्तयन् ॥ २१ ॥
तथापि ते मुनिसुता न त्यजन्ति यदामुनिम् । ततः सहतयानार्यामद्यपानमथापिवत्
सुरापानरतं तेन सभार्यं तत्यजुस्ततः । गीतवाद्यादि वनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥
मन्यमाना महात्मानं तया सह वहिष्क्रियम् ।
नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिवन्नपि ॥ २४ ॥
अन्तावसायिवेश्मान्तर्मातरिश्वावसन्निव ।
सुरां पिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपे स योगवित् ॥
योगीश्वरश्चिन्त्यमानो योगिभिर्मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोत्पत्तिवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

———

अष्टादशोऽध्यायः

दत्तात्रेयमहिमसर्णनम्

पुत्र उवाच

कस्यचित्त्वथ कालस्य कृतवीर्यात्मजोऽर्जुनः ।
कृतवीर्ये दिवं याते मन्त्रिभिः सपुरोहितैः ॥ १ ॥
पौरैश्चाऽऽत्माभिषेकार्थं समाहूतोऽब्रवीदिदम् ।
नाहं राज्यं करिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम् ॥ २ ॥
यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पादयन् वृथा । पण्यानां द्वादशंभागंभूपालायवणिग्जनः
दत्वाऽऽत्मरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः ।
गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागश्च कृषीवलाः ॥ ४ ॥
दत्त्वान्यद्भूभुजेद्द्यर्यदिभागंततोऽधिकम् । पण्यादीनामशेषाणांवणिजोगृह्णतस्ततः
अग्निहोत्रंतपः सत्यं वेदानां चैवसाधनम् । आतिथ्यंवैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥
इष्टापूर्त्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्मिणः ।
यद्यन्यैः पाल्यते लोकस्तद्वृत्त्यन्तरसंश्रितः ॥ ८ ॥
गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम् । निरूपितमिदं राज्ञः पूर्वैरक्षणवेतनम् ॥
अरक्षंश्चौरतश्चौर्यंतदेनोनृपतेर्भवत् । तस्माद्यदि तपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमीप्सितम्
भुवःपालनसामर्थ्ययुक्तएकोमहीपतिः । पृथिव्यांशस्त्रधृङ्मान्यस्त्वहमेवर्द्धिसंयुतः
ततो भविष्ये नात्मानं करिष्ये पापभागिनम् ॥ १२ ॥

पुत्र उवाच

तस्य तन्निश्चयं ज्ञात्वा मन्त्रिमध्ये स्थितोऽब्रवीत् ।
गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिर्भूप वयोऽतिगः ॥ १३ ॥

भक्त्या तु कृपयाविष्टस्तं तोषयितुमर्हति ॥ १० ॥
यद्येवं कर्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक् प्रशासितुम् ।
ततः श्रृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज !॥ ११ ॥

दत्तात्रेयं महाभागं सह्यद्रोणीकृताश्रमम् । तमाराधय भूपाल पाति यो भुवनत्रयम्
योगयुक्तं महाभागं सर्वत्र समदर्शिनम् । विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं महीतले ॥
यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान्पदमात्मनः । हृतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेःसुतान्

अर्जुन उवाच

कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् । कथञ्चापहृतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः

गर्ग उवाच

देवानां दानवानाञ्च युद्धमासीत्सुदारुणम् । दैत्यानामीश्वरे जम्भेदेवानाञ्चशचीपतौ
तेषाञ्च युध्यमानानां दिव्यः संवत्सरो गतः ।
ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन् ॥ १७ ॥

विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहाद्विषज्जये
वृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः । अमन्त्रयन्तसहितावालखिल्यैस्सहर्षिभिः

वृहस्पतिरुवाच

दत्तात्रेयं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् । विकृताचरणं भक्त्या सन्तोषयितुमर्हथ
सवो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् । ततो हनिष्यथसुरासहितादैत्यदानवान्

गर्ग उवाच

हन्तुं शक्ता न सन्देहो दत्तात्रेयप्रसादतः ।
इत्युक्तास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ।
ददृशुश्च महात्मानं तं ते लक्ष्मया समन्वितम् ॥ २२ ॥

उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् । ते तस्य गत्वाप्रणतिमवदन्साध्यसाधनम्
चक्रुः स्तवं चोपजह्रुर्भक्ष्यभोज्यस्रगादिकम् ।
तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवौकसः ॥ २४ ॥

आराधयामासुरधः स्थितास्तिष्ठन्तमासने । सप्राहप्रणतान्देवान्दत्तात्रेयःकिमिष्यते

मत्तो भवद्भिर्येनेयं शुश्रूषा क्रियते मम ॥ २५ ॥

देवा ऊचुः

दानवैर्मुनिशार्दूल ! जम्भाद्यैर्भूर्भुवादिकम् ।

हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य क्रतुभागाश्च कृत्स्नशः ॥ २६ ॥

तद्वधे कुरु बुद्धिं त्वं परित्राणाय नोऽनघ ! ।

त्वत्प्रसादादभीप्सामः पुनः प्राप्तं त्रिविष्टपम् ॥ २७ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टोनचैवाहंजितेन्द्रियः।कथमिच्छथमत्तोऽपिदेवाःशत्रुपराभवम्

देवा ऊचुः

अनघस्त्वं जगन्नाथ! न लेपस्तवविद्यते । विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते !

दत्तात्रेय उवाच

सत्यमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिनः । अस्यास्तुयोषितःसङ्गादहमुच्छिष्टतांगतः

स्त्रीसम्भोगो हि दोषाय सातत्येनोपसेवितः । एवमुक्तास्ततोदेवाःपुनर्वचनमब्रुवन्

देवा ऊचुः

अनघेयं द्विजश्रेष्ठ! जगन्माता न दुष्यति ।

यासा विद्या तव विभो! सर्वज्ञस्य हृदिस्थिता ॥ ३२ ॥

न दुष्यति जगन्नाथ ! तथेयंवरवर्णिनी । यथांशुमालासूर्यस्य द्विजचण्डालसङ्गिनी

गर्ग उवाच

एवमुक्तस्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् । प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान् यद्येतद्भवतां मतम्

तदाहूयासुरान् सर्वान् युद्धायसुरसत्तमाः । इहानयतमद्दृष्टिगोचरं मा विलम्बताम्

मद्दृष्टिपातहुतभुक् प्रक्षीणबलतेजसः । येननाशमशेषास्ते प्रयान्ति मम दर्शनात् ॥

गर्ग उवाच

तस्यतद्वचनं श्रुत्वा देवैर्दैत्या महाबलाः । आहवायसमाहूता जग्मुर्देवगणाश्रमम्

ते हन्यमाना दैतेयैर्देवाःशीघ्रं भयातुराः । दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समेताः शरणार्थिनः
तमेव विविशुर्दैत्याः कालयन्तो दिवौकसः । ददृशुश्चमहात्मानं दत्तात्रेयं मदालसम्

वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतां शुभाम् ।
भार्य्यांश्चास्य सुचार्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ॥ ४० ॥
नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुदतीं मधुराभाषां सर्वैर्योषिद्गुणैर्युताम् ॥ ४१ ॥

तेतां दृष्ट्वाग्रतो दैत्याःसाभिलाषामनोभवम् । नशेकुरुद्धतंधैर्यान्मनसा वोढुमातुराः

त्यक्त्वा देवान् स्त्रियं तां तु हतु कामा हतौजसः ।
प्रेरितास्तेन पापेन संसक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ॥ ४३ ॥

स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्ये सारं नोथदि वै भवेत् । कृतकृत्यास्ततःसर्वइतिनोभावितंमनः

तस्मात् सर्वे समुत्क्षिप्य शिविकायां सुरार्दनाः ।
आरोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ॥ ४५ ॥

गर्ग उवाच

सानुरागास्ततस्ते तु प्रोक्ताश्चेत्थं परस्परम् ।
तस्य तां योषितं साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरार्दिताः ॥ ४६ ॥
शिविकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः ।
शिरःसु शिविकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखं ययुः ॥ ४७ ॥
दत्तात्रेयस्ततोदेवान् विहस्येदमथाऽब्रवीत् ।
दिष्ट्या वर्द्धथ (च हन्त) दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ।
सप्तस्थानान्यतिक्रान्या नवमन्यमुपैष्यति ॥ ४८ ॥

देवा ऊचुः

कथयस्वजगन्नाथ ! केषुस्थानेष्ववस्थिता । पुरुषस्य फलंकिंवाप्रयच्छत्यथनश्यति

दत्तात्रेय उवाच

नृणां पदे स्थिता लक्ष्मीर्निलयं सम्प्रयच्छति ।

सक्थ्न्योश्च संस्थिता वस्त्रं तथा नानाविधं वसु ॥ ५० ॥

कलत्रश्चगुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी । मनोरथान् पूरयतिपुरुषाणांहृदिस्थिता

लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठा कण्ठस्थाकण्ठभूषणम् ।

अभीष्टबन्धुदारैश्चतथाश्लेषं प्रवासिभिः ॥ ५२ ॥

मृष्टानुवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथांतथा । मुखस्थिताकवित्वंचयच्छत्युदधिसम्भवा

शिरोगता सन्त्यजति ततोऽन्यं याति चाश्रयम् ।

सेयं शिरोगता चैतान् (दैत्यान्) परित्यक्ष्यति साम्प्रतम् ॥ ५४ ॥

प्रगृह्याऽस्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः ।

न भेतव्यं भृशंत्वेते मयानिस्तेजसः कृताः । परदारावमर्षाच्च दग्धपुण्याहतौजसः

तस्मादेते विहन्यन्तां भवद्भिरविशङ्कितैः ।

गर्ग उवाच

ततस्तेविविधैरस्त्रैर्वध्यमानाः सुरारयः ।

मूर्ध्नि लक्ष्म्या समाक्रान्ता विनेशुरिति न श्रुतम् ॥ ५६ ॥

लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम् ।

स्तूयमानासुरैः सर्वैर्दैत्यनाशान् मुदान्वितैः ॥ ५७ ॥

प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं मनीषिणम् ।

जयकृष्ण जगन्नाथ ! दैत्यान्तक ! हर प्रभो ! ॥ ५८ ॥

नारायणाच्युतानन्त! वासुदवाक्षयाजर !।

त्वत्प्रसादात्सुखं लक्ष्मी राज्यं सम्पज्जनार्दन !।

शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणे भक्तानां नित्यवत्सल !॥ ५६ ॥

(इतिस्तुत्वा नाकपृष्ठं यथापूर्वं गताःसुराः)

नाकपृष्ठमनुप्राप्ता यथापूर्वं गतज्वराः ॥ ६० ॥

तथा त्वमपि राजेन्द्र!यदीच्छसियथेप्सितम् । प्राप्तुमैश्वर्यमतुलंतूर्णमाराधयस्वतम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

कार्त्तवीर्यार्जुनकृतदत्तात्रेयोपासनवर्णनम्

पुत्र उवाच

इत्यृषेवचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्यो नरेश्वरः। दत्तात्रेयाश्रमंगत्वा तं भक्त्या समपूजयत्
पादसम्वाहनाद्येन मध्वाद्याहरणेन च। स्रक्चन्दनादिगन्धाम्बुफलाद्यानयनेन च
तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च। परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैव सः

यथैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोगादिकुत्सनम्।
स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्येतद्भोगाच्च कुत्सितम्॥ ४॥

सदैवाहं न मामेवमुपरोद्धुंत्वमर्हसि। अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः॥

जड़ उवाच

तेनैवमुक्तो मुनिना स्मृत्वागर्गवचश्चतत्। प्रत्युवाचप्रणम्यैनं कार्त्तवीर्यार्जुनस्तदा

अर्जुन उवाच

(देवस्त्वं हि पुराणो यः स्वां मायां समुपाश्रितः)

किं मां मोहयसे देव! स्वांमायांसमुपाश्रितः। अनघस्त्वंतथैवेयंदेवीसर्वभवारणिः
इत्युक्तः प्रीतिमान् देवोभूयस्तं प्रत्युवाच ह। कार्त्तवीर्यंमहाभागंवशीकृतमहीतलम्

वरं वृणीष्व गुह्यं मे यत् त्वया समुदीरितम्।
तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिव!॥ ६॥
ये च मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः।
मांसमद्योपहारैश्च मिष्टान्नैश्चाऽऽज्यसंयुतैः॥ १०॥

लक्ष्मीसमेतं गीतैश्चब्राह्मणानां तथार्च्चनैः। वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशङ्खादिभिस्तथा
तेषामहं परां तुष्टिं पुत्रदारधनादिकम्। प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम्
स त्वं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेच्छसि। प्रसादसुमुखस्तेऽहं गुह्यनामप्रकीर्त्तनात्

कार्त्तवीर्य उवाच

यदिदेव ! प्रसन्नस्त्वंतत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् । यया प्रजाःपालयेऽहंनचाधर्ममवाप्नुयाम्
परानुसरणे ज्ञानमप्रतिद्वन्द्वतां रणे । सहस्रमाप्तुमिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् ॥
असङ्गागतयःसन्तुशैलाकाशाम्बुभूमिषु । पातालेषु च सर्वेषु वधश्चाप्यधिकान्नरात्
तथोन्मार्गप्रवृत्तस्यः सन्तु सन्मार्गदेशिकाः ।
सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तदाने तथाक्षये ॥ १७ ॥
अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च । त्वयि भक्तिर्ममैवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी

दत्तात्रेय उवाच

यत्रतेकीर्त्तिताःसर्वेतान्वरान्समवाप्स्यसि । मत्प्रसादाच्चभविताचक्रवर्त्तित्वमैश्वरम्

(पुत्र) जड़ उवाच

प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयायसोऽर्जुनः । आनाय्य प्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णत
आगताश्चाऽपि गन्धर्वास्तथैवाऽप्सरसां गणाः ।
ऋषयश्च वसिष्ठाद्यामेर्वाद्याः पर्वतास्तथा ॥ २१ ॥
गङ्गाद्याः सरितःसर्वासमुद्रारत्नसम्भवाः । प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षा देवा वै वासवादयः
वासुकिप्रमुखानागाअभिषेकार्थमागताः । तार्क्ष्याद्याःपक्षिणश्चैवपौराजानपदास्तथा
सम्भाराः सम्भृताःसर्वेदत्तात्रेयप्रसादतः । अथसञ्ज्वाल्यतैर्वह्निंदेवैर्ब्रह्मादिभिः सह
नारायणेनाभिषिक्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा । समुद्रैश्चनदीभिश्चऋषिभिश्चाभिषेचितः
आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये सहैहयः ।
दत्तात्रेयात् परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ॥ २६ ॥
अद्यप्रभृतियःशास्त्रंमामृतेऽन्योग्रहीष्यति । हन्तव्यः समयादस्युःपरहिंसारतोऽपिवा
इत्याज्ञतेन तद्राष्ट्रे कश्चिदायुधधृङ्नरः । तमृते पुरुषव्याघ्रं बभूवोरुपराक्रमम् ॥
सएवग्रामपालोऽभूत् पशुपालः सएवच । क्षेत्रपालः सएवासीद्द्विजातीनाञ्चरक्षिता
तपस्विनां पालयिता सार्थपालस्तुसोऽभवत् ।
दस्युव्यालाग्निशस्त्रादिभयेष्वब्धौ निमज्जताम् ॥ ३० ॥

अन्यासुचैव मग्नानामापत्सुपरवीरहा। स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताऽभवन्नृणाम्
अनष्टद्रव्यता चासीत्तस्मिन् शासतिपार्थिवे। तेनेष्टं वहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः॥
तेनैवच तपस्तप्तं संग्रामेष्वतिचेष्टितम्। तस्यर्द्धिमतिमानञ्च दृष्ट्वाप्राहाङ्गिरा मुनिः॥

न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चाऽतिचेष्टितैः॥ ३४॥
दत्तात्रेयाद्दिने यस्मिन् सम्प्राप्तर्द्धिं नरेश्वरः।
तस्मिंस्तस्मिन् दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत्॥ ३५॥

तत्रैव चप्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपतेः। तस्यर्द्धिपरमां दृष्ट्वा यागञ्चक्रुःसमाधिना
इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः। विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्यमहात्मनः
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्वनः। अनन्तस्याप्रमेयेस्य शङ्खचक्रगदाभृतः

एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत्॥ ३६॥

सदैव वैष्णवानाञ्च भक्त्याहंसुलभोऽस्मि भोः। इत्येवंयस्यवैवाचस्तंकथं नाश्रयेज्जनः
अधर्मस्य विनाशायधर्माचारार्थमेव च। अनादिनिधनोदेवः करोतिस्थितिपालनम्
तथैव जन्म चाख्यातमलर्क कथयामि ते। तयाच योगः कथितोदत्तात्रेयेण तस्यवै

पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः॥ ४३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोपाख्यानवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १६॥

विंशोऽध्यायः

शत्रुजिदुपाख्यानेकुवलयाश्वीयवर्णनम्

(पुत्र) जड उवाच

प्रागबभूवमहावीर्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः। तुतोष यस्य यज्ञेषुसोमावाप्त्यापुरन्दरः

तस्यात्मजो महावीर्य्यो बभूवाऽरिविदारणः।

बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशक्राश्विभिः समः॥ २॥

स समानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितैः। नृपपुत्त्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः॥

कदाचिच्छास्त्रसम्भारविवेककृतनिश्चयः। कदाचित् काव्यसँल्लापगीतनाटकसम्भवैः

तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च।

योग्यानि युद्धनागाश्वस्यन्दनाभ्यासतत्परः॥ ५॥

रेमे नरेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयैः सह। यथैव हि दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदा युतः॥

तेषां तुक्रीडतां तत्रद्विजभूपविशां सुताः। समानवयसः प्रीत्यारन्तुमायान्त्यनेकशः

कस्यचित्त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम्।

कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु॥ ८॥

ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ। तौतैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजन्मभिः

विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ। सर्वेंचते नृपसुतास्तेच ब्रह्मविशांसुताः

नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकम्।

वस्त्रगन्धानुसंयुक्तां चक्रुर्भोगभुजिक्रियाम्॥ ११॥

अहन्यहन्यनुप्राप्ते तौ चनागकुमारकौ। आजग्मतुर्मुदा युक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः

स च ताभ्यांनृपसुतः परंनिर्वाणमाप्तवान्। विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेवच

विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौनपपौ मधु। नररामन जग्राह शास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये

रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना।

निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने ॥ १५ ॥

मर्त्यलोके पराप्रीतिर्भवतोः केनपुत्रकौ । सहेति पप्रच्छ पिता तावुभौ नागदारकौ
दृष्टयोरत्र पाताले बहूनि दिवसानि मे । दिवा रजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ

जड उवाच

इति पित्रा स्वयंपृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली । प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ

पुत्रावूचतुः

पुत्रःशत्रुजितस्तात ! नाम्नाख्यातऋतध्वजः । रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानीप्रियंवदः

अनावृत (पृष्ट) कथोवाग्मी विद्वान् मैत्रो गुणाकरः ।
मान्यमानयिता धीमान् श्रीमान् विनयभूषणः ॥ २० ॥

तस्योपचारसम्प्रीतिसम्भोगापहृतं मनः । नागलोकेभुवोलोकेन रतिं विन्दते पितः
तद्वियोगेन नस्तात! निशापातालशीतलाम् । परितापायतत्सङ्गादाह्लादायरविर्दिवा

पितोवाच

पुत्रः पुण्यवतोधन्यःसयस्यैवंभवद्विधैः । परोक्षस्यापिगुणिभिःक्रियतेगुणकीर्तनम्

सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खा सुशीलिनः ।
शास्त्रशीले समं मन्ये यस्मिन् धन्यतरं तु तम् ॥ २४ ॥
यस्य मित्रगुणान् मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् ।
कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता ॥ २५ ॥
तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम् ।
किञ्चिन्निष्पादितं वत्सौ! परितोषाय चेतसः ॥ २६॥

सधन्योजीवितंतस्यतस्य जन्मसुजन्मनः । यस्यार्थिनोनविमुखामित्रानर्थेच दुर्बलः
मद्गृहे यत्सुवर्णादि रत्नंवाहनमासनम् । यच्चान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशङ्कया

धिक् तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामुपकारिणाम् ।
प्रतिरूपमकुर्वन् यो जीवामीत्यवगच्छति ॥ २६ ॥

उपकारंसुहृद्वर्गे योऽपकारंच शत्रुषु । नृमेघो वर्षति प्राज्ञस्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम्

पुत्रावूचतुः

किं तस्यकृतकृत्यस्यकर्तुंशक्येत केनचित् । यस्यसर्वार्थिनोगेहेसर्वकामैःसदार्चिताः
यानि रत्नानि तद्गेहे पाताले तानि नःकुतः । वाहनासनयानानिभूषणान्यम्बराणिच
विज्ञानं तत्र यच्चास्ति तदन्यत्र न विद्यते । प्राज्ञानामप्यसौ तात ! सर्वसन्देहहृत्तमः
एकं तस्यास्ति कर्तव्यमसाध्यंतच्च नोमेतम् । हिरण्यगर्भगोविन्दशर्वादीनीश्वराद्दते

पितोवाच

तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत्कार्यमुत्तमम् ।
असाध्यमथवा साध्यं किं वाऽसाध्यं विपश्चिताम् ॥ ३५ ॥

देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वञ्च मानवाः । प्रयान्ति वाञ्छितंवान्यद्दृढंयेव्यवसायिनः

नाऽविज्ञातं नचाऽगम्यं नाऽप्राप्यं दिवि चेह वा ।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ॥ ३७ ॥

योजनानांसहस्राणिव्रजन्यातिपिपीलिकः। अगच्छन्वैनतेयोऽपिपादमेकंनगच्छति
क्वभूतलं क्वचध्रौव्यं स्थानं यत् प्राप्तवान् ध्रुवः । उत्तानपादनृपतेःपुत्रसन्भूमिगोचरः
तत्कथ्यतां महाभाग! कार्यवान्येनपुत्रकौ । सभूपालसुतःसाधुर्येनानृण्यंभवेत वाम्

पुत्रावूचतुः

तेनाख्यातमिदं तात! पूर्ववृत्तं महात्मना । कौमारके यथा तस्य वृत्तं सद्वृत्तशालिनः

तस्य (तन्तु) शत्रुजितं तात ! (तातं)पूर्वं कश्चिद् द्विजोत्तमः ।
गालवोऽभ्यागमद्धीमान् गृहीत्वा तुरगोत्तमम् ॥ ४२ ॥
प्रत्युवाच च राजानं समुत्पेत्याऽऽश्रमं मम ।
कोऽपि दैत्याधमो राजन् ! विध्वंसयति पापकृत् ॥ ४३ ॥

तत्तद्रूपं समास्थाय सिंहेभवनचारिणाम् । अन्येषाञ्चाल्पकायानामहर्निशमकारणात्
समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च । तथाकरोतिविघ्नानियथा नेच्छामिपार्थिव
दग्धुं कोपाग्निनासद्यःसमर्थस्त्वंवयंनतु । दुःखार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव
एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा । तत्क्लेशितेननिश्वासोनिरीक्ष्यासुरमुज्झितः

ततोऽम्बरतलात् सद्यः पतितोऽयं तुरङ्गमः ।
वाक् चाऽशरीरिणी प्राह नरनाथ ! शृणुष्व तत् ॥ ४८ ॥
अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः । समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः
पातालाम्बरतोयेषु न चास्य विहतागतिः । समस्तदिक्षुव्रजतो न भङ्गः पर्वतेष्वपि
यतो भूवलयं सर्वमश्रान्तोऽयंचरिष्यति । ततःकुवलयोनाम्नाख्यातिंलोकेप्रयास्यति
क्लिश्यत्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः । तमप्येनं समारुह्यद्विजश्रेष्ठ!हनिष्यति
शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्य पुत्रऋतध्वजः । प्राप्यैतदश्वरत्नञ्च ख्यातिमेतेन यास्यति
सोऽहं त्वां समनुप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम् ।
तं निवारय भूपाल ! भागभाङ्नृपतिर्यतः ॥ ५४ ॥
तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप ! निवेदितम् । पुत्रमाज्ञापयतथा यथाधर्मो न लुप्यते ॥
स तस्य वचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम् । तमश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम्
अप्रेषयत धर्मात्मा गालवेन समं तदा । स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे कुवलयाश्वीयवर्णनं नाम
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

नागराजतत्पुत्रसम्वादेऋतध्वजविक्रमवर्णनम्

पितोवाच

गालवेनसमं गत्वा नृपपुत्रेणतेन यत् । कृतंतत्कथ्यतांपुत्रौ! विचित्रायुवयोः कथाः

पुत्रावूचतुः

स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन्नृगोपालनन्दनः । सर्वविघ्नोपशमनं चकार ब्रह्मवादिनाम्
वीरं कुवलयाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे । मदावलेपोपहतो नाजानाद्दानवाधमः ॥ ३

ततस्तं गालवं विप्रं सन्ध्योपासनतत्परम् । शौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागतम्
मुनिशिष्यैरथोत्कुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् । अन्वधावद्वराहं तं नृपपुत्रः शरासनी
आजघान च बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्चसा । आकृष्यबलवच्चापञ्चारुचित्रोपशोभितम्

नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः ।
गिरिपादपसम्बाधां सोऽन्वक्रामन्महाटवीम् ॥ ७ ॥

तमन्वधावद्वेगेन तुरगोऽसौ मनोजवः । चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ॥
अतिक्रम्याऽथवेगेन योजनानि सहस्रशः । धरण्यां विवृते गर्त्ते निपपात लघुक्रमः
तस्यानन्तरमेवाऽथ सोऽप्यश्वी नृपतेः सुतः । निपपात महागर्ते तिमिरौघसमावृते

ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन् राजुसूनुना ।
प्रकाशश्च स पातालमपश्यत्तत्र चार्च्चिषा ॥ ११ ॥

ततोऽपश्यत् स सौवर्णंप्रासादशतसङ्कुलम् । पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोभितम्

तत् प्रविश्य स नापश्यत्तत्र कश्चिन्नरं पुरे ।
भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित्त्वरान्विता ॥ १३ ॥
सा पृष्टा तेन तन्वङ्गी प्रस्थिता केन कस्य वा ।
नोवाच किञ्चित् प्रासादमारुरोह च भामिनी ॥ १४ ॥

सोऽप्यश्वमेकतोबद्ध्वातामेवानुससार वै । विस्मयोत्फुल्लनयनोनिःशङ्कोनृपतेःसुतः

ततोऽपश्यत् सुविस्तीर्णे पर्यङ्के सर्वकाञ्चने ।
निषण्णां कन्यकामेकां कामयुक्तां रतीमिव ॥ १६ ॥
विस्पष्टेन्दुमुखीं सुभ्रूं पीनश्रोणिपयोधराम् ।
विम्बाधरौष्ठीं तन्वङ्गीं नीलोत्पलविलोचनाम् ॥ १७ ॥
रक्ततुङ्गनखीं श्यामां मृद्वीं ताम्रकराङ्घ्रिकाम् ।
करभोरुं सुदशनां नीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥ १८ ॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमनङ्गांगलतामिव । सोऽमन्यत्पार्थिवसुतस्तांरसातलदेवताम्
सा च दृष्ट्वैव तं बाला नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् । पीनोरुस्कन्धबाहुंतममंस्तमदनं शुभा

उत्तस्थौ च महाभागा चित्तक्षोभमवाप सा ।
लज्जाविस्मयदैन्यानां सद्यस्तन्वी वशं गता ॥ २१ ॥
कोऽयंदेवोनुयक्षो वा गन्धर्वो वोरगोऽपिवा । विद्याधरो वासंप्राप्तःकृतपुण्यरतिर्नरः
एवंविचिन्त्यबहुधानिःश्वस्य च महीतले । उपविश्यततोभेजे सामूर्च्छांमदिरेक्षणा
सोऽपि कामशराघातमवाप्यनृपतेः सुतः । तांसमाश्वासयामास न भेतव्यमितिब्रुवन्
साच स्त्री यातदादृष्टा पूर्वं तेनमहात्मना । तालवृन्तमुपादाय पर्य्यवीजयदाकुला ॥
समाश्वास्य तदा पृष्टा तेन सम्मोहकारणम् ।
किञ्चिल्लज्जान्विता बाला तस्याः सख्यै न्यवेदयत् ॥ २६ ॥
साचास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात् । मोहस्य कारणं सर्वं तद्दर्शनसमुद्भवम्
यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तान्तञ्च भामिनी ॥ २७ ॥

सख्यु (स्त्र्यु) रुवाच

विश्वावसुरिति ख्यतो दिवि गन्धर्वराट् प्रभो! ।
तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्ना ख्याता मदालसा ॥ २८ ॥
वज्रकेतोः सुतश्चोग्रोदानवोऽरिविदारणः । पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः
तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम् । अपहृत्य मया हीना बालानीतादुरात्मना
आगामिन्यां त्रयोदश्यामुद्वक्ष्यतिकिलासुरः । सतुनार्हतिचार्वङ्गींशूद्रोवेदश्रुतीमिव
अतीते च दिने बालामात्मव्यापादनोद्यताम् ।
सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः ॥ ३२ ॥
मर्त्यलोकमनुप्राप्तं यएनं भेत्स्यते शरैः । सते भर्त्ता महाभागे! अचिरेण भविष्यति
अहं चास्याः सखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी ।
सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीर ! पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥
हते भर्त्तरि शुम्भेन तीर्थात्तीर्थमनुव्रता । चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता
पातालकेतुर्दुष्टात्मावाराहंचपुरास्थितः । केनापिविद्धोवाणेन मुनीनांत्राणकारणात्
तथाहं तत्त्वतोऽन्विष्यत्वरितासमुपागता । सत्यमेव सकेनापिताडितोदानवाधमः

इयञ्चमूर्च्छामगमत् कारणं यच्छृणुष्वतत् । त्वयिप्रीतिमतीबाला दर्शनाद्देवमानद!
देवपुत्रोपमे चारुवाक्यादिगुणशालिनि ! । भार्याचान्यस्यविहितायेनविद्धःसदानवः
एतस्मात्कारणान्मोहंमहान्तमियमागताः । यावज्जीवञ्च तन्वङ्गीदुःखमेवोपभोक्ष्यते

त्वय्यस्या हृदयं रागि भर्त्ता चान्यो भविष्यति ।
यावज्जीवमतो दुःखं सुरभ्या नान्यथा वचः ॥ ४१ ॥
अहं त्वस्याः प्रभो ! प्रीत्या दुःखिताऽत्र समागता ।
यतो विशेषो नैवाऽस्ति स्वसखीनिजदेहयोः ॥ ४२ ॥

यद्येषाभिमतं वीरं पतिमाप्नोति शोभना । ततस्तपस्त्वहं कुर्यांनिर्व्यलीकेनचेतसा
त्वं तुकोवाकिमर्थंवासंप्राप्तोऽत्रमहामते! । देवोदैत्योऽनुगन्धर्वःपन्नगःकिन्नरोऽपिवा
नक्षत्रमानुषगतिर्नचेद्दृङ्मानुषं वपुः । तत्त्वमाख्याहि कथितं यथैवाऽवितथं मया

कुवलयाश्व उवाच

यन्मांपृच्छसिधर्मज्ञे!कस्त्वंकिंवासमागतः । तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे!कथयाम्यादितस्तव
राज्ञः शत्रुजितः पुत्रःपित्रा सम्प्रेषितः शुभे !। मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाश्रममागतः॥

कुर्वतो मम रक्षाञ्च मुनीनां धर्मचारिणाम् ।
विघ्नार्थमागतः कोऽपि शौकरं रूपमास्थितः ॥ ४८ ॥

मया स विद्धोवाणेनचन्द्रार्द्धाकरवर्च्चसा । अपक्रान्तोऽतिवेगेन तमस्म्यनुगतोहयी
पपात सहसा गर्त्तेसक्रीडोऽश्वश्चमामकः । सोऽहमश्वं समारुढस्तमस्येकःपरिभ्रमन्
प्रकाशमासादितवान् दृष्टा चभवती मया । पृष्टयाच न मे किञ्चिद्भवत्यादत्तमुत्तरम्
त्वांचैवानुप्रविष्टोऽहमिमंप्रासादमुत्तमम् । इत्येतत्कथितं सत्यं न देवोऽहं न दानवः
न पन्नगो नगन्धर्वःकिन्नरोवा शुचिस्मिते! । समस्ताःपूज्यपक्षावै देवाद्यामकुण्डले

मनुष्योऽस्मि विशङ्का ते न कर्त्तव्याऽत्र कर्हिचित् ॥ ५३ ॥

पुत्रावूचतुः

ततःप्रहृष्टा साकन्यासखीवदनमुत्तमम् । लज्जाजडंवीक्षमाणा किञ्चिन्नोवाचभामिनी
सा सखी पुनरप्येनं प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह । यथावत् कथितंतेन सुरभ्या वचनानुगम्

कुण्डलोवाच

वीर!सत्यमसन्दिग्धं भवताभिहितंवचः। नान्यत्रहृदयंत्वस्या दृष्ट्वास्थैर्य्यंप्रयास्यति
चन्द्रमेवाधिकाकान्तिःसमुपैतिरविंप्रभा। भूतिर्धन्यंधृतिर्धीरंक्षान्तिरभ्येतिचोत्तमम्
त्वयैव विद्धोऽसंदिग्धं स पापो दानवाधमः।
सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति ॥ ५८ ॥
तद्धन्येयंसभाग्या चत्वत्सम्बन्धंसमेत्यवै। कुरुष्ववीर!यत्कार्यंविधिनैवसमाहितम्

पुत्रावूचतुः

परवानहमित्याह राजपुत्रः सतां पितः!। साचतंचिन्तयामास तुम्बुरुंतत्कुले गुरुम्
सचापितत्क्षणात्प्राप्तःप्रगृहीतसमित्कुशः। मदालसायाःसंप्रीत्याकुण्डलागौरवेणच
प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मन्त्रवित् कृतमङ्गलाम्।
वैवाहिकविधिं कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ॥ ६२ ॥
जगाम तपसेधीमान् स्वमाश्रमपदं तदा। साचाहतां सखींवालांकृतार्थास्मिवरानने
संयुक्काममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम्। तपस्तप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेनचेतसा
तीर्थाम्बुधौतपापा च भवित्री नेदृशीयथा। तंचाह राजपुत्रं सा प्रश्रयावनता तदा॥
गन्तुकामा निजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी।

कुण्डलोवाच

पुम्भिरप्यमितप्रज्ञो नोपदेशो भवद्विधे। दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतोनोपदिशामिते
किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा।
त्वया विश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन!॥ ६७ ॥
भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्या हि पतिना सदा।
धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्त्तुः सहायिनी ॥ ६८ ॥
यदा भार्या च भर्त्ता च परस्परवशानुगौ। तदा धर्मार्थकामानांत्रयाणामपिसङ्गतम्
कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वापुरुषः प्रभो!। प्राप्नोति काममर्थंवातस्यांत्रितयमाहितम्
तथैव भर्त्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने। न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यंसमुपाश्रितः

देवतापितृभृत्यानामतिथीनाञ्च पूजनम् । न पुंभिःशक्यतेकर्त्तुं मृतेभार्यांनृपात्मज
प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम् ।
क्षयमेति विना भार्यां कुभार्यासंश्रयेऽपि वा ॥ ७३ ॥
कामस्तु तस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते । दम्पत्योःसहधर्मेणत्रयीधर्ममवाप्नुयात्
पुत्राणां योनिरन्या वै नान्यतो भार्यया विना ।
पितॄन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीन्नरः । पूजाभिरमरांस्तद्वद् साध्वींभार्यांनरोऽवति
स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्मकामार्थसन्ततिः ।
नैव तस्मात्त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यमधिगच्छति ॥ ७६ ॥
एतन्मयोक्तं युवयोर्गच्छामि च यथेप्सितम् । वर्द्धत्वमनयासार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा

पुत्रावूचतुः

इत्युक्त्वा सा परिष्वज्य स्वसखीं तं नमस्य च ।
जगाम दिव्यया गत्या यथाभिप्रेतमात्मनः ॥ ७८ ॥
सोऽपिशत्रुजितःपुत्रस्तामारोप्यतुरङ्गमम् । निर्गन्तुकामःपातालाद्विज्ञातोदनुसम्भवैः
ततस्तैः सहसोत्क्रुष्टं ह्रियते ह्रियतेऽति वै । कन्यारत्नंयदानीतं दिवःपातालकेतुना
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् । दानवानां बलं प्राप्तं सहपातालकेतुना ॥
तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानवोत्तमाः ।
शरवर्षैस्तथा शूलैर्ववर्षुर्नृपनन्दनम् ॥ ८२ ॥
स च शत्रुजितः पुत्रस्तदस्त्राण्यतिवीर्यवान् ।
चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निव लीलया ॥ ८३ ॥
क्षणेन पातालतलमसिशक्त्यृष्टिसायकैः । छिन्नैः संच्छन्नमभवद्भूतध्वजशरोत्करैः
ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रति दानवान् । तेन ते दानवाःसर्वेसहपातालकेतुना
ज्वालामालातितीव्रेण स्फुटदस्थिचयाः कृताः ।
निर्दग्धाः कापिलं तेजः समासाद्येव सागराः ॥ ८६ ॥
ततःस राजपुत्रोऽश्वीनिहत्यासुरसत्तमान् । स्त्रीरत्नेनसमंतेनसमागच्छत्पितुःपुरम्

प्रणिपत्य च तत् सर्वं सतु पित्रेन्यवेदयत् । पातालगमनंचैवकुण्डलायाश्चदर्शनम्
तद्धन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापि सङ्गरम । वधश्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा ॥
इतिश्रुत्वापिता तस्य चरितंचारुचेतसः । प्रीतिमानभवच्चेदंपरिष्वज्याहचात्मजम्
सत्पात्रेण त्वया पुत्र! तारितोऽहं महात्मना । भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणः

मत्पूर्वैः ख्यातमानीतं मया विस्तारितं पुनः ।
पराक्रमवता वीर ! त्वया तद्वहुलीकृतम् ॥ ९२ ॥

यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा । तन्न हापयते यस्तुस नरोमध्यमःस्मृतः
तद्वीर्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत्स्वशक्तितः । निष्पादयति तंप्राज्ञाःप्रवदन्तिनरोत्तमम्
यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्ययशांसि वै । न्यूनतां नयतिप्राज्ञास्तमाहुःपुरुषाधमम्
तन्मया ब्राह्मणत्राणं कृतमासीद्यथा त्वया । पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम्
एतदप्यधिकं वत्स तेन त्वंपुरुषोत्तमः । तद्धन्योऽस्म्यथ वानत्वमहमेवगुणाधिकम्

त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यः पुण्यवतामपि ।
न स पुत्रकृतां प्रीतिं मन्ये प्राप्नोति मानवः ॥ ९८ ॥

पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः । धिग्जन्म तस्ययःपित्रालोकेविज्ञायतेनरः

यः पुत्रात् ख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मनः ।
आत्मना ज्ञायते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः ॥ १०० ॥

मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिमेति नराधमः । तत् पुत्रधनवीर्यैस्त्वं विवर्द्धस्वसुखेनच
गन्धर्वतनया चेयं मा त्वया वै वियुज्यताम् । इतिपित्राबहुविधंप्रियमुक्तःपुनः पुनः
परिष्वज्य स्वमावासं सभार्यः स विसर्जितः । स तयाभार्ययासार्द्धं रेमेतत्रपितुःपुरे
अन्येषु च तथोद्यानवनपर्वतसानुषु । श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा ॥

प्रातः प्रातस्ततस्तेन प्रणिपत्य (सहरेमे) सुमध्यमा ॥ १०४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये मदालसापरिणय-
वर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

मदालसाप्राणवियोगवर्णनम्

पुत्रावचतुः

ततः काले बहुतिथे गते राजापुनःसुतम् । प्राहगच्छाशुविप्राणांत्राणायचरमेदिनीम्
अश्वमेनं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने दिने । आवाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव हि
दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापयोनयः (पापबुद्धयः) ।
तेभ्यो न स्याद्यथा वाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ॥ ३ ॥
स यथोक्तस्ततःपित्रा तथाचक्रेनृपात्मजः । परिक्रम्यमहींसर्वांववन्दे चरणौ पितुः
अहन्यहन्यनुप्राप्ते पूर्वाह्णेनृपनन्दनः । ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यया ॥ ५ ॥
एकदा तु चरन् सोऽथ ददर्श यमुनातटे । पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ॥
मायावी दानवः सोऽथ मुनिरूपं समास्थितः ।
स प्राह राजपुत्रं तं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥
राजपुत्र! ब्रवीमित्वां तत्कुरुष्वयदिच्छसि । नचतेप्रार्थनाभङ्गःकार्यः सत्यप्रतिश्रव!
यक्ष्ये यज्ञेन धर्माय कर्तव्याश्च तथेष्टयः । चितयस्तत्रकर्तव्या नान्तरिक्षगता यतः
ततः प्रयच्छ मे वीर ! हिरण्यार्थं स्वभूषणम् ।
यदेतत् कण्ठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाऽऽश्रमम् ॥ १० ॥
यावदन्तर्जले देवं वरुणं यादसां पतिम् । वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः
अभीष्टूय त्वरायुक्तः समभ्येमीतिवादिनम् ।
तं प्रणम्य ततः प्रादात् स तस्मै कण्ठभूषणम् ॥ १२ ॥
प्राह चैनं भवान् यातु निर्व्यलीकेन चेतसा । स्थास्यामितावदत्रैवतवाश्रमसमीपतः
तवादेशान्महाभाग! यावदागमनं तव । न तेऽत्र कश्चिदाबाधांकरिष्यतिमयिस्थिते
विश्रब्धश्चात्वरन् ब्रह्मन् ! कुरुष्व त्वं (स्त्वंमुनिश्रेष्ठकुरुष्व च) मनोगतम् ॥ १४ ॥

पुत्रावूचतुः

एवमुक्तस्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले । ररक्ष सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम्
गत्वाजलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्परम् । मदालसायाःप्रत्यक्षमन्येषांचैतदुक्तवान्

तालकेतुरुवाच

वीरःकुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रमसमीपतः । केनापिदुष्टदैत्येनकुर्वन्रक्षां तपस्विनाम्

युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन् ब्रह्मद्विषो युधि ।
मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि ॥ १८ ॥

म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कण्ठभूषणम् । प्रापितश्चाग्निसंयोगं स वने शूद्रतापसैः
कृतार्तहेषाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः । नीतःसोऽश्वश्चतेनैव दानवेनदुरात्मना
एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा । यदत्रानन्तरं कृत्यं कुरुष्वोत्तरकालिकम्

हृदयाश्वासनञ्चैतद् गृह्यतां कण्ठभूषणम् ।
नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् ॥ २२ ॥

पुत्रावूचतुः

इत्युक्त्वोत्सृज्य तद्भूमौ स जगाम यथागतम् ।
निपपात जनः सोऽथ शोकार्त्तो मूर्च्छयाऽऽतुरः ॥ २३ ॥

तत्क्षणात्चेतनांप्राप्यसर्वास्तानृपयोषितः । राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुःखिताः

मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम् ।
तत्याजाऽऽशु प्रियान् प्राणान् श्रुत्वा च निहतं पतिम् ॥ २५ ॥

ततः पुरो महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् । यथैव तस्य नृपतेः स्वगेहे समवर्तत

राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ।
प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृष्य स्वस्थमानसः ॥ २७ ॥
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ।
सर्वेषामेव सञ्चिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम् ॥ २८ ॥
किन्तु शोचामि तनयं किन्तु शोचाम्यहं स्नुषाम् ।

विमृष्य कृतकृत्यत्वान्मन्येऽशोच्यावुभावपि ॥ २६ ॥

मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद् द्विजरक्षणतत्परः । प्राप्तोमे यःसुतोमृत्यु कथंशोच्यःसधीमताम्

अवश्यं याति यद्देहं तद्द्विजानां कृते यदि । ममपुत्रेणसंत्यक्तंनन्वभ्युदयकारितत्

इयञ्च सत्कुलोत्पन्नाभर्त्तर्येवमनुव्रता । कथन्नु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम्

अस्माकं बान्धवानाञ्च तथाऽन्येषां दयावताम् ।

शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी ॥ ३३ ॥

या तु भर्तुर्वधंश्रुत्वातत्क्षणादेवभामिनी । भर्त्तारमनुयातेयंनशोच्याऽतोविपश्चिताम्

ताः शोच्या या वियोगिन्यो न शोच्या या मृता सह (सहभर्त्रा कुलाङ्गनाः)।

कष्टभ्रान्त्या न गच्छन्ति कष्टदाःस्युःकुलात्मनोः ।

भर्त्तुर्वियोगस्त्वनया नानाभूतः कृतज्ञया ॥ ३५ ॥

दातारं सर्वसौख्यानामिहचामुत्रचोभयोः । लोकयोःकाहिभर्त्तारंनारीमन्येतमानुषम्

नासौशोच्योनचैवेहं नाहंतज्जननीनच । त्यजताब्राह्मणार्थाय प्राणान्सर्वेस्मतारिताः

विप्राणां मम धर्मस्यगतःस हि महामतिः । आनृण्यमद्भुक्तस्यत्यागाद्देहस्यमेसुतः

मातुः सतीत्वं मद्वंशवैमल्यं शौर्यमात्मनः ।

सङ्ग्रामे सन्त्यजन् प्राणान् नाऽत्यजद् द्विजरक्षणे ॥ ३६ ॥

पुत्रावधूचतुः

ततः कुवलयाश्वस्य माताभर्तुरनन्तरम् । श्रुत्वापुत्रवधंताद्वक् प्राह दृष्ट्वा तु तं पतिम्

मातोवाच

न मेमात्रान मे स्वस्राप्राप्ताप्रीतिर्नृपेदृशी । श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया

शोचतां बान्धवानां (ब्राह्मणानां) ये निःश्वसन्तोऽतिदुःखिताः ।

म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथाप्रजा ॥ ४२ ॥

संग्रामे युध्यमानायेऽभीता गोद्विजरक्षणे । क्षुण्णाःशस्त्रैर्विपद्यन्तेतएवभुविमानवाः

अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषाञ्च पराङ्मुखः ।

यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः ॥ ४४ ॥

गर्भक्लेशः स्त्रियोमन्येसाफल्यं भजतेतदा ।
यदारिविजयी वा स्यात् सङ्ग्रामे वा हतः सुतः ॥ ४५ ॥

पुत्रावूचतुः

ततः स राजा संस्कारंपुत्रपत्नीमलम्भयत् । निर्गम्यचवहिःस्नातोददौपुत्रायचोदकम्
तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् । राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः ॥
गच्छ भूपालपुत्र! त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया ।
कार्यं चिराभिलषितं (वाञ्छितं तु कृतं कार्यं) त्वय्यत्राऽविचले स्थिते ॥ ४८ ॥
वारुणं यज्ञकार्यञ्च जलेशस्य महात्मनः । तन्मयासाधितंसर्वंयन्ममासीदभीप्सितम्
प्रणिपत्य स तं प्रायाद्राजपुत्रः पुरं पितुः । समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम्
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेमदालसाप्राणवियोगवर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः

——:*:——

त्रयोविंशोऽध्यायः

कुवलयाश्वपातालगमनवर्णनम्

पुत्रावूचतुः

स राजपुत्रःसम्प्राप्यवेगादात्मपुरं ततः । पित्रोर्ववन्दिषुः पादौ दिदृक्षुश्चमदालसाम्
ददर्श जनमुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरः । पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं ततः ॥ २ ॥
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्यादिष्ट्येति वादिनम् ।
परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥ ३ ॥
स राजपुत्रो मित्रं तमुत्फुल्लनयनं शुभम् । आलिलङ्ग तदा काले सौहृदेन परेण च
ततः पौरास्तदाऽऽलोक्य दिष्ट्यादिष्ट्येति वादिनः ।।
चिरं जीवोरुकल्याण ! हतास्ते परिपन्थिनः ।
पित्रोः प्रह्लादय मनस्तथास्माकमकण्टकम् ॥ ५ ॥

पुत्रावूचतुः

इत्येवम्वादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठे च सम्वृतः । तत्क्षणप्रभवानन्दःप्रविवेशपितुर्गृहम्

पिता च तं परिष्वज्य माता चाऽन्ये च बान्धवाः ।
चिरंजीवोरुकल्याण! ददुस्तस्मै तदाशिषः ॥ ६ ॥

प्रणिपत्य ततः सोऽथ किमेतदिति विस्मितः ।
पप्रच्छ पितरं तात! सोऽस्मै सम्यक् तदुक्तवान् ॥ ७ ॥

सभार्यांतांमृतांश्रुत्वा हृदयेष्टांमदालसाम् । पितरौचपुरोदृष्ट्वालज्जाशोकाब्धिमध्यगः

चिन्तयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम् ।
तत्याज जीवितं साध्वी धिङ्मां निष्ठुरमानसम् ॥ ९ ॥

नृशंसोऽहमनार्योऽहंविनातांमृगलोचनाम् । मत्कृतेनिधनंप्राप्तांयज्जीवाम्यतिनिर्घृणः

पुनः स चिन्तयामास परिसंस्तभ्य मानसम् ।
मोहोद्गममपास्याऽऽशु (स्यैवं) निःश्वस्योच्छ्वस्य चाऽऽतुरः ॥ ११ ॥

मृतेति सा मन्निमित्तं त्यजामि यदि जीवितम् ।
किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् ॥ १२ ॥

यदिरोदिमिवादीनोहाप्रियेतिवदन्मुहुः । तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयंहि पुरुषाः किल

अथशोकजडोदीनोस्रजाहीनोमलान्वितः । विपक्षस्यभविष्यामिततःपरिभवास्पदम्

मयारिशातनंकार्यं राज्ञः शुश्रूषणं पितुः । जीवितंतस्यचायत्तं सन्त्याज्यंतत्कथंमया

किन्त्वत्र मन्ये कर्त्तव्यस्त्यागो भोगस्य योषितः ।
स चापि नोपकाराय तन्वङ्ग्याः किन्तु सर्वथा ॥ १६ ॥

मया नृशंस्यं कर्त्तव्यं नोपकार्यपकारि च ।
यामदर्थेऽत्यजत् प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥ १७ ॥

पुत्रावूचतुः

इतिकृत्वा मतिं सोऽथ निष्पाद्योदकदानिकम् ।
क्रियाश्चानन्तरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः ॥ १८ ॥

ऋतध्वज उवाच

यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद्भार्या मदालसा ।
अस्मिन् जन्मनि नाऽन्या मे भवित्री सहचारिणी ॥
तामृतेमृगशावाक्षींगन्धर्वतनयामहम् । न भोक्ष्येयोषितंकाञ्चिदितिसत्यंमयोदितम्
सद्धर्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम् ।
काञ्चिन्नाङ्गीकरिष्यामीत्येतत् सत्यं मयोदितम् ॥ २१ ॥

पुत्रावूचतुः

परित्यज्य च स्त्रीभोगान् तात! सर्वांस्तया विना ।
क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा ॥ २२ ॥
एतत्तस्य परंकार्यंतात! तत्केन शक्यते । कर्त्तुमत्यन्तदुष्प्राप्यमीश्वरैःकिमुतेतरैः

जड (पुत्र) उवाच

इतिवाक्यंतयोःश्रुत्वा विमर्षमगमत्पिता । विमृष्यचाहतौ पुत्रौ नागराट्प्रहसन्निव

नागराडश्वतर उवाच

यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः ।
कर्मण्युद्यममुद्योगहान्याहानिस्ततः परम् ॥ २५ ॥
आरभेत नरःकर्म स्वपौरुषमहापयन् । निष्पत्तिः कर्मणांदैवे पौरुषे च व्यवस्थिता
तस्मादहंतथायत्नंकरिष्येपुत्रकावितः । तपश्चर्यांसमास्थाययथैतत्साध्यतेऽचिरात्

जड (पुत्र) उवाच

एवमुक्त्वास नागेन्द्रः प्लक्षावतरणंगिरेः । तीर्थंहिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम्
तुष्टावचवाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवींसरस्वतीम् । तन्मनानियताहारोभूत्वात्रिषवणाप्लुतः

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहंदेवीमारिराधयिषुःशुभाम् । स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोनिंसरस्वतीम्
सदसद्देवि! यत्किञ्चिन्मोक्षवच्चार्थवत्पदम् ।
तत्सर्वंत्वय्यसंयोगं योगवद्देवि! संस्थितम् ॥ ३१ ॥

त्वमक्षरं परं देवि! यत्रसर्वं प्रतिष्ठितम् । अक्षरं परमं देवि ! संस्थितं परमाणुवत्
अक्षरं परमंब्रह्म विश्वञ्चैतत् क्षरात्मकम् । दारुण्यवस्थितोवह्निर्भौमाश्च परमाणवः

तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ।

ॐकाराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि ! स्थिरास्थिरम् ॥ ३४ ॥

तत्रमात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देविनास्तिच । त्रयोलोकास्त्रयोवेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्

त्रीणिज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मागमास्तथा ।

त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो वेदास्तथाश्रमाः ॥ ३६ ॥

त्रयःकालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयंदेवि! तवरूपंसरस्वति

विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ।

सोमसंस्था हविःसंस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः ॥ ३८ ॥

तास्त्वदुच्चारणाद्देवि!क्रियन्तेब्रह्मवादिभिः । अनिर्देश्यंतथाचान्यदर्द्धमात्रान्वितंपरम्
अविकार्यक्षयंदिव्यं परिणामविवर्जितम् । तवैतत्परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्

न चास्ये न च तज्जिह्वा ताम्रोष्ठादिभिरुच्यते ।

इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च ॥ ४१ ॥

विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ।

साङ्ख्यवेदान्तवादोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ॥ ४२ ॥

अनादिमध्यनिधनं सदसन्न सदेव यत् । एकन्त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम्

अनाख्यं षट्गुणाख्यञ्च वर्गाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ।

नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभविकं परम् ॥ ४४ ॥

सुखासुखंमहासौख्यरूपंत्वयिविभाव्यते । एवंदेवि!त्वयाव्याप्तंसकलंनिष्कलञ्चयत्

अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ ४५ ॥

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये ये वा स्थूला ये च सूक्ष्माऽतिसूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ ४६ ॥
यच्चाऽमूर्त्तं यच्चमूर्त्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकञ्च किञ्चित् ।

यद्दिव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा त्वत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥ ४७ ॥

जड उवाच

एवं स्तुता तदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती । प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः

सरस्वत्युवाच

वरंतेकम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप! । तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते

अश्वतर उवाच

सहायंदेहिदेवि!त्वं पूर्वकम्बलमेव मे । समस्तस्वरसम्बन्धमुभयोः सम्प्रयच्छ च

सरस्वत्युवाच

सप्तस्वराग्रामरागाः सप्तपन्नगसत्तम! । गीतकानि च सप्तैव तावतीश्चापि मूर्च्छनाः

तालाश्चैकोनपञ्चाशत्तथा ग्रामत्रयञ्चयत् । एतत्सर्वं भवान्गाता कम्बलश्च तथानघ !

ज्ञास्यसे मत्प्रसादेन भुजगेन्द्र! परं तथा । चतुर्विधं पदं तालं त्रिःप्रकारं लयत्रयम्

यतित्रयं तथा तोद्यं मया दत्तं चतुर्विधम् । एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेन्द्रापरञ्चयत्

अस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनसम्मितम् । तदशेषंमयादत्तं भवतः कम्बलस्य च

तथान्वान्यस्यभूर्लोकेपातालेचापिपन्नग! । प्रणेतारौ भवन्तौचसर्वस्यास्यभविष्यतः

पाताले देवलोके च भूर्लोके चैव पन्नगौ ॥ ५६ ॥

जड उवाच

इत्युक्त्वासा तदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती । जगामादर्शनंसद्यो नागस्यकमलेक्षणा

तयोश्च तद्यथावृत्तं भ्रात्रोः सर्वमजायत । विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदतालस्वरादिकम्

ततःकैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् । गीतकैः सप्तभिर्नागौतन्त्रीलयसमन्वितौ

आरिराधयिषू देवमनङ्गाङ्गहरं हरम् । प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाक्कलौ ॥ ६० ॥

प्रातर्निशायां मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि तत्परौ ।

तयोः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः ॥ ६१ ॥

तुतोषगीतकैस्तौ च प्राहेशो गृह्यतां वरः । ततः प्रणम्याश्वतरः कम्बलेन समं तदा

व्यज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् । यदि नौ भगवान् प्रीतोदेवदेवस्त्रिलोचनः

ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ । मृताकुवलयाश्वस्य पत्नी देव ! मदालसा तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे । जातिस्मरायथापूर्वंतद्वत्कान्तिसमन्विता

योगिनी योगमाता च मद्गृहेजायतां भव !।। ६५ ॥

महादेव उवाच

यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ! सर्वमेतद्भविष्यति । मत्प्रसादादसन्दिग्धं शृणु चेदं भुजङ्गम ! श्राद्धेतु समनुप्राप्ते मध्यमं पिण्डमात्मना । भक्षयेथाः फणिश्रेष्ठ! शुचिःप्रयतमानसः

भक्षिते तु ततस्तस्मिन् भवतो मध्यमात् फणात् ।
समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथामृता ॥ ६८ ॥
कामञ्चेममभिध्याय कुरु त्वं पितृतर्पणम् ।
तत्क्षणादेव सा सुभ्रूः श्वसतो मध्यमात् फणात् ॥ ६६ ॥
(स्वयमेवोपभुञ्जीत ततः सर्वं भविष्यति ।)
समुत्पत्स्यतिं कल्याणी तथारूपा यथा मृता ।
एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ७० ॥

रसातलं पुनः प्राप्तौ परितोषसमन्वितौ । तथाचकृतवान् श्राद्धं सनागःकम्बलानुजः पिण्डञ्चमध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान् । तञ्चापिध्यायतःकामं ततः सा तनुमध्यमा

जज्ञे निःश्वसतःसद्यस्तद्रूपा मध्यमात् फणात् ।
न चापि कथयामास कस्यचित्स भुजङ्गमः ॥ ७३ ॥

अन्तर्गृहे तां सुदतींस्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् । तौचानुदिनमागत्यपुत्रौनागपतेःसुखम् ऋतध्वजेन सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव । एकदा तु सुतौप्राहनागराजोमुदान्वितः यन्मया पूर्वमुक्तन्तु क्रियते किं न तत्तथा । स राजपुत्रो युवयोरुपकारीममान्तिकम् कस्मान्नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः । एवमुक्तौततस्तेन पित्रा स्नेहवता तु तौ

गत्वा तस्य पुरं सख्यू रेमाते तेन धीमता ।
ततः कुवलयाश्वं तौ कृत्वा किञ्चित्कथान्तरम् ॥ ७८ ॥
अब्रूतां प्रणयोपेतं स्वगेहगमनं प्रति ।

तावाह नृपपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम् ॥ ७९ ॥

धनवाहनवस्त्रादि यन्मदीयं तदेववाम् । यस्य वां वाञ्छितं धनं रत्नमथापि वा ॥
तद्दायतां द्विजसुतौ यदिवां प्रणयोमयि । एतावताहं दैवेन वञ्चितोऽस्मिदुरात्मना
यद्भवद्भ्यांममत्वंनोमदीयेक्रियतां गृहे । यदिवांमत्प्रियंकार्यमनुग्राह्योऽस्मिवांयदि
तद्धने मम गेहेच ममत्वमनुकल्प्यताम् । युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वकम्

एतत् सत्यं विजानीतं युवां प्राणा बहिश्चराः ।
पुनर्नवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमौ ! ॥ ८४ ॥

मत्प्रसादपरौ प्रीत्या शापितौ हृदयेन मे । ततःस्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनन्दनौ ॥
ऊचतुर्नृपतेः पुत्रंकिञ्चित्प्रणयकोपितौ । ऋतध्वज! न सन्देहो यथैवाहभवानिदम्

तथैव चास्मन्मनसि नात्र चिन्त्यमतोऽन्यथा ।
किन्त्वावयोः स्वयं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना ॥ ८७ ॥
द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ।
ततः कुवलयाश्वोऽसौ समुत्थाय वरासनात् ॥
यथाह तातेति वदन् प्रणाममकरोद् भुवि ॥ ८८ ॥

कुवलयाश्व उवाच

धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ॥ ८९ ॥
तदुत्तिष्ठतगच्छामस्तामाज्ञां क्षणमप्यहम् ।
नातिक्रान्तुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ॥ ९० ॥

जड उवाच

एवमुक्त्वाययौसोऽथसहताभ्यांनृपात्मजः । प्राप्तश्चगौतमींपुण्यांनिर्गत्यनगराद्बहिः
तन्मध्येनययुस्ते वैनागेन्द्रनृपनन्दनाः । मेनेच राजपुत्रोऽसौपारे तस्यास्तयोर्गृहम्
ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतोनृपात्मजः । पातालेददृशेचोभौस पन्नगकुमारकौ
फणामणिकृतोद्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ।

विलोक्य तौ सुरूपाङ्गौ विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ९४ ॥
विहस्यचाब्रवीत् प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ । कथयामासतुस्तौचपितरंपन्नगेश्वरम्
शान्तमश्वतरंनाम माननीयंदिवौकसाम् । रमणीयं ततोऽपश्यत् पातालंसनृपात्मजः
कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् । तथैव नागकन्याभिः क्रीड़न्तीभिरितस्ततः
चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा । गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणावेणुस्वनानुगैः
मृदङ्गपणवातोद्यं हारिवेश्मशताकुलम् । वीक्षमाणः सपातालं ययौ शत्रुजितः सुतः
सह ताभ्याममभीष्टाभ्यां पन्नगाभ्यामरिन्दमः । ततःप्रविश्यतेसर्वे नागराजनिवेशनम्
ददृशुस्तेमहात्मानमुरगाधिपतिं स्थितम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं मणिकुण्डलभूषणम्
स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् । केयूरिणं महाभागमासने सर्वकाञ्चने
मणिविद्रुमवैदूर्यजालान्तरितरूपके । सताभ्यांदर्शितस्तस्यतातोऽस्माकमसाविति
वीरः कुवलयाश्वोऽयंपित्रेचासौ निवेदितः । ततोननाम चरणौनागेन्द्रस्य ऋतध्वजः
समुत्थाप्य बलाद्गाढं नागेन्द्रःपरिषस्वजे । मूर्ध्नि चैनमुपाघ्रायचिरंजीवेत्युवाचसः
निहतामित्रवर्गश्च पित्रोशुश्रूषणं कुरु । वत्स!धन्यस्यकथ्यन्ते परोक्षस्यापितेगुणाः
भवतो मम पुत्राभ्यामसामान्या निवेदिताः । त्वमेवानेन वर्द्धस्वथामनोवाक्कायचेष्टितैः
जीवितंगुणिनःश्लाघ्यंजीवन्नेवमृतोऽगुणी । गुणवान्निर्वृतिंपित्रोःशत्रूणांहृदयज्वरम्
करोत्यात्महितं कुर्वन् विश्वासञ्च महाजने ।
देवताः पितरो विप्रा मित्रार्थिविभवादयः ॥ १०९ ॥
बान्धवाश्च तथेच्छन्तिजीवितं गुणिनश्चिरम् । परिवादनिवृत्तानांदुर्गतेषुदयावताम्
गुणिनां सफलं जन्म संश्रितानां विपद्गतैः ॥ ११० ॥

जड उवाच

एवमुक्त्वा सतं वीरं पुत्राविदमथाऽब्रवीत् । पूजांकुवलयाश्वस्य कर्तुकामोभुजङ्गमः
स्नानादिकक्रमं कृत्वा सर्वमेव यथाक्रमम् । मधुपानादिसम्भोगमाहारञ्च यथेप्सितम्
ततः कुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया । कथयास्वल्पकं कालं स्थास्यामोहृष्टचेतसः
अनुमेने च तन्मौनी वचः शत्रजितः सुतः । तथा चकार नृपतिः पन्नगानामुदारधीः

समेत्य तैरात्मजभूपनन्दनैर्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक् ।
मुदान्वितोऽन्नानि मधूनि चात्मवान् यथोपयोगं बुभुजे स भोगभु (भा) क् ॥
इति मार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेकुवलयाश्वपातालगमन
वर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

——:*:——

चतुर्विंशोऽध्यायः

मदालसाप्राप्तिवर्णनम्

पुत्रोवाच

कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् । उपासाञ्चक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयास्तथा
कथाभिरनुरूपाभिः स महात्माभुजङ्गमः । प्रीतिं सञ्जनयामास पुत्रसख्युरुवाच च
तव भद्र! सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्ययत् । कर्त्तव्यमुत्सृजाशङ्कां पितरीव सुतोमयि
रजतं वा सुवर्णं वावस्त्रं वाहनमासनम् । यद्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तद्वृणुष्वमाम्

कुवलयाश्व उवाच

तव प्रसादाद्भगवन्! सुवर्णादि गृहेमम । पितुरस्तिमसाद्यापिनकिञ्चित्कार्यमीदृशम्
ताते वर्षसहस्राणि शासतीमां वसुन्धराम् । तथैवत्वयिपातालं नमे याञ्चोन्मुखंमनः
तेस्वर्ग्याश्च सुपुण्याश्चयेषांपितरिजीवति । तृणकोटिसमंवित्तंतारुण्याद्वित्तकोटिषु
मित्राणि तुल्यशिष्टानि तद्वद्देहमनामयम् । जनिताध्रियतेवित्तंयौवनंकिन्तुनास्तिमे
असत्यर्थेनृणां याञ्चाप्रवणं जायते मनः । सत्यशेषेकथंयाञ्चां मम जिह्वा करिष्यति

यैर्न चिन्त्यं धनं किञ्चिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा ।
पितृबाहुतरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते ॥ १० ॥
ये तु बाल्यात्प्रभृत्येव विना पित्रा कुटुम्बिनः ।
ते सुखास्वादविभ्रंशान्मन्ये धात्रैव वञ्चिताः ॥ ११ ॥

तद्वयं त्वत्प्रसादेन धनरत्नादिसञ्चयान् । पितृभक्ताः प्रयच्छामःकामतोनित्यमर्थिनाम्

तत्सर्वमिह संप्राप्तं यदङ्घ्रियुगलंतव । मच्चूडामणिना स्पृष्टं यच्चाङ्गस्पर्शमाप्तवान्

जड (पुत्र) उवाच

इत्येवं प्रसृतं वाक्यमुक्तः पन्नगसत्तमः । प्राह राजसुतं प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् ॥

नाग उवाच

यदि रत्नसुवर्णादि मत्तोऽवाप्तुंनतेमनः । यदन्यन्मनसःप्रीत्यैतद्ब्रूहि त्वं ददाम्यहम्

कुवलयाश्व उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्यगृहे मम । सर्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्तं तव दर्शनात् ॥

कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितञ्चमे । यदङ्गसंश्लेषमितस्तव देवस्य मानुषः

ममोत्तमाङ्गे त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम् । कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर!

यदि त्ववश्यंदातव्योवरो मम यथेप्सितः । तत्पुण्यकर्मसंस्कारो हृदयान्माव्यपैतुमे

सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमासनम् । स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्चचारुमाल्यानुलेपनम्

एते च विविधाः कामा गीतवाद्यादिकञ्च यत् ।
सर्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यवनस्पतेः ॥ २१ ॥
तस्मान्नरेण तन्मूलः कार्यो यत्नः कृतात्मना ।
कर्त्तव्यः पुण्यसक्तानां न किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ॥ २२ ॥

अश्वतर उवाच

एवं भविष्यति प्राज्ञ ! तव धर्माश्रिता मतिः ।
सत्यञ्चैतत् फलं सर्वं धर्मस्योक्तं यथा त्वया ॥ २३ ॥

तथाऽप्यवश्यं मद्गेहमागतेन त्वयाऽधुना । ग्राह्यंयन्मानुषेलोके दुष्प्रापं भवतोमतम्

जड (पुत्र) उवाच

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा स तदा नृपनन्दनः । मुखावलोकनञ्चक्रेपन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥ २५ ॥

ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्रस्य यन्मतम् ।
तत्पितुः सकलं वीरौ कथयामासतुः स्फुटम् ॥ २६ ॥

पुत्रावूचतुः

तातास्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम् ।
अत्यजद्दयिता प्राणान् विप्रलब्धा दुरात्मना ॥ २७ ॥
केनापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना । गन्धर्वराजस्य सुता नाम्ना ख्याता मदालसा
कृतज्ञोऽयं ततस्तात! प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् ।
नान्या भार्या भवित्रीति वर्जयित्वा मदालसाम् ॥ २९ ॥
द्रष्टुं तां चारुसर्वाङ्गीमयं वीरो ऋतध्वजः ।
तात! वाञ्छति यद्येतत् क्रियते तत्कृतं भवेत् ॥ ३० ॥

अश्वतर उवाच

भूतैर्वियोगिनोयोगस्ताद्दृशैरेव ताद्दृशः । कथमेतद्विना स्वप्नोमायांवाशम्बरोदिताम्

जड (पुत्र) उवाच

प्रणिपत्य भुजङ्गेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः
मायामयीमप्यधुना मम तातो मदालसाम् । यदिदर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम्

अश्वतर उवाच

तस्मात् पश्येह वत्स! त्वं मायाश्चेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्यो भवान् गेहं बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ॥ ३४ ॥

जड (पुत्र) उवाच

आनयामास नागेन्द्रो गृहगुप्तांमदालसाम् । तेषांसन्मोहनार्थायजजल्पचततःस्फुटम्
दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् । सेयंनवेति ते भार्या राजपुत्र! मदालसा

जड (पुत्र) उवाच

स दृष्ट्वा तां तदा तन्वींतत्क्षणात्विगतत्रपः । प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुदीरयन्
निवारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥ ३७ ॥

अश्वतर उवाच

मायेयं पुत्र मास्प्राक्षीः प्रागेवकथितंतव । अन्तर्द्धानमुपैत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः
ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छापरिप्लुतः ।

हा प्रियेति वदन् सोऽथ चिन्तयामास भामिनीम् ॥ ३९ ॥

मोहो ममाऽयं नो वेति नाऽलं प्रत्ययवानहम् ।

अहो स्नेहोऽस्य नृपतेर्ममोपर्यचलं मनः । येनायंपातनोऽरीणांविनाशस्त्रेणपातितः

मायेति (ममेति) दर्शिताऽनेन मिथ्या मायेति यत्स्फुटम् ।

वाय्वम्बुतेजसां भूमेरकाशस्य च चेष्टया ॥ ४१ ॥

पुत्र उवाच

ततः कुवलयाश्वं तं समाश्वास्यभुजङ्गमः । कथयामास ततसर्वं मृतसञ्जीवनादिकम्

ततः प्रहृष्टः प्रतिलभ्य कान्तां प्रणम्य नागं निजगाम सोऽथ ।

सुशोभमानः स्वपुरं तमश्वमारुह्य सञ्चिन्तितमभ्युपेतम् ॥ ४३ ॥

श्रृणुयाद्भक्तिपूर्वं यो नैरन्तर्येण मानवः । वेदघोषफलं तेन प्राप्तं वै भुविदुर्लभम्

सम्प्राप्नोति सुखं नित्यं सर्वकामसमन्वितः ।

लोकेऽस्य दुर्लभं तस्य नास्ति किञ्चिन्न विद्यते ॥ ४५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाप्राप्तिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

कुवलयाश्वीयेऋतध्वजस्यराज्याभिषेकवर्णनम्

जड उवाच

आगम्यस्वपुरंसोऽथपित्रोःसर्वमशेषतः । कथयामासतन्वङ्गी यथा प्राप्ता पुनर्मृता

ननामसाचचरणौश्वश्रूश्वशुरयोः शुभा । स्वजनञ्च यथापूर्वं वन्दनाश्लेषणादिभिः

पूजयामास तन्वङ्गी यथान्यायं यथावयः ।

ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥ ३ ॥

ऋतध्वजश्चसुचिरंतयारेमेसुमध्यया । निर्झरेषु च शैलानां निम्नगापुलिनेषु च ॥

काननेषु च रम्येषु तथैवोपवनेषु च । पुण्यक्षयं वाञ्छमाना सापि कामोपभोगतः
सहतेनातिकान्तेन रेमे रम्यासु भूमिषु । ततः कालेन महता शत्रुजित् स नराधिपः

सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्ममुपेयिवान् ।
ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम् ॥ ७ ॥
अभ्यषिञ्चन्त राजानमुदाराचारचेष्टितम् ।
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ८ ॥

मदालसायाः सञ्जज्ञे पुत्रःप्रथमजस्ततः । तस्यचक्रे पितानाम विक्रान्त इति धीमतः
तुतुषुस्तेन वैभृत्याजहास च मदालसा । सा वै मदालसा पुत्रं वालमुत्तानशायिनम्

उल्लापनच्छलेनाऽऽह रुदमानमविस्वरम् ॥ १० ॥

शुद्धोऽसि रे तात! न तेऽस्तिनाम कृतं हि ते कल्पनयाऽधुनैव ।
पञ्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥ ११ ॥
न वा भवान्रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम् ।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ॥ १२ ॥
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः ।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ॥ १३ ॥
त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिन्स्वदेहे मूढतां मा व्रजेथाः ।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्तेऽपिनद्धः ॥ १४ ॥
तातेति किञ्चित्तनयेति किञ्चिदम्बेति किञ्चिद्दयितेति किञ्चित् ।
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चित् त्वं भूतसङ्घं वहुमानयेथाः ॥ १५ ॥
दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेताः ।
तान्येव दुःखानि पुनःसुखानि जानात्यविद्वान् सुविमूढचेताः ॥ १६ ॥
हासोऽस्थिसन्दर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं तर्जनमङ्गनायाः ।
कुचादिपीनं पिशितं घनं तत् स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् ॥ १७ ॥
यानं क्षितौ यानगतश्च देहं देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः ।

ममत्वबुद्धिर्न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं बत मूढतैषा ॥ १८ ॥

त्यजधर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज । उभेसत्यानृतेत्यक्त्वा येन त्यजसितत्त्यज

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानवर्णनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

अलर्काय प्रवृत्तिमार्गानुशासनम्

जड उवाच

वर्द्धमानं सुतं सा तु राजपत्नीदिने दिने । तमुल्लापादिना बोधमनयन्निर्मलात्मकम्

यथायथं बलं लेभे यथालेभे मतिं पितुः । तथातथात्मबोधञ्च सोऽवापमातृभाषितैः

इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृति बोधितः ।

चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रति निर्ममः ॥ ३ ॥

द्वितीयोऽस्याःसुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता । सुबाहुरयमित्युक्तेसाजहासमदालसा

तमप्येवं यथापूर्वं बालमुल्लापनादिना । प्राह बाल्यात्सचप्रापतथा बोधं महामतिः

तृतीयं तनयं जातं स राजा शत्रुमर्दनम् । यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासातिचिरं पुनः

तथैव सोऽपि तन्वङ्ग्या बालत्वादेव बोधितः ।

क्रियाश्चकार निष्कामो न किञ्चिदुपकारकम् ॥ ७ ॥

चतुर्थस्यसुतस्याथचिकीर्षुर्नामभूमिपः । ददर्शतांशुभाचारामीषद्धासां मदालसाम्

तामाह राजा हसतीं किञ्चित् कौतूहलान्वितः ॥ ८ ॥

राजोवाच

क्रियमाणेसकृन्नाम्नि कथ्यतांहास्यकारणम् । विक्रान्तश्चसुबाहुश्चतथान्यःशत्रुमर्दनः

शोभनानीतिनामानि मयामन्येकृतानिवै । योग्यानिक्षत्रबन्धूनां शौर्याटोपयुतानिच

असन्त्येतानिचेद्भद्रे! यदितेमनसि स्थितम् । तदस्यक्रियतां नामचतुर्थस्यसुतस्यमे

मदालसोवाच

मयाज्ञाभवतःकार्य्या महाराज!यथात्थमाम्। तथा नामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते
अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिंलोकेप्रयास्यति। कनीयानेष तेपुत्रो मतिमांश्चभविष्यति

पुत्र उवाच

तच्छ्रुत्वानाम पुत्रस्यकृतं मात्रा महीपतिः। अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत्

राजोवाच

भवत्या यदिदं नाममत्पुत्रस्य कृतं शुभे!। किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्यमदालसे!

मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज!कृतासा व्यवहारिकी। तत्कृतानां तथानाम्नांश्रृणुभूप!निरर्थताम्
वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञाव्यापिनं पुरुषंयतः। क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टादेशाद्देशान्तरन्तु या
सर्वगोन प्रयातीति व्यापी देहेश्वरोयतः। ततो विक्रान्तसञ्ज्ञेयं मता मम निरर्थका
सुबाहुरिति यासंज्ञाकृतान्यस्य सुतस्यते। निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात् पुरुषस्यमहीपते!
पुत्रस्ययत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः। मन्ये तदप्यसम्बद्धंश्रृणुचाप्यत्र कारणम्
एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा। तदास्यराजन्! कः शत्रुःको वा मित्रमिहेष्यते
भूतैर्भूतानिमृद्यन्तेअमूर्त्तो मृद्यते कथम्। क्रोधादीनांपृथग्भावात् कल्पनेयंनिरर्थका
यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते। नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतोमतम्

जड उवाच

एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः। तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितां सत्यवादिनीम्
तञ्चापिसा सुतं सुभ्रूर्यथापूर्वसुतांस्तथा। प्रोवाच बोधजननं तामुवाच सपार्थिवः
करोषि किमिदं मूढे! मम भावाय सन्ततेः। दुष्टावबोधदानेन यथापूर्वं सुतेषु मे॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदिग्राह्यं वचोमम। तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तेः सन्नियोजय॥
कर्ममार्गःसमुच्छेदंमेवंदेवि!गमिष्यति। पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवंसाध्वि!भविष्यति

पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः।
तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गे च संस्थिताः॥ २६॥

सपुण्यानसपुण्यांश्च क्षुत्क्षामान् तृट्परिप्लुतान् ।
पिण्डोदकप्रदानेन नरः कर्मण्यवस्थितः ॥ ३० ॥

सदाप्याययते सुभ्रु! तद्वद्देवातिथीनपि । देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः वयोभिः कृमिकीटैश्चनरएवोपजीव्यते । तस्मात्तन्वङ्गि!पुत्रंमेयत्कार्य्यंक्षत्रयोनिभिः ऐहिकामुष्मिकफलं तत्सम्यक् प्रतिपादय । तेनैवमुक्ता सा भर्त्रा वरनारी मदालसा अलर्कं नाम तनयमुवाचोल्लापवादिनी । पुत्र ! वर्द्धस्व मद्भर्त्तुर्मनो नन्दय कर्मभिः ॥

मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च ॥ ३४ ॥
धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयिताऽसि पुत्र ! ।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ॥ ३५ ॥
धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथाः मनः परस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः ॥ ३६ ॥
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथास्तद्ध्यानतोऽन्तःषडरीञ्जयेथाः ।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ॥ ३७ ॥
अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा यशोऽर्जनायार्थमपिव्ययेथाः ।
परापवादश्रवणाद्विभीथा विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥ ३८ ॥
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमर्थैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च ।
स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर ! ॥ ३९ ॥
बालो मनो नन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ।
स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स ! वनेचराणाम् ॥ ४० ॥
राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून्रक्षंस्तात ! यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स ! मृत्युं व्रजेथाः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रायप्रवृत्तिमार्गानुशासनवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ *

---

* मोहमयीस्थवेङ्कटेश्वरमुद्रणालयेप्रकाशितेऽत्रपुराणेद्वयोरध्याययोरैक्यम् ।

सप्तविंशोऽध्यायः

पुत्रायनृपनीतिविषयेराज्यतन्त्रानुशासनम् .

जडउवाच

एवमुल्लाप्यमानस्तु सतु मात्रा दिने दिने। ववृधे वयसावालोबुद्ध्याचालर्कसञ्ज्ञितः
सकौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्ततः। कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याऽऽह मातरम्
मया यदत्र कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै। सुखाय वद तत् सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे॥
ममार्थं चैव धर्मार्थं प्रजानां चैव यद्धितम्। श्रेयसे यच्च तत्सर्वं प्रजारञ्जनमादितः॥

मदालसोवाच

वत्स! राज्येऽभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः। कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्मस्य महीभृता
व्यसनानिपरित्यज्यसप्तमूलहराणिवै। आत्मारिपुभ्यः संरक्ष्योवहिर्मन्त्रविनिर्गमात्

अष्टधा नाशमाप्नोति सुचक्रात् स्यन्दनाद्यथा।
तथा राजाऽप्यसन्दिग्धं वहिर्मन्त्रविनिर्गमात्॥ ७॥

दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानपिदोषतः। चरैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः॥
विश्वासो न तुकर्तव्योराज्ञामित्राप्तबन्धुषु। कार्ययोगादमित्रेऽपिविश्वसीतनराधिपः
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यगुणिनात्मना। भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना

प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता।
जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः॥ ११॥
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते।
सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते॥ १२॥

तस्मात्कामादयःपूर्वंजेयाः पुत्र!महीभुजा। तज्जयेहिजयोऽवश्यं राजानश्यतितैर्जितः
कामः क्रोधश्चलोभश्च मदोमानस्तथैव च। हर्षश्च शत्रवो ह्येतेविनाशायमहीभृताम्

कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम्।

निवर्तयेत्तथा क्रोधादनुह्लादं हतात्मजम् ॥ १५ ॥

हतमैलं तथालोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम् । मानादनायुषः पुत्रं हतं हर्षात् पुरञ्जयम् ॥

एभिर्जितैर्जितं सर्वंमरुत्तेनमहात्मना । स्मृत्वाविवर्जयेदेतान्दोषान्स्वीयान्महीपतिः

काककोकिलभृङ्गाणां मृगव्यालशिखण्डिनाम् ।

हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृपः ॥ १८ ॥

कीटकस्यक्रियांकुर्यात् विपक्षे मनुजेश्वरः । चेष्टांपिपीलिकानाञ्च कालेभूपःप्रदर्शयेत्

ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानांवीजचेष्टाचशाल्मलेः । चन्द्रसूर्यस्वरूपेणनीत्यर्थेपृथिवीक्षिता

वन्धकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् । एवं सामेन भेदेन प्रदानेन च पार्थिवः ॥

दण्डेन च प्रकुर्वीत नीत्यर्थं पृथिवीक्षिता ।

प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोषितः ॥ २२ ॥

शक्रार्कयमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः । रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्मणि ॥

यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम् । आप्याययेत्तथालोकंपरिहारैर्महीपतिः

मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।

सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकं नृपः ॥ २५ ॥

यथायमः प्रियद्वेष्ये प्राप्तकाले नियच्छति । तथाप्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टे समो भवेत्

पूर्णेन्दुमालोक्ययथाप्रीतिमान् जायतेनरः । एवंयत्रप्रजाःसर्वानिवृत्तास्तच्छशिव्रतम्

मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा । एवं नृपश्चरेच्चारैः पौरामात्यारिबन्धुषु ॥ २८

न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्य मानसम् ।

यथाऽन्यैः कृष्यते वत्स ! स राजा स्वर्गमृच्छति ॥ २९ ॥

उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलतोनरान् । यःकरोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति

वर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राज्ये तथाऽऽश्रमाः ।

वत्स! तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

एतद्राज्ञःपरंकृत्यंतथैतत्सिद्धिकारकम् । स्वधर्मस्थापनं नृणांचाल्यतेयतकुबुद्धिभिः

पालनेनैव भूतानांकृतकृत्योमहीपतिः । सम्यक्पालयिताभागं धर्मस्याप्नोतियततः

एवमाचरतेराजाचातुर्वर्णस्य रक्षणे । स सुखीविहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रायनृपनीतिविषयेराज्यतन्त्रानुशासनवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनेपुत्रानुशासनम्

जड (पुत्र) उवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्कोमातरंपुनः । पप्रच्छ वर्णधर्मांश्च धर्मान्ये चाश्रमेषु च

अलर्क उवाच

कथितोऽयं महाभागे ! राज्यतन्त्राश्रितस्त्वया ।
धर्मं तमहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥

मदालसोवाच

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्यत्रिधामतः । नान्यश्चतुर्थोधर्मोऽस्तिधर्मस्तस्यपदंविना

याजनाध्यापनेशुद्धेतथापूतप्रतिग्रहः । एषासम्यक्समाख्याताविविधाचास्यजीविका

दानमध्ययनंयज्ञःक्षत्त्रियस्याप्ययं त्रिधा । धर्मःप्रोक्तःक्षितेरक्षा शस्त्राजीवश्चजीविका

दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः ।
बाणिज्यं पाशुपाल्यञ्च कृषिश्चैवाऽस्य जीविका ॥ ६ ॥
दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया ।
व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपि जीविका कारुकर्म (जा) च ॥ ७ ॥
तद्वद् द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयौ (यैः)।
वर्णधर्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयन्तां चाश्रमाश्रयाः ॥ ८ ॥

स्ववर्णधर्मात् संसिद्धिंनरःप्राप्नोतिनच्युतः । प्रयातिनरकं प्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात्

यावत्तु नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः । कामचेष्टोक्तिभक्ष्यश्च तावद्भवति पुत्रक !
कृतोपनयनः सम्यक् ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे । वसेत्तत्रच धर्मोऽस्य कथ्यते तं निबोध मे
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा । गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वदा
गुरोःकर्मणिसोद्योगःसम्यक् प्रीत्युपपादनम् । तेनाहूतःपठेच्चैवतत्परोनान्यमानसः

एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोऽथ वन्दित्वा दक्षिणां गुरवे ततः ॥ १४ ॥
गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थं चेच्छयाऽऽत्मनः ॥ १५ ॥

तथैव वागुरोर्गेहेद्विजो निष्ठामवाप्नुयात् । गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्येतत्सुतंविना
शुश्रूषुर्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमं वसेत् । उपावृत्तस्ततस्तस्मात् गृहस्थाश्रमकाम्यया

ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्यामरोगिणीम् ।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यङ्गांगृहस्थाश्रमकारणात् ॥ १८ ॥
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथींस्तथा ।
सम्यक् सम्प्रीणयन् भक्त्या पोषयेच्चाश्रितांस्तथा ॥ १९ ॥
भृत्यात्मजान् जामयोऽथ दीनान्ध (र्थि) पतितानपि ।
यथाशक्त्याऽन्नदानेन वयांसि पशवस्तथा ॥ २० ॥

एष धर्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा । पञ्चयज्ञविधानन्तु यथाशक्त्यानहापयेत्
पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषं स्वयं नरः । भुञ्जीत च समं भृत्यैर्यथाविभवमादृतः ॥
एषतूद्देशतःप्रोक्तोगृहस्थस्याऽऽश्रमोमया । वानप्रस्थस्यधर्मन्तेकथयाम्यवधार्यताम्
अपत्यसन्ततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् । वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मनःशुद्धिकारणात्
तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम् । भूमौशय्याब्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रियाः
होमस्त्रिषवणस्नानं जटावल्कलधारणम् । योगाभ्यासःसदाचैव वन्यस्नेहनिषेवणम्
इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः । वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तुचरमोऽपरः

चतुर्थस्य स्वरूपन्तु श्रूयतामाश्रमस्य मे ।

यः स्वधर्मोऽस्य धर्मज्ञैः प्रोक्तस्तात! महात्मभिः ॥ २८ ॥

सर्वसङ्गपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपिता । यतेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसतिश्चिरम्

अनारम्भस्तथाहारो भैक्षान्नेनैककालिना (भिक्षान्नं चैककालिकम्)।

आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावलोकनम् ॥ ३० ॥

चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मोमयाऽयं ते निवेदितः । सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणाञ्चमेश्रृणु

सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा ।

आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाष्टमोगुणः ॥ ३२ ॥

एते सङ्क्षेपतः प्रोक्ता धर्मा वर्णाश्रमेषुते । एतेषुच स्वधर्मेषु स्वेषु तिष्ठेत् समन्ततः

यश्चोल्लङ्घ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसञ्ज्ञितम् ।

नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दण्ड्यो भूभृतोभवेत् ॥ ३४ ॥

येच स्वधर्मसन्त्यागात् पापंकुर्वन्ति मानवाः। उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्त्तं प्रणश्यति

तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्वे वर्णाः स्वधर्मतः ।

प्रवर्त्तन्तोऽन्यथा दण्ड्याः स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रानुशासने वर्णाश्रमधर्मवर्णनं
नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

गार्हस्थ्यकृत्यानांसमुपदेशवर्णनम्

अलर्क उवाच

यत् कार्यं पुरुषाणाञ्च गार्हस्थ्यमनुवर्त्तताम् ।

बन्धश्च स्यादकरणे क्रियाया यस्य चोच्छ्रितिः ॥ १ ॥

उपकाराय यन्नृणां यच्चवर्ज्यं गृहे सताम् । यथाच क्रियतेतन्मेयथावत् पृच्छतो वद

मदालसोवाच

वत्स! गार्हस्थ्यमादाय (मास्थाय) नरः सर्वमिदं जगत् ।

पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥ ३ ॥

पितरो मुनयोदेवा भूतानि मनुजास्तथा । कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसिपशवोऽसुराः

गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च ।

मुखं चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै ॥ ५ ॥

सर्वस्याधारभूतेयं वत्स! धेनुस्त्रयीमयी । यस्यां प्रतिष्ठितंविश्वं विश्वहेतुश्चयामता

ऋक्पृष्ठाऽसौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा । इष्टापूर्त्तविषाणाच साधुसूक्ततनूरुहा

शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता । आजीव्यमाना जगतांलाक्षया नापचीयते

स्वाहाकारस्वधाकारौ वषट्कारश्च पुत्रक ! ।

हन्तकारस्तथा चान्यस्तस्यास्स्तनचतुष्टयम् ॥ ६ ॥

स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्चस्वधामयम् । मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥

हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततंस्तनम् । एवमाप्याययत्येषावत्स! धेनुस्त्रयीमयी

एतद्वत्सचतुष्कन्तुं नरःस्तनचतुष्टये । न नियुज्याद्‍ यथाकालंतेनस्युस्तेविमानिताः

देवादीनखिलान्येषु सन्तर्पयति मानवः ॥ १३ ॥

तेषामुच्छेदकर्त्ता चयोनरोऽत्यन्तपापकृत् । सतमस्यन्धतामिस्त्रेतामिस्त्रेच निमज्जति

यश्चेमांमानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः । पाययत्युचिते कालेस स्वर्गायोपपद्यते

तस्मात् पुत्र! मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः । भूतानिचानुदिवसंपोष्याणिस्वतनुर्यथा

तस्मात् स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ।

प्रजापतेस्तथैवाद्भिः काले कुर्यात् समाहितः ॥ १७ ॥

सुमनोगन्धपुष्पैश्च देवानभ्यर्च्य मानवाः । ततोऽग्नेस्तर्पणं कुर्याद्दैयाश्चबलयस्तथा

ब्रह्मणे गृहमध्ये तुविश्वेदेवेभ्य एव च । धन्वन्तरिंसमुद्दिश्य प्रागुदीच्यांबलिंक्षिपेत्

प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत् ।

प्रतीच्यां वरुणायाऽथ सोमायोत्तरतो बलिम् ॥ २० ॥

दद्याद्धात्रेविधात्रे चबलिंद्वारे गृहस्यतु। अर्य्यम्णेऽथ बहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमन्ततः

नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतोहरेत्।

पितॄणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखस्थितः ॥ २२ ॥

गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः। ततस्तोयमुपादाय तेषामाचमनाय वै

स्थानेषु निक्षिपेत् प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवताः। एवंगृहबलिंकृत्वागृहेगृहपतिःशुचिः

आप्यायनाथ भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात्।

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ २५ ॥

वैश्वदेवंहिनामैतत् सायंप्रातरुदाहृतम्। आचम्यच ततः कुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम्

मुहूर्त्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्योऽप्यतिथिर्भवेत्। अतिथितत्र सम्प्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च

सम्पूजयेद्यथाशक्ति गन्धपुष्पादिभिस्तथा।

नमित्रमतिथिं कुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ २८ ॥

अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम्। वुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम्

ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसपूज्यःशक्तितोवुधैः। नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायञ्चापिपण्डितः

शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम्।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ३१ ॥

तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थाद्ऋणान्मुच्येद्गृहाश्रमी।

तस्याअदत्त्वा तुयो भुङ्क्ते स्वयं किल्विषभुङ्नरः ॥ ३२ ॥

सपापं केवलं भुङ्क्ते पुरीषञ्चान्यजन्मनि। अतिथिर्यस्य भग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्त्तते

स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।

अप्यम्वुशाकदानेन यच्चाप्यश्नाति स स्वयम् ॥ ३४ ॥

पूजयेत्तु नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात्। कुर्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥

पितॄनुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा। अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत्

भिक्षाञ्च याचितां दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम्।

ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ॥ ३७ ॥

अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः । भोजनं हन्तकारं वाअग्रं भिक्षामथापि वा

अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः ।

पूजयित्वाऽतिथीनिष्टान् ज्ञातीन् बन्धूंस्तथार्थिनः ॥ ३९ ॥

विकलान् बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा ।

वाञ्छते क्षुत्परीतात्मा यच्चान्योऽन्नमकिञ्चनः ॥ ४० ॥

कुटुम्बिना भोजनीयःसमर्थोविभवेसति । श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति सीदतायत् कृतंतेनतत्पापं सलमश्नुते । सायंचैवविधिःकार्यः सूर्योढंतत्रचातिथिम् पूजयेच्च यथाशक्ति शयनाशनभोजनैः । एवमुद्वहतस्तात ! गार्हस्थ्यं भारमाहितम् स्कन्धंविधातादेवाश्चपितरश्च महर्षयः । श्रेयोऽभिवर्षिणः सर्वेतथैवातिथिबान्धवाः पशुपक्षिगणास्तृप्ता ये चान्येसूक्ष्मकीटकाः । गाथाश्चात्र महाभाग!स्वयमत्रिरगायत

ताः शृणुष्व महाभाग!गृहस्थाश्रमसंस्थिताः ।

देवान् पितॄंश्चातिथींश्च तद्वत् सम्पूज्य बान्धवान् ॥ ४६ ॥

जामयश्च गुरूंश्चैव गृहस्थोविभवेसति । श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि

वैश्वदेवं हि नामैतत् कुर्यात् सायं तथा दिने ।

मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यच्चोपसाधितम् ॥

न च तत् स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्न निर्वपेत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपदेशवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

नैमित्तिकादिश्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

नित्यं नैमित्तिकंचैव नित्यनैमित्तिकंतथा। गृहस्थस्य तुयत्कर्म तन्निशामयपुत्रक!
पञ्चयज्ञश्रितंनित्यं यदेतत् कथितंतव। नैमित्तिकं तथैवान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम्
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादि पण्डितैः। तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयंतव
पुत्रजन्मनि यत्कार्यं जातकर्म समं नरैः। विवाहादौचकर्त्तव्यंसर्वंसम्यक्क्रमोदितम्

पितरश्चात्र सम्पूज्याः ख्याता नान्दीमुखास्तु ये।
पिण्डांश्च दधिसंमिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितान् ॥ ५ ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः।
वैश्वदेवविहीनन्तत्केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ ६ ॥
युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते च पूज्याः प्रदक्षिणम्।
एतन्नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ७ ॥

मृताहनि च कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत्। दैवहीनंतथैकाऽर्घ्यंतथैवैकपवित्रकम्
आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौ करणवर्जितम्। प्रेतस्य पिण्डमेकञ्च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ
तिलोदकंचापसव्यंतन्नामस्मरणान्वितम्। अक्षय्यममुकस्येति स्थानेविप्रविसर्जने

अभिरम्यतामिति ब्रूयाद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्मह।
प्रतिमासं भवेदेतत्कार्यमावत्सरं नरैः ॥ ११ ॥

अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियतेनरैः। सपिण्डीकरणंकार्यं तस्यापिविधिरुच्यते
तच्चापि दैवरहितमेकार्घैकपवित्रकम। नैवाग्नौ करणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥

अपसव्यश्च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान्।
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥ १४ ॥

तं कथ्यमानमेकाग्रो वदन्त्या मे निशामय ।
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ॥ १५ ॥

कुर्य्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक !। पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यञ्चैव प्रसेचयेत् ॥
ये समाना इति जपन् पूर्ववच्छेषमाचरेत् । स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्
सपिण्डीकरणं तासांपुत्राभावेन विद्यते । प्रतिसंवत्सरंकार्यमेकोद्दिष्टं नरैःस्त्रियाः
मृताहनि यथान्यायंनृणांयद्वदिहोदितम् । पुत्राभावेसपिण्डास्तुतदभावेसहोदकाः

मातुः सपिण्डा ये च स्युर्ये च मातुः सहोदकाः ।
कुर्युरेनं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुतः ॥ २० ॥
कुर्युर्मातामहायैवं पुत्रिकास्तनयास्तथा ।
द्व्यामुष्यायणसञ्ज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥ २१ ॥

पूजयेयुर्यथान्यायंश्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि । सर्वाभावेस्त्रियः कुर्युःस्वभर्तॄणाममन्त्रकम्

तदभावे च नृपतिः कारयेत् स्वकुटुम्बिना ।
तज्जातीयैर्नरैः सम्यक् दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ २३ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः ।
एतास्ते कथिता वत्स! नित्यानैमित्तिकाःक्रियाः ॥ २४ ॥
क्रियां श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु ।
दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मकः ।
नित्यतां नियतः कालस्तस्याः संसूचयत्यथ ॥ २५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने गार्हस्थ्यकथने नैमित्तिकादिश्राद्धकल्पवर्णनं नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

पार्वणश्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः। सतुलेपभुजोयातिप्रलुप्तःपितृपिण्डतः
तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्रलेपभुजान्नभुक्। सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते
पिता पितमहश्चैत्र तथैव प्रपितामहः। पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेया पुरुषास्त्रयः
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात्। प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः

इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः।
यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥ ५ ॥
ततोऽन्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकौकसः।
ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥
तान् सर्वान् यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन् यथाविधि।
समाप्यायते वत्स! येन येन शृणुष्व तत् ॥ ७ ॥

अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि। तेन तृप्तिमुपायान्तियेपिशाचत्वमागताः
यदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक। तेन ते तरुतांप्राप्तास्तेषांतृप्तिःप्रजायते

यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले।
ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥ १० ॥
उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि।
ताभिराप्यायनं प्राप्ता ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥ ११ ॥
ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः।
विपन्नास्तेऽन्नविकिरसम्मार्जनजलाशिनः ॥ १२ ॥

भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलंयच्चाङ्घ्रिसेचने। ब्राह्मणानांतथैवान्येतेनतृप्तिंप्रयान्तिवै

पिशाचत्वमनुप्राप्ताः कृमिकीटत्वमेव ये ॥ १३ ॥

एवं यो यजमानस्ययश्चतेषांद्विजन्मनाम्। कश्चिज्जलान्नविक्षेपःशुचिरुच्छिष्टएववा

तेन तेन कुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गताः ।

प्रयान्त्याप्यायनं वत्स! सम्यक्श्राद्धक्रियावताम् ॥ १५ ॥

अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः। तृप्यन्ते तेन चाण्डालपुक्कसाद्यासुयोनिषु

एवमाप्यायनं वत्स ! बहूनामिह बान्धवैः ।

श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाम्बु (शाकैरपिहि) विन्दुक्षेपेण जायते ॥ १७ ॥

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।

कुर्वीत कुर्व्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति ॥ १८ ॥

तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान् ।

विधिना येन च नरैः क्रियते तन्निबोध मे ॥ १६ ॥

कार्यं श्राद्धममावास्यां मासि मास्युडुपक्षये ।

तथाऽष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निबोध मे ॥ २० ॥

विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येन्दुग्रहणेऽयने। विषुवेरविसङ्क्रान्तौव्यतीपाते च पुत्रक !

श्राद्धार्हद्रव्यसम्प्राप्तौ तथादुःस्वप्नदर्शने। जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया

विशिष्टः श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामगः ।

त्रिणाचिकेतः श्रुतवान् विहतव्रतकारकः ।

त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ २३ ॥

दौहित्रऋत्विग्जामातृस्वस्रीयाः श्वशुरस्तथा ।

पञ्चाग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोऽथ मातुलः ॥ २४ ॥

मातापितृपरश्चैव शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः। एतेद्विजोत्तमाःश्राद्धेसमस्ताकेतनक्षमाः

अवकीर्णीतथारोगीन्यूनेचाङ्गेतथाधिके। पौनर्भवस्तथाकाणःकुण्डोगोलोऽथपुत्रक!

मित्रध्रुक् कुनखी क्लीबः श्यावदन्तो निराकृतिः ।

अभिशस्तस्तु तातेन पिशुनः सोमविक्रयी ॥ २७ ॥

कन्यादूषयितावैद्योगुरुपित्रोस्तथोज्झकः । भृतकाध्यापकोमित्रःपरपूर्वापतिस्तथा
वेदोज्झोऽथाग्निसन्त्यागी वृषलीपतिदूषितः ।
तथाऽन्ये च विकर्मस्था वर्ज्याःपैत्रेषु वै द्विजाः ॥ २६ ॥
निमन्त्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान् । दैवेनियोगेपित्र्येचतांस्तथैवोपकल्पयेत्
तैश्च संयतिभिर्भाव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति ।
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ॥ ३१ ॥
पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ।
गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यश्च गच्छति ॥ ३२ ॥
रेतोमूत्रकृताहारास्तन्मासं पितरस्तयोः । तस्मात्तु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम्
अप्राप्तौ तद्दिने चापि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिनः ।
भिक्षार्थमागतान् वाऽपि काले संयमिनो यतीन् ॥ ३४ ॥
भोजयेत् प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः । यथैवशुक्लपक्षाद्वैपितृणामसितः प्रियः
तथापराह्णः पूर्वाह्णात्पितृणामतिरिच्यते । संपूज्यस्वागतेनैतानभ्युपेतान् गृहेद्विजान्
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् । पितृणामयुजः कामं युग्मान्दैवेद्विजोत्तमान्
एकैकं वापितृणाञ्च देवानाञ्च स्वशक्तितः । तथामातामहानाञ्चतुल्यंवावैश्वदेविकम्
पृथक् तयोस्तथा चान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः ।
प्राङ्मुखान्दैवसङ्कल्पान् पैत्र्यान् कुर्यादुदङ्मुखान् ॥ ३६ ॥
तथैवमातामहानांविधिरुक्तोमनोषिभिः । विष्टरार्थेकुशान्दत्त्वापूज्यचार्घ्यादिनाबुधः
पवित्रकादि वै दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ।
कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ॥ ४१ ॥
यवाम्भोभिस्तथा चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदेविकम् ।
गन्धमाल्याम्बु धूपञ्च दत्त्वा सम्यक् सदीपकम् ॥ ४२ ॥
अपसव्यं पितृणाञ्चसर्वमेवोपकल्पयेत् । दर्भांश्चद्विगुणान्दत्त्वातेभ्योऽनुज्ञामवाप्यच
मन्त्रपूर्वं पितृणाञ्च कुर्य्यादावाहनं बुधः । अपसव्यं तथा चार्घ्यंयवार्थेच तथातिलैः

निष्पादयेन्महाभाग! पितृणां प्रीणने रतः ।
अग्नौ कार्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः ॥ ४५ ॥
जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्ज्यमन्नं यथाविधि । अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः
सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथाभवेत् । यमाय प्रेतपतये स्वाहेतित्रितयाहुतिः
हुतावशिष्टंदद्याच्चभाजनेषुद्विजन्मनाम् । भाजनालम्भनं कृत्वादद्याच्चान्नंयथाविधि
यथा सुखं जुषध्वं भो इतिवाच्यमनिष्ठुरम् ।
भुञ्जीरंश्च ततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम् ॥ ४६ ॥
यद्यदिष्टतमं तेषां तत्तदन्नमसत्वरम् । अक्रुध्यंश्च नरो दद्यात् सम्भवेन प्रलोभयेत्
रक्षोघ्नांश्च जपेन्मन्त्रांस्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ।
सिद्धार्थकैश्च रक्षार्थं श्राद्धं हि प्रचुरच्छलम् ॥ ५१ ॥
पुष्टैस्तृप्तैश्चतृप्ताःस्थ तृप्ताःस्मइतिवादिभिः । अनुज्ञातोनरस्त्वन्नं प्रकिरेत्भुविसर्वतः
तद्वदाचमनार्थाय दद्यादापः सकृत् सकृत् । अनुज्ञांचततः प्राप्य यतवाक्कायमानसः
सतिलेनततोऽन्नेनपिण्डान् सव्येनपुत्रक! । पितृनुद्दिश्य दर्भेषुदद्यादुच्छिष्टसन्निधौ
पितृतीर्थेन तोयश्च दद्यात्तेभ्यः समाहितः । पितृनुद्दिश्य तद्भक्त्या यजमानोनृपात्मज!
तद्वन्मातामहानाञ्च दत्वा पिण्डान् यथाविधि ।
गन्धमाल्यादिसंयुक्तं दद्यादाचमनं ततः ॥ ५६ ॥
दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या सुस्वधास्त्विति तान् वदेत् ।
तैश्च तुष्टैस्तथेत्युक्त्वा वाचयेद्वैश्वदेविकान् ॥ ५७ ॥
प्रीयन्तामितिभद्रंवोविश्वेदेवा इतीरयेत् । तथैतिचोक्तेतैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तदाशिषः
विसर्जयेत् प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः ।
आद्वारमनुगच्छेच्चागच्छेच्चानुप्रमोदितः ॥ ५९ ॥
ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ।
नित्यक्रियां पितृणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमाः ॥ ६० ॥
न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् । पृथक् पाकेनचेत्यन्येकेचित्पूर्वञ्च पूर्ववत्

ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः । एवं कुर्वीतधर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः
यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते ।
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुत (तु) पस्तिलाः ॥ ६३ ॥
वर्ज्याणिचाहुर्विप्रैश्च कोपोऽध्वगमनंत्वरा । राजतञ्च तथा पात्रं शस्तंश्राद्धेषु पुत्रक!
रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा । राजतेहिस्वधादुग्धा पितृभिः श्रूयतेमही
तस्मात् पितृणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६५ ॥
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने पार्वणश्राद्धकल्पवर्णनंनाम
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

———

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

अतःपरं श्रृणुष्वेमं पुत्रभक्त्यायदाहृतम् । पितृणांप्रीतयेयद्वावर्ज्यं वा प्रीतिकारकम्
मासंपितृणांतृप्तिश्चहविष्यान्नेनजायते । मासद्वयंमत्स्यमांसैस्तृप्तियान्तिपितामहाः
त्रीन्मासान् हारिणं मांसं विज्ञेयंपितृतृप्तये ।
चतुर्मासांस्तु पुष्णाति शशस्य पिशितं पितृन् ॥ ३ ॥
शाकुनं पञ्च वै मासान् षण्मासान् शूकरामिषम् ।
छागलं सप्त वै मासानैणेयञ्चाष्टमासिकीम् ॥ ४ ॥
करोति तृप्तिं नववै रुरोर्मांसं न संशयः । गवयस्यामिषंतृप्तिं करोति दशमासिकम्
तथैकादशमासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम् । सम्वत्सरंतथा गव्यं पयः पायसमेव वा
वार्ध्रीणसामिषंलौहंकालशाकंतथामधु । दौहित्रामिषमन्यच्चयच्चान्यत्स्वकुलोद्भवैः
अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्ति गौरीसुतस्तथा ।

पितृणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धश्च पुत्रक! ॥ ८ ॥
श्यामाकराजश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रसातिकाः ।
नीवाराः पौष्कलाश्चैव धान्यानां पितृतृप्तये ॥ ९ ॥

यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्गाःससर्षपाः । प्रियङ्गवःकोविदारानिष्पावाश्चातिशोभनाः
वर्ज्यामर्कटकाःश्राद्धेराजमाषास्तथाणवः । विप्रूषिकामसूराश्च श्राद्धकर्मणिगर्हिताः
लशुनंगृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् । करम्भंयानिचान्यानिहीनानिरसवर्णतः
गान्धारिकामलाम्बूनिलवणान्यूषराणि च । आरक्तायेचनिर्यासाःप्रत्यक्षलवणानिच

वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्चवाचा न शस्यते ।
यच्चाप्युत्कोचतः प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् ॥ १४ ॥
अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यञ्चात्र विगर्हितम् ।
दुर्गन्धिफेनिलञ्चाऽम्बुतथैवाऽल्पतरोदकम् ॥ १५ ॥

नलभेद्यत्रगौस्तृप्तिं नक्तंयच्चाप्युपाहृतम् । यन्नसर्वापचोत्सृष्टंयच्चाभोज्यंनिपानजम्
तद्वर्ज्यं सलिलं तात! सदैव पितृकर्मणि । मार्गमाविकमौष्ट्रञ्च सर्वमैकशफञ्चयत्

माहिषञ्चामरञ्चैव धेन्वागोश्चाऽप्यनिर्दशम् ।
पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाऽप्युपाहृतम् ॥ १८ ॥

वर्जनीयंसदासद्भिस्तत्पयःश्राद्धकर्मणि । वर्ज्याजन्तुमतीरूक्षाक्षितिःप्लुष्टातथाग्निना
अनिष्टदुष्टशब्दोग्रदुर्गन्धा चात्रकर्मणि । कुलापमानकाःश्राद्धे व्यायुज्य कुलहिंसकाः
नग्नाःपातकिनश्चैव हन्युर्दृष्ट्यापितृक्रियाम् । अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटोग्रामशूकरः

श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात् ।
तस्मात्सुसम्वृतो दद्यात्तिलैश्चावकिरन्महीम् ॥ २२ ॥

एवंरक्षा भवेच्छ्राद्धे कृतातातोभयोरपि । शावसूतकसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च ॥
पतितैर्मलिनैश्चैव न पुष्णाति पितामहान् । वर्जनीयंतथाश्राद्धे तथोदक्याश्च दर्शनम्
मुण्डशौण्डसमाभ्यासो यजमानेन चादरात् । केशकीटावपन्नञ्चतथाश्वभिरवेक्षितम्
पूतिपर्युषितञ्चैववार्त्ताक्यभिषवांस्तथा । वर्जनीयानि वैश्राद्धेयच्चवस्त्रानिलाहृतम्

श्रद्धया परया दत्तं पितॄणां नामगोत्रतः । यदाहारास्तु तेजातास्तदाहारत्वमेतितत्

तस्माच्छ्रद्धावता (युतं) पात्रे यच्छस्तं (यच्छत्वं) पितृकर्मणि ।
यथावच्चैव दातव्यं पितॄणां तृप्तिमिच्छता ॥ २८ ॥
योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ।
योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान् पूजयेत् सदा ॥ २९ ॥
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी त्वग्राशनो यदि ।
यजमानञ्च भोक्तॄंश्च नौरिवाऽम्भसि तारयेत् ॥ ३० ॥

पितृगाथास्तथैवात्रगीयन्तेब्रह्मवादिभिः । यागीताःपितृभिः पूर्वमैलस्यासीन्महीपतेः

कदा नः सन्ततावग्रयः कस्यचिद्भविता सुतः ।
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति ॥ ३२ ॥

गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः । कालशाकंतिलाढ्यं वाकृसरंमासतृप्तये

वैश्वदेव्यञ्चसौम्यञ्चखड्गमांसंपरंहविः । विषाणवर्ज्यंखड्गाप्त्याआसूर्यञ्चाश्नुवामहे

दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ।
मधुसर्पिःसमायुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ ३५ ॥
तस्मात्सम्पूजयेत् भक्त्या स्वपितॄन् पुत्र! मानवः (यतमानसः) ।
कामानभीप्सन् सकलान् पापाच्चात्मविमोचनम् ॥ ३६ ॥

वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः । प्रीणयन्तिमनुष्याणांपितरःश्राद्धतर्पिताः

आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥ ३८ ॥
एतत्ते पुत्र! कथितं श्राद्धकर्म यथोदितम् ।
काम्यानां श्रूयतां वत्स! श्राद्धानां तिथिकीर्तनम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पवर्णनं
नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

काम्यश्राद्धफलवर्णनम्

मदालसोवाच

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा। वरार्थिनां तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी

श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः

गाणाधिपत्यं (राजाधिपत्यं) सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमाम् ॥ २॥

स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम्।

वेदांस्तथाप्नुयात् सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥ ३॥

द्वादश्यांजयलाभञ्चप्राप्नोतिपितृपूजकः। प्रजांमेधांपशुंवृद्धिं स्वातन्त्र्यंपुष्टिमुत्तमाम्

दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम्। अवाप्नोति न सन्देहःश्राद्धंश्रद्धापरोनरः

यथासम्भाविताऽन्नेनश्राद्धसम्पत्समन्वितः। युवानःपितरोयस्यमृताःशस्त्रेणवाहताः

तेन कार्यं चतुर्दश्यांतेषांप्रीतिमभीप्सता। श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यांयत्नेनपुरुषःशुचिः

सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वर्गञ्चानन्तमश्नुते।कृत्तिकासुपितृनर्च्यस्वर्गमाप्नोतिमानवः

अपत्यकामो रोहिण्यां सोमे चौजस्वितां लभेत्।

शौर्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्वसौ ॥ ६॥

पुष्टिं पुष्ये सदाऽभ्यर्च्य अश्लेषासु वरान् सुतान्।

मघासु स्वजनश्रैष्ठ्यं सौभाग्यं फल्गुनीषु च ॥ १०॥

प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासुवै। प्रयाति श्रेष्ठतां सत्यं हस्ते श्राद्धप्रदोनरः

रूपयुक्तश्च चित्रासु तथाऽपत्यान्यवाप्नुयात्।

वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा ॥ १२॥

कुर्वन्तश्चानुराधासु लभन्ते चक्रवर्तिताम्। आधिपत्यञ्च जेष्ठासुमूलेचारोग्यमुत्तमम्

आषाढ़ासु यशः प्राप्तिरुत्तरासु विशोकता।

श्रवणे च शुभान् लोकान् धनिष्ठासु धनं महत् ॥ १४ ॥
वेदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धिन्तु वारुणे ।
अजाविकं प्रौष्ठपदे विद्यागावस्तथोत्तरे ॥ १५ ॥
रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषुतुरङ्गमान् । श्राद्धं कुर्वंस्तथाप्नोतिभरणीष्वायुरुत्तमम्
तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् ॥ १६ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासनेकाम्यश्राद्धफलवर्णनं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मदालसालर्कसम्वादेसदाचारवर्णनम्

मदालसोवाच

एवं पुत्र!गृहस्थेनदेवताःपितरस्तथा । सम्पूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिवान्धवाः
भूतानि भृत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये वसता गृहे ॥ २ ॥
सदाचारवता तातसाधुनागृहमेधिना । पापंभुङ्क्तेसमुल्लङ्घ्यनित्यनैमित्तिकीःक्रियाः

अलर्क उवाच

कथितं मे त्वयामातर्नित्यंनैमित्तिकश्चयत् । नित्यनैमित्तिकञ्चैवत्रिविधंकर्मपौरुषम्
सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामिकुलनन्दिनि !। यत्कुर्वन् सुखमाप्नोतिपरत्रेहच मानवः

मदालसोवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् । न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्रपरत्र वा
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते ॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् । कार्योयत्नःसदाचारेआचारोहन्त्यलक्षणम्

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक! ।
तन्ममैकमनाः (समाहितमनाः) श्रुत्वा तथैव परिपालय ॥ ६ ॥
त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्त्तव्यो गृहमेधिना । तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्रपरत्रच
पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्यात्सञ्चयमात्मवान् ।
अर्द्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥ ११ ॥
पादश्चात्मार्थमायस्य मूलभूतंविवर्द्धयेत् । एवमाचरतः पुत्र! अर्थः साफल्यमर्हति ॥
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थं तथैवान्यः काम्योऽत्रैचफलप्रदः
प्रत्यवायभयात्काम्यस्तथान्यश्चाऽविरोधवान् ।
द्विधाकामोऽपिगदितस्त्रिवर्गस्याऽविरोधतः ॥ १४ ॥
परम्परा (परस्परा) नुबन्धांश्च सर्वानेतान् विचिन्तयेत् ।
विपरीतानुबन्धांश्च धर्मादींस्तान् शृणुष्व मे ॥ १५ ॥
धर्माधर्मानुबन्धार्थोधर्मोनात्मार्थबाधकः । उभाभ्याञ्चद्विधाकामस्तेनतौचद्विधापुनः
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चाऽपि चिन्तयेत् ।
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
समुत्थाय तथाऽऽचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः ॥ १७ ॥
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥ १८ ॥
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यञ्च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवाञ्च पुत्रक
सायं प्रातस्तथा होमंकुर्वीत नियतात्मवान् ।नोदयास्तमनेविम्बमुदीक्षेतविवस्वतः
केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दन्तधावनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानाञ्च तर्पणम् ॥
ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणाञ्चैव वर्त्मनि । विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत नकृष्टे न च गोव्रजे
नग्नां परस्त्रियं नेक्षेत्न पश्येदात्मनःशकृत् । उदक्यादर्शनंस्पर्शोवर्ज्यंसम्भाषणन्तथा
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वामैथुनंवासमाचरेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रकेशभस्मकपालिकाः
तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ।

नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि चैवं तथा (पत्राणिवा) भुवि ॥ २५ ॥

पितृदेवमनुष्याणां भूतानाञ्चतथार्चनम् । कृत्वाविभवतःपश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति

प्राङ्मुखोदङ्मुखोवाऽपि स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः ।
भुञ्जीतान्नञ्च तच्चित्तो ह्यऽन्तर्जानुः सदा नरः ॥ २७ ॥

उपघ्राताम्रृते दोषं नान्यस्योदीरयेद्बुधः । प्रत्यक्षलवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च

न गच्छन्न च तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान् ।
कुर्वीत नैव चाचामन् यत्किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥ २६ ॥
उच्छिष्टो नालपेत्किञ्चित्स्वाध्यायञ्च विवर्जयेत् ।
गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्द्धानञ्च न स्पृशेत् ॥ ३० ॥

न च पश्येद्रविं नेन्दुं ननक्षत्राणि कामतः । भिन्नासनं तथाशय्यांभाजनञ्चविवर्जयेत्

गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् । अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥

तथानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न सञ्जपेत् । नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत नकुर्याद्देवतार्चनम् ॥

न वाहयेद्द्विजान्नाग्नौ मेहं कुर्वीत बुद्धिमान् ।
स्नायीत न नरो नग्नो न शयीत कदाचन ॥ ३४ ॥
न पाणिभ्यामुभाभ्याञ्च कण्डूयेत शिरस्तथा ।
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नानं कार्य्यं निष्कारणं नरैः ॥ ३५ ॥
शिरः स्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ।
अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायञ्च विवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणानिलगोसूर्य्यान्न मेहेत कदाचन। उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः

आबाधासु यथाकामं कुर्य्यान्मूत्रपुरीषयोः। दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनंप्रसादयेत्

परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् । पन्था देयो ब्राह्मणानांराज्ञोदुःखातुरस्यच

विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयसः।मूकान्धबधिराणाञ्चमत्तस्योन्मत्तकस्यच

पुंश्चल्याः कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च । देवालयं चैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम्

विद्याधिकं गुरुं देवं बुधःकुर्य्यात्प्रदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत्

उपवीतमलङ्कारं करकञ्चैव वर्जयेत् । प्रशस्तानि च कर्माणि कुर्वाणादीर्घजीविनः

चतुर्दश्यां तथाऽष्टम्यां पञ्चदश्याञ्च पर्वसु ॥

तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ।

न क्षिप्तपादजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ ४४ ॥

न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाक्रमेत् ।

मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यञ्च विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

दम्भाभिमानतीक्ष्णानिनकुर्वीतविचक्षणः।मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा

न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासैर्विदूषयेत् ।

परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ॥ ४७ ॥

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽक्रम्य चासनम् ।

संयावं कृषरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत ॥ ४८ ॥

सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् ।

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि वाग्यतो दन्तधावनम् ॥ ४६ ॥

कुर्वीत सततं वत्स! वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधः । नोदक्शिराःस्वपेज्जातुनच प्रत्यक्शिरानरः

शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीताऽथपुरन्दरम् । नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि

उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् । अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभिः

नचापि धूनयेत्केशान् वाससी न चधूनयेत् । नानुलेपनमादद्यादस्नातःकर्हिचिद्बुधः

नचापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ।

न च कुर्य्याद्विपर्य्यासं वाससोर्नापि भूषणे ॥ ५४ ॥

वर्जयञ्च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतञ्च यत् । केशकीटावपन्नञ्चक्षणं श्वभिरवेक्षितम्

अवलीढावपन्नञ्च सारोद्धरणदूषितम् । पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसञ्च पुत्रक! ॥

न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च ।

वर्ज्यं चिरोषितं पुत्र! भक्तं पर्युषितञ्च यत् ॥ ५७ ॥

पिष्टसाकेक्षुपयसां विकारान्नृपनन्दन !। तथामांसविकारांश्चते च वर्ज्याश्चिरोषिताः

उदयास्तमने भानोःशयनञ्च विवर्जयेत् । नास्नातोनैव सम्विष्टो न चैवान्यमना नरः
न चैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् । न चैकवस्त्रो न वदन् प्रेक्षतामप्रदाय च
भुञ्जीत पुरुषःस्नातः सायं प्रातर्यथाविधि । परदारानगन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता
इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् । न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्षणम् । देवार्चनाग्निकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् । अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात्

आचामेत् पुत्र! पुण्याभिः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥ ६५ ॥

कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत् पञ्चवैमृदः । प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्यसमाहितः
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वा पिबेदपः । परिमृज्यद्विरास्यान्तं खानिमूर्द्धानमेवच
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियांकुर्वीत वै शुचिः । देवतानामृषीणाञ्चपितृणांचैव यत्नतः
समाहितमना भूत्वा कुर्वीत सततं नरः । क्षुत्वा निष्ठीव्य वासश्चपरिधायाचमेद्बुधः
क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथानिष्ठीवनादिषु । कुर्यादाचमनंस्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्
कुर्वीतालम्बनं चापि दक्षिणश्रवणस्य वै । यथाविभवतोह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम्
अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते । न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं नात्मनोदेहताडनम् ॥

स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत् ।
सन्ध्यायां मैथुनञ्चाऽपि तथा प्रस्थानमेव च ॥ ७३ ॥

पूर्वाह्णे तात! देवानांमनुष्याणांच मध्यमे । भक्त्या तथापराह्णेच कुर्वीत पितृपूजनम्

शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥ ७५ ॥
व्यङ्गिनीं वर्जयेत् कन्यां कुलजामपि (अकुलां) रोगिणीम् ।
विकृतां पिङ्गलाञ्चैव वाचाटां सर्वदूषिताम् ॥ ७६ ॥

अव्यङ्गींसौम्यनासाञ्चसर्वलक्षणलक्षिताम् । तादृशीमुद्वहेत्कन्यांश्रेयःकामोनरःसदा
उद्वहेत् पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा । रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्षां दिवाचस्वप्नमैथुने

परोपतापकं कर्म जन्तुपीडाञ्च वर्ज्जयेत् । उदक्यासर्ववर्णानांवर्ज्या रात्रिचतुष्टयम्
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीमपिवर्जयेत् । ततःषष्ठ्यांव्रजेद्रात्र्यांश्रेष्ठायुग्मासुपुत्रक!
पर्वाणिवर्जयेन्नित्यंऋतुकालेऽपियोषितः । तस्मान्नित्यंनरोगच्छेच्छेषयुग्मासुपुत्रक

युग्मा सुपुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी सम्विशेत सदा नरः ॥ ८१ ॥
विधर्मिणोऽह्नि पूर्वाख्ये सन्ध्याकाले च पण्ड्रकाः (षण्ढकाः) ।
क्षुरकर्मणि वान्ते च स्त्रीसम्भोगे च पुत्रक ! ॥ ८२ ॥

स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च । देववेदद्विजातीनांसाधुसत्यमहात्मनाम्
गुरोः पतिव्रतानाञ्च तथायज्वितपस्विनाम् । परिवादं न कुर्वीत परिहासञ्च पुत्रक!

कुर्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथञ्चन ।
देवपित्र्यातिथेयाश्च क्रियाःकुर्वीत वै बुधः ॥ ८५ ॥
स्वाध्यायञ्चाऽपि कुर्वीत यथाशक्त्याह्य तन्द्रितः ।
नोत्कृष्टशय्यासनयोर्न्नापकृष्टस्य चारुहेत् ॥ ८६ ॥

न चामङ्गल्यवेशःस्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत् । धवलाम्बरसम्वीतःसितपुष्पविभूषितः
नोद्धूतोन्मत्तमूढैश्चनाविनीतैश्चपण्डितः । गच्छेन्मैत्रींनचाशीलैर्नचचौर्यादिदूषितैः

न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नाऽपि वैरिभिः ।
नानृतकैस्तथा क्रूरैः सहासीत कदाचन ।
नवन्धकीभिर्नन्यूनैर्वन्धकीपतिभिस्तथा ॥ ८६ ॥
सार्द्धं न बलिभिः कुर्य्यान्न च न्यूनैर्न निन्दितैः ।
न सर्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥ ६० ॥

कुर्व्वीतसाधुभिर्मैत्रीसदाचारावलम्बिभिः । प्राज्ञैरपिशुनैःशक्तैःकर्मण्युद्योगभागिभिः
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह । ऋत्विगादीन् षडर्घार्हानर्चयेच्च गृहागतान्

वेदविद्याव्रतस्नातैः सहासीत सदा बुधः ॥

यथाविभवतः पुत्र! द्विजान्सम्वत्सरोषितान् । अर्चयेन्मधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः

तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ।
न च तान् विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥ ९४ ॥
सम्यग्गृहार्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ।
सम्पूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥ ९५ ॥

प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात् प्रजानां पतयेततः । तृतीयाञ्चैवगुह्येभ्यः कश्यपाय तथापराम्
ततोऽनुमतयेदत्त्वा दद्याद्गृहबलिन्ततः । पूर्वाख्यातंमयायत्ते नित्यकर्मक्रियाविधौ
वैश्वदेवं ततःकुर्याद्बलयस्तत्र मे शृणु । यथास्थानविभागन्तुदेवानुद्दिश्य वै पृथक्

पर्जन्याय धरित्रीणां (पर्जन्यादभ्योधरित्र्यैच) दद्याच्च मणिके त्रयम्
ततो धातुर्विधातुश्च दद्याद्द्वारेगृहस्य तु ।
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥ १०० ॥

ब्रह्मणेचान्तरीक्षाय सूर्यायच तथाक्रमम् । विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च
उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः । स्वधानमइतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चाऽपि दक्षिणे

कृत्वाऽपसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति भाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छन् वै तोयं दद्याद्यथाविधि ॥ १०३ ॥
ततोऽन्नाग्रं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम् ।
यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १०४ ॥
कुर्यात् कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि ।
देवादीनां तथा कुर्याद्द ब्राह्म्येणाऽऽचमनक्रियाम् ॥ १०५ ॥

अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्यादक्षिणस्यतु । एतद्ब्राह्म्यमितिख्यातं तीर्थमाचमनायवै
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पैत्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । पितॄणांतेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते
अङ्गुल्यग्रेतथादैवं तेनदिव्यक्रियाविधिः । तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः
एवमेभिः सदातीर्थैर्देवानांपितृभिःसह । सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित्
ब्राह्म्येणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्र्येण सर्वदा । देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यं निजेन च

नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञःपिण्डोदकक्रियाम् ।

प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित् प्रजापतेः ॥ १११ ॥

युगपज्जलमग्निञ्च विभृयान्न विचक्षणः । गुरुदेवान् प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत्
नाचक्षीतधयन्तीं गां जलं नाञ्जलिनापिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषुगुरुष्वल्पेषुवा पुनः
न विलम्बेत शौचार्थं नमुखेनानलं धमेत् । तत्रपुत्र!नवस्तव्वं यत्र नास्ति चतुष्टयम्
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजलानदी । जितामित्रोनृपोयत्र बलवान् धर्मतत्परः
तत्र नित्यंवसेत्प्राज्ञः कुतःकुनृपतौ सुखम् । यत्राप्रधृष्योनृपतिर्यत्रशस्यवती मही
पौराः सुसंयता यत्रसततंन्यायवर्तिनः । यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्रवासःसुखोदयः
यस्मिन्कृषीवलाराष्ट्रे प्रायशोनातिभोगिनः । यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षणः
तत्र पुत्र! न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा । जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः

वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डितः ।
इत्येतत् कथितं पुत्र! मया ते हितकाम्यया ॥ १२० ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने सदाचाराध्यायवर्णनंनाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

वर्ज्यावर्ज्यवर्णनम्

मदालसोवाच

अतःपरंश्रृणुष्वत्वंवर्ज्यावर्ज्यप्रतिक्रियाम् । भोज्यमन्नंपर्युषितंस्नेहाक्तंचिरसंभृतम्

अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ।
शशकःकच्छपो गोधा श्वाचित्खड्गोऽथ पुत्रक! ॥ २ ॥

भक्ष्या ह्येते तथावर्ज्यौ ग्रामशूकरकुक्कुटौ । । पितृदेवादिशेषश्चश्राद्धेब्राह्मणकाम्यया
प्रोक्षितश्चौषधार्थञ्च खादन्मांसं न दुष्यति ।

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ॥ ४ ॥

शाकमूलफलानाञ्च तथाविदलचर्मणाम् । मणिवज्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च

गात्राणाञ्च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते ।

पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥

ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुषः शीशकस्य च ।

शौचं यथार्थं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिणा ।

तथायसानां तोयेन ग्राव्णः सङ्घर्षणेन च ॥ ७ ॥

सस्नेहानाञ्चभाण्डानांशुद्धिरुष्णेनवारिणा । सूर्पधान्याजिनानाञ्चमुसलोलूखलस्यच

संहतानाञ्चवस्त्राणांप्रोक्षणात्सञ्चयस्यच । वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते

तृणकाष्ठौषधीनाञ्च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।

आविकानां समस्तानां केशानाञ्चापि मेध्यता ॥ १० ॥

सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । साम्बुना तात भवतिउपघातवतांसदा

तथा कार्पासिकानाञ्च विशुद्धिर्जलभस्मना ।

दारु (नाग) दन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १२ ॥

पुनः पाकेन भाण्डानांपार्थिवानाञ्च मेध्यता । शुचिर्भैक्षंकारुहस्तःपण्यंयच्चप्रसारितम्

योषिन्मुखं वालमुखमात्मवृद्धमुखं तथा ।

रथ्यागतमविज्ञातं दासमार्गादिनाहृतम् । वाक्प्रशस्तंचिरातीतमनेकान्तरितंलघु ॥

अतिप्रभूतं वालश्चवृद्धातुरविचेष्टितम् । कर्मान्ताङ्गारशालाश्चस्तनन्धयसुताःस्त्रियः

शुचिन्यश्च तथैवापः स्रवन्त्योऽगन्धवुद्बुदाः ।

भूमिर्विशुध्यते कालाद्दाहमार्ज्जनगोक्रमैः ॥

लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् । केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्रातेमक्षिकान्विते

मृदम्बुभस्मना तात! प्रोक्षितव्यं विशुद्धये ।

औदुम्वराणामम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ॥ १८ ॥

भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावोद्रवस्य च ।

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥ १९ ॥

अन्येषाञ्चैव तद् द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः ।

चाण्डालैरन्त्यजैश्चैवम्लेच्छैरस्पृश्यजातिभिः ॥ २० ॥

स्पृष्टमक्षालितंधान्यमनर्हं सर्वकर्मणि । द्रोणादधस्तुयद्धान्यंतस्यायं विधिरुच्यते द्रोणादूर्ध्वं तु यद्धान्यं प्रोक्षणादेवशुद्ध्यति । रथ्यासुपतितंधान्यंदृष्ट्वायत्नेनवन्दयेत्

उद्धृत्य मूर्ध्ना चादद्याल्लक्ष्मीर्नश्यति चान्यथा ।

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥ २३ ॥

तथा मांसञ्च चण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ।

रथ्यागतञ्च चैलादि तात ! वाताच्छुचि स्मृतम् ॥ २४ ॥

गजोऽग्निरश्वोगौश्छायारश्मयःपवनोमही । विप्रुषोमक्षिकाद्याश्चदुष्टसङ्गाददोषिणः

अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् ।

मातुः प्रस्रवणं मेध्यं शकुनिः फलपातने ॥ २६ ॥

आसनं शयनं यानं नावः पथितृणानि च । सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्तेतानिपण्यवत्

रथ्याप्रसर्पणे स्नाने क्षुतपानान्नकर्मसु । आचामेत यथान्यायं वासोविपरिधाय च ॥

स्पृष्टानामप्यसंसर्गैर्विरथ्याकर्दमाम्भसाम् । पङ्क्तेष्टरचितानाञ्च मेध्यतावायुसङ्गमात्

प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य सन्त्यजेत् । शेषस्यप्रोक्षणंकुर्यादाचम्याद्भिस्तथामृदा

उपवासस्त्रिरात्रन्तु दुष्टभक्ष्याशिनो भवेत् । अज्ञाते ज्ञानपूर्वन्तु तद्दोषोपशमेन तु

उदक्याश्वश्रृगालादीन् सूतिकान्त्यावसायिनः ।

स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥ ३२ ॥

नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नातः शुद्ध्यति मानवः ।

आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्यवा ॥ ३३ ॥

न लङ्घयेत्तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानिच । नोद्यानादौ विकालेषुप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥

न चालपेज्जनद्विष्टां वीरहीनां तथा स्त्रियम् ।

गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ॥ ३५ ॥

पञ्चपिण्डाननुधृत्य न स्नायात् परवारिणि। स्नायीतदेवखातेषुगङ्गाहृदसरित्सु च
देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः। कृतत्रातुस्पर्शनालापंशुद्ध्येतार्कावलोकनात्

अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम्।
विधर्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥ ३८ ॥

सूतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये। एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः॥

अभोज्यं (अभोज्य) सूतिकाषण्डमार्जाराखुश्वकुक्कुटान्।
पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्च धर्मवित् ॥ ४० ॥

संस्पृश्यशुध्यतेस्नानादुदक्याग्रामशूकरौ। तद्वच्चसूतिकाशौचदूषितौपुरुषावपि॥
अतःपरं शृणुष्व त्वं स्त्रीधर्मान्ननु विस्तरात्। उदुम्बरे वसेन्नित्यंभवानीसर्वदेवता
ततःसाप्रत्यहं पूज्यागन्धपुष्पाक्षतादिभिः। अशून्यादेहलीकार्याप्रातःकालेविशेषतः

यस्य शून्या भवेत्सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत्।
पादस्य स्पर्शनं तत्र असम्पूज्य च लङ्घनम् ॥ ४४ ॥

कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत्। प्रातःकालेस्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम्
प्रत्यहं सदने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति। स्पृशन्ति रश्मयोयस्यगृहंसम्मार्जनादृते

भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः।
निशायाः पश्चिमे यामे धान्यसंस्करणादिकम् ॥ ४७ ॥
कुरुते या तु मोहेन वन्ध्या जन्मनि जन्मनि।
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते मार्जनं न करोति या ॥ ४८ ॥
भर्तृहीना भवेत्सा तु निःस्वा जन्मनि जन्मनि।
अकृतस्वस्तिकां या तु कामलिप्तां च मेदिनीम् ॥ ४६ ॥
तस्याःस्त्रिया विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा।
मार्जनी चुल्लिका छीवद्द दृषदश्चोपलं तथा ॥ ५० ॥

नाक्रमेदङ्घ्रिणाजातु पुत्रदारधनक्षयात्। उलूखलं च मुसलं तथाचैव तु घर्षणम्
पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्नोत्युत्तमतां गतिम्। भिन्नासनं योगपट्टं तथैव मृगचर्म च

कृष्णाविकं तथा तात! वर्जयेत्पुत्रवान् गृही ।
दक्षिणाभिमुखो यस्तु विदिक् सम्मुख एव च ॥ ५३ ॥
केशान् संस्कुरुते मर्त्यो धननाशं च विन्दति ।
अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा दन्तविशोधनम् ॥ ५४ ॥
पादुकारोहणं चैव तिलैश्चापि सतर्पणम् । न जीवत्पितृकः कुर्यातर्धकक्षोत्तरीयकम्
दर्शश्राद्धं न कुर्वीत दर्शस्नानं कथञ्चन । पादुकारोहणं चैव योगपट्टकमेव च ॥ ५६॥
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गयाश्राद्धंतथैवच । दीपभाण्डमयीछायाविभीतककुरण्टजा
वर्जनीया सदापुत्र! यदिजीवतुमिच्छसि । अधोवस्त्रेण योवायुं कुरुतेशिरसिद्विज!
स्थालेन चर्मशूर्पाभ्यां सुकृतं तस्य नश्यति ॥ ५८ ॥

अलर्क उवाच

भवत्या कीर्तिता भोज्या य एते सूतिकादयः ।
अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि ह ॥ ५६ ॥

मदालसोवाच

ब्राह्मणी ब्राह्मणस्येह यावरोधत्वमागता । तावुभौसूतिकेत्युक्तौतयोरन्नं विगर्हितम्
न जुहोत्युचिते काले नाश्नाति न ददाति च ।
पितृदेवार्चनाद्धीनः षण्ढः स परिगीयते ॥ ६१ ॥
दम्भार्थे यजते यश्च तप्यते च तपस्तथा । न परर्थमिहेत्युक्तः समार्जारःस्मृतोवुधैः
विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च ।
तमाहुराखुस्तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ ६३ ॥
समागतानां मर्त्यानां पक्षपातं समाश्रयेत् ।
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याऽप्यन्नं विगर्हितम् ॥ ६४ ॥
स्वधर्मं यः समुच्छिद्य परधर्मं समाश्रयेत् । अनापदि सविद्वद्भिःपतितःपरिकीर्तितः
देवत्यागी गुरुत्यागी गुरुपत्न्युज्झकस्तथा । गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः प्रचक्षते
येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ।

ते नग्नाः कीर्त्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ६७ ॥
आशाकर्त्तस्त्वदाता च दाता च प्रतिषेधकः ।
शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालो नरोऽधमः ॥ ६८ ॥
यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ।
कुण्डाशी यश्च तस्याऽन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ६९ ॥
यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।
भुक्त्वाऽन्नं तस्यशुद्ध्यैच त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ७० ॥
यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः ।
यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्विषी स नराधमः ॥ ७१ ॥

नित्यस्यकर्मणोहानिं नकुर्वीत कदाचन । तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु
दशाहंब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः । क्षत्रियो द्वादशाहञ्च वैश्यो मासार्द्धमेव च

शूद्रस्तु मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ।
रोगग्रहादिविधिना नित्यकर्मविविच्युतः ॥ ७४ ॥
पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा गां दत्वाशुद्धिमाप्नुयात् ।
ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोदितम् ॥ ७५ ॥

प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गेहाच्च गोत्रिकैः । प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा
भस्मास्थिचयनंकार्यंचतुर्थेगोत्रिकैर्दिने । ऊर्द्ध्वं सञ्चयनात्तेषामङ्गस्पर्शोविधीयते

सोदकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याःसञ्चयनात्परम् ।
स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ॥ ७८ ॥

वृक्षाह्निगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बन्धनवह्निषु । विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि
बाले देशान्तरस्थे च तथाप्रव्रजितेमृते । सद्यः शौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम्
नैवोर्ध्वदैहिकंकार्यं नच कार्योदकक्रिया । गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन शुद्ध्यति
ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणांदिनत्रयम् । षड्रात्रमपिवैश्यानांशूद्राणांद्वादशाहिकम्

सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ।

पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्यास्तस्यत्र दिनैः क्रिया: ॥ ८३ ॥

एष एवविधिर्द्दृष्टो जन्मन्यपिहि सूतके । सपिण्डानांसपिण्डेषुयथावत्सोदकेषु च

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलन्तु विधीयते ।

मृते हि सर्वबन्धूनामित्याह भगवान् भृगुः ।

तत्रापि यदि चान्यस्मिन् जाते जायेत चापरः ॥ ८५ ॥

तत्रापिशुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनैः । दशद्वादशमासार्द्धमाससङ्ख्यैर्दिनैर्गतः

स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्य्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ।

प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं ततः परम् ॥ ८७ ॥

सपिण्डीकरणं चैव कार्यमावत्सरान्नरैः । ततःपितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिस्त्रिभिः

प्रीणयंस्तस्य कर्तव्यं यथाश्रुतिनिदर्शनम् ॥ ८८ ॥

दानानिचैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे

तत्तद्गुणवते देयं तदेवाऽक्षयमिच्छता ॥ ८९ ॥

प्रेतंप्रेतं समुद्दिश्य भूमिधेन्वादिकंस्वयम् । दद्याद्येनास्यसम्प्रीताःपितरःसन्तिपुत्रक

पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधम् ॥ ९० ॥

प्रतोददण्डौ चतथा सम्यग्वर्णाः कृतक्रियाः । स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानंतथाक्रियाः

कुर्युः समस्ताः शुचिनः परत्रेह च भूतिदाः ।

अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ॥ ९२ ॥

धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यञ्चाऽपियत्नतः । यच्चापिकुर्वतोनात्मा जुगुप्सामेतिपुत्रक!

तत्कर्त्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने । एवमाचरतो वत्स ! पुरुषस्य गृहे सतः

धर्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ॥ ९५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्काऽनुशासने वर्ज्यावर्ज्यवर्णनंनाम

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

———

षट्त्रिंशोऽध्यायः

मदालसोपाख्याने पुत्रायोपदेशवर्णनम्

जड(पुत्र) उवाच

स एवमनुशिष्टःसन् मात्रासम्प्राप्ययौवनम् । ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम्
पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः । पितुश्चसर्वकालेषुचकाराऽऽज्ञानुपालनम्
ततःकालेनमहता सम्प्राप्य चरमं वयः । चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः

भार्यया सह धर्मात्मा यियासुस्तपसे वनम् ।
अवतीर्णो महारक्षो महाभागो महीपतिः ॥ ४ ॥

मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः । कामोपभोगसंसर्ग प्रहाणाय सुतस्य वै ॥

मदालसोवाच

यदादुःखमसह्यं ते प्रियबन्धुवियोगजम् । शत्रुबाधोद्भवं वापि वित्तनाशात्मसम्भवम्
भवेत्तत् कुर्वतोराज्यं गृहधर्मावलम्बिनः । दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही

तदास्मात् पुत्र ! निष्कृष्य मद्दत्तादङ्गुलीयकात् ।
वाचयन्ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥ ८ ॥

जड (पुत्र) उवाच

इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैसौवर्णंसाङ्गुलीयकम् । आशिषश्चापियायोग्याःपुरुषस्यगृहेसतः
ततःकुवलयाश्वोऽसौसाचदेवी मदालसा । पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतौ

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

———

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

आत्मविवेकवर्णनम्

जड (पुत्र) उवाच

सोऽप्यलर्को यथान्यायं पुत्रवन्मुदिताः प्रजाः ।
पालयामास धर्मात्मा स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥ १ ॥

दुष्टेषुदण्डं शिष्टेषु सम्यक् च परिपालनम् । कुर्वन्परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः
अजायन्तसुताश्चास्य महाबलपराक्रमाः । धर्मात्मानोमहात्मानो विमार्गपरिपन्थिनः
चकारसोऽर्थं धर्मेण धर्ममर्थेन वा पुनः । तयोश्चैवाऽविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥
एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम् । धर्मार्थकामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा

वैराग्यं नाऽस्य सञ्जज्ञे भुञ्जतो विषयान् प्रियान् ।
न चाप्यलमभूत्तस्य धर्मार्थोपार्जनम्प्रति ॥ ६ ॥

तं तथा भोगसंसर्गप्रमत्तमजितेन्द्रियम् । सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचरः
तंबुबोधयिषुः सोऽथ चिरंध्यात्वामहीपतिः । तद्वैरिसंश्रयंतस्यश्रेयोऽमन्यतभूपतेः
ततः स काशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् । स्वराज्यं प्राप्तुमागच्छद्बहुशःशरणं कृती
सोऽपिचक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रतिपार्थिवः । दूतञ्चप्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम्
सोऽपिनैच्छत्तदा दातुमाज्ञापूर्वं स्वधर्मवित् । प्रत्युवाचचतंदूतमलर्कः काशिभूभृतः

मामेवाभ्येत्यहार्देन याचतां राज्यमग्रजः ।
नाक्रान्त्या सम्प्रदास्यामि भयेनाऽल्पामपि क्षितिम् ॥ १२ ॥

सुबाहुरपिनोयाञ्चाञ्चकार मतिमांस्तदा । न धर्मःक्षत्रियस्येतियाञ्चावीर्यधनोहिसः
ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः । आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः
अनन्तरैश्च संश्लेषमभ्येत्य तदनन्तरम् । तेषामन्यतमैर्भृत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम्
अपीडयंश्च सामन्तांस्तस्यराष्ट्रोपरोधनैः । तथादुर्गान्तपालांश्चचक्रेचाटविकान्वशे

काांश्चिच्चोपप्रदानेन कांश्चिद्भेदेन पार्थिवान्।
साम्नैवान्यान् वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन् ॥ १७ ॥

ततःसोऽल्पबलो राजा परचक्रावपीडितः। कोषक्षयमवापोच्चैःपुरञ्चारुध्यतारिणा
इत्थं सम्पीड्यमानस्तु क्षीणकोशोदिनेदिने। विषादमागात्परमंव्याकुलत्वञ्चचेतसः
आर्त्तिसपरमांप्राप्यतत्संसाराङ्गुरीयकम्। यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
निष्कृष्य शासनं तस्माद्ददृशे प्रस्फुटाक्षरम् ॥ २१ ॥

तत्रैव लिखितंमात्रावाचयामास पार्थिवः। प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षात्फुल्ललोचनः

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥ २३ ॥
कामः सर्वात्मना हेयो हानुश्चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्याऽपि भेषजम् ॥ २४ ॥

वाचयित्वातु बहुशोनृणांश्रेयःकथंत्विति। मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचतत्सङ्गतोयतः
ततः ससाधुसम्पर्कंचिन्तयन्पृथिवीपतिः। दत्तात्रेयंमहाभागमगच्छत्परमार्त्तिमान्
त समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम्। प्रणिपत्याभिसम्पूज्ययथान्यायमभाषत
ब्रह्मन्!कुरुप्रसादंमे शरण्यःशरणार्थिनाम्। दुःखापहारं कुरुमेदुःखार्त्तस्यातिकामिनः

दत्तात्रेय उवाच

दुःखापहारमद्यैव करोमितवपार्थिव!। सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखंतत् पृथिवीपते!

कस्य त्वं कस्य वा दुःखं तत्त्वमेवं विचार्यताम्।
अङ्गान्यङ्गी निरङ्गं च सर्वाङ्गानि विचिन्तय ॥ ३० ॥

जड (पुत्र) उवाच

इत्युक्तश्चिन्तयामाससराजातेनधीमता। त्रिविधस्यापिदुःखस्यस्थानमात्मानमेवच
सविमृश्यचिरं राजा पुनःपुनरुदारधीः। आत्मानमात्मनाधीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत्
नाहमुर्वीनसलिलंनज्योतिरनिलोनच। नाकाशंकिन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ॥

न्यूनातिरिक्ततां याति पञ्चकेऽस्मिन् सुखासुखम् ।
यदिस्यान्मम किन्न स्यादन्यस्थेऽपि हितं मयि ॥ ३४ ॥

नित्यप्रभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते । तथा च ममतात्यक्तोविशेषेणोपलभ्यते
तन्मात्रावस्थितेसूक्ष्मे तृतीयांशेचपश्यतः । तथैवभूतसद्भावं शारीरंकिंसुखासुखम्
मनस्यवस्थितंदुःखं सुखं वा मानसञ्च यत् । यतस्ततोनमेदुःखंसुखं वा नह्यहं मनः
नाहङ्कारोनचमनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः । अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत्कथम्

नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्शरीरान्मनसस्तथाऽहम् ।
तत्सन्तु चेतस्यथवाऽपि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममाऽत्र ॥ ३६ ॥
राज्यस्य वाञ्छां कुरुतेऽग्रजोऽस्य देहस्य चेत् पञ्चमयः स राशिः ।
गुणप्रवृत्या मम किन्नु तत्र तत्स्थः स चाऽहञ्च शरीरतोऽन्यः ॥ ४० ॥
न यस्य हस्तादिकमप्यशेषं मांसं न चाऽस्थीनि शिराविभागः ।
कस्तस्य नागाश्वरथादिकोषैः स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहाऽस्ति पुंसः ॥ ४१ ॥
तस्मान्न मेऽरिर्न्न च मेऽस्तिदुःखं न मे सुखं नापि पुरं न कोषम् ।
न चाऽश्वनागादि वलं न तस्य नाऽन्यस्य वा :कस्यचिद्वा ममाऽस्ति ॥ ४२ ॥
यथा घटी कुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकं वहुधा हि दृष्टम् ।
तथा सुवाहुः स च काशिपोऽहं मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे आत्मविवेकवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अलर्कद्वारादत्तात्रेयसमीपेपरमार्थचिन्तनविषयकप्रश्नकरणम्

जड (पुत्र) उवाच

दत्तात्रेयं ततोविप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः। प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतोवचः
सम्यक्प्रपश्यतो ब्रह्मन् !ममदुःखं न किञ्चन। असम्यग्दर्शिनोमग्नाःसर्वदैवासुखार्णवे
यस्मिन् यस्मिन्ममासक्ता (ममत्वेन) बुद्धिःपुंसः प्रजायते।
ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ॥ ३ ॥
मार्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे। न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके
सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः।
यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेय उवाच

एवमेतन्नरव्याघ्र! यथैतद्व्याहृतंत्वया। ममेतिमूलंदुःखस्यनममेतिच निर्वृतेः (तिः)
मत्प्रश्नादेव ते ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम्। ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शाल्मलितूलवत्
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान् महान्। गृहक्षेत्रोचशाखाश्चपुत्रदारादिपल्लवः
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्द्धितः। पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः
तत्रमुक्तिपथ (अपवर्गपथ) व्यापी मूढसम्पर्कसेचनः।
विधित्साभृङ्गमालाढ्यो कृत्यज्ञानमहातरुः ॥ १० ॥
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः।
भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः ॥ ११ ॥
यैस्तुसत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः। छिन्नो विद्याकुठारेण तेगतास्तेन वर्त्मना
प्राप्यब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम्। प्राप्नुवन्तिपरांप्राज्ञानिर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः
भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्न चाप्यहम्।

न तन्मात्रं मया वाच्यं नैवान्तःकरणात्मकौ ॥ १४ ॥

कंवापश्यामिराजेन्द्र! प्रधानमिदमावयोः। यतःपरोहिक्षेत्रज्ञःसङ्घातो हि गुणात्मकः

मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसांयथा। एकत्वेऽपिपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनोर्नृप

अलर्क उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन ममाविर्भूतमुत्तमम्। ज्ञानं प्रधानचिच्छक्ति विवेककरमीदृशम्

किन्त्वत्र विषयाक्रान्ते स्थैर्यवत्त्वं न चेतसि।

न चापि वेद्मि मुच्येयं कथं प्रकृतिबन्धनात् ॥ १८ ॥

कथंनभूयां भूयश्च कथं निर्गुणतामियाम्। कथं च ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयं शाश्वतेन वै

तन्मेयोगंतथाब्रह्मन्!प्रणतायाभियाचते। सम्यग्ब्रूहिमहाप्राज्ञ!सत्सङ्गोह्युपकृन्नृणाम्

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे दत्तात्रेयालर्कसम्वादे प्रश्नाध्यायवर्णनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

——:*:——

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

योगाध्यायवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

ज्ञानपूर्वोवियोगो योऽज्ञानेन सहयोगिनः। सामुक्तिर्ब्रह्मणाचैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः

योगे च शक्तिर्विदुषां येन श्रेयः परं भवेत्।

मुक्तिर्योगात्तथायोगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते!।

ज्ञानं दुःखोद्भवं (सङ्गदोषोद्भवं) दुःखं ममत्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥

तस्मात्सङ्गं प्रयत्नेनमुमुक्षुःसन्त्यजेन्नरः। सङ्गाभावेममेत्यस्याःख्यातेर्हानिःप्रजायते

निर्ममत्वं सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम्। ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्वकम्

तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जीवति। यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा

उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव! । कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानामकामकरणात्तथा
असञ्चयादपूर्वस्य क्षयात्पूर्वार्जितस्य च । कर्मणोवन्धमाप्नोतिशारीरंन(च)पुनःपुनः

कर्मणा मोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येन तस्य तु ।
एतत्ते कथितं राजन्! योगं चेमं निबोध मे ।
यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ॥ ८ ॥

प्रागेवात्माऽऽत्मना जेयोयोगिनांसहिदुर्जयः । कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंश्रृणुष्वमे

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ १० ॥

यथापर्वतधातूनां दोषादह्यन्ति धाम्यताम् । तथेन्द्रियकृतादोषादह्यन्तेप्राणनिग्रहात्

प्रथमं साधनं कुर्यात् प्राणायामस्य योगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ॥ १२ ॥

लघुमध्योत्तरीयाख्यःप्राणायामस्त्रिधोदितः । तस्यप्रमाणंवक्ष्यामितदलर्क!श्रृणुष्वमे
लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणःसतुमध्यमः । त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिरुत्तमःपरिकीर्त्तितः

निमेषोन्मेषणे मात्राकालो लघ्वक्षरस्तथा ।
प्राणायामस्य सङ्ख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः ॥ १५ ॥

प्रथमेन जयेत् खेदं मध्यमेन च वेपथुम् । विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात्
मृदुत्वंसेव्यमानस्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः । यथायान्तितथाप्राणोवश्योभवतियोगिनः

वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः ।
तथैव योगी सच्छन्दः प्राणं नयति साधितम् ॥ १८ ॥
यथा हि साधितः सिंहो मृगान् हन्ति न मानवान् ।
तद्वन्निषिद्धपवनः किल्विषं न नृणां तनुम् ॥ १६ ॥

तस्माद्युक्तः सदा योगीप्राणायामपरोभवेत् । श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम्

ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित् प्रसादश्च महीपते! ।
स्वरूपं श्रृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥ २१ ॥

कर्मणामिष्टदुष्टानां जायतेफलसङ्क्षयः । चेतसोऽपकषायत्वं यत्र सा ध्वस्तिरुच्यते

ऐहिकामुष्मिकान् कामान् लोभमोहात्मकान् स्वयम् ।

निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्वकालिकी ॥ २३ ॥

अतीतानागतानर्थान् विप्रकृष्टतिरोहितान् । विजानातीन्दुसूर्यर्क्षग्रहाणां ज्ञानसम्पदा

तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति सम्पदम् ।

तदा सम्विदिति ख्याता प्राणायामस्य संस्थितिः ॥ २५ ॥

यान्ति प्रसादं येनाऽस्य मनः पञ्च च वायवः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥ २६ ॥

शृणुष्व च महीपाल! प्राणायामस्य लक्षणम् ।

युञ्जतश्च सदायोगं यादृग्विहितमासनम् ॥२७ ॥

पद्ममर्द्धासनञ्चापितथास्वस्तिकमासनम् । आस्थाय योगंयुञ्जीतकृत्वाचप्रणवंहृदि

समः समासनोभूत्वासंहृत्यचरणावुभौ । संवृतास्यस्तथैवोरूसम्यग्विष्टभ्यचाग्रतः

पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन् प्रयतःस्थितः ।

किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥ ३० ॥

संपश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्। रजसातमसोवृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा

सञ्छाद्य निर्म्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च ॥ ३२ ॥

निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् । यस्तुप्रत्याहरेत्कामान् सर्वाङ्गानीव कच्छपः

सदाऽऽत्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ।

सबाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ॥ ३४ ॥

पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् । प्राणायामा दश द्वौ चधारणा साभिधीयते

द्वे धारणे स्मृते योगे योगिभिस्तत्त्वदृष्टिभिः ।

तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ॥ ३६ ॥

सर्वे दोषाःप्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते । वीक्षते च परंब्रह्मप्राकृतांश्चगुणान्पृथक

व्योमादिपरमाणूंश्चतथात्मानमकल्मषम् । इत्थं योगी यताहारःप्राणायामपरायणः

जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम् ।
दोषान् व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ॥ ३६ ॥
विवर्द्धयति नारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ।
प्राणानामुपसंरोधात् प्राणायाम इति स्मृतः ॥ ४० ॥

धारणेत्युच्यते चेयंधार्य्यतेयन्मनोयया । शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभिः
प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततःस्मृतः । उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षिभिः

येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः ।
यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ॥ ४३ ॥

आपिबेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगीजितश्रमः । प्राङ्नाभ्यां हृदयेचात्रतृतीयेचतथोरसि
कण्ठे मुखे नासिकाग्रेनेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु । किञ्चतस्मात्परस्मिंश्चधारणापरमास्मृता

दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।
नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ॥ ४६ ॥

युञ्जीत योगंराजेन्द्रयोगी सिद्ध्यर्थमादृतः । नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वेनानिलात्मके
कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः । सशब्दाग्निजलाभ्यासेजीर्णगोष्ठेचतुष्पथे
शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे । सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीकसञ्चये ॥
देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्जयेत् । सत्त्वस्यानुपपत्तौचदेशकालंविवर्जयेत्
नासतो दर्शनं योगे तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्तिवै॥
विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्तेतन्निबोधमे । बाधिर्यंजडतालोपःस्मृतेर्मूकत्वमन्धता
ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः । प्रमादाद्योगिनोदोषायद्येतेस्युश्चिकित्सितम्

तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे ।
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ॥ ५४ ॥

वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ते तथोदरे । यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत्

तद्वत्कम्पे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् ।

विघाते वचसो वाचं बाधिर्य्ये श्रवणेन्द्रियम् ॥ ५६ ॥

यथैवाऽऽम्रफलं ध्यायेत् तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रिये ।

यस्मिन् यस्मिन् रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥ ५७ ॥

धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम् ।

कीलं शिरसि संस्थाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥ ५८ ॥

लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते ।

द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नी व्यापिनावपि धारयेत् ॥ ५९ ॥

अमानुषात्सत्त्वजाद्वा बाधास्त्वेताश्चिकित्सिताः (बाधास्त्वितिचिकित्सितम्)।

अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ॥ ६० ॥

वाय्वग्निधारणेनैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत् । एवं सर्वात्मनारक्षा कार्यायोगविदा नृप !

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरंसाधनंयतः । प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तथा

विज्ञानं विलयं याति तस्माद्गोप्याः प्रवृत्तयः ॥ ६२ ।

आलोल्य (अलौल्य) मारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ।

कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥ ६३ ॥

अनुरागं जनो याति परोक्षेगुणकीर्त्तनम् । नबिभ्यतिचसत्त्वानिसिद्धेर्लक्षणमुत्तमम्

शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते ।

न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे जडोपाख्याने योगाध्यायवर्णनंनामैकोन-
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

———

चत्वारिंशोऽध्यायः

योगसिद्धिवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनियोगिनः। येतांस्तेलस्प्रवक्ष्यामि समासेननिबोधमे

काम्याः क्रियास्तथा कामान् मानुषानभिवाञ्छति।

स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् ॥ २ ॥

देवत्वममरेशत्वं रसायनचयःक्रियाः। मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनन्तथा ॥ ३ ॥

श्राद्धानां सर्वदानानां फलानि नियमास्तथा।

तथोपवासात्पूर्त्ताच्चदेवताभ्यर्चनादपि ॥ ४ ॥

तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति। चित्तमित्थंवर्तमानंयत्नाद्योगीनिवर्तयेत्

ब्रह्मसङ्गि मनः कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते। उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ॥ ६ ॥

योगिनः सम्प्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः। प्रातिभःश्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ

पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः।

वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्थाः विद्याशिल्पान्यशेषतः ॥ ८ ॥

प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः।

शब्दार्थानखिलान् वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ॥ ६ ॥

योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते।

समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवतोपमः (देवयोनयः) ॥ १० ॥

उपसर्गन्तमप्याहुर्दवमुन्मत्तवद्बुधाः। भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनो दोषेणयोगिनः

समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमःसपरिकीर्तितः। आवर्तइव तोयस्यज्ञानावर्त्तो यदाकुलः

नाशयेच्चित्तमावर्त उपसर्गः स उच्यते। एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ॥

उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्तेपुनः पुनः। प्रावृत्या कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम्

शरीरमण्डले दृष्ट्वा गुरुज्ञानं ततो हि यत् ।
ज्ञानपूर्वोऽपि यो योगो ज्ञातव्यो वै विपश्चिता ॥ १५ ॥

चिन्तयेत्परमं ब्रह्मकृत्वा तत्प्रवणंमनः । योगयुक्तःसदा योगीलघ्वाहारोजितेन्द्रियः
सूक्ष्मास्तु धारणाःसप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् । धरित्रींधारयेद्योगीतत्सौख्यंप्रतिपद्यते

आत्मानं मन्यते चोर्वीं तद्वन्धञ्च जहाति सः ॥
तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्वद्रूपञ्च तेजसि ॥ १८ ॥
स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम् ।
व्योम्नः सूक्ष्मां प्रवृत्तिञ्च शब्दं तद्वज्जहाति सः ॥ १६ ॥

मनसा सर्वभूतानां मनस्याविशते यदा । मानसीं धारणांबिभ्रन्मनः सूक्ष्मञ्चजायते

तद्वद्बुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्य योगवित् ।
परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्ममनुत्तमम् ॥ २१ ॥

परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तत्वेतानियोगवित् ।सम्यग्विज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते

एतासां धारणानां तु सप्तानां सौक्ष्ममात्मवान् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् ॥ २३ ॥
यस्मिन् यस्मिंश्च कुरुते भूते रागं महीपते !।
तस्मि स्तस्मिन् समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ॥ २४ ॥
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो देही स परं प्राप्नुयात् पदम् ॥ २५ ॥

एतान्येव तु सन्धायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव !। भूतादीनांविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्तये

गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ।
पुनरावर्त्तते भूप! स ब्रह्मापरमानुषम् ॥ २७ ॥
सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति ।
तस्मिंस्तस्मिंल्लयं सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर !॥ २८ ॥

देवानामसुराणाम्वा गन्धर्वोरगरक्षसाम् । देहेषु लयमायाति सङ्गंनाप्नोतिचक्वचित्

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेवच । प्राकाम्यश्च तथेशित्वंवशित्वञ्चतथापरम्
यत्रकामावशायित्वंगुणानेतांस्तथैश्वरान् । प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरंनिर्वाणसूचकान्

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयान् शीघ्रत्वं लघिमागुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥ ३२ ॥
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वञ्चेश्वरो यतः ।
वशित्वाद्वशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥ ३३ ॥
यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावशायिता ।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥ ३४ ॥

मुक्तिसंसूचकं भूप! परं निर्वाणमात्मनः । ततो न जायते नैववर्द्धतेनविनश्यति ॥
नापि क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति । छेदंक्लेदं तथादाहंशोषंभूरादितोनच ॥
भूतवर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यैः ह्रियते नच । नचास्यसन्तिशब्दाद्यास्तद्भोकातैर्नयुज्यते
यथाहि कनकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना । दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप
न विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निनायतिः । निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयातिब्रह्मणा सह
यथाग्निरग्नौ सङ्क्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत् । तदाख्यस्तन्मयोभूतो न गृह्येत विशेषतः

परेण ब्रह्मणा तद्वत् प्राप्यैक्यं दग्धकिल्विषः ।
योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते! ॥ ४१ ॥

यथा जलंजलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति । तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिनःपरमात्मनि
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिसिद्धिर्नामाऽध्यायवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

योगिपरिचर्यायांयमनियमादिवर्णनम्

अलर्क उवाच

भगवन् ! योगिनश्चर्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन् यथा योगी न सीदति ॥ १ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मानापमानौ यावेतौ प्रत्युद्वेगकरौ नृणाम् ।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥ २ ॥

मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते । अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तुविषमं विषम्
चक्षुःपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतंजलंपिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतञ्च चिन्तयेत्
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषुच । महाजनञ्चसिद्ध्यर्थंनगच्छेद्योगवित्क्वचित्
व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने । अटेतयोगविद्भैक्ष्यंनतुतेष्वेव नित्यशः
यथैवमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च । तथायुक्तश्चरेद्योगी सतां वर्त्म न दूषयन्
भैक्ष्यञ्चरेद्गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च । श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपदिश्यते
अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः । श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु
अतऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च । भैक्ष्यचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते
भैक्ष्यं यवागूं तक्रंवा पयोयावकमेववा । फलं मूलं प्रियङ्गुं वा कणपिण्याकसक्तवः

इत्येते च शुभाहारा योगिनः सिद्धिकारकाः ।
तत् प्रयुञ्ज्यान्मुनिर्भक्त्या परमेण समाधिना ॥ १२ ॥

अपः पूर्वं सकृत् प्राश्य तूष्णीं भूत्वा समाहितः ।
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥ १३ ॥

अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा । उदानायचतुर्थीस्याद्व्यानायेतिचपञ्चमी

प्राणायामैःपृथक्कृत्वाशेषंभुञ्जीतकामतः । अपः पुनःसकृत्प्राश्य आचम्यहृदयंस्पृशेत्
अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च त्यागोलोभस्तथैव च । व्रतानि पञ्चभिक्षूणामहिंसापरमाणि वै
अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् । नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाःपञ्चकीर्त्तिताः
सारभूतमुपासीत ज्ञानंयत्कार्यसाधकम् । ज्ञानानां बहुतायेयं योगविघ्नकरी हि सा
इदं ज्ञेयमिदंज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् । अपि कल्पसहस्रेषु नैवज्ञेयमवाप्नुयात्

त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
विधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् ॥ २० ॥

शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च । नित्ययुक्तः सदायोगीध्यानंसम्यगुपक्रमेत्
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः । यस्यैतेनियतादण्डाःसत्रिदण्डीमहायतिः
सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम् । गुणागुणमयंतस्य कःप्रियः कोनृपाऽप्रियः

विशुद्धबुद्धिः समलोष्ट्र (ष्ठ) काञ्चनः समस्तभूतेषु च तत् समाहितः ।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययञ्च परं (यतिर्हि) हि मत्वा न पुनः प्रजायते ॥ २४ ॥

वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात् ।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥ २५ ॥

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादो शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिचर्याध्यायवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥



द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ॐकारमाहात्म्यवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

एवं योवर्त्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः। नसव्यावर्त्तितुंशक्योजन्मान्तरशतैरपि
दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षंविश्वरूपिणम्। विश्वपादशिरोग्रीवंविश्वेशंविश्वभावनम्
तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्। तदेवाध्ययनंतस्य स्वरूपंशृण्वतः परम्
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्। एताएव त्रयोमात्राः सात्त्वराजसतामसाः

निर्गुणा योगिगम्याऽन्या चार्द्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता।

गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया॥ ५॥

पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते। यथाप्रयुक्तओङ्कारःप्रतिनिर्यातिमूर्द्धनि

तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरोभवेत्।

प्राणोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मवेध्यमनुत्तमम्। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्

ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः॥ ८॥

विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋक्सामानियजूंषिच। मात्राःसार्द्धाश्चतिस्रश्चविज्ञ याःपरमार्थतः
तत्र युक्तस्तु योयोगीसतल्लयमवाप्नुयात्। अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुवः
सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोकःपरिकल्प्यते। व्यक्तातुप्रथमामात्राद्वितीयाव्यक्तसञ्ज्ञिता
मात्रातृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्। अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः

ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत्।

ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता॥ १३॥

तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा। इत्येतदक्षरंब्रह्मपरमोङ्कारसञ्ज्ञितम्
यस्तुवेदनरःसम्यक् तथाध्यायति वापुनः। संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधबन्धनः
प्राप्नोति ब्रह्मणिलयं परमे परमात्मनि। अक्षीणकर्मबन्धश्च ज्ञात्वामृत्युमरिष्टतः॥

उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ॥ १७ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगधर्मओङ्काराध्यायवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

मृत्युज्ञानकरारिष्टवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

अरिष्टानि महाराज! शृणु वक्ष्यामि तानि ते ।
येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् ॥ १ ॥
देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ।
यो न पश्येन्न जीवेत् स नरः सम्वत्सरात्परम् ॥ २ ॥
अरश्मिबिम्बं सूर्य्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम् ।
दृष्ट्वैकादशमासात् तु नरो नोर्द्ध्वं तु जीवति ॥ ३ ॥

वान्तेमूत्रपुरीषेच यःस्वर्णंरजतं तथा । प्रत्यक्षं कुरुतेस्वप्ने जीवेत्स दशमासिकम्
दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन् गन्धर्वनगराणिच । सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति

स्थूलः कृशःकृशःस्थूलो योऽकस्मादेव जायते ।
प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ६ ॥

खण्डंयस्यपदंपार्ष्ण्योंपादस्याग्रेचवाभवेत् । पांशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति

गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि ।
क्रव्यादो वा खगो नीलः षण्मासायुःप्रदर्शकः ॥ ८ ॥

हन्यते काकपङ्क्तीभिःपांशुवर्षेणवानरः । स्वांच्छायामन्यथादृष्ट्वाचतुःपञ्चसजीवति

अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ।
रात्राविन्द्रधनुश्चापि जीवितं द्वित्रिमासिकम् ॥ १० ॥

घृते तैले तदादर्शे तोयेवानात्मनस्तनुम् । यःपश्येदशिरस्कांवामासादूद्ध्वंनजीवति

यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपिवा ।
तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो नृप! जीवितम् ॥ १२ ॥

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते । पिबतश्चजलंशोषोदशाहं सोपि जीवति

सम्भिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति ।
हृष्यते नाम्बु संस्पर्शात् तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १४ ॥
ऋक्षवानरयानस्थो गायन् यो दक्षिणां दिशम् ।
स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कालमिच्छति ॥ १५ ॥

रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्तीहसतीचयम् । दक्षिणाशांनयेन्नारीस्वप्नेसोपिनजीवति
नग्नंक्षपणकंस्वप्नेहसमानंमहाबलम् । एकंसम्वीक्ष्यवल्गन्तंविद्यान्मृत्युमुपस्थितम्
आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नं पङ्कसागरे । स्वप्नेपश्यत्यथात्मानं स सद्योम्रियतेनरः
केशाङ्गारांस्तथाभस्म भुजङ्गान्निर्जलांनदीम् । दृष्ट्वा स्वप्नेदशाहात्तुमृत्युरेकादशेदिने
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताडितःस्वप्नेसद्योमृत्युंलभेन्नरः
सूर्योदयेयस्यशिवाक्रोशन्तीयातिसम्मुखम् । विपरीतंपरीतंवाससद्योमृत्युमृच्छति
यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाधते क्षुधा । जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न संशयम्
दीपगन्धंन योवेत्ति त्रस्यत्यह्नितथानिशि । नात्मानंपरनेत्रस्थंवीक्षते न स जीवति
शक्रायुधं चार्द्धरात्रे दिवाग्रहगणन्तथा । दृष्ट्वामन्येत संक्षीणमात्मजीवितमात्मवित्
नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती । नेत्रञ्च वामंस्रवति यस्यतस्यायुरुद्गतम्
आरक्ततामेतिमुखंजिह्वावाश्यामतांयदा । तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः

उष्ट्ररासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम् ।
प्रयाति तं च जानीयात् सद्यो मृत्युं न संशयः (नरेश्वर!) ॥ २७ ॥
पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् ।

नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ॥ २८ ॥
पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारंपिधीयते । न चोत्तिष्ठतियः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम्
ऊद्र्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा शुषिरञ्च नाभेः शंसन्ति पुंसामपरं शरीरम् ॥ ३० ॥
स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः ।
जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ३१ ॥
यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा । समृत्युं सप्तरात्र्यन्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम्
स्ववस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथाऽसितम् ।
यः पुमान् मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥
स्वभाववैपरीत्यन्तुप्रकृतेश्च विपर्ययः । कथयन्ति मनुष्याणां सदासन्नौयमान्तकौ
येषांविनीतः सततं येऽस्यपूज्यतमामताः । तानेव चावजानाति तानेवचविनिन्दति
देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्रांश्चनिन्दति । मातापित्रोर्नसत्कारंजामातॄणांकरोतिच
योगिनांज्ञानविदुषामन्येषाञ्च महात्मनाम् । प्राप्ते तु कालेपुरुषस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः
योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते ।
सम्वत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ॥ ३८ ॥
विलोक्याविशदाचैषां फलपङ्क्तिःसुभीषणा । विज्ञायकार्योमनसिसचकालोनरेश्वर
ज्ञात्वाकालं च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः ।
युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ॥ ४० ॥
दृष्ट्वाऽरिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम् ।
तत्स्वभावं तदालोक्य काले यावत्युपागतम् (कालोयावद्विपाकदः)॥
तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित् ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने ॥ ४२ ॥
यत्रवा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् । तत्रैव तावद्युञ्जीतयावत् प्राप्तं हि तद्दिनम्
ततस्त्यक्त्वा भयं सर्वं जित्वा तं कालमात्मवान् ।

तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र वा स्थैर्यमात्मनः ॥ ४४ ॥
युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन् गुणान् परमात्मनि ।
तन्मयश्चात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि सन्त्यजेत् ॥ ४५ ॥

ततः परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् । यद्बुद्धेर्यन्नचाख्यातुं शक्यते तत् समश्नुते
एतत् सर्वं समाख्यातंतवालर्क! यथार्थवत् । प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्म संक्षेपात्तन्निबोधमे

शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिः पयः ।
समुत्सृजति नायुक्तः सोपमा योगिनः स्मृता ॥ ४८ ॥
यथार्करश्मिसंयोगादर्क्ककान्तो हुताशनम् ।
आविष्करोति नैकः सन्नुपमा साऽपि योगिनः ॥ ४६ ॥
पिपीलिकाऽऽखुनकुलगृहगोधाकपिञ्जलाः ।
वसन्ति स्वामिवद्ध गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यतः ॥ ५० ॥

दुःखन्तुस्वामिनोध्वंसेतस्ययेषां नकिञ्चन । वेश्मनोयत्रराजेन्द्र!सोपमायोगसिद्धये
मृद्देहिकालपदेहापि मुखाग्रे णाप्यणीयसा । करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः
पशुपक्षिमनुष्याद्यैःपत्रपुष्पफलान्वितम् । वृक्षंविलुप्यमानंतु दृष्ट्वासिध्यन्तियोगिनः

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम् ।
सह तेन विवर्द्धन्ते योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

द्रवपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुवः । तुङ्गमङ्गंविलोक्योच्चैर्विज्ञातं किं नयोगिना

सर्वस्वे जीवनायालं निखाते पुरुषस्य या ।
चेष्टा तां तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिनः कृतकृत्यता ॥ ५६ ॥

तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति । येन सम्पद्यतेचार्थस्तत्सुखंममताऽत्रका

अभ्यर्थितोऽपि तैः कार्य्यं करोति करणैर्यथा ।
तथा बुध्यादिभिर्योगी पारक्यैः साधयेत्परम् ॥ ५८ ॥

जड उवाच

ततःप्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कः स महीपतिः । प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः

अलर्क उवाच

दिष्ट्यादेवैरिदं ब्रह्मन्! पराभिभवसम्भवम्। उपपादितमत्युग्रं प्राणसन्देहदं भयम्
दिष्ट्याकाशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः। यदुच्छेदादिहायातः सयुष्मत्सङ्गदोमम

दिष्ट्या मन्दबलश्चाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः।
दिष्ट्या कोषः क्षयं यातो दिष्ट्याऽहं भीतिमागतः॥ ६२॥
दिष्ट्या त्वत्पादयुगलं मम स्मृतिपथं गतम्।
दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्व्वा मम चेतसि संस्थिताः॥ ६३॥

दिष्ट्याज्ञानंममोत्पन्नं भवतश्चसमागमात्। भवताचैवकारुण्यंदिष्ट्याब्रह्मन्!कृतंमम
अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये। तथेदमुपकाराय व्यसनं सङ्गमात्तव॥

सुबाहुरुपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो!।
तयोःकृतेऽहंसम्प्राप्तो योगीश!भवतोऽन्तिकम्॥ ६६॥

सोऽहं तवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः। तथायतिष्येयेनेदृङ्नभूयांदुःखभाजनम्

परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्त्तिपादपकाननम्।
त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्म्महात्मनः॥ ६८॥

दत्तात्रेय उवाच

गच्छ राजेन्द्र! भद्रं ते यथा ते कथितं मया। निर्ममोनिरहङ्कारस्तथा चर विमुक्तये

जड उवाच

एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः। यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः
समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कःकाशिभूपतिम्। सुबाहोरग्रतोवीरमुवाच प्रहसन्निव

राज्यकामुक! काशीश! भुज्यतां राज्यमूर्जितम्।
तथा च रोचते तद्वत् सुबाहोः सम्प्रयच्छ वा॥ ७२॥

काशिराज उवाच

किमलर्क! परित्यक्तं राज्यं ते संयुगंविना। क्षत्त्रियस्यनधर्मोऽयंभवांश्चक्षत्त्रधर्मवित्
निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम्। सन्दधीतशरंराजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम्

तं जित्वा नृपतिर्भोगान् यथाभिलषितान् वरान् ।
भुञ्जीत परमं सिद्ध्यै यजेत च महामखैः ॥ ७५ ॥

अलर्क उवाच

एवमीदृशकंवीर! ममाप्यासीन्मनः पुरा । साम्प्रतंविपरीतार्थं शृणुचाप्यत्र कारणम्

यथायं भौतिकः सङ्घस्तथाऽन्तःकरणं नृणाम् ।
गुणास्तु सकलास्तद्वदशेषेष्वेव जन्तुषु ॥ ७७ ॥
चिच्छक्तिरेक एवायं यदा नान्योऽस्ति कश्चन ।
तदा का नृपते! ज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ॥ ७८ ॥

तन्मया दुःखमासाद्य त्वद्भयोद्भवमुत्तमम् । दत्तात्रेयप्रसादेन ज्ञानं प्राप्तं नरेश्वर! ॥
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा सङ्गमशेषतः । मनोब्रह्मणिसन्धाय तज्जयेपरमो जयः

संसाध्यमन्यत्तत्सिद्ध्यै यतःकिञ्चिन्न विद्यते ।
इन्द्रियाणि च संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ८१ ॥

सोऽहं न तेऽरिर्न ममाऽसि शत्रुः सुबाहुरेषो न ममाऽपकारी ।
दृष्टं मयासर्वमिदं यथात्मा अन्विष्यतां भूप! रिपुस्त्वयाऽन्यः ॥ ८२ ॥
इत्थं स तेनाऽभिहितो नरेन्द्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः ।
दिष्ट्येति तं भ्रातरमाभिनन्द्य काशीश्वरं वाक्ययिदं बभाषे ॥ ८३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽरिष्टाध्यायवर्णनंनाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुबाहुनाकाशिराजायस्वसाहाय्यकरणार्थंप्रार्थितायस्वकीयकनिष्ठभ्रातृ-बोधलम्भनायसमुद्यमवर्णनम्

सुबाहुरुवाच

यदर्थंनृपशार्दूल! त्वामहं शरणं गतः । तन्मयासकलंप्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव

काशिराज उवाच

किं निमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव । सुबाहो!तन्ममाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिमे
समाक्रान्तमलर्केण पितृपैतामहं महत् । राज्यं देहीतिनिर्जित्य त्वयाहमभिचोदितः
ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते । एतत्तेबलमानीतंतद्भुङ्क्ष्वस्वकुलोचितम्

सुबाहुरुवाच

काशिराज!निबोधत्वं यदर्थमयमुद्यमः । कृतोमयाभवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम्
भ्रातामममायंग्राम्येषुशक्तोभोगेषु तत्त्ववित् । विमूढौबोधयन्तौचभ्रातरावग्रजौ मम
तयोर्मम च यन्मात्रा बाल्येस्तन्यंयथामुखे । तथावबोधोविन्यस्तःकर्णयोरवनीपते

तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः
प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ! ॥ ८ ॥

यथैकमर्थेयातानामेकस्मिन्नवसीदति । दुःखंभवति साधूनां तथाऽस्माकं महीपते!

गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर !।
सम्बन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम् ॥ १० ॥
ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्वैराग्यभावना ।
भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥ ११ ॥

तदस्य दुःखाद्वैराग्यं सम्बोधादवनीपते! । समुद्भूतं कृतंकार्यंभद्रंतेऽस्तुव्रजाम्यहम्

उष्ट्वा मदालसागर्भे पीत्वा तस्यास्तथा स्तनम् ।
नान्यनारीसुतैर्यातं वर्त्म यात्विति पार्थिव! ॥ २३ ॥
विचार्य तन्मया सर्वं युष्मत्संश्रयपूर्वकम् । कृतं तच्चापिनिष्पन्नंप्रयास्ये सिद्धयेपुनः
उपेक्ष्यते सीदमानः स्वजनो बान्धवः सुहृत् ।
यैर्नरेन्द्र! न तान् मन्ये सेन्द्रिया विकला हि ते ॥ १५ ॥
सुहृदि स्वजने बन्धौ समर्थे योऽवसीदति ।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्यो वाच्यास्ते तत्र न त्वसौ ॥ १६ ॥
एतत् त्वत्सङ्गमाद् भूप ! मया कार्यं महत् कृतम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ज्ञानभाग्भव सत्तम! ॥ १७ ॥

काशिराज उवाच

उपकारस्त्वयासाधोरलर्कस्यकृतोमहान् । ममोपकारायकथं न करोषि स्वमानसम्
फलदायीसतांसद्भिःसङ्गमोनाफलोयतः । तस्मात्त्वत्संश्रयाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नतिः

सुबाहुरुवाच

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् । तत्रधर्मार्थकामास्ते सकला हीयतेऽपरः
तत्ते संक्षेपतो वक्ष्ये तदिहैकमनाःशृणु । श्रुत्वाचसम्यगालोच्ययतेथाः श्रेयसेनृप
ममेतिप्रत्ययोभूप! नकार्योऽहमितित्वया । सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्माभावेनिराश्रयः
कस्याहमिति सञ्ज्ञेयमित्यालोच्य त्वयाऽऽत्मना ।
बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ॥ २३ ॥
अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् । व्यक्ताव्यक्तं त्वयाज्ञेयंज्ञाताकश्चाहमित्युत
एतस्मिन्नेव विज्ञातेविज्ञातमखिलंत्वया । अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता
सोऽहं सर्वगतो भूप! लोकसंव्यवहारतः । मयेदमुच्यते सर्वं त्वयापृष्टोव्रजाम्यहम्
एवमुक्त्वा ययौधीमान्! सुबाहुः काशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपि सम्पूज्य सोऽलर्कं स्वपुरं ययौ ॥ २७ ॥
अलर्कोऽपि सुतंज्येष्ठमभिषिच्यनराधिपम् । वनंजगाम सन्त्यक्तसर्वसङ्गःस्वसिद्धये

ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः। प्राप्ययोगर्द्धिमतुलां परंनिर्वाणमाप्तवान्
पश्यन् जगदिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् । पाशैर्गुणमयैर्वद्धं वध्यमानञ्च नित्यशः
पुत्रादि भ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः। आकृष्यमाणंकरणैर्दुःखार्त्तंभिन्नदर्शनम्
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः । आत्मानञ्च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत॥
अहोकष्टंयदस्माभिः पूर्वंराज्यमनुष्ठितम्। इतिपश्चान्मयाज्ञातंयोगान्नास्तिपरंसुखम्

जड (पुत्र) उवाच

तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम्। प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वा नशोचसि
ततोऽहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे। कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते

त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिम् ॥ ३६ ॥

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः। ब्रह्मन्!जगाममेधावीपरित्यक्तपरिग्रहः
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः।वानप्रस्थंसमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात्

तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम्।
प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः॥ ३९ ॥

एतत्तेकथितंब्रह्मन्!यत्पृष्टाभवतावयम्। सुविस्तरंयथावच्चकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि
यश्चैतच्छृणुयाद्विप्र!पठेद्वासुसमाहितः । यदश्वमेधावभृथस्नातःप्राप्नोति वै फलम्

सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वैव मुनिसत्तम! ॥ ४२ ॥

एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् । अलर्कात्रेयसम्वादमशुभान्मुच्यतेनरः ॥ ४३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे जडोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥

———

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

जैमिनिनापक्षिभ्यःसकलसृष्टिप्रपञ्चस्थितिप्रभृतिज्ञानायप्रश्नकरणम्

जैमिनिरुवाच

सम्यगेतन्मयाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः। प्रवृत्तिश्चनिवृत्तिश्च द्विविधंकर्मवैदिकम्
अहोपितृप्रसादेन भवतांज्ञानमीदृशम्। येनतिर्यक्त्वमप्येतत् प्राप्यमोहस्तिरस्कृतः

धन्या भवन्तः संसिद्धध्यै प्रागवस्थास्थितंयतः।
भवतां विषयोद्भूतैर्नमोहैश्चाल्यते मनः॥ ३॥

दिष्ट्या भगवतातेनमार्कण्डेयेन धीमता। भवन्तो वैसमाख्याताःसर्वसन्देहहृत्तमाः

संसारेऽस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतामतिसङ्कटे।
भवद्विधैः समं सङ्गो जायते न तपस्विनाम्॥ ५॥

यद्यहं सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः। न स्यांकृतार्थस्तन्न्यूनं नमेऽन्यत्रकृतार्थता
प्रवृत्ते च निवृत्ते चभवतांज्ञानकर्मणि। मतिमस्तमलांमन्येयथानान्यस्यकस्यचित्
यदि त्वनुग्रहवती मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमाः। भवतां तत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः॥
कथमेतत्समुद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम्। कथञ्चप्रलयंकाले पुनर्यास्यति सत्तमाः
कथञ्च वंशाद्देवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः। मन्वन्तराणि चकथं वंशानुचरितञ्च यत्

यावत्यः सृष्टयश्चैव यावन्तः प्रलयास्तथा।
यथा कल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थितिः॥ ११॥
यथा च क्षितिसंस्थानं यत्प्रमाणञ्च वै भुवः।
यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाः काननानि च॥ १२॥
भूर्लोकादिस्वर्लोकानां गणः पातालसंश्रयः।
गतिस्तथाऽर्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि॥ १३॥

श्रोतुमिच्छाम्यहंसर्वमेतदाभूतसंप्लवम्। उपसंहृतेचयच्छेषंजगत्यस्मिनभविष्यति

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम !। पृष्टस्त्वंते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेहजैमिने
मार्कण्डेयेन कथितं पुरा क्रौष्टुकयेयथा । द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नातायधीमते
मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः । क्रौष्टुकिः परिपंप्रच्छयदेतत्पृष्टवान्प्रभो
तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः । तत्तेप्रकथयिष्यामःश्रृणुत्वंद्विजसत्तम

प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् ।
जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ।
प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुराणमेतद्वेदाश्चमुखेभ्योऽनुविनिःसृताः
पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः । वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः ॥
धर्मज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यञ्चमहात्मनः । तस्योपदेशेन विना नहि सिद्धश्चतुष्टयम् ॥२२
वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः । पुराणंजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसाः

भृगोः सकाशाच्चयवनस्तेनोक्तञ्च द्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥ २४ ॥
दक्षेण चापि कथितमिदमासीत्तदा मम ।
तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥ २५ ॥

सर्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना । यथाश्रुतं मया पूर्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥
प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् । चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे । यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्
तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते । प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम्
महदाद्यंविशेषान्तंसवैरूप्यंसलक्षणम् । प्रमाणैःपञ्चभिर्गम्यंस्रोतोभिःषड्भिरन्वितम्

पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् ।
तच्छ्रूयतां महाभाग! परमेण समाधिना ॥ ३१ ॥

प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यंमहर्षयः। यदाहुःप्रकृतिंसूक्ष्मांनित्यांसदसदात्मिकाम्
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसंश्रयम्। गन्धरूपरसैर्हीनंशब्दस्पर्शविवर्जितम्॥ ३३॥
अनाद्यन्तंजगद्योनिंत्रिगुणप्रभवाप्ययम्। असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्माग्रे समवर्त्तत॥ ३४।
प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषतः। गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने
गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकाले ततःपुनः। प्रधानंतत्त्वमुद्भूतंमहान्तंतत्समावृणोत्
यथाबीजंत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतो महान्। सात्त्विकोराजसश्चैव तामसश्चत्रिधोदितः

ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधो वै व्यजायत।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामसः॥ ३८॥
महता चावृतः सोऽपि यथाऽव्यक्तेनवै महान्।
भूतादिस्तु विकुर्वाणःशब्दस्तन्मात्रकन्ततः॥ ३६॥

ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम्। आकाशंशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्ततः।
स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र संशयः। बलवाञ्जायतेवायुस्तस्य स्पर्शगुणो मतः
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह। ज्योतिरुत्पद्यतेवायोस्तद्रूपगुणमुच्यते
स्पर्शमात्रस्तु वैवायूरूपमात्रंसमावृणोत्। ज्योतिश्चापिविकुर्वाणंरसमात्रंससर्जह

सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन् वै ता रसात्मिकाः।
रसमात्रं तु ताह्यापो रूपमात्रं समावृणोत्॥ ४४॥

आपश्चापिविकुर्वत्योगन्धमात्रंससर्जिरे। सङ्घातोजायतेतस्मात्तस्यगन्धोगुणोमतः

तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते॥ ४६॥

नशान्तानापि घोरास्तेनमूढाश्चाविशेषतः। भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तुतामसात्

वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात्।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तते॥ ४८॥

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपञ्चकर्मेन्द्रियाणि च। तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश

एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥ ५० ॥
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ।
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाक् पञ्चमी भवेत् ॥ ५१ ॥
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यञ्च कर्म तत् ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समाविशत् ॥ ५२ ॥

द्विगुणो जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः । रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ
द्विगुणस्तु ततश्चाग्निः सशब्दस्पर्शरूपवान् । शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत्

तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धं समाविशत् ॥ ५५ ॥
संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु दृश्यते ॥ ५६ ॥

शान्ताघोराश्चमूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः । परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्तिपरस्परम्
भूमेरन्तस्त्विमंसर्वंलोकालोकंघनावृतम् ।विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्यानियतत्वाच्चतेस्मृताः
गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् । नानावीर्याःपृथग्भूताःसप्तैतेसंहतिंविना

नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ।
समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्च ते ॥ ६० ॥

एकसङ्घातचिह्नाश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः । पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते । जलबुद्बुदवत्तत्र क्रमाद्वै वृद्धिमागतम्
भूतेभ्योऽण्डंमहाबुद्धे! बृहत्तदुदकेशयम् । प्राकृतेऽण्डेविवृद्धःसन् क्षेत्रज्ञोब्रह्मसञ्ज्ञितः
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत

तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
मेरुस्तस्यानुसम्भूतो जरायुश्चापि पर्वताः ॥ ६५ ॥

समुद्रागर्भसलिलं तस्याण्डस्यमहात्मनः । तस्मिन्नण्डे जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्
द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः । जलानिलानलाकाशैस्ततोभूतादिनावहिः

वृतमण्डं दशगुणैरेकैकत्वेन तैः पुनः । महता तत्प्रमाणेन सहैवानेन वेष्टितः ॥ ६८ ॥
महांस्तैः सहितः सर्वैरव्यक्तेन समावृतः । एभिरावणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्

अन्योन्यमावृत्य च ता अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ।
एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषश्च सः ॥ ७० ॥
ब्रह्माख्यः कथितो यस्ते समासात् श्रूयतां पुनः ।
यथा मग्नो जले कश्चिदुन्मज्जन् जलसम्भवम् ॥ ७१ ॥

जलञ्चक्षिपतिब्रह्मास तथा प्रकृति(तो)र्विभुः । अव्यक्तंक्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्माक्षेत्रज्ञ उच्यते
एतत्समस्तं जानीयात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् । इत्येष प्राकृतःसर्गःक्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तुसः

अबुद्धिपूर्वःप्रथमःप्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥ ७२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मोत्पत्तिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्माण्डसृष्टेःप्रथमंप्रकृतिपुरुषप्रवेशपूर्वकंपरमात्मनोब्रह्मादिरूपैःक्रिया-विशेषैश्चाकृतिवैविध्यवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवंस्त्वण्डसम्भूतिर्यथावत् कथितामम । ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मतथाचोक्तंमहात्मनः

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तो भृगुकुलोद्भव! ।
यदा न सृष्टिर्भूतानामस्ति किन्तु न चास्ति वा ।
काले वै प्रलयस्याऽन्ते सर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

यदातु प्रकृतौ यातिलयं विश्वमिदंजगत् । तदोच्यते प्राकृतोऽयंविद्वद्भिःप्रतिसञ्चरः
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेऽविकारे प्रतिसंहृते । प्रकृतिःपुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः

तदा तमश्च सत्त्वश्च समत्वेन व्यवस्थितौ (गुणौ स्थितौ)।
अनुद्रिक्तावनूनौ च तत्प्रोतौ च परस्परम् ॥ ५ ॥

तिलेषुवायथातैलंघृतंपयसिवास्थितम्। तथा तमसिसत्त्वेचरजोऽप्यनुसृतंस्थितम् उत्पत्तिर्ब्रह्मणो यावदायुषो द्विपरार्द्धिकम्। तावद्दिनं परेशस्यतत्समा संयमे निशा अष्टौयुगसहस्राणि अहोरात्रं प्रजापतेः। अनेनैव तु मानेन शतं ब्रह्मा स जीवति

पितामहशतेनैव विष्णोर्मानं विधीयते।
निमेषार्धेन शम्भोस्तु सहस्राणि चतुर्दश ॥ ६ ॥
विनश्यन्ति तथा विष्णोरसङ्ख्याताः पितामहाः।

अहर्मुखे प्रवृद्धस्तु जगदादिरनादिमान्। सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परःकोऽप्यपरक्रियः प्रकृतिं पुरुषञ्चैव प्राविश्याऽऽशु जगत्पतिः। क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः॥ यथामदोनवस्त्रीणांयथावामाधवानिलः। अनुप्रविष्टःक्षोभायतथाऽसौयोगमूर्त्तिमान्

प्रधाने क्षोभ्यमाणे तु स देवो ब्रह्मसञ्ज्ञितः।
समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थो यथा ते कथितं मया ॥ १३ ॥
स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेः पतिः।
स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च (सं) स्थितः॥ १४॥

उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम्। भुञ्जन्प्रवर्तते सर्गेब्रह्मत्वं समुपाश्रितः ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वाततः सत्त्वातिरेकवान्। विष्णुत्वमेत्यधर्मेण:कुरुतेपरिपालनम् ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलंजगत्। उपसंहृत्यवैशेते त्रैलोक्यंत्रिगुणोऽगुणः

यथा प्राग्व्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा।
यथा स सञ्ज्ञामायाति ब्रह्मविष्णवीशकारिणीम्॥ १८॥
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि।
विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ॥ १९ ॥

रजोब्रह्मा तमोरुद्रो विष्णुः सत्त्वंजगत्पतिः। एतएव त्रयोदेवा एत एव त्रयो गुणाः

अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा।

क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ॥ २१ ॥

एवं ब्रह्मा जगत्पूर्वो देवदेवश्चतुर्मुखः। रजोगुणं समाश्रित्य स्रष्टृत्वेस व्यवस्थितः

हिरण्यगर्भो देवादिरनादिरुपचारतः । भूपद्मकर्णिकासंस्थो ब्रह्माग्रे समजायत ॥

तस्य वर्षशतं त्वेकं परमायुर्महात्मनः। ब्राह्मेणैव हिमानेनतस्यसङ्ख्यां निबोधमे

निमेषैर्दशभिः काष्ठा तथापञ्चभिरुच्यते। कलास्त्रिंशच्चवैकाष्ठा मुहूर्त्तं त्रिंशत्ताःकलाः

अहोरात्रं मुहूर्त्तानांनृणां त्रिंशत्तुवैस्मृतम्। अहोरात्रैश्च त्रिंशद्भिःपक्षौद्वौमासउच्यते

तैःषड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् ॥

दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्। चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं शृणुष्व मे

चत्वारि तुं सहस्राणि वर्षाणां कृतमुच्यते।

शतानि सन्ध्या चत्वारि सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ २९ ॥

त्रेता त्रीणि सहस्राणि दिव्याब्दानां शतत्रयम्।

तत्सन्ध्या तत्समाचैव सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ३० ॥

द्वापरं द्वेसहस्रेतु वर्षाणां द्वेशते तथा। तस्य सन्ध्या समाख्याताद्वेशताब्देतदंशकः

कलिः सहस्रदिव्यानामब्दानां द्विजसत्तम!।

सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैव शतकौ समुदाहृतौ ॥ ३२ ॥

एषाद्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिःकृता। एतत्सहस्रगुणितमहोब्राह्ममुदाहृतम्

ब्रह्मणो दिवसेब्रह्मन्! मनवः स्युश्चतुर्दश। भवन्तिभागशस्तेषां सहस्रंतद्विभज्यते

देवाः सप्तर्षयः सेन्द्रामनुस्तत्सूनवो नृपाः। मनुना सहसृज्यन्तेसंह्रियन्ते च पूर्ववत्

चतुर्युगानां सङ्ख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः।

मन्वन्तरं तस्य सङ्ख्यां मानुषाब्दैर्निबोध मे ॥ ३६ ॥

त्रिंशत् कोट्यस्तु सम्पूर्णाः सङ्ख्याताः सङ्ख्यया द्विज!।

सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतानि च सङ्ख्यया ॥ ३७ ॥

विंशतिश्चसहस्राणिकालोऽयं साधिकंविना। एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तंदिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे

अष्टौ वर्षसहस्राणि दिव्यया सङ्ख्यया युतम्।

द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ ३९ ॥
चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्मयमहः स्मृतम् ।
तस्यान्ते प्रलयः प्रोक्तो ब्रह्मन्! (ब्राह्मो) नैमित्तिको बुधैः ॥ ४० ॥
भूर्लोकोऽथभुवर्लोकःस्वर्लोकस्तन्निवासिनः । तदाविनाशमायातिमहर्लोकश्चतिष्ठति तद्वासिनोऽपितापेनजनलोकंप्रयान्तिवै । एकार्णवेचत्रैलोक्ये ब्रह्मास्वपितिवैनिशि तत्प्रमाणैव सा रात्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुनः । एवन्तु ब्रह्मणोवर्षमेकं वर्षशतन्तु तत् ॥ शतं हि तस्य वर्षाणा परमित्यभिधीयते । पञ्चाशद्भिस्तथावर्षैःपरार्द्धमितिकीर्त्यते एवमस्यपरार्द्धन्तुव्यतीतं द्विजसत्तम !। यस्यान्तेऽभून्महाकल्पःपाद्म इत्यभिविश्रुतः द्वितीयस्यपरार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वैद्विज! । वाराहइतिकल्पोऽयं प्रथमःपरिकल्पितः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मायुःप्रमाणवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

प्राकृतवैकृतसर्गवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

यथा ससर्ज वै ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रजाः । प्रजापतिः पतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद

मार्कण्डेय उवाच

कथयाम्येष ते ब्रह्मन् !ससर्ज भगवान् यथा ।
लोककृच्छाश्वतः कृत्स्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २ ॥
पद्मावसाने प्रलये निशासुप्तोत्थितः प्रभुः । सत्त्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्माशून्यंलोकमवैक्षत इमंचोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणंप्रति । ब्रह्मस्वरूपिणंदेवंजगतः प्रभवाव्य(प्य)यम्

आपो नारावै तनव इत्यपां नाम शुश्रम । तासु शेते स यस्माच्चतेननारायणःस्मृतः
विबुद्धः सलिलेतस्मिन् विज्ञायान्तर्गताम्महीम् ।
अनुमानात्समुद्धारं कर्तुकामस्तदा क्षितेः ॥ ६ ॥
अकरोत्सतनूरन्याःकल्पादिषुयथा पुरा । मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहंवपुरास्थितः
वेदयज्ञमयं दिव्यं वेदयज्ञमयो विभुः । रूपं कृत्वा विवेशाप्सुसर्वगः सर्वसम्भवः॥
समुद्धृत्य च पातालान्मुमोच सलिले भुवम् ।
जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानो जगत्पतिः॥ ६ ॥
तस्योपरि जलौघस्यमहतीनौरिवस्थिता । विततत्वात्तुदेहस्यनमहीयातिसंप्लवम्
ततःक्षितिं समीकृत्य पृथिव्यां सोऽसृजद्गिरीन् ।
प्राक् सर्गे दह्यमाने तु तदा सम्वर्तकाग्निना ॥ ११ ॥
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वताभुवि सर्वशः । शैलाएकार्णवेमग्नावायुनापस्तुसंहताः
निषक्ता यत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलाभवन् । भूविभागंततःकृत्वासप्तद्वीपोपशोभितम्
भूराद्यांश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् । सृष्टिश्चिन्तयतस्तस्यकल्पादिषुयथापुरा
अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसञ्ज्ञितः ॥ १५ ॥
अविद्यापञ्चपूर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मनः । पञ्चधावस्थितःसर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान्
बहिरन्तश्चाप्रकाशःसंवृतात्मानगात्मकः ।मुख्यानगायतश्चोक्तामुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः । तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक्स्रोतोह्यवर्तत
यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिः सातिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृतः ।
पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ॥ १६ ॥
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः । अहंकृताअहंमानाअष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥
अन्तःप्रकाशास्ते सर्वे आवृतास्तु परस्परम् ।
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥ २१ ॥
ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्ध्वमवर्तत ।

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ॥ २२ ॥

प्रकाशाबहिरन्तश्चऊर्द्ध्वस्रोतःसमुद्भवाः । तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिस स्मृतः

तस्मिन् सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ।

ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥ २४ ॥

तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ।

प्रादुर्बभौ तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ २५ ॥

यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।

ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥ २६ ॥

तस्मात्तेदुःखबहुलाभूयोभूयश्च कारिणः । प्रकाशाबहिरन्तश्चमनुष्याःसाधकाश्चते
पञ्चमोऽनुग्रहःसर्गःसचतुर्द्धाव्यवस्थितः । विपर्ययेणसिद्ध्याचशान्त्यातुष्ट्यातथैवच
निर्वृत्तं वर्तमानञ्च तेऽर्थंजानन्ति वैपुनः । भूतादिकानां भूतानांषष्ठःसर्गःसउच्यते
तेपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरतास्तथा । चोदनाश्चाप्यशीलाश्चज्ञेयाभूतादिकाश्चते
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः । तन्मात्राणांद्वितीयस्तुभूतसर्गःसउच्यते
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकःस्मृतः । इत्येषप्राकृतःसर्गःसंभूतोबुद्धिपूर्वकः ॥

मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराःस्मृताः ।

तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्त स्तिर्य्यग्योन्यः स पञ्चमः ॥ ३३ ॥

ततोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।

ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥ ३४ ॥

अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ।

पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥ ३५ ॥

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारोनवमः स्मृतः । इत्येते वैसमाख्यातानवसर्गाः प्रजापतेः
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतोमूलहेतवः । सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेप्राकृतवैकृतसर्गवर्णनंनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

देवादिस्थावरान्तसृष्टिवर्णनम्

कौष्टुकिरुवाच

समासात्कथिता सृष्टिः सम्यग्भगवतामम । देवादीनां भवंब्रह्मन्विस्तरात्तुब्रवीहिमे

मार्कण्डेय उवाच

कुशला कुशलैर्ब्रह्मन् भाविता पूर्वकर्मभिः । ख्याता तया ह्यनिर्मुक्ताःप्रलयेह्युपसंहृताः

देवाद्याः स्थावरान्ताश्च प्रजा ब्रह्मांश्चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तदा ॥ ३ ॥

ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्चचतुष्टयम् । सिसृक्षुरम्भस्येतानिस्वमात्मानमयूयुजत्

युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥ ५ ॥

उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
साऽपविद्धा तनुस्ते न सद्यो रात्रिरजायत ॥ ६ ॥

अन्यां तनुमुपादायसिसृक्षुःप्रीतिमापसः । सत्त्वोद्रेकास्ततो देवामुखतस्तस्यजज्ञिरे

उत्ससर्ज च भूतेशस्तनुं तामप्यसौ विभुः । साचापविद्धादिवसंसत्त्वप्रायमजायत

सत्त्वमात्रात्मिकामेवततोऽन्यांजगृहेतनुम् । पितृवन्मन्यमानस्यपितरस्तस्यजज्ञिरे

सृष्ट्वा पितॄनुत्ससर्ज तनुं तामपि स प्रभुः ।
सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥ १० ॥

रजोमात्रात्मिकामन्यांतनुंभेजेऽथःसप्रभुः । ततोमनुष्याःसम्भूतारजोमात्रासमुद्भवाः

सृष्ट्वा मनुष्यान् स विभुरुत्ससर्ज तनुं ततः ।
ज्योत्स्ना समभवत् सा च नक्तान्तेऽहर्मुखे च या ॥ १२ ॥

इत्येतास्तनवस्तस्य देवदेवस्य धीमतः ।

ख्याता रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च वै द्विज! ॥ १३ ॥

ज्योत्स्ना सन्ध्या तथैवाऽहः सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम् ।

तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्त्रियामिका (तमोऽधिका)॥ १४ ॥

तस्माद्देवा दिवा रात्रावसुरास्तु बलान्विताः ।

ज्योत्स्नागमे च मनुजाःसन्ध्यायां पितरस्तथा ॥ १५ ॥

भवन्ति बलिनोऽधृष्या विपक्षाणांनसंशयः । तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिचविपर्ययम्

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः ।

ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपश्रितानि तु ॥ १७ ॥

चत्वार्येतान्यथोत्पाद्य तनुमन्यां प्रजापतिः ।

रजस्तमोमयीं रात्रौ जगृहे क्षुत्तृडन्वितः ॥ १८ ॥

तदन्धकारे क्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः । विरूपान्श्मश्रुलानत्तुमारब्धास्ते चतां तनुम्

रक्षाम इति तेभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः ।

खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणात् द्विज ! ॥ २० ॥

तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाःशीर्यन्तवेधसः । समारोहणहीनाश्च शिरसोब्रह्मणस्तुते

सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः ।

सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ॥ २२ ॥

वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूताःपिशिताशनाः । ध्यायतोगांततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसुताः

जज्ञिरे पिबतोवाचं गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः । अष्टास्वेतासु सृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभुः

ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत् ।

मुखतोऽजाः ससर्जाऽथ वक्षसश्चाऽवयोऽसृजत् ॥ २५ ॥

गाश्चैवोदरतो ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ।

पद्भ्यांश्चाऽश्वान् समातङ्गान्रासभान् शशकान् मृगान् ॥ २६ ॥

उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः । ओषध्यःफलमूलिन्योरोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे

एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा ह्ययजच्चाध्वरे विभुः । तस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुखे तदा

गौरजः पुरुषो मेषो अश्वाश्वतरगर्दभाः ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥ २६ ॥
श्वापदं द्विखुरं हस्तीवानराःपक्षिपञ्चमाः । औदकाःपशवः षष्ठाःसप्तमास्तुसरीसृपाः
गायत्रीञ्चत्र्यृचञ्चैवत्रिवृत् सामरथन्तरम् । अग्निष्टोमञ्चयज्ञानांनिर्म्ममेप्रथमान्मुखात्
यजूंषित्रैष्टुभं छन्दःस्तोमं पञ्चदशं तथा । वृहत्साम तथोक्तञ्चदक्षिणादसृजन्मुखात्
सामानि जगतीच्छन्दः स्तोमंपञ्चदशन्तथा । वैरूपमतिरात्रञ्चनिर्म्ममेपश्चिमान्मुखात्
एकविंशमथर्व्वाणमाप्तोर्य्यामाणमेव च । अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्ज्जाऽऽदौ कल्पस्य भगवान् विभुः ॥ ३५ ॥
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे । सृष्ट्वा चतुष्टयंपूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः
ततोऽसृजत् स भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्व्वांस्तथैवाऽप्सरसां गणान् ॥ ३७ ॥
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् । अव्ययञ्च व्ययञ्चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम्
तेषांये यानिकर्माणि प्राक्सृष्टेःप्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाःपुनःपुनः
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते
इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु चस प्रभुः । नानात्वं विनियोगञ्चधातैवव्यदधात्स्वयम्
नामरूपञ्च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौदेवादीनाञ्चकार सः
ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु सृष्टयः । शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानामन्येषाञ्च ददाति सः
यथार्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये । दृश्यन्ते तानितान्येव तथाभावायुगादिषु
एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । शर्वर्य्यन्ते प्रबुद्धस्य कल्पे भवन्ति वै

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणेदेवादिस्थावरान्तसृष्टिवर्णनं नामा-
ऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

———

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मसृष्टौमैथुनजन्यप्रजाभेदवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

अर्वाक्स्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः । ब्रह्मन्!विस्तरतोब्रूहि ब्रह्मासमसृजद्यथा
यथाच वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते! । यच्च येषांस्मृतं कर्मविप्रादीनां वदस्वतत्

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मणः सृजतः पूर्वं सत्याभिध्यायिनस्तथा ।
मिथुनानां सहस्रन्तु मुखात्सोऽथासृजन्मुने ! ॥ ३ ॥

जातास्तेह्युपपद्यन्तेसत्त्वोद्रिक्ताःस्वतेजसः । सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानांससर्जह
तेसर्वेरजसोद्रिक्ताःशुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः । ससर्जाऽन्यतसहस्रन्तुद्वन्द्वानामूरुतःपुनः
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तुतेस्मृताः । पद्भ्यांसहस्रमन्यच्चमिथुनानांससर्जह

उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निश्रीका ह्यल्पचेतसः ।
ततः संहर्षमाणास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ॥ ७ ॥
अन्योन्यं हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः ।
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥ ८ ॥

मासिमास्यार्तवं यत्तुनतदाऽऽसीत्तुयोषिताम् । तस्मात्तदानसुषुवुःसेवितैरपिमैथुनैः

आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ताः सकृत् ।
कुलिकं कुलिका चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षताम् ।
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥ १० ॥

ध्यानेन मनसातासां प्रजानां जायते सकृत् । शब्दादिर्विषयःशुद्धःप्रत्येकंपञ्चलक्षणः
इत्येषामानुषी सृष्टिर्या पूर्वं वै प्रजापतेः । तस्यान्ववायसम्भूतायैरिदं पूरितं जगत्
सरित्सरःसमुद्रांश्चसेवन्तेपर्वतानपि । तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णायुगे तस्मिंश्चरन्तिवै

तृप्तिस्वाभाविकींप्राप्ताविषयेषुमहामते! । नतासां प्रतिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सरः

पर्वतोदधिसेविन्योह्यनिकेतास्तु सर्वशः ।

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः १५ ॥

पिशाचोरगरक्षांसितथामत्सरिणोजनाः । पशवःपक्षिणश्चैवनक्रा मत्स्याःसरीसृपाः

अवारका ह्यण्डजावाते ह्यधर्मप्रसूतयः । न मूलफलपुष्पाणि नार्तवा वत्सराणि च ॥

सर्वकालसुखः कालो नात्यर्थंघर्मशीतता । कालेन गच्छतातेषां पित्रासिद्धिरजायत

ततश्चतेषां पूर्वाह्णे मध्याह्ने च वितृप्तता । पुनस्तथेच्छतां तृप्तिरनायासेन साऽभवत्

इच्छताञ्च तथाऽऽयासो मनसः समजायत ।

अपां सौक्ष्म्यं ततस्तासां सिद्धिर्न्नाम्नावयो न सा (रसोल्लसा) ॥ २० ॥

समजायत चैवाऽन्या सर्वकामप्रदायिनी ।

असंस्कार्य्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ॥ २१ ॥

तासां विनातुसंकल्पंजायन्तेमिथुनाःप्रजाः । समंजन्मचरूपञ्चम्रियन्तेचैवताःसमम्

अनिच्छाद्वेषसंयुक्ता वर्तन्ते तु परस्परम् । तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमतां विना

चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांमानुषाणितु । आयुःप्रमाणं जीवन्तिनचक्लेशाद्विपत्तयः

क्वचित् क्वचित् पुनः साऽभूत् क्षितिर्भाग्येन सर्वशः ।

कालेन गच्छता नाशमुपयान्ति यथा प्रजाः ॥ २५ ॥

तथाताः क्रमशो नाशं जग्मुः सर्वत्रसिद्धयः । तासुसर्वासुनष्टासु नभसःप्रच्युतानराः

प्रायशः कल्पवृक्षास्ते संभूतागृहसंज्ञिताः । सर्वेप्रत्युपभोगाच्च तासांतेभ्यः प्रजायते

वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे तदा ।

ततः कालेन वै रागस्तासामाकस्मिकोऽभवत् ॥ २८ ॥

मासि मास्यार्तवोत्पत्त्या गर्भोत्पत्तिः पुनः पुनः ।

रागोत्पत्त्या ततस्तासां वृक्षास्ते गृहसञ्ज्ञिताः (संस्थिताः)॥ २९ ॥

प्रणेशुरपरे चासंश्चतुःशाखामहीरुहाः ।

ब्रह्मन्नन्वपरेषान्तु पेतुः शाखामहीरुहाम् । वस्त्राणिच प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च

तेष्वेव जायतेतेषां गन्धवर्णरसान्वितम् । अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥
तेनत्ता वर्तयन्तिस्म मुखे त्रेतायुगस्य वै । ततःकालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुताः
वृक्षास्ताः पर्य्यगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतसः । नेशुस्तेनापचारेण तेऽपितासांमहीरुहाः

(मूलेषु चापरं वासं चक्रःशालामहीरुहाम्)।
ततो द्वन्द्वान्यजायन्त शीतोष्णक्षुन्मुखानि वै ।
तास्तद्द्वन्द्वोपघातार्थं चक्रुः पूर्वं पुराणि तु ॥ ३४ ॥

मरुधन्वषु दुर्गेषु पर्वतेषु दरीषु च । संश्रयन्ति च दुर्गाणि वार्क्षं पार्वतमौदकम् ॥
कृत्रिमञ्चतथादुर्गमित्वामित्वात्मनोऽङ्गुलैः । मानार्थानिप्रमाणानितास्तुपूर्वंप्रचक्रिरे
परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः । बालाग्रञ्चैवलिक्षां च यूकां चाथ यवोदरम्
एकादशगुणं तेषां यवमध्यं तथाङ्गुलम् । षडङ्गुलं पदन्तच्च विततिर्द्विगुणं स्मृतम्
द्वेवितस्तीतथा हस्तो ब्राह्मयतीर्थादिवेष्टनम् । चतुर्हस्तंधनुर्दण्डोनाड़िकायुगमेवच
धनुर्षांद्वे सहस्रेतु गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् । प्रोक्तञ्चयोजनं प्राज्ञैःसंख्यानार्थमिदंपरम्

चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्च कुर्यात् सतस्तु ते ॥ ४१ ॥

पुरञ्च खेटकञ्चैव तद्वद्द्रोणीमुखं द्विजः । शाखानगरकञ्चापि तथा कर्वटकं त्रयी ॥
ग्रामसंघोषविन्यासं तेषु चावसथान्पृथक् । सोत्सेधवप्रकारञ्चसर्वतःपरिखावृतम्
योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतंपुरम् । प्रागुदक् प्रवणं शस्तं शुद्धवंशवहिर्गमम्
तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च कर्वटम् । न्यूनं द्रोणीमुखं तस्मादन्तभागेन चोच्यते
प्राकारपरिखाहीनं पुरं वर्मवदुच्यते । शाखानगरकञ्चान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ॥
तथा शूद्रजलप्रायाः स्वसमृद्धिकृषीवलाः । क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिता
अन्यस्मान्नगरादेर्या कार्य्यमुद्दिश्यमानवैः । क्रियतेवसतिः सावैविज्ञेया वसतिर्नवैः
दुष्टप्रायो विना क्षेत्रैः परभूमिचरो वली । ग्राम एवाऽक्रिमीसञ्ज्ञो राजवल्लभसंश्रयः
शकटारूढ़भाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना । गोसमूहस्तथा घोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः
त एवं नगरादींस्तु कृत्वा वासार्थमात्मनः । निकेतनानि द्वन्द्वानां चक्रुरावसथाय वै

गृहाकारा यथा पूर्वं तेषामासन्महीरुहाः । तथासंस्मृत्यतत्सर्वंचक्रुर्वेश्मानिताःप्रजाः
वृक्षस्यैवंगताः शाखास्तथैवंचापरा गताः । नताश्चैवोन्नताश्चैवतद्वच्छाखाः प्रचक्रिरे
याः शाखाः कल्पवृक्षाणां पूर्वमासन् द्विजोत्तम ! ।
ता एव शाखा गेहानां शालात्वं तेन तासु तत् ॥ ५४ ॥
कृत्वाद्वन्द्वोपघातं ते वार्त्तोपायमचिन्तयत् । नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषतः
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः ।
तत प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतामुखे तदा ॥ ५६ ॥
वार्त्तास्वसाधिता ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः ।
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नगतानि वै ॥ ५७ ॥
वृष्ट्यावरुद्धैरभवत् स्रोतःखातानि निम्नगाः ।
ये पुरस्तादपांस्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥ ५८ ॥
ततोभूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् । अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्दश
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षागुल्माश्च जज्ञिरे । प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽयमौषधस्यतु
तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगेमुने! । रागलोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौतदा
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणिपर्वतान् । वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्मन्यायाद्यथाबलम्
तेन दोषेण ता नेशुरौषध्यो मिषतां द्विजः । अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्योमहामते
पुनस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनम् ॥ ६४ ॥
स चापि तत्त्वतो ज्ञात्वा तदा ग्रस्तां वसुन्धराम् ।
वत्सं कृत्वा सुमेरुन्तु दुदोह भगवान् विभुः ॥ ६५ ॥
दुग्धेयं गौस्तदा तेन शस्यानि पृथिवीतले ।
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ॥ ६६ ॥
ओषध्यःफलपाकान्तागणाःसप्तदशस्मृताः । व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः
प्रियङ्गवोह्युदाराश्च कोरदूषाः सचीनकाः । माषामुद्गामसूराश्चनिष्पावाःसकुलत्थकाः

आढकाश्चणकाश्चैव गणाःसप्तदशस्मृताः । इत्येताओषधीनान्तुग्राम्याणांजतयःपुरा
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश । व्रीहयश्च यवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः
प्रियङ्गुसप्तमा (षष्ठा) ह्येते अष्टमास्तु (सप्तमास्तु) कुलत्थकाः ।
श्यामाकास्त्वथ नीवारा यत्तिला सगवेधुकाः ॥ ७१ ॥
कुरुविन्दा मर्कटकास्तथावेणुयवाश्चये । ग्राम्यारण्याः स्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः ।
ततः स तासां वृद्ध्यर्थं वार्त्तोपायञ्चकार ह ॥ ७३ ॥
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् हस्तसिद्धिञ्च कर्मजाम् ।
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ॥ ७४ ॥
संसिद्धायान्तु वार्त्तायां ततस्तासां स्वयं प्रभुः ।
मर्यादां स्थापयामास यथान्यायं यथागुणम् ॥ ७५ ॥
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान् धर्मभृताम्वर ! ।
लोकानां सर्ववर्णानां सम्यक् धर्मार्थपालिनाम् ॥ ७६ ॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥ ७७ ॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्ततताम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यानुवर्त्तिनाम् ।
अष्टाशीति सहस्राणामृषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ ७८ ॥
स्मृतं तेषां तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।
सप्तर्षीणान्तु यत् स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ॥ ७९ ॥
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ।
योगिनाममृतं स्थानमिति वै स्थानकल्पना ॥ ८० ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणवर्णनंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भृग्वादिमानसप्रजोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्यजज्ञिरेमानसीःप्रजाः। तच्छरीरसमुत्पन्नैःकार्यैस्तैःकारणैःसह
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः। ते सर्वेसमवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः

देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषयाःस्मृताः।
एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३ ॥
यदाऽस्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः।
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ ४ ॥

भृगुं पुलस्त्यंपुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिञ्च वसिष्ठञ्चैव मानसम्
नवब्रह्मणइत्येते पुराणे निश्चयंगताः। ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं क्रोधात्मसम्भवम्
सङ्कल्पं चैव धर्मञ्च पूर्वेषामपिपूर्वजम्। सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा

न ते लोकेषु सज्जन्तो निरपेक्षाः समाहिताः।
सर्वे तेऽनागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥ ८ ॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषुलोकसृष्टौमहात्मनः। ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः
अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान्। विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः

स चोक्तो वै पृथक् स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाऽकरोत्।
बिभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा तु सः ॥ ११ ॥

सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तैःपुस्त्वंस्त्रीत्वञ्चसप्रभुः। बिभेदबहुधादेवःपुरुषैरमितैःसितैः
ततोब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवंप्रभुः। आत्मनःसदृशंकृत्वाप्रजापालोमनुं द्विजः
शतरूपां च तां नारींतपोनिर्धूतकल्मषाम्। स्वायम्भुवोमनुर्देवःपत्नीत्वेजगृहेविभुः
तस्माच्च पुरुषात् पुत्रौ शतरूपाव्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादौप्रख्यातावात्मकर्मभिः

कन्ये द्वे च तथा ऋद्धिं प्रसूतिं च ततः पिता ।
ददौ प्रसूतिं दक्षाय तथा ऋद्धिं रुचेः पुरा ॥ १६ ॥
प्रजापतिः सजग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः । पुत्रो जज्ञे महाभाग! दम्पतीमिथुनं ततः
यज्ञस्यदक्षिणायां तुपुत्राद्वादशजज्ञिरे । यामाइति समाख्यातादेवाःस्वायम्भुवेऽन्तरे
तस्य पुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायांसुभास्वराः । प्रसूत्याञ्चतथादक्षश्चतस्रोविंशतिस्तथा
ससर्ज कन्यास्तासाञ्च सम्यङ् नामानि मे शृणु ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥ २० ॥
बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥ २१ ॥
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।
ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथा क्षमा ॥ २२ ॥
सन्ततिश्चानसूयाचऊर्ज्जास्वाहास्वधातथा । भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनिः
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्च ऋषयस्तथा । वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्निःपितरश्चयथाक्रमम्
ख्यात्याद्या जगृहुःकन्यामुनयोमुनिसत्तमाः! । श्रद्धाकामंश्रीश्चदर्पंनियमंधृतिरात्मजम्
सन्तोषञ्च तथातुष्टिर्लोभं पुष्टिरजायत । मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेव च
बोधंबुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् । व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्त्तिरित्येतेधर्मयोनयः । कामादतिमुदं हर्षं धर्मपौत्रमसूयत ॥
हिंसा भार्य्या त्वधर्मस्य तस्यां जज्ञे तथाऽनृतम् ।
कन्या च निर्ऋतिस्तस्यां सुतौ द्वौ नरकं भयम् ॥ २६ ॥
माया च वेदना चैव मिथुनं द्वयमेतयोः । तयोर्जज्ञेऽथ वैमायामृत्युं भूतापहारिणम्
वेदनात्मसुतश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥
दुःखोद्भवाःस्मृताह्येतेसर्वेवाऽधर्मलक्षणाः । नैषांभार्यास्तिपुत्रोवासर्वे तेह्यूर्ध्वरेतसः
निर्ऋतिश्च तथा चान्या मृत्योर्भार्याऽभवन्मुने! ।

अलक्ष्मीर्नाम तस्याश्च मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ॥ ३३ ॥

अलक्ष्मीपुत्रकाह्ये तेमृत्योरादेशकारिणः । विनाशकालेषुनरान्भजन्त्येतेश्रृणुष्वतान्

इन्द्रियेषु दशस्वेते तथा मनसि च स्थिताः ।

स्वे स्वे नरं स्त्रियं वापि विषये योजयन्ति हि ॥ ३५ ॥

अथेन्द्रियाणि चाक्रम्य रागक्रोधादिभिर्नरान् ।

योजयन्ति तथा हानिं यान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ! ॥ ३६ ॥

अहङ्कारगतश्चान्यस्तथान्यो बुद्धिसंस्थितः ।

विनाशाय नराः स्त्रीणां यतन्ते मोहसंश्रिताः ॥ ३७ ॥

तथैवान्येगृहेपुंसांदुःसहोनामविश्रुतः । क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नश्चीरीकाकसमस्वनः

स सर्वान् खादितुं सृष्टो ब्रह्मणा तपसो निधिः ।

दंष्ट्राकरालमत्यर्थं विवृतास्यं सुभैरवम् ॥ ३६ ॥

तमत्तुकाममाहेदं ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वब्रह्ममयः शुद्धः कारणं जगतोऽव्ययः ॥

ब्रह्मोवाच

नात्तव्यं ते जगदिदं जहिकोपं शमंव्रज । त्यजैनां तामसीं वृत्तिमपास्यरजसःकलाम्

दुःसह उवाच

क्षुत्क्षामोऽस्मि जगन्नाथ ! पिपासुश्चापि दुर्बलः ।

कथं तृप्तिमियां नाथ ! भवेयं बलवान् कथम् ॥

कश्चाश्रयो ममाऽऽख्याहि वर्तेयं यत्र निर्वृतः ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच

तवाश्रयो गृहं पुंसां जनश्चाधार्मिको बलम् ।

पुष्टिं नित्यक्रियाहान्या भवान् वत्स ! गमिष्यति ॥ ४३ ॥

वृथा (लूताः) स्फोटाश्च ते वस्त्रमाहारश्च ददामि ते ।

क्षतं कीटावपन्नञ्च तथाऽश्वभिरवेक्षितम् ॥ ४४ ॥

भग्नभाण्डगतं तद्वत् मुखवातोपशामितम् । उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम्

भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेव च । विदिङ्मुखं सन्धयोश्चनृत्यवाद्यस्वरोत्तमम्
उदक्योपहतं भुक्तमुदक्या दृष्टमेव च । यच्चोपघातवत् किञ्चित्भक्ष्यं पेयमथापिवा
एतानि तव पुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामिते । अश्रद्धयाहुतं दत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ॥ ४८ ॥
यन्नाम्बुपूर्वकंक्षिप्तमनर्थीकृतमेव च । त्यक्तुमाविष्कृत्तं यत्तु दत्तं चैवातिविस्मयात्
दुष्टंक्रुद्धार्तदत्तञ्चयक्षतद्भागि तत्फलम् । यच्चपौनर्भवःकिञ्चित्करोत्यामुष्मिकंक्रमम्
यच्चपौनर्भवा योषित् तद्यक्ष!तवतृप्तये । कन्याशुक्लोपधानाय समुपास्ते धनक्रियाः
तथैव यक्ष!पुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्च याः । यच्चार्थनिर्वृतं किञ्चिदधीतंयन्नसत्यतः
तत्सर्वं तवकालांश्चददामितवसिद्धये । गुर्विण्यभिगमे सन्ध्यानित्यकार्य्यव्यतिक्रमे
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषुच दुःसह! । तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदा नृषु
पङ्क्तिभेदे वृथापाके पाकभेदे तथा क्रिया । नित्यञ्च गेहकलहे भविता वसतिस्तव

अपोष्यमाणे च तथा बद्धे (भृत्य) गोवाहनादिके ।
असन्ध्याभ्युक्षितागारे काले त्वत्त्वो भयं नृणाम् ॥ ५६ ॥

नक्षत्रग्रहपीड़ासु त्रिविधोत्पातदर्शने । अशान्तिकपरान् यक्ष!नरानभिभविष्यसि ॥
वृथोपवासिनो मर्त्या द्यूतस्त्रीषु सदारताः । त्वद्भाषणोपकर्त्तारो वैडालव्रतिकाश्च ये

अब्रह्मचारिणाऽधीतमिज्या चाऽविदुषा कृता ।
तपोवने ग्राम्यभुजां तथैवानिर्जितात्मनाम् ॥ ५९ ॥
ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां शूद्राणाञ्च स्वकर्मतः ।
परिच्युतानां या चेष्टा परलोकार्थमीप्सताम् ॥ ६० ॥

तस्याश्चयत्फलं सर्वंतत्तेयक्ष!भविष्यति । अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्ट्यर्थंसन्निबोधतत्
भवतो वैश्वदेवान्ते नामोच्चारणपूर्वकम् । एतत् तवेतिदास्यन्तिभवतोबलिमूर्जितम्

यः संस्कृताशी विधिवच्छुचिरन्तस्तथा बहिः ।
* लोलुपोऽजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ॥ ६३ ॥

पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यांदेवताः पितरस्तथा । जामयोऽतिथयश्चापितद्गेहंयक्ष!वर्जय
यत्र मैत्रीगृहे बालवृद्धयोषिन्नरेषुच । तथा स्वजनवर्गेषु गृहं तच्चापि वर्जय ॥ ६५ ॥

योषितोऽभिरता यत्र न बहिर्गमनोत्सुकाः । लज्जान्विताः सदा गेहं यक्ष! तत् परिवर्जय
वयः सम्बन्धयोग्यानि शयनान्यशनानि च । यत्र गेहे त्वया यक्ष! तद्वर्ज्यं वचनान्मम

यत्र कारुणिका नित्यं साधुकर्मण्यवस्थिताः ।
सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथा यक्ष! तद्गृहम् ॥ ६८ ॥

यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सु गुरुवृद्धद्विजातिषु । न तिष्ठन्ति गृहं तच्च वर्ज्यं यक्ष! त्वया सदा
तरुगुल्मादिभिर्द्वारं न विद्धं यस्य वेश्मनः । मर्मभेदोऽथवा पुंसस्तच्छ्रेयो भवनं न ते
देवतापितृमर्त्यानामतिथीनाञ्च वर्तनम् । यस्यावशिष्टेनान्नेन पुंसस्तस्य गृहं त्यज

सत्यवाक्यान् क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ।
पुरुषानीदृशान् यक्ष! त्यजेथाश्चानसूयकान् ॥ ७२ ॥

भर्तृशुश्रूषणे युक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् । कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टाञ्च त्यज योषितम्
यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिं सदा । याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिं द्विजं त्यज ॥
दानाध्ययनयज्ञेषु सदोद्युक्तञ्च दुःसह! । क्षत्रियं त्यज सच्छुक्लशस्त्राजीवात्तवेतनम्
त्रिभिः पूर्वगुणैर्युक्तं पाशुपाल्यवणिज्ययोः । कृषेश्चावाप्तवृत्तिश्च त्यज वैश्यमकल्मषम्
दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परं यक्ष! सन्त्यज । शूद्रञ्च ब्राह्मणादीनां शुश्रूषावृत्तिपोषकम्
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन कृतवृत्तिर्गृहे गृही । यत्र तत्र च तत्पत्नी तस्यैवानुगतात्मिका
यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानाञ्च तथा पितुः । पत्नी च भर्तुः कुरुते तत्रालक्ष्मीभयं कुतः
यदानुलिप्तं सन्ध्यासु गृहमम्बुसमुक्षितम् । कृतपुष्पबलिं यक्ष! न त्वं शक्तोऽसि वीक्षितुम्

भास्करादृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च ।
सूर्य्यावलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम् ॥ ८१ ॥

यत्रोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी । विषाज्यताम्रपात्राणि तद्गृहं न तवाश्रयः
यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पावबल्लरी । भार्य्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष! तव मन्दिरम्

यस्मिन् गृहे नराः पञ्च स्त्रीत्रयं तावतीश्च गाः ।
अन्धकारेन्धनाग्निश्च तद्गृहं वसतिस्तव ॥ ८४ ॥
एकच्छागं द्विवालेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषम् ।

षडश्वं सप्तमातङ्गं गृहं यक्षाऽऽशु शोषय ॥ ८५ ॥
कुद्दालदात्रपिटकं तद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ।
यत्र तत्रैव क्षिप्तानि तव दद्युः प्रतिश्रयम् ॥ ८६ ॥
मुषलोदूखले स्त्रीणामास्या तद्वदुदुम्बरे । अवस्करे मन्त्रणञ्च यक्षैतदुपकृत्तव ॥
लङ्घ्यन्ते यत्र धान्यानि पक्वापक्वानि वेश्मनि ।
तद्वच्छास्त्राणि तत्र त्वं यथेष्टं चर दुःसह ! ॥ ८८ ॥
स्थालीपिधाने यत्राग्निर्दत्तो दर्वीफलेनवा । गृहेयत्रहिरिष्टानामशेषाणां समाश्रयः ॥
मानुषास्थि गृहेयत्रदिवारात्रंमृतस्थितिः । तत्रयक्षतवावासस्तथान्येषाञ्चरक्षसाम्
अदत्वा भुञ्जते ये वै बन्धोः पिण्डं तथोदकम् ।
सपिण्डान् सोदकांश्चैव तत्काले तान् नरान् भज ॥ ९१ ॥
यत्रपद्मंमहापद्मौयुवती (सुरभि) मोदकाशिनी । वृषभैरावतोयत्रकल्प्यतेतंद्गृहंत्यज
अशस्त्रा देवता यत्र सशस्त्राश्चाहवं विना ।
कल्प्यन्ते मनुजैरर्च्यास्तत्परित्यज मन्दिरम् ॥ ९३ ॥
पौरजानपदायत्र प्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः । क्रियन्तेपूर्ववद्गेहे न त्वं तत्र गृहे चरा
शूर्पवातघटाम्भोभिः स्नानं वस्त्राम्बुविप्रुषैः ।
नखाग्रसलिलैश्चैव तान् याहि हतलक्षणान् ॥ ९५ ॥
देशाचारान् समयान् ज्ञातिधर्मं जपं होमं मङ्गलं देवतेष्टिम् ।
सम्यक् शौचं विधिवल्लोकवादान्पुंसस्त्वयाकुर्वतोमाऽस्तु सङ्गः ॥९६॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा दुःसहंब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत । चकारशासनंसोऽपितथा पङ्कजजन्मनः ॥
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे यक्षानुशासनवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशोऽध्यायः

दौःसहोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

दुःसहस्याभवद्भार्या निर्माष्टिर्नाम नामतः ।

जाताकलेस्तुभार्यायामृतौ चाण्डालदर्शनात् ॥ १ ॥

तयोरपत्यान्यभवन् जगद्व्यापीनिषोडश । अष्टौकुमाराःकन्याश्चतथाष्टावतिभीषणाः

दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चपरिवर्तस्तथापरः । अङ्गधृक्शकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा

.गर्भहा सस्यहा चान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ।

कन्याश्चान्यास्तथैवाऽष्टौ तासां नामानि मे शृणु ॥ ४ ॥

नियोजिका वै प्रथमा तथैवाऽन्या विरोधिनी ।

स्वयंहारकरी चैव भ्रामणी ऋतुहारिका ॥ ५ ॥

स्मृतिबीजहरे चान्ये तयोःकन्येऽतिदारुणे । विद्वेषण्यष्टमीनामकन्यालोकभयावहा

एतासां कर्म वक्ष्यामि दोषप्रशमनञ्च यत् । अष्टानाञ्चकुमाराणांश्रूयतांद्विजसत्तम

दन्ताकृष्टिः प्रसूतानांबालानांदशनस्थितः । करोतिदन्तसंघर्षंचिकीर्षुर्दुःसहागमम्

तस्योपशमनं कार्यंसुप्तस्य सितसर्षपैः । शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ॥

सुवर्चसौ (लौ) षधीस्नानात्तथा सच्छास्त्रकीर्त्तनात् ।

उष्ट्रकण्टकखड्गास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् ॥ १० ॥

तिष्ठत्यन्यकुमारस्तु तथास्त्वित्यसकृद्ब्रुवन् ।

शुभाशुभे नृणां युङ्क्ते तथोक्तिस्तच्च नान्यथा ॥ ११ ॥

तस्माद(दु)दुष्टं मङ्गल्यं वक्तव्यं पण्डितैः सदा । दुष्टेश्रुतेतथैवोक्तेकीर्त्तनीयोजनार्दनः

चराचरगुरुर्ब्रह्मा या यस्य कुलदेवता । अन्यगर्भे परान् गर्भान् सदैवपरिवर्त्तयन् ॥

रतिमाप्नोतिवाक्यञ्चविवक्षोरन्यदेव यत् । परिवर्त्तकसञ्ज्ञोऽयंतस्यापिसितसर्षपैः

रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षांकुर्वीततत्त्ववित्। अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषुस्फुरणोदितम्
शुभाशुभं समाचष्टे कुशैस्तस्याङ्गताड़नम्।
काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः खादेन (श्वादेरङ्गगतो) खगतोऽपि वा ॥ १६
शुभाशुभञ्च कुशलैः कुमारोऽन्यो ब्रवीति वै। तत्रापिदुष्टेव्याक्षेपः प्रारम्भत्यागएवच
शुभे द्रुततरं कार्य्यमिति प्राह प्रजापतिः।
गण्डान्नेषु स्थितश्चान्यो मुहूर्त्तार्द्धं द्विजोत्तम !॥ १८ ॥
सर्वारम्भान् कुमारोऽत्ति (शमंतस्यनिशामय) शस्तताश्चानसूयताम्।
विप्रोक्तया देवतास्तुत्या मूलोत्खातेन च द्विज ! ॥ १६ ॥
गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तद्वृक्षग्रहपूजनैः। पुनश्च धर्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः ॥ २० ॥
अवज्ञयाजन्मनश्च प्रशमंयातिगण्डवान्। गर्भस्त्रीणांतथाऽन्यस्तुफलनाशीसुदारुणः
तस्य रक्षा सदा कार्या नित्यं शौचनिषेवणात्।
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ॥ २२ ॥
विशुद्धगेहावसथादनायासाच्च वै द्विज !। तथैवसस्यहाचान्यःसस्यर्द्धिमुपहन्तियः
तस्यापि रक्षां कुर्वीत जीर्णोपानद्विधारणात्।
तथापसव्यगमनाच्चाण्डालस्य प्रवेशनात् ॥ २४ ।
बहिर्वलिप्रदानाच्च समाम्बु (सोमाम्बु) परिकीर्त्तनात्।
परदारपरद्रव्यहरणादिषु मानवान् ॥ २५ ॥
नियोजयति चैवान्यान् कन्या सा च नियोजिका।
तस्याः पवित्रपठनात्क्रोधलोभादिविवर्जनात् ॥ २६ ॥
नियोजयति मामेषुविरोधाच्चविवर्जनम्। आक्रुष्टोऽन्येनमन्येतताडितोवानियोजिका
नियोजयत्येनमिति न गच्छेत्तद्वशं बुधः। परदारादिसंसर्गेचित्तमात्मानमेव च ॥
नियोजयत्यत्र सा मामिति प्राज्ञो विचिन्तयेत्।
विरोधं कुरुते चान्या दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ॥ २६ ॥
बन्धूनां सुहृदां पित्रोः पुत्रैः सावर्णिकैश्च या।

विरोधिनी सा तद्रक्षां कुर्वीत बलिकर्मणा ॥ ३० ॥
तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ।
धान्यं खलाद् गृहाद्गोभ्यः पयः सर्पिस्तथापरा ॥ ३१ ॥
समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्ति च कन्यका । सास्वयंहारिकेत्युक्तासदान्तर्धानतत्परा
महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितंतथा । परिविष्यमाणञ्चसदासार्द्धंभुङ्क्तेचभुञ्जता
उच्छेषणं मनुष्याणां हरत्यन्नञ्च दुर्हरा । कर्मान्तागारशालाभ्यः सिद्धर्द्धिहरतिद्विज
गोस्त्रीस्तनेभ्यश्च पयःक्षीरहारीसदैवसा । दध्नोघृतंतिलात्तैलंसुरागारात्तथासुराम्
रागं कुसुम्भकादीनां कार्पासात्सूत्रमेवच । सास्वयंहारिकानामहरत्यविरतंद्विज !
कुर्य्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वं रक्षार्थं कृत्रिमां स्त्रियम् ।
रक्षाश्चैव गृहे लक्ष्म्या (लेख्या) वर्ज्या च स्रोष्मता (चोच्छिष्टता)तथा ॥ ३७ ॥
होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिष्क्रिया । कार्याक्षीरादिभाण्डानामेवतद्रक्षणंस्मृतम्
उद्वेगं जनयत्यन्या एकस्थाननिवासिनः । पुरुषस्यतुयाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका
तस्याऽथ रक्षां कुर्वीत विक्षिप्तैः सितसर्षपैः ।
आसने शयने चोर्व्यां यत्राऽऽस्ते स तु मानवः ॥ ४० ॥
चिन्तयेच्च नरः पापा मामेषा दुष्टचेतना । भ्रामयत्यसकृज्जप्यं भुवः सूक्तंसमाधिना
स्त्रीणां पुष्पं हरत्यन्या प्रवृत्तंसातुकन्यका । तथाप्रवृत्तंसाज्ञेयादौःसहाऋतुहारिका
कुर्वीत तीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु । नदीसङ्गमखातेषु स्नपनंतत्प्रशान्तये ॥ ४३ ॥
मन्त्रवित्कृततत्त्वज्ञः पर्वसूषसि च द्विज !।
तेषां तु पूजनं कार्यं धूपवत्युपहारकैः । चिकित्साज्ञश्च वैवैद्यःसंप्रयुक्तैर्वरौषधैः ॥
स्मृतिश्चापहरत्यन्या (प्रवृत्ता सा तु कन्यका)
(अथाप्रवृत्ता साज्ञेया नृणां)स्त्रीणां सास्मृतिहारिका ।
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥ ४५ ॥
बीजापहारिणी चान्या स्त्रीपुंसोरतिभीषणा ।
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥ ४६ ॥

दारुणा सा दुराचारा दारुणं कुरुते भयम् । तत्प्रशान्त्यैप्रकुर्वीतद्विजानामर्चनं शुभम्
अष्टमीद्वेषणी नाम कन्या लोकभयावहा । याकरोतिजनद्विष्टंनरनारीमथापिवा ॥
मधुक्षीरघृताक्तांस्तुशान्त्यर्थंहोमयेत्तिलान् । कुर्वीतमित्रविन्दाञ्चतथेष्टिं तत्प्रशान्तये
एतेषां तुकुमाराणां कन्यानां द्विजसत्तम ! । अष्टत्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेशृणु ॥
दन्ताकृष्टेरभूत् कन्या विजल्पा कलहा तथा । अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पातत्प्रशान्तये
तामेव चिन्तयेत् प्राज्ञः प्रयतश्च गही भवेत् । कलहाकलहंगेहेकरोत्यविरतं नृणाम्

कुटुम्बनाशहेतुः सा तत्प्रशान्तिं निशामय ।
दूर्वाङ्कुरान्मधुघृतक्षीराक्तान् बलिकर्मणि ॥ ५३ ॥
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवाऽनलं मित्रञ्च कीर्तयेत् ।
भूतानां मातृभिः सार्द्धं बालकानान्तु शान्तये ॥ ५४ ॥
विद्यानां तपसाञ्चैव संयमस्य यमस्य च ।
कृष्यां वाणिज्यलाभे च शान्ति कुर्वन्तु मे सदा ॥ ५५ ॥
पूजिताश्च यथान्यायं तुष्टिं गच्छन्तु सर्वशः ।
कुष्माण्डा यातुधानाश्च ये चान्ये गणसञ्ज्ञिताः ॥ ५६ ॥

महादेवप्रसादेन महेश्वरमतेन च । सर्व एते नृणां नित्यं तुष्टिमाशु व्रजन्तु ते ॥ ५७
तुष्टाः सर्वं निरस्यन्तु दुष्कृतं दुरनुष्ठितम् । महापातकजं सर्वं यच्चान्यद्विघ्नकारणम्
तेषामेव प्रसादेन विघ्ना नश्यन्तुसर्वशः । उद्वाहेषु च सर्वेषु वृद्धिकर्मसु चैव हि ॥
पुण्यानुष्ठानयोगेषु गुरुदेवार्चनेषु च । जपयज्ञविधानेषु यात्रासु च चतुर्दश ॥ ६० ॥
शरीरारोग्यभोग्येषु सुखदानधनेषु च । वृद्धबालातुरेष्वेव शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥

सोमाम्बुपौ तथाम्भोधिः सविता चाऽनिलानलौ ।
तथोक्तेः काल(कलि) जिह्वोऽभूत् पुत्रस्तालनिकेतनः ॥ ६२ ॥

सयेषांजननीसंस्थस्तानसाधून् विबाधते । परिवर्तसुतौद्वौतु विरूपविकृतौ द्विज!
तौतुवृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ । गुर्विण्याः परिवर्तन्तौकुरुतः पादपादिषु
क्रौष्टके परिवर्तःस्याद्ग गर्भस्यान्योदरात्ततः । नवृक्षं चैव नैवाद्रिं नप्राकारंमहोदधिम्

परिखां वासमाक्रामेदबला गर्भधारिणी । अङ्कुशुक् तनयं लेभे पिशुनं नाम नामतः
सोऽस्थिमज्जागतः पुंसां बलमत्त्यजितात्मनाम् ।
श्येनकाककपोतांश्च गृध्रोलूकँश्च (कौ च)वै सुतान् ॥ ६७ ॥
अवापशकुनिः पञ्चजगृहुस्तान् सुरासुराः । श्येनंजग्राहमृत्युश्च काकंकालोगृहीतवान्
उलूकंनिर्ऋतिश्चैवजग्राहातिभयावहम् । गृध्रंव्याधिस्तदीशोऽथ कपोतंचस्वयंयमः
एतेषामेवचैवोक्ताभूताः पापोपपादने । तस्माच्छ्येनादयो यस्यनिलीयेयुःशिरस्यथ
तेनात्मरक्षणायालंशान्तिंकुर्य्याद्द्विजोत्तम! । गेहेप्रसूतिरेतेषां तद्वन्नीड़निवेशनम् ॥
नरस्तं वर्जयेद्गेहं कपोताक्रान्तमस्तकम् । श्येनःकपोतोगृध्रश्च काकोलूकौगृहेद्विज!
प्रविष्टः कथयेदन्तंवसतांतत्रवेश्मनि । ईदृक्परित्यजेद्गेहंशान्ति कुर्य्याच्चपण्डितः
स्वप्नेऽपिहि कपोतस्यदर्शनंनप्रशस्यते । षडपत्यानि कथ्यन्ते गण्डप्रान्तरतेस्तथा
स्त्रीणां रजस्यवस्थानं तेषां कालांश्च मे शृणु ।
चत्वार्य्यहानि पूर्वाणि तथैवाऽन्यत् त्रयोदश ॥ ७५ ॥
एकादश तथैवान्यदपत्यं तस्य वै दिने । अन्यद्दिनाभिगमने श्राद्धदाने तथापरे ॥
पर्वस्वथान्यत् तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानि पण्डितैः ।
गर्भहन्तुः सुतो निघ्नो मोहनी चापि कन्यका ॥ ७७ ॥
प्रविश्यगर्भमत्त्येको भुक्त्वामोहयतेऽपरा । जायन्तेमोहनात्तस्याःसर्पमण्डूककच्छपाः
सरीसृपाणि चान्यानि पुरीषमथवा पुनः ।
षण्मासान् गुर्विणीं मांसमश्नुवानामसंयताम् ॥ ७६ ॥
वृक्षच्छायाश्रयां रात्रावथवा त्रिचतुष्पथे । श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम्
रुद्यमानां निशीथेऽथ आविशेत्तामसौ स्त्रियम् ।
शस्यहन्तुस्तथैवैकः क्षुद्रको नाम नामतः ॥ ८१ ॥
शस्यर्द्धि स सदाहन्ति लब्ध्वारन्ध्रंशृणुष्वतत् । अमङ्गल्यदिनारम्भेसुतृप्तोवपतेचयः
क्षेत्रेष्वनुप्रवेशं वै करोत्यन्तोपसङ्गिषु ।
अमङ्गल्यदिनारम्भं मङ्गलानाञ्च वर्जयेत् ॥ ८३ ॥

(महद्भयं प्रयच्छन्ति यत्र वै तत्प्रसङ्गिषु) ॥
तस्मात् कल्पः सुप्रशस्ते दिनेऽभ्यर्च्य निशाकरम् ॥ ८४ ॥
कुर्य्यादारम्भमुत्तिष्ठ हृष्टस्तुष्टः सहायवान् ।
नियोजिकेति या कन्या दुःसहस्य मयोदिता ॥ ८५ ॥
जातं प्रचोदिकासञ्ज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम् ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तु नरान्नारीस्तु ताः सदा ॥ ८६ ॥

समाविशन्ति नाशायचोदयन्तीह दारुणम् । अधर्मं धर्मरूपेण कामञ्चाकामरूपिणम् अनर्थंचार्थरूपेण मोक्षञ्चामोक्षरूपिणम् । दुर्विनीता विनाशौघंदर्शयन्तिपृथङ्नरान् भ्राम्यन्तेताभिरष्टाभिःपुरुषार्थात् पृथङ्नराः । तासां प्रवेशश्चगृहेसन्ध्यृक्षेषुउदुम्बरे धात्रेविधात्रे च बलिर्यत्रकाले नदीयते । भुञ्जतां पिबतांवापिसङ्गिभिर्जलविप्रुषैः

नव (र) नारीषु संक्रान्तिस्तासामास्वभिजायते ।
विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदकोग्राहकस्तथा ॥ ६५ ॥

तमः प्रच्छादकश्चान्यस्तत् स्वरूपंश्रृणुष्वमे । प्रदीपतैलसंसर्गदूषिते लङ्घिते खले मुषलोलूखले यत्र पादुके वासने स्त्रियः । सूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकृष्य तथासनम् ॥ यत्रोपलिप्तंचाभ्यर्च्य विहारः क्रियते गृहे । दर्व्वीमुखेन यत्राग्निराहृतोऽन्यत्र नीयते

विरोधिनीसुतास्तत्र विजृम्भन्ते प्रचोदिताः ।
एको जिह्वागतः पुंसां स्त्रीणाञ्चालीकसत्यवान् ॥ ६५ ॥

चोदकोनामस प्रोक्तः पैशुन्यं कुरुतेगृहे । अवधानगतश्चान्यः श्रवणस्थोऽतिदुर्म्मतिः

करोति ग्रहणं तेषां वचसां ग्राहकस्तु सः ।
आक्रम्यान्यो मनो नृणां तमसाच्छाद्य दुर्मतिः ॥ ६८ ॥

क्रोधं जनयतेयस्तुतमः प्रच्छादकस्तुसः । स्वयंहार्य्यास्तुचौर्येणजनितंतनयत्रयम् सर्वहार्य्यर्द्धहारी च वीर्यहारी तथैव च । अनाचान्तगृहेष्वेते मन्दाचारगृहेषु च ॥ ६६ अप्रक्षालितपादेषु प्रविशत्सु महानसम् । खलेषु गोष्ठेषु च वै द्रोहो येषु गृहेषु वै ॥ तेषुसर्वेयथान्यायंविहरन्ति रमन्ति च । भ्रामण्यास्तनयस्त्वेकः काकजङ्घइतिस्मृतः

तेनाविष्टोरतिंसर्वोनैवप्राप्नोतिवैपुरे (मुने) । भुञ्जन् योगायतेमैत्रेगायतेहसते च ते
सन्ध्यामैथुनिनश्चंव नरमाविशति द्विज! । कन्यात्रयंप्रसूतासाया कन्या ऋतुहारिणी
एकाकुचहराकन्याअन्या व्यञ्जनहारिका । तृतीयातुसमाख्याता कन्यकाजातहारिणी

यस्या न क्रियते सर्वः सम्यक् वैवाहिको विधिः ।

कालातीतोऽथवा यस्या हरत्येका कुचद्वयम् ॥ १०५

सम्यक्श्राद्धमदत्त्वाचतथानभ्यर्च्यमातृकाः । विवाहितायाःकन्यायाहरतिव्यञ्जनंतथा
अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपे सूतिकागृहे । अदीपशस्त्रमुषले भूतिसर्षपवर्जिते ॥
अनुप्रविश्य सा जातमपहृत्यात्मसम्भवम् । क्षणप्रसविनीबालं तत्रैवोत्सृजते द्विज!
सा जातहारिणी नामसुघोरापिशिताशना । तस्मात्संरक्षणं कार्यंयत्नतःसूतिकागृहे

स्मृतिश्चाप्रयतानाञ्च शून्यागारनिषेवणात् ।

अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः ॥ ११० ॥

पौत्रेभ्यस्तस्य संभूता लीकाः शतसहस्रशः ।

चण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डपाशातिभीषणाः ॥ १११ ॥

क्षुधाविष्टास्तपोलीकास्ताश्च चण्डालयोनयः ।

अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तुकामाः परस्परम् ॥ ११२ ॥

प्रचण्डो वारयित्वातु तास्ताश्चण्डालयोनयः । समयेस्थापयामासयादृशेतादृशंशृणु
अद्यप्रभृति लोकानामावासंयोहिदास्यति ! दण्डंतस्याहमतुलं पातयिष्ये न संशयः

चण्डालयोन्योऽघसथे लीका या प्रसविष्यति ।

तस्याश्च सन्ततिः पूर्वा सा च सद्यो न शिष्यति ॥ ११५ ॥

प्रसूते कन्यकेद्वे तुस्त्रीपुंसोर्बीजहारिणी । वातरूपामरूपाञ्च तस्याः प्रहरणन्तु ते ॥
वातरूपा निषेकान्तेसा यस्मै क्षिपतेसुतम् । सपुमान्वातशुक्रत्वंप्रयातिवनितापिवा
तथैव गच्छतःसद्योनिर्बीजत्वमरूपया । अस्नाताशीनरोयोऽसौतथाचापिवियोगिनः
विद्वेषिणी तुया कन्याभृकुटीकुटिलानना । तस्याद्वौ तनयौपुंसामपकारप्रकाशकौ
निर्बीजत्वं नरो यातिनारीवा शौचवर्जिता । पैशुन्याभिरतं लोलमसज्जलनिषेवणम्

पुरुषद्वेषिणश्चैतौ नरमाक्रम्य तिष्ठतः । मात्रा भ्रात्रा तथा मित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः
विद्विष्टो नाशमायातिपुरुषोधर्मतोऽर्थतः । एकस्तुस्वगुणाँल्लोके प्रकाशयतिपापकृत्
द्वितीयस्तु गुणान् मैत्रीं लोकस्थामपकर्षति ।
इत्येतेदौःसहाःसर्वैयक्ष्मणःसन्ततावथ । पापाचाराःसमाख्याता यैर्व्याप्तमखिलंजगत्
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दौःसहोत्पत्तिसमापनं नामैक-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रुद्रसर्गाभिधानम्

मार्कण्डेय उवाच

इत्येषतामसःसर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । रूद्रसर्गंप्रवक्ष्यामि तन्मेनिगदतः शृणु
तनयाश्च तथैवाष्टौ पत्न्यःपुत्राश्चते तथा । कल्पादावात्मनस्तुल्यंसुतंप्रध्यायतःप्रभोः
प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारोनीललोहितः । रुरोद सुस्वरंसोऽथद्रवंश्चद्विजसत्तम !
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ।
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

रुद्रस्त्वं देव! नाम्नासि मारोदीर्धैर्यमावह । एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्तकृत्वोरुरोद ह
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्तनामानि वै प्रभुः ।
स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च वै द्विज ! ॥ ६ ॥
भवं शर्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः । भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः
चक्रेनामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार ह । सूर्योजलं महीवह्निर्वायुराकाशमेव च
दीक्षितोब्राह्मणःसोमइत्येतास्तनवः क्रमात् । सुवर्चलातथैवोमाविकेशीचापरास्वधा

स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम् ।
सूर्य्यादीनां द्विजश्रेष्ठ! रुद्राद्यैर्नामभिः सह ॥ १० ॥
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात् सुताः ॥ ११ ॥
[एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसतींभार्यामविन्दत । दक्षकोपाच्चतत्याज सासतींस्वंकलेवरम्
शम्भोरवज्ञा यत्रास्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः ।
एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विषन्तो महेश्वरम् ॥ १३ ॥
भवन्तु ते वेदबाह्याः पापोपहतचेतसः । पाखण्डाचारनिरताः सर्वे निरयगामिनः
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते दरिद्राः शूद्रजापकाः ।
हिमवद्दुहितासाऽभून्मेनायांद्विजसत्तम! । तस्याभ्रातातुमैनाकःसखाम्भोधेरनुत्तमः
उपयेमे पुनश्चैनामनन्यां भगवान् भवः । देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत
श्रियञ्च देवदेवस्य पत्नीनारायणस्यया । आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्ज्जातौ सुतावुभौ ।
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च पिता मम महायशाः ॥ १८ ॥
मनस्विन्यामहंतस्मात् पुत्रोवेदशिरामम । धूम्रवत्यांसमभवत्प्राणस्यापिनिबोध मे
प्राणस्य द्युतिमान् पुत्र उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ।
अजराश्च तयोः पुत्रा पौत्राश्च बहवोऽभवन् ॥ २० ॥
पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत । विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रौमहात्मनः
तयोः पुत्रांस्तु वक्ष्येऽहं वंशसंकीर्त्तने द्विज! ।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ॥ २२ ॥
सिनीवाली कुहूश्चैव राका भानुमतीतथा । अनुसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्
सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम् ।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ॥ २४ ॥
पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्यःस्मृतःस्वायम्भुवेन्तरे । कर्दमश्चार्ववीरश्चसहिष्णुश्चसुतत्रयम्

क्षमा तुसुषुवेभार्या पुलहस्य प्रजापतेः। क्रतोस्तु सन्नतिर्भार्याबालिखिल्यानसूयत
षष्टिर्यानि सहस्राणि ऋषीणामूद्र्ध्वरेतसाम्।
उर्ज्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ॥ २७ ॥
रजोगात्रोद्र्ध्वबाहुश्च सवलश्चानघस्तथा ! सुतपाः शुक्रइत्येते सर्वेसप्तर्षयः स्मृताः
योऽसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः।
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ! ॥ २६ ॥
पावकं पवमानञ्च शुचिश्चापि जलाशिनम्। तेषां तु सन्ततावन्येचत्वारिंशच्चपञ्च च
कथ्यन्ते वहुशश्चैते पितापुत्रत्रयञ्च यत् । एवमेकोनपञ्चाशद्दुर्जयाः परिकीर्त्तिताः
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा ये व्याख्याता मया तव।
अग्निष्वात्ता वर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ॥ ३२ ॥
तेभ्यःस्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ! ॥ ३३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुद्रसर्गाभिधानवर्णनंनाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्वायम्भुवमन्वन्तरवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

स्वायम्भुवं त्वयाऽऽख्यातमेतन्मन्वन्तरञ्च यत्।
तदहं भगवन् ! सम्यक् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ १ ॥
मन्वन्तरप्रमाणञ्च देवा देवर्षयस्तथा। ये च क्षितीशा भगवन् ! देवेन्द्रश्चैव यस्तथा

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तराणां सङ्ख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः। मानुषेणप्रमाणेन श्रणुमन्वन्तरञ्च वै

त्रिंशत्कोट्यस्तु सङ्ख्याताः सहस्राणि च विंशतिः।
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतानि च सङ्ख्यया ॥ ४ ॥

मन्वन्तरप्रमाणञ्च इत्येतत् साधिकविना। अष्टौशतसहस्राणिदिव्ययासंख्ययास्मृतम्

द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च।
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ॥ ६ ॥

औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा। षडेतेमनवोऽतीतास्तथा वैवस्वतोऽधुना
सावर्णाःपञ्च रौच्याश्चभौत्याश्चागमिनस्त्वमी। एतेषांविस्तरंभूयोमन्वन्तरपरिग्रहे
वक्ष्ये देवानृषींश्चैव यक्षेन्द्राः पितरश्चये। उत्पत्तिसंग्रहं ब्रह्मन्! श्रूयतामस्यसन्ततिः

यच्च तेषामभूत्क्षेत्रं तत्पुत्राणां महात्मनाम्।
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पुत्रास्तु तत्समाः ॥ १० ॥

यैरियं पृथवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता। ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता ॥११
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगेतथा। प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैःपौत्रैःस्वायम्भुवस्यच
प्रियव्रतात्प्रजावत्यां वीरात्कन्याव्यजायत। कन्यासातुमहाभागाकर्द्दमस्यप्रजापतेः
कन्ये द्वेदशपुत्रांश्च सम्राट् कुक्षी च ते उभे। तयोर्वैभ्रातरः शूराः प्रजापतिसमादश

आग्नीध्रो मेधातिथिश्च वपुष्मांश्च तथापरः।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान् भव्यःसवनः सप्त एव ते ॥ १५ ॥

मेधाग्निबाहुमित्रास्तु त्रयोयोगपरायणाः। जातिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधुः
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तान् सप्तसप्तसुपार्थिवान्। द्वीपेषुतेन धर्मेण द्वीपांश्चैव निबोध मे
जम्बुद्वीपे तथाग्नीध्रं राजानं कृतवान् पिता। प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापितेनमेधातिथिःकृतः

शाल्मलेस्तु वपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तं कुशाह्वये।
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमन्तं भव्यं शाकाह्वयेश्वरम् ॥ १९ ॥

पुष्कराधिपतिश्चापि सवनंकृतवान्सुतम्। महावीतोधातकिश्चपुष्कराधिपतेःसुतौ
द्विधा कृत्वातयोर्वर्षंपुष्करेःसन्न्यवेशयत्। भव्यस्यपुत्राःसप्तासन्नामतस्तान्निबोधमे
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीवकः। कुशोत्तरोऽथ मेधावी सप्तमस्तु महाद्रुमः

तन्नामकानि वर्षाणि शाकद्वीपे चकारसः । तथाद्युतिमतःसप्तपुत्रास्तांश्च निबोधमे
कुशलो मनुगश्चोष्णः प्राकरश्चार्थकारकः । मुनिश्चदुन्दुभिश्चैव सप्तमःपरिकीर्तितः
तेषां स्वनामधेयानिक्रौञ्चद्वीपेतथाभवन् । ज्योतिष्मतःकुशद्वीपेपुत्रनामाङ्कितानिवै

तत्रापि सप्त वर्षाणि तेषां नामानि मे शृणु ।
तस्यापि सप्तपुत्रास्तु ज्ञेयास्तेऽपि महौजसः ।
उद्भिदं वैष्णवश्चैव सुरथं लम्बनं तथा ॥ २६ ॥

धृतिमत्प्राकरश्चैव कापिलं चापिसप्तमम् । वपुष्मतःसुताःसप्तशालमलेशस्यचाभवन्
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा । वैद्युतो मानसश्चैव केतुमान्सप्तमस्तथा
तथैव शालमलेस्तेषां समनामानि सप्त वै । सप्तमेधातिथेःपुत्राःप्लक्षद्वीपेश्वरस्यवै

येषां नामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तु सप्तधा ।
पूर्वं शाकभवं वर्षं शिशिरं तु सुखोदयम् ॥ ३० ॥

आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवं तथा । प्लक्षद्वीपादिभूतेषु शाकद्वीपान्तिमेषु वै

ज्ञेयः पञ्चसु धर्मश्च वर्णाश्रमविभागजः ।
नित्यः स्वाभाविकश्चैव अहिंसाविधिवर्जितः ॥ ३२ ॥

यानि किम्पुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् । सुखमायुश्चरूपं च बलंधर्मश्च नित्यशः
पञ्चस्वेतेषु वर्षेषु सर्वसाधारणः स्मृतः । अग्नीध्राय पिता पूर्वं जम्बुद्वीपंददौद्विज

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमा नव ।
ज्येष्ठो नाभिरितिख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः ॥ ३५ ॥

हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः । वश्यश्च पञ्चमःपुत्रोहिरण्यःषष्ठ उच्यते ॥
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमःस्मृतः । नवमःकेतुमालश्चतन्नाम्नावर्षसंस्थितिः

यानि किम्पुरुषाख्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् ।
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥ ३८ ॥
विपर्य्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ॥ ३९ ॥

न वैचतुर्युगावस्थानार्तवाश्चतवोन च । आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तुऋषभोऽभूत्सुतोद्विज ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः । सोऽभिषिच्यर्षभःपुत्रंमहाप्राव्राज्यमास्थितः तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः । हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥

तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।
भरतस्याप्यभूत्पुत्रः सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ ४३ ॥
तस्मिन् राज्यं समावेश्य भरतोऽपि वनं ययौ ।
एतेषां पुत्रपौत्रैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ४४ ॥
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तु भुक्ता स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एष स्वायम्भुवः सर्गः कथितस्ते द्विजोत्तम ॥ ४५ ॥
पूर्वमन्वन्तरे सम्यक् किमन्यत्कथयामि ते ॥ ४६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे स्वायम्भुवमन्वन्तरवर्णनंनाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति द्विज ! ।
कियन्ति चैव वर्षाणि तेषां नद्यश्च का मुने ! ॥ १ ॥
महाभूतप्रमाणञ्च लोकालोकं तथैव च ।
पर्य्यासं परिमाणञ्च गतिं चन्द्रार्कयोरपि ॥ २ ॥
एतत्प्रब्रूहि मे सर्वं विस्तरेण महामुने ! ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शतार्द्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशोद्विज !।
तस्या हि स्थानमखिलं कथयामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

ये ते द्वीपामयाप्रोक्ताजम्बुद्वीपादयोद्विज । पुष्करान्तामहाभागशृण्वेषांविस्तरंपुनः

द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपो जम्बुः प्लक्षोऽथ शाल्मलः ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करद्वीप एव च ॥ ६ ॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धिभिः । द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्धयासर्वतः परिवेष्टिताः

जम्बुद्वीपस्य संस्थानं प्रवक्ष्येऽहंनिबोधमे । लक्षमेकंयोजनानांवृत्तौविस्तारदैर्घ्यतः

हिमवान् हेमकूटश्च वृषभो मेरुरेव च ।
नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी सप्ताऽस्मिन् वर्षपर्वताः ॥ ९ ॥

द्वौ लक्षयोजनायामौ मध्ये तत्र महाचलौ ।
तयोर्दक्षिणतो यौ तु यौ तथोत्तरतो गिरी ॥ १० ॥

दशभिर्दशभिर्न्यूनैः सहस्रैस्तैः परस्परम् ।
द्विसाहस्रोच्छ्रयाः सर्वे तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ ११ ॥

समुद्रान्तःप्रविष्टाश्चषडस्मिन्वर्षपर्वताः । दक्षिणोत्तरतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षितिः

वेद्यर्द्धेदक्षिणेत्रीणित्रीणिवर्षाणिचोत्तरे । इलावृतंतयोर्मध्येचन्द्रार्द्धाकारवत्स्थितम्

ततः पूर्वेणभद्राश्वंकेतुमालश्चपश्चिमे । इलावृतस्य मध्ये तु मेरुः कनकपर्वतः ॥ १४॥

चतुरशीतिसाहस्रस्तस्योच्छ्रायो महागिरेः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तारः षोडशैव तु ॥ १५ ॥

शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।
शुक्लः पीतोऽसितो रक्तः प्राच्यादिषु यथाक्रमम् ॥ १६ ॥

विप्रो वैश्यस्तथा शूद्रः क्षत्रियश्च सवर्णतः ।तस्योपरि तथैवाष्टौपूर्वादिषुयथाक्रमम्

इन्द्रादिलोकपालानां तन्मध्येब्रह्मणःसभा । योजनानांसहस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता

अयुतोच्छ्रायस्तस्याधस्तथा विष्कम्भपर्वतः । प्राच्यादिषुक्रमेणैवमन्दरोगन्धमादनः

विपुलश्च सुपार्श्वश्च केतुपादपशोभिताः । कदम्बो मन्दरे केतुर्जम्बुर्वैगन्धमादने ॥
विपुले च तथाऽश्वत्थः सुपार्श्वे च वटोमहान् ।
एकादशशतायामा योजनानामिमे नगाः ॥ २१ ॥
जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यांदिशि पर्वतौ । आनीलनिषधौ प्राप्तौ परस्परनिरन्तरौ ॥
निषधः पारियात्रश्च मेरोः पार्श्वे तु पश्चिमे । यथा पूर्वौतथाचैतावानीलनिषधायतौ
कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणेनमहावलौ । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ
शृङ्गवान् जारुधिश्चैव तथैवोत्तरपर्वतौ । यथैव दक्षिणे तद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ
मर्यादापर्वताह्येते कथ्यन्तेऽष्टौ द्विजोत्तम !। हिमवद्धेमकूटादि पर्वतानां परस्परम्
नव योजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् । मेरोरिलावृते तद्वदन्तरे वै चतुर्दिशम्
फलानि यानि वै जम्ब्वा गन्धमादनपर्वते । गजदेहप्रमाणानि पतन्ति गिरिमूर्द्धनि
तेषां स्रावात् प्रभवति ख्याता जम्बूनदीति वै ।
यत्र जाम्बूनदं नाम कनकं सम्प्रजायते ॥ २६ ॥
सा परिक्रम्यवै मेरुं जम्बूमूलं पुनर्नदी । विशति द्विजशार्दूल! पीयमाना जनैश्च तैः
भद्राश्वेऽश्वशिरा विष्णुर्भारते कूर्मसंस्थितिः ।
वराहः केतुमाले च मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥ ३१ ॥
तेषु नक्षत्रविन्यासाद्विषयाः समवस्थिताः । चतुर्ष्वपिद्विजश्रेष्ठ! ग्रहाभिभवपाठकाः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोषे जम्बूद्वीपवर्णनंनाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

——*——

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

शैलेषु मन्दाराद्येषु चतुर्ष्वेव द्विजोत्तम! । घनानियानि चत्वारि सरांसिचनिबोधमे
पूर्वं चैत्ररथं नाम दक्षिणे नन्दनं वनम् । वैभ्राजं पश्चिमे शैले सावित्रं चोत्तराचले ॥
अरुणोदं सरः पूर्वं मानसं दक्षिणे तथा । शीतोदं पश्चिमे मेरोर्महाभद्रं तथोत्तरे ॥
शीतार्तश्चक्रमुञ्जश्च कुलीरोऽथसुकङ्कवान् । मणिशैलोऽथवृषवान् महानीलोभवाचलः
सुविन्दुर्मन्दरो वेणुस्तामसो निषधस्तथा । देवशैलश्च पूर्वेण मन्दरस्य महाचलः ॥

त्रिकूटःशिखराद्रिश्च कलिङ्गोऽथ पतङ्गकः ।
रुचकः सानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथ विशाखवान् ॥ ६ ॥

श्वेतोदरः समूलश्च वसुधारश्च रत्नवान् । एकश्रृङ्गो महाशैलो राजशैलः पिपाठकः ॥

पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः ।
इत्येते दक्षिणे पार्श्वे मेरोः प्रोक्ता महाचलाः ॥ ८ ॥

सुरक्षः शिशिराक्षश्च वैदूर्य्यः कपिलस्तथा । पिञ्जरोऽथ महाभद्रःसुरसःकपिलोमधु

अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डरश्चाचलोत्तमः ।
सहस्रशिखरश्चाद्रिः पारियात्रः सश्रृङ्गवान् ॥ १० ॥
पश्चिमेन तथा मेरोर्विष्कम्भात् पश्चिमाद्ब बहिः ।
एतेऽचलाः समाख्याताः श्रृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥ ११ ॥

शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसनाभस्तथाचलः । कपिलेन्द्रस्तथाशैलः सानुमान्नीलएवच
स्वर्णश्रृङ्गः शातश्रृङ्गः पुष्पको मेघपर्वतः । विरजाक्षोवराहाद्रिर्मयूरोजारुधिस्तथा
इत्येते कथिता ब्रह्मन्!मेरोरुत्तरतो नगाः । एतेषां पर्वतानांतु द्रोण्योऽतीवमनोहराः
वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः । तासु पुण्यकृतां जन्ममनुष्याणां द्विजोत्तम!

एते भौमा द्विजश्रेष्ठ ! स्वर्गाः स्वर्गगुणाधिकाः ।
न तासु पुण्यपापानामपूर्व्वाणामुपार्जनम् ॥ १६ ॥
पुण्योपभोगा एवोक्ता देवानामपितास्वपि । शातान्ताद्येषु चैतेषुशैलेषु द्विजसत्तम!
विद्याधराणां यक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम् ।
देवानाञ्च महावासा गन्धर्व्वाणां च शोभनाः ॥ १८ ॥
महापुण्या मनोज्ञैश्च सदेवोपगनैर्युताः । सरांसिच मनोज्ञानि सर्वर्तुसुखदोऽनिलः
नचैतेषु मनुष्याणां वैमनस्यानि कुत्रचित् । तदेतत् पार्थिवं पद्मंचतुष्पत्रंमयोदितम्
भद्राश्वभारताद्यानि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम् । भारतं नामयद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम्
तत् कर्मभूमिर्नान्यत्र संप्राप्तिःपुण्यपापयोः । एतत्प्रधानंविज्ञेयं यत्रसर्वंप्रतिष्ठितम्
तस्मात् स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यनारकावपि ।
तिर्य्यक्त्वमथवाप्यन्यत् नरः प्राप्नोति वै द्विज ! ॥ २३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोषे जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनं नाम
पञ्चपञ्चाशमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गङ्गावतारवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

धराधारं जगद्योनिं (नेः) पदं नारायणस्यच । ततःप्रवृत्तायादेवीगङ्गात्रिपथगामिनी
सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमम्भसाम् ।
ततः सम्वध्य (सम्वर्द्ध) मानार्करश्मिसङ्गतिपावनी ॥ २ ॥
पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्द्धा ततो ययौ । मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती विवर्तिजा

विकीर्य्यमाणसलिला निरालम्बापपातसा । मन्दराद्येषु पादेषु प्रविभक्तोदकासमम्

चतुर्ष्वपि पपाताम्बु विभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया ।

पूर्वा सीतेतिविख्याता ययौ चैत्ररथं वनम् ॥ ५ ॥

तत् प्लावयित्वा च ययौ वरुणोदं सरोवरम् ।

शीतान्तश्च गिरिं तस्मात्ततश्चान्यान् गिरीन् क्रमात् ॥ ६ ॥

गत्वा भुवं समासाद्य भद्राश्वाज्जलधिं गता । तथैवालकनन्दाख्यंदक्षिणे गन्धमादने

मेरुपादवनंगत्वा नन्दनं देवनन्दनम् । मानसञ्च महावेगात् प्लावयित्वा सरोवरम्

आसाद्य शैलराजानं रम्यं हि शिखरं तथा ।

तस्माच्च पर्वतान् सर्वान् दक्षिणोपक्रमोदितान् ॥ ६ ॥

तान्प्लावयित्वासम्प्राप्ताहिमवन्तंमहागिरिम् । दधारतत्रतांशम्भुर्नमुमोचवृषध्वजः

भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाऽऽराधितो विभुः ।

तत्र मुक्ता चं शर्व्वेण सप्तधा दक्षिणोदधिम् ॥ ११ ॥

प्रविवेशत्रिधाप्राच्यां प्लावयन्ती महानदी । भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेनदक्षिणाम्

तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी ।

स्वर (सुच) क्षुरिति विख्याता वैभ्राजं साऽचलं ययौ ॥ १३ ॥

शीतोदश्च सरस्तस्मात् प्लावयन्ती महानदी ।

तस्मात् क्रमेण चाद्रीणां शिखरेषु निपत्य सा ॥ १४ ॥

स्वरक्षुः पर्वतं प्राप्ता ततश्च त्रिशिखं गता ।

केतुमालं समासाद्य प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥ १५ ॥

गत्वोत्तरां दिशं गङ्गा दिव्या सा च महानदी ।

तस्माच्च ऋषभादींश्च क्रमादुत्तरजान्नगान् ॥ १६ ॥

सुपार्श्वन्तु तथैवाद्रिं मेरुपादं हि सा गता ।

तत्र (भद्र) सोमेति विख्याता सा ययौ सवितुर्वनम् ॥ १७ ॥

तत्पावयन्ती सम्प्राप्ता महाभद्रं सरोवरम् । ततश्च शङ्कूटं सा प्रयाता वै महानदी

तस्माच्च वृषभादीन् सा क्रमात् प्राप्य शिलोच्चयान् ।

महार्णवमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान् कुरून् ॥ १९ ॥

एवमेषा मया गङ्गा कथिता ते द्विजर्षभ! । जम्बुद्वीपनिवेशाश्च वर्षाणि च यथातथम् वसन्ति तेषु सर्वेषुप्रजाः किम्पुरुषादिषु । सुखप्रायानिरातङ्कान्यूनतोत्कर्षवर्जिताः नवस्वपि च वर्षेषु सप्तसप्त कुलाचलाः । एकैकस्मिंस्तदादेशेनद्यश्चाद्रिः विनिःसृताः यानि किम्पुरुषाद्यानिवर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम! । तेषूद्भिज्जानितोयानि मेघवार्यत्रभारते

वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी तथा ।

कर्मजा च नृणां सिद्धिर्व्वर्षेष्वेतेषु चाऽष्टसु ॥ २४ ॥

कामप्रदेभ्यो वृक्षेभ्यो वार्क्षी सिद्धिः स्वभावजा ।

स्वाभाविकी समाख्याता तृप्तिर्देश्या च दैशिकी ॥ २५ ॥

अपां सौक्ष्माच्च तोयोत्था ध्यानोपेता च मानसी ।

उपासनादि कार्यात्तु धर्मजा (कर्मजा) साप्युदाहृता ॥ २६ ॥

न चैतेषु युगावस्थानाधयो व्याधयो न च । पुण्यापुण्यसमारम्भो नैवतेषुद्विजोत्तम

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे गङ्गावतारवर्णनंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

—·—:*:—·—

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नद्यादिवर्णनपूर्वकजनपदवर्णनम्

कौष्टुकिरुवाच

भगवन् !कथितंत्वेतज्जम्बुद्वीपं समासतः । यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म नान्यत्र पुण्यदम्

पापाय वा महाभाग! वर्जयित्वा तु भारतम् ।

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यञ्चान्तश्च गम्यते ॥ २ ॥

न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौकर्मविधीयते । तस्माद्विस्तरशो ब्रह्मन्! ममैतद्भारतं वद
ये चास्य भेदा यावन्तो यथावत् स्थितिरेव च ।
वर्षोऽयं द्विजशार्दूल !ये चाऽस्मिन् देशपर्वताः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

भारतस्यास्यवर्षस्य नवभेदान्निबोधमे । समुद्रान्तरिताञ्ज्ञेयास्तेत्वगम्याःपरस्परम्
इन्द्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥ ६ ॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपःसागरसम्वृतः । योजनानांसहस्रंवै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तःस्थिता द्विज ! ॥ ८ ॥
इज्याध्यायवणिज्याद्यैःकर्मभिःकृतपावनाः । तेषांसंव्यवहारश्चएभिःकर्मभिरिष्यते
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यंपापं च वै तदा । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वत
विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैवात्र कुलाचलाः । तेषांसहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः
विस्तारोच्छ्रयिणोरम्याविपुलाश्चात्रसानवः । कोलाहलःसवैभ्राजोमन्दरोदर्दुराचलः
वातस्वनो वैद्युतश्चमैनाकः स्वरसस्तथा । तुङ्गप्रस्थो नागगिरीरोचनःपाण्डराचलः
पुष्पोगिरिर्दुर्जयन्तो रैवतोऽर्बुद एव च । ऋष्यमूकः सगोमन्तःकूटशैलः कृतस्मरः
श्रीपर्वतश्च कोरश्च शतशोऽन्येवपर्वताः । तैर्विमिश्राजनपदाम्लेच्छाश्चार्याश्चभागशः
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ् निबोध मे ।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥ १६ ॥
यमुना च शतद्रुश्च वितस्तेरावती कुहूः । गोमती धूतपापा च बाहुदा सदृषद्वती
विपाशा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा ।
कौशिकी चाऽऽपगा विप्र! हिमवत्पादनिःसृताः ॥ १८ ॥
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च । वेणासा नन्दना चैव सदानीरा मही तथा
पाराचर्मण्वती नूपीविदिशावेत्रवत्यपि । क्षिप्राह्यवन्तीचतथापारियात्राश्रयांःस्मृताः

शोणोमहानदश्चैव नर्मदासुरथाऽद्रिजा । मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा
चित्रोत्पला सतमसा करमोदा पिशाचिका ।
तथान्या पिप्पलश्रोणिर्विपाशा वञ्जुला नदी ॥ २२ ॥
सुमेरुजा शुक्तिमती शकुली त्रिदिवाक्रमुः । ऋक्षपादप्रसूतावै तथान्या वेगवाहिनी
क्षिप्रापयोष्णीनिर्विन्ध्यातापीसनिषधावती । वेण्यावैतरणीचैवसिनीवालीकुमुद्वती
करतोयामहागौरीदुर्गाचान्तःशिवातथा । विन्ध्यपादप्रसूतास्तानद्यःपुण्यजलाःशुभाः
गोदावरी भीमरथी कृष्णावेण्या तथापरा । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापगा
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिदुत्तमाः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा सूत्पलावती ॥ २७ ॥
मलयाद्रिसमुद्भूता नद्यः शीतजलास्त्विमाः ।
पितृसोमर्षिकुल्या च इक्षुका त्रिदिवा च या ॥ २८ ॥
लाङ्गूलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ॥ २९ ॥
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गा समुद्रगाः ॥ ३० ॥
विश्वस्यमातरःसर्वाःसर्वपापहराःस्मृताः । अन्याःसहस्रशश्चोक्ताःक्षुद्रनद्योद्विजोत्तम!
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदा कालवहाश्च याः ।
मत्स्याश्वकूटाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥ ३२ ॥
अर्बुदाश्चार्कलिङ्गाश्च मलकाश्चवृकैःसह । मध्यदेश्याजनपदाःप्रायशोऽमीप्रकीर्त्तिताः
सह्यस्य चोत्तरे यास्तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ३४ ॥
गोवर्द्धनं पुरंरम्यं भार्गवस्यमहात्मनः । वाह्लीकावाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः
अपरान्ताश्चशूद्राश्च पल्लवाश्चर्मखण्डिकाः । गान्धारा यवनाश्चैवसिन्धुसौवीरमद्रकाः
शतद्रुजाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः । माठरा बहुभद्राश्च कैकेया दशमालिकाः

क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च । काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वरा हर्षवर्द्धनाः ॥
चीनाश्चैव तुषाराश्चबहुला बाह्यतोनराः । आत्रेयाश्चभरद्वाजाः पुष्कलाश्च कुशेरुकाः
लम्पाकाःशूलकाराश्चचुलिकाः जागुडैःसह । औपधाश्चानिमद्राश्चकिरातानाञ्चजातयः

तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तुङ्गणास्तथा
शूलिकाः कुहकाश्चैव ऊर्ण्णा दार्वास्तथैव च ॥ ४१ ॥
एते देशा ह्यु दीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोध मे ।
अभ्रारका मुदकरा अन्तर्गिरि वहिर्गिराः ॥ ४२ ॥

तथा प्लवङ्गा रङ्गेया मानदा मानवर्त्तिकाः । ब्राह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा ज्ञेयमल्लकाः

प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
मल्ला मगधगोमन्ताः (गोमेदाः) प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥ ४४ ॥

अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः । पाण्ड्याश्च केवलाश्चैवगोलाङ्गूलास्तथैवच
शैलूषा मूषिकाश्चैव कुसुमानाम वासकाः । महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्वशः

आभीराः सह वैशिक्या आढक्याः शवराश्च ये ।
पुलिन्दा विन्ध्यमौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ ४७ ॥
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः ।
नैषिकाः कुन्तला अन्ध्रा उद्भिदा वनदारकाः ॥ ४८ ॥
दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरांस्तान् निवोध मे ।
सूर्यारकाः कालिवला दुर्गाश्चामीकटैः सह ॥ ४६ ॥

पुलिन्दाश्च सुमीनाश्च रूपपाः स्वापदैःसह । तथा कुरुमिनश्चैव सर्वेचैव कठाक्षराः

(कारस्करा लोहजङ्घा वाजेया राजभद्रकाः) ।
तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा विदिशास्तथा ॥ ५१ ॥
(तुषारास्तुवुराश्चैव सर्वे चैव करस्कराः ॥ ५२ ॥

नासिक्यावाश्च ये चान्ये येचैवोत्तरनर्मदाः । भीरुकच्छाः समाहेयाःसहसारस्वतैरपि
काश्मीराश्चसुराष्ट्राश्चअवन्त्याश्चार्बुदैःसह । इत्येतेह्यपरान्ताश्चशृणुविन्धनिवासिनः

सरजाश्च करूषाश्च केवलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोज्याः किष्किन्धकैः सह ॥ ५५ ॥
तुम्बुरास्तुम्बुलाश्चैव पटवो नैषधैः सह ।

अन्नजास्तुष्टिकाराश्च वीरहोत्रा ह्यवन्तयः । एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये । नीहाराहंसमार्गाश्चकुरवो गुर्गणाःखसाः कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णादार्वाःसकृत्रकाः । त्रिगर्त्तागालवाश्चैव किरातास्तामसैःसह कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः । एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः । हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्ययथा गुणः तदेतद्भारतं वर्षं सर्वबीजं द्विजोत्तम ! । ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मर्त्यतांस्तथा ॥

मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्वे सरीसृपाः ।
स्थावराणां च सर्वेषामितो ब्रह्मन् ! शुभाशुभैः ॥ ६२ ॥

प्रयाति कर्मभूर्ब्रह्मन् !नान्या लोकेषु विद्यते । देवानामपि विप्रर्षे ! सदा एषमनोरथः

अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ ।
मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ॥ ६४ ॥
तत्कर्मनिगडग्रस्तैः स्वकर्मख्यापनोत्सुकैः ।
न किञ्चित् क्रियते कर्म सुखलेशोपबृंहितैः ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नद्यादिवर्णनपूर्वकजनपदवर्णनं नाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

———

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कूर्म्मसन्निवेशवर्णनम्

कौष्टुकिरुवाच

भगवन्! कथितं सम्यक् भवता भारतंमम । सरितः पर्वता देशायेच तत्र वसन्ति वै

किन्तु कूर्मस्त्वया पूर्वं भारते भगवान् हरिः ।

कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥

कथं ससंस्थितो देवःकूर्मरूपी जनार्दनः । शुभाशुभं मनुष्याणां व्यज्यतेचततःकथम्

यथामुखं यथापादं तस्य तद्ब्रूह्यशेषतः ।

मार्कण्डेय उवाच

प्राङ्मुखो भगवन् ! देवः कूर्मरूपी व्यवस्थितः । आक्रम्यभारतं वर्षंनवभेदमिदंद्विज

नवधा संस्थितान्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः ।

विषयाश्च द्विजश्रेष्ठ ! ये सम्यक् तान्निबोध मे ॥ ५ ॥

वेदमन्त्रा (वेदिमद्रारि) विमाण्डव्याः शाल्वनीपास्तथा शकाः ।

उज्जिहानास्तथा वत्स ! घोषसंख्यास्तथा खशाः ॥ ६ ॥

मध्ये सारस्वता मत्स्याः शूरसेनाः समाथुराः ।

धर्मारण्या ज्योतिषिका गौरग्रीवा गुडाश्मकाः ॥ ७ ॥

वैदेहकाःसपाञ्चालाःसङ्केताःकङ्कमारुताः । कालकोटिसपाषण्डाःपारियात्रनिवासिनः

कापिङ्गलाः कुरुर्वाह्यस्तथैवोदुम्बरा जनाः । गजाह्वयाश्चकूर्मस्य जलमध्यनिवासिनः

कृत्तिका रोहिणी सौम्या एतेषां मध्यवासिनाम् ।

नक्षत्रत्रितयं विप्र ! शुभाशुभविपाकदम् ॥ १० ॥

वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव जम्वूवाख्योमानवाचलः । शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखःखर्मकः कर्वटाशनः

तथाचन्द्रेश्वराश्चैव खशाश्च मगधास्तथा । गिरयो मैथिलाःशुभ्रास्तथावदनदन्तुराः

प्राग्ज्योतिषाः सलौहित्याः सामुद्राः पुरुषादकाः ।
पूर्णोत्कटो भद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ! ॥ १३ ॥

काशयो मेखलामुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः । वर्द्धमानाकोशलाश्चमुखेकूर्मस्यसंस्थिताः
रौद्रः पुनर्वसुः पुष्यो नक्षत्रत्रितयं मुखे । पादेतु दक्षिणे देशाः क्रौष्टुके वदतः श्रृणु

कलिङ्गवङ्गजठराः कोशला मू (मृ) षिकास्तथा ।
चेदयश्चोद्र्ध्वकर्णाश्च मत्स्याद्या विन्ध्यवासिनः ॥ १६ ॥

विदर्भानारिकेलाश्चधर्मद्वीपास्तथैलिकाः ।व्याघ्रग्रावामहाग्रीवास्त्रैपुराःश्मश्रुधारिणः

कैष्किन्ध्या हैमकूटाश्च निषधाः कटकस्थलाः ।
दशार्णा हारिका नग्ना निषादाः काकुलालकाः ॥ १८ ॥

तथैव पर्णशवराः पादे वै पूर्वदक्षिणे । आश्लेषर्क्षंतथा पैत्र्यं फाल्गुन्यःप्रथमास्तथा
नक्षत्रत्रितयं पादमाश्रितं पूर्वदक्षिणम् । लङ्काकालाजिनाश्चैव शैलिकानिकटास्तथा
महेन्द्रमलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये । कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः सकोङ्कणाः
सर्वाश्चैव तथाभीरावेण्यास्तीरनिवासिनः । अवन्तयोदासपुरास्तथैवाकारिणोजनाः
महाराष्ट्राः सकर्णाटागोनर्द्दाश्चित्रकूटकाः । चोलाःकोलगिराश्चैव क्रौञ्चद्वीपजटाधराः
कावेरी ऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैवयेजनाः । शङ्खशुक्त्यादिवैदूर्यशैलप्रान्तचराश्च ये
तथा वारिचराःकोलाःचर्मपट्टनिवासिनः । गणवाह्याःपराःकृष्णाद्वीपवासनिवासिनः

सूर्याद्रौ कुमुदाद्रौ च ते वसन्ति तथा जनाः ।
औखावनाः (रौद्रस्वनाः) सपिशिकास्तथा ये कर्मनायकाः ॥ २६ ॥
दक्षिणाः कौरुषाये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः ।
ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः ॥ २७ ॥

तिलङ्गाः कुञ्जरदरीकच्छवासाश्चयेजनाः । ताम्रपर्णीतथाकुक्षिरिति कूर्मस्यदक्षिणः
फाल्गुन्यश्चोत्तराहस्ताचित्राचर्क्षत्रयंद्विज! । कूर्मस्यदक्षिणेकुक्षौबाह्यपादस्तथापरम्
काम्बोजाःपह्लवाश्चैवतथैववडवामुखाः । तथाचसिन्धुसौवीराः सानर्त्तावनितामुखाः

द्रावणाः सार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधेयवर्वराः ।

किराताः पारदाः पाण्ड्यास्तथा पारशवाः कलाः ॥ ३१ ॥
धूर्त्तका हैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः । सौराष्ट्रादरदाश्चैवद्राविडाश्च महार्णवाः
एते जनपदाः पादेस्थिता वै दक्षिणेऽपरे । स्वात्यो विशाखा मैत्रश्चनक्षत्रत्रयमेव च
मणिमेघः क्षुराद्रिश्च खञ्जनोऽस्तगिरिस्तथा ।
अपरान्तिका है(नौ) हयाश्च शान्तिका विप्रशस्तकाः ॥ ३४ ॥
कोकङ्कणाः पञ्चनदका वमनाह्यवरास्तथा । तारक्षुराह्यङ्गतकाःशर्कराःशालमवेश्मकाः
गुरुस्वराः फल्नकावेणुमत्याश्चयेजनाः । तथा फल्गुलुकाघोरा गुरुहाश्चकलास्तथा
एकेक्षणा वाजिकेशा दीर्घग्रीवाः सचूलिकाः ।
अश्वकेशास्तथा पुच्छे जनाः कूर्मस्य संस्थिताः ॥ ३७ ॥
ऐन्द्रंमूलंतथाषाढा नक्षत्रत्रयमेव च । माण्डव्याश्चण्डखाराश्च अश्वकालनतास्तथा
कुन्यतालडहाश्चैव स्त्रीबाह्या बालिकास्तथा ।
नृसिंहा वेणुमत्याश्च वलावस्थास्तथापरे ॥ ३९ ॥
धर्मबद्धास्तथालूकाउरुकर्मस्थिताजनाः । वामपादेजनाःपार्श्वेस्थिताःकूर्मस्यभागुरे
आषाढाश्रवणे चैवधनिष्ठायत्रसंस्थिता । कैलासोहिमवांश्चैवधनुष्मान्वसुमांस्तथा
क्रौञ्चाः कुरुवकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः ।
रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाःसयामुनाः ॥ ४२ ॥
अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च अग्नीज्याः सार्दना जनाः ।
तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिविडाः केशधारिणः ॥ ४३ ॥
दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च । पुष्कलाधर्मकैरातास्तथातक्षशिलाश्रयाः
अम्बाला मालवा मद्रा वेणुकाः सवदन्तिकाः ।
पिङ्गला मानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ॥ ४५ ॥
माण्डव्याभूतियुवकाःशातकाहेमतारकाः । यशोमत्याःसगान्धाराःखरसागरराशयः
यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः श्यामकास्तथा ।
क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥ ४७ ॥

वारुणश्चात्र नक्षत्रं तत्र प्रौष्ठपदाद्वयम् । येन किन्नरराज्यञ्च पशुपालं सकीचकम् ॥
काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा । दरदास्त्वङ्गणाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः ॥
सैरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनवाह्यकाः । किरातकौशिकानन्दा जनाः पह्लवलोलनाः
दार्वादा मरकाश्चैव कुरटाश्चान्नदारकाः । एकपादाः खशाघोषाःस्वर्गभौमानवद्यकाः
तथा सयवना हिङ्गाश्चीरप्रावरणाश्च ये । त्रिनेत्राः पौरवाश्चैवगन्धर्वाश्चद्विजोत्तम
पूर्वोत्तरं तु कूर्मस्य पादमेतेसमाश्रिताः । रेवत्याश्चाश्विदैवत्यं याम्यश्चर्क्षमितित्रयम्
तत्र पादे समाख्यातं पाकाय मुनिसत्तम! । देशेष्वेतेषु चैतानिनक्षत्राण्यपि वै द्विज

एतत्पीडा अमी देशाः पीड्यन्ते ये क्रमोदिताः ।
यान्ति चाभ्युदयं विप्र ग्रहैः सम्यगवस्थितैः ॥ ५५ ॥

यस्यर्क्षस्य पतिर्यो वै ग्रहस्तद्भावितो भयम् । तद्देशस्य मुनिश्रेष्ठतदुत्कर्षेशुभागमः
प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् । भयं लोकस्य भवति शोभनं वाद्विजोत्तम

स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोः सामान्यमिति भीतिदम् ।
ग्रहैर्भवति पीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ॥ ५८ ॥

तथैव शोभनःपाकोदुःस्थितैश्चतथा ग्रहैः । अल्पोपकाराय नृणांदेशर्क्षैश्चात्मनोबुधैः
द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सुतनयेषु वा । भार्यायांचग्रहेदुःस्थेभयं पुण्यवतांनृणाम्

आत्मन्यथाल्पपुण्यानां सर्वत्रैवातिपापिनाम् ।
नैकत्रापि ह्यपापानां भयमस्ति कदाचन ॥ ६१ ॥
दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् ।
नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥ ६२ ॥

परस्पराभिरक्षा च ग्रहादौस्थ्येन जायते । एतेभ्यएवविप्रेन्द्रशुभहानिस्तथाशुभैः ॥
यदेतत्कूर्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् । एतत्तुदेशसामान्यमशुभं शुभमेव च ॥
तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षग्रहपीडां तथात्मनः । कुर्व्वीत शान्तिमेधावीलोकवादांश्चसत्तम
आकाशाद्देवतानाञ्चदैत्यादीनाञ्चदौर्हृदाः । पृथ्व्यांपतन्तितेलोकेलोकवादाइतिश्रुताः
तां तथैव बुधःकुर्य्याल्लोकवादान्नहापयेत् । तेषां तत्करणान्नृणांयुक्तोदुष्टागमक्षयः

शुभोदयं प्रहानिञ्च पापानां द्विजसत्तम! ।
प्रज्ञाहानिं प्रकुर्युस्ते द्रव्यादीनाञ्च कुर्वते ॥ ६८ ॥
तस्माच्छान्तिपरःप्राज्ञो लोकवादरतस्तथा ।
लोकवादांश्च शान्तीश्च ग्रहपीडासु कारयेत् ॥ ६९ ॥
अद्रोहानुपवासांश्च शस्तं चैत्यादिवन्दनम् । जपंहोमंतथादानंस्नानंक्रोधादिवर्जनम्
अद्रोहः सर्वभूतेषु मैत्रीं कुर्य्याच्च पण्डितः । वर्जयेदसतींवाचमतिवादांस्तथैव च ॥
ग्रहपूजाञ्च कुर्वीत सर्वपीडासु मानवः । एवंशाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम
प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः ।
एष कूर्मो मयाऽऽख्यातो भारते भगवान् विभुः ॥ ७३ ॥
नारायणो ह्यचिन्त्यात्मायत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् । तत्रदेवाःस्थिताःसर्वेप्रतिनक्षत्रसंश्रयाः
तथा मध्ये हुतवहः पृथ्वी सोमश्च वै द्विज ! ।
मेषादयस्त्रयो मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ ॥ ७५ ॥
प्राग्दक्षिणे तथा पादे कर्किसिंहौ व्यवस्थितौ ।
सिंहकन्यातुलाश्चैव कुक्षौराशित्रयं स्थितम् ॥ ७६ ॥
तुलाथ वृश्चिकश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे । पृष्ठेचवृश्चिकेनैव सहधन्वीव्यवस्थितः
वायव्ये चास्यवैपादेधनुर्ग्राहादिकंत्रयम् । कुम्भमीनौतथैवास्यउत्तरांकुक्षिमाश्रितौ
मीनमेषौ द्विजश्रेष्ठ! पादे पूर्वोत्तरे स्थितौ । कूर्मेदेशास्तथर्क्षाणि देशेष्वेतेषुवैद्विज
राशयश्च तथर्क्षेषु ग्रहराशिष्वत्रस्थिताः । तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासुदेशपीडांविनिर्दिशेत्
तत्र स्नात्वा प्रकुर्वीत दानहोमादिकं विधिम् ।
स एष वैष्णवः पादो ब्रह्मन् !मध्ये ग्रहस्य यः ।
नारायणाख्योऽचिन्त्यान्तात्मा कारणंजगतः प्रभुः ॥ ८१ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कूर्मसन्निवेशवर्णनंनामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

———

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

उत्तरकुरुकथनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं तु भारतं वर्षं यथावत्कथितं मुने !।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च तथा तिष्यं चतुष्टयम् ॥ १ ॥

अत्रैवैतद्युगानान्तु चातुर्वर्ण्योऽत्र वै द्विज । चत्वारित्रीणिद्वेचैवतथैकंचशरच्छतम्
जीवन्त्यत्र नराब्रह्मन्कृतत्रेतादिकेक्रमात् । देवकूटस्यपूर्वस्यशैलेन्द्रस्यमहात्मनः ॥
पूर्वेण यत्स्थितं वर्षंभद्राश्वं तन्निबोध मे । श्वेतपर्णश्चनीलश्चशैवालश्चाचलोत्तमः ॥
कौरञ्जः पर्णशालाग्रः पञ्चैते तु कुलाचलाः । तेषां प्रसूतिरन्ये ये बहवः क्षुद्रपर्वताः ॥
तैर्विशिष्टा जनपदा नानारूपाः सहस्रशः । ततः कुमुदसंकाशाः शुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥
इत्येवमादयोऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रशः । सीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा

नद्योऽथ बह्व्यो विस्तीर्णाः शीततोयौघवाहिकाः ।
अत्र वर्षे नराः शङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥ ८ ॥

दिव्यसङ्गमिनः पुण्या दशवर्षशतायुषः । मन्दोत्तमौ नतेषुस्तःसर्वेते समदर्शनाः ॥

तितिक्षादिभिरष्टाभिः प्रकृत्या ते गुणैर्युताः ।
तत्राप्यश्वशिरा देवश्चतुर्बाहुर्जनार्दनः ॥ १० ॥

शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः । तस्याप्यथैवंविषयाविज्ञेयाजगतःप्रभोः
केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम् । विशालःकम्बलःकृष्णोजयन्तोहरिपर्वतः

विशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।
अन्ये सहस्रशः शैला येषु लोकगणः स्थितः ॥ १३ ॥

मौलयस्ते महाकायाः शाकपोतकरम्भकाः । अङ्गुलप्रमुखाश्चापिवसन्तिशतशोजनाः

ये पिबन्ति महानद्यो वंक्षुं श्यामां स्वकम्बलाम् ।

अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः ॥ १५ ॥

अत्राप्यायुः समं पूवरत्रापि भगवान् हरिः । वराहरूपीपादास्यहृत्पृष्ठेपार्श्वतस्तथा

(मुखनस्यादतश्चैव कंण्ठतः पुच्छतस्तथा) ।

त्रिनक्षत्रयुते देशे नक्षत्राणि शुभानि च । इत्येतत्केतुमालं ते कथितं मुनिसत्तम! ॥

अतःपरं कुरून् वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान् ।

तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ॥ १८ ॥

वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च । सर्वकामप्रदास्ते हिसर्वकामफलप्रदाः

भूमिर्मणिमयीवायुःसुगन्धःसर्वदा सुखः । जायन्ते मानवास्तत्रदेवलोकपरिच्युताः

मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि वै । अन्योन्यमनुरक्तानिचक्रवाकोपमानिच

चतुर्दशसहस्राणि तेषां सार्द्धानि वै स्थितिः ।

चन्द्रकान्तश्च शैलेन्द्रः सूर्यकान्तस्तथापरः ॥ २२ ॥

तस्मिन् कुलाचले वर्षे तन्मध्ये च महानदी ।

भद्रसोमा प्रयात्युर्व्यां पुण्यामलजलौघिनी ॥ २३ ॥

सहस्रशस्तथैवान्या नद्योवर्षेऽपिवोत्तरे । तथान्याःक्षीरवाहिन्योघृतवाहिन्यएवच

दध्नो ह्रदास्तथा तत्र तथान्ये चानुपर्वताः ।

अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च ॥ २५ ॥

वनेषु तेषु वर्षेषु शतशोऽथ सहस्रशः ।

तत्रापि भगवान् विष्णुः प्राक्शिरा मत्स्यरूपवान् ॥ २६ ॥

विभक्तो नवधा विप्र नक्षत्राणां त्रयं त्रयम् ।

दिश (देशा) स्तथा(त्रा) पि नवधा विभक्ता मुनिसत्तम !॥ २७ ॥

चन्द्रद्वीपः समुद्रे च भद्रद्वीपस्तथापरः । तत्रापि पुण्योविख्यातःसमुद्रान्तर्महामुने

इत्येतत्कथितं ब्रह्मन्! कुरुवर्षं मयोत्तरम् । शृणुकिंपुरुषादीनि वर्षाणिगदतोमम ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे उत्तरकुरुकथनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

———

षष्टितमोऽध्यायः

भुवनकोषसमाप्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

यत्तु किम्पपुरुषंवर्षंतत् प्रवक्ष्याम्यहंद्विज ! । तत्रायुर्दशसाहस्रंपुरुषाणां वपुष्मताम्
अनामया ह्यशोकाश्चनरायत्रतथास्त्रियः । प्लक्षःखण्डश्च तत्रोक्तः सुमहान्नन्दनोपमः

तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाःसदा ।
स्थिरयौवननिष्पन्नाः स्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥ ३ ॥

अतः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्ष्यते । महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ४॥
देवलोकच्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः । हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम्
नजरा बाधते तत्र नजीर्यन्ते च कर्हिचित् । तावन्तमेव तेकालं जीवन्त्यथनिरामयाः
मेरुवर्षं मया प्रोक्तं मध्यमं यदिलावृतम् । नतत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्ति मानवाः
लभन्ते नात्मलाभञ्च रश्मयश्चन्द्रसूर्ययोः । नक्षत्राणांग्रहाणाञ्चमेरोस्तत्र पराद्युतिः
पद्मप्रभाः पद्मगन्धा जम्बूफलरसाशिनः । पद्मपत्रायताक्षास्तु जायन्ते तत्र मानवाः ॥
वर्षाणां तु सहस्राणि तत्राप्यायुस्त्रयोदश । शरावाकारसंस्तारो मेरुमध्ये इलावृते ॥
मेरुस्तत्र महाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् । रम्यकं वर्षमस्माच्च कथयिष्येनिबोधतम्
वृक्षस्तत्रापिचोत्तुङ्गो न्यग्रोधोहरितच्छदः । तस्यापि तेफलरसंपिबन्तोवर्त्तयन्तिवै
वर्षायुतायुषस्तत्र नरास्तत्फलभोगिनः । रतिप्रधानविमला जरादौर्गन्ध्यवर्जिताः
तस्माद्यथोत्तरं वर्षं नाम्ना ख्यातं हिरण्मयम् । हिरण्वती नदीयत्रप्रभूतकमलोज्ज्वला
महाबलाःसतेजस्का जायन्तेतत्र मानवाः । महाकाया महासत्त्वाधनिनःप्रियदर्शनाः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोषसमाप्तिवर्णनं नाम-
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

स्वारोचिषेमन्वन्तरेब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

कथितं भवता सम्यक् यत् पृष्टोऽसि महामुने !।
मूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणानि तथा ग्रहाः ॥ १ ॥
तेषाञ्चैव प्रमाणञ्च नक्षत्राणाञ्चसंस्थितिः ।
भूरादयस्तथा लोकाः पातालान्यखिलान्यपि ॥ २ ॥
स्वायम्भुवंतथाख्यातं मुने!मन्वन्तरंमम । तदन्तराण्यहं श्रोतुमिच्छेमन्वन्तराणिवै
मन्वन्तराधिपान् देवानृषींस्तत्तनयान्नृपान् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरं मयाख्यात्तं तव स्वायम्भुवं च यत् ।
स्वरोचिषाख्यमन्यत् तु शृणु तस्मादनन्तरम् ॥ ४ ॥
कश्चिद्द्विजातिप्रवरः पुरेऽभूदरुणास्पदे । वरुणायास्तटे विप्रो रूपेणात्यश्विनावपि
मृदुस्वभावः सद्वृत्तो वेदवेदाङ्गपारगः ।
सदातिथिप्रियो रात्रावागतानां समाश्रयः ॥ ६ ॥
तस्यबुद्धिरियंत्वासीदहं पश्येवसुन्धराम् । अतिरम्यवनोद्यानां नानानगरशोभिताम्
अथागतोऽत्तिथिः कश्चित् कदाचित्तस्य वेश्मनि ।
नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ॥ ८ ॥
अभ्यर्थितस्तु तेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा । तस्याचख्यौसदेशांश्चरम्याणिनगराणिच
वनानिनद्यःशैलांश्च पुण्यान्यायतनानि च । सततोविस्मयाविष्टः प्राहतंद्विजसत्तमम्
अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः । त्वं नातिवृद्धो वयसा नातिवृत्तश्च यौवनात्
कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ! ॥ ११ ॥

ब्राह्मण उवाच

मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः । योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स विप्रस्तं भूयः प्रत्युवाचेदमादरात् । श्रद्दधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः

मम प्रसादं भगवन्! कुरु मन्त्रप्रभावजम् । द्रष्टुमेतां मम महीमतीवेच्छा प्रवर्तते ॥ १४॥

प्रादात्स ब्राह्मणश्चास्मै पादलेपमुदारधीः । अभिमन्त्रयामास दिशं तेनाख्यातां च यत्नतः

तेनानुलिप्तपादोऽथ स द्विजो द्विजसत्तम! ।

हिमवन्तमगाद् द्रष्टुं नानाप्रस्रवणान्वितम् ॥ १६ ॥

सहस्रं योजनानां हि दिनार्द्धेन व्रजामि यत् । आयास्यामीति सञ्चिन्त्य तदर्द्धेनापरेण हि

संप्राप्तो हिमवत्पृष्ठं नातिश्रान्ततनुर्द्विज ।

विचचार ततस्तत्र तुहिनाचलभूतले ॥ १८ ॥

पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता । प्रक्षालितः पादलेपः परमौषधिसम्भवः

ततो जडगतिः सोऽथ इतश्चेतश्च पर्यटन् । ददर्शातिमनोज्ञानि सानूनि हिमभूभृतः

सिद्धगन्धर्वजुष्टानि किन्नराभिरतानि च ।

क्रीडाविहाररम्याणि देवादीनामितस्ततः ॥ २१ ॥

दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् । नातृप्यत द्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलको मुने!

क्वचित् प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् । प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्च निनादितम्

दात्यूहकोयष्टिकाद्यैः क्वचिच्चाऽतिमनोहरैः ।

पुंस्कोकिलकलालापैः श्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥ २४ ॥

प्रफुल्लतरुगन्धेन वासितानिलवीजितम् । मुदा युक्तः स ददृशे हिमवन्तं महागिरिम्

दृष्ट्वा चैतं द्विजसुतो हिमवन्तं महाचलम् । श्वो द्रक्ष्यामीति संचिन्त्य मतिश्चक्रे गृहं प्रति

विभ्रष्टपादलेपोऽथ चिरेण जडितक्रमः । चिन्तयामास किमिदं मयाऽज्ञानादनुष्ठितम्

यदि प्रलेपो नष्टो मे विलीनो हिमवारिणा । शैलोऽतिदुर्गमश्चायं दूरश्चाहमिहागतः

प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् । कथमत्र करिष्यामि सङ्कटं महदागतम्

इदं रम्यमिदं रम्यमित्यस्मिन् वरपर्वते । सकृद्दृष्टिरहं तृप्तिं न यास्येऽब्दशतैरपि ॥

किन्नराणां कलालापाः समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।

प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥ ३१ ॥

सुखस्पर्शस्तथा वायुः फलानि रसवन्तिच । हरन्तिप्रसभंचेतोमनोज्ञानि सरांसिच

एवं गतेतु पश्येयं यदि कश्चित् तपोनिधिम् । सममोपदिशेन्मार्गं गमनायगृहं प्रति

मार्कण्डेय उवाच

सएवं चिन्तयन् विप्रो बभ्रामचहिमाचले । भ्रष्टपादौषधिवलो वैक्लव्यं परमं गतः ॥

तं ददर्श भ्रमन्तञ्च मुनिश्रेष्ठं वरूथिनी । वराप्सरा महाभागा मौलेया रूपशालिनी

तस्मिन् दृष्टेततःसाभूद्द्विजवर्यै वरूथिनी । मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहि तत्क्षणात्

चिन्तयामास कोन्वेष रमणीयतमाकृतिः । सफलंमे भवेज्जन्म यदिमां नापमन्यते

अहोऽस्य रूपमाधुर्यमहोऽस्य ललिता गतिः ।

अहो गम्भीरता दृष्टेः कुतोऽस्य सदृशो भुवि ॥ ३८ ॥

दृष्टा देवास्तथा दैत्याः सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।

कथमेकोऽपि नास्त्यस्य तुल्यरूपो महात्मनः ॥ ३९ ॥

यथाहमस्मिन्मय्येष सानुरागस्तथा यदि । भवेदत्रमया कार्यस्तत्कृतः पुण्यसञ्चयः

यद्येष मयिसुस्निग्धां दृष्टिमद्यनिपातयेत् । कृतपुण्यानमत्तोऽन्या त्रैलोक्येवनितातत:

मार्कण्डेय उवाच

एवं सञ्चिन्तयन्ती सा दिव्ययोषित् स्मरातुरा ।

आत्मानं दर्शयामास कमनीयतराकृतिम् ॥ ४२ "

तां तु दृष्ट्वा द्विजसुतश्चारुरूपां वरूथिनीम् । सोपचारं समागम्यवाक्यमेतदुवाच ह

कात्वंकमलगर्भाभेकस्यकिंवानुतिष्ठसि । ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणास्पदात्

पादलेपोऽत्र मेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा । यस्यानुभावादत्राहमागतो मदिरेक्षणे

वरूथिन्युवाच

मौलेयाहं महाभागा नाम्नाख्यातावरूथिनी । विचरामि सदैवात्र रमणीये महाचले

साऽहं त्वद्दर्शनाद्विप्र ! कामवैक्लव्यतां गता ।
प्रशाधि यन्मया कार्यं त्वदधीनास्मि साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥

ब्राह्मण उवाच

येनोपायेन गच्छेयं निजगेहं शुचिस्मिते ! ।
तन्ममाऽऽचक्ष्व कल्याणि ! हानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥ ४८ ॥

नित्यनैमित्तिकानां तु महाहानिर्द्विजन्मनः । भवत्यतस्त्वंहेभद्रे!मामुद्धर हिमालयात्
प्रशस्यते न प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन । अपराद्धं न मे भीरु! देशदर्शनकौतुकम् ॥

सतो गृहे द्विजाग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्वकर्मणाम् ।
नित्यनैमित्तिकानाञ्च हानिरेवं प्रवासिनः ॥ ५१ ॥

सात्वं किंबहुनोक्तेन तथाकुरुयशस्विनि! । यथानास्तंगतेसूर्ये पश्यामिनिजमालयम्

वरूथिन्युवाच

मैवं ब्रूहि महाभाग! माभूत्स दिवसोमम । मां परित्यज्ययत्र त्वं निजगेहमुपैष्यसि
अहो रम्यतरः स्वर्गोन यतो द्विजनन्दन! । अतोवयं परित्यज्यतिष्ठामोऽत्र सुरालयम्

स त्वं सह मया कान्त ! कान्तेऽत्र तुहिनाचले ।
रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यसि ॥ ५५ ॥
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् भोक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ।
दास्याम्यत्र तथाहं ते स्मरेण वशगा हृता ॥ ५६ ॥

वीणावेणुस्वनं गीतं किन्नराणांमनोरमम् । अङ्गाह्लादकरो वायुरुष्णान्नमुदकं शुचि
मनोभिलषिता शय्यासुगन्धमनुलेपनम् । इहासतोमहाभाग! गृहेकिं तेनिजेऽधिकम्
इहासतो नैव जरा कदाचित्ते भविष्यति । त्रिदशानामियं भूमिर्यौवनोपचयप्रदा ॥
इत्युक्ता सानुरागासा सहसाकमलेक्षणा । आलिलिङ्ग प्रसीदेति वदन्तीकलमुन्मनाः

ब्राह्मण उवाच

मा मां स्प्राक्षीर्व्रजाऽन्यत्र दुष्टे! यः सदृशस्तव ।
मयाऽन्यथा याचिता त्वमन्यथैवाप्युपैषि माम् ॥ ६१ ॥

सायं प्रातर्हुतं हव्यं लोकान् यच्छति शाश्वतान् ।
त्रैलोक्यमेतदखिलं मूढ़े ! हव्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ६२ ॥
तमुपायं समाचक्ष्व येन यामि तवालयम् ।

वरूथिन्युवाच

किं ते नाहं प्रिया विप्र ! रमणीयो न किं गिरिः ।
गन्धर्वान् किन्नरादींश्च त्यक्त्वाभीष्टो हि कस्तव ॥ ६३ ॥
निजमालयमप्यस्माद्भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्लभान् ॥ ६४ ॥

ब्राह्मण उवाच

अभीष्टा गार्हपत्याद्याः सततंमेत्रयोऽग्नयः । रम्यं ममाग्निशरणंदेवी विष्टरिणीप्रिया

वरूथिन्युवाच

अष्टावात्मगुणा ये हितेषामादौ दया द्विज! । तांकरोषि कथंनत्वंमयि सद्धर्मपालक!
त्वद्विमुक्तान जीवामि तथाप्रीतिमतीत्वयि । नैतद्वदाम्यहं मिथ्याप्रसीदकुलनन्दन!

ब्राह्मण उवाच

यदि प्रीतिमती सत्यं नोपचाराद्ब्रवीषि माम् ।
तदुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ॥ ६८ ॥

वरूथिन्युवाच

निजमालयमप्यस्माद्भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्लभान् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण उवाच

नभोगार्थाय विप्राणां शस्यतेहिवरूथिनी । इहक्लेशायविप्राणां चेष्टाप्रेत्यफलप्रदा

वरूथिन्युवाच

सन्त्राणं म्रियमाणाया मम कृत्वा परत्र ते ।
पुण्यस्यैव फलं भावि भोगाश्चान्यत्र जन्मनि ॥ ७१ ॥
एवंच द्वयमप्यत्र तवोपचयकारणम् । प्रत्याख्यानादहंमृत्युं त्वञ्च पापमवाप्स्यसि

ब्राह्मण उवाच

परस्त्रियं नाभिलषेदित्यूचुर्गुरवो मम । तेनत्वां नाभिवाञ्छामिकामंविलप शुष्यवा

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वासमहाभागःस्पृष्ट्वाऽऽपःप्रयतःशुचिः । प्राहेदंप्रणिपत्याग्नि गार्हपत्यमुपांशुना

भगवन्! गार्हपत्याग्ने योनिस्त्वं सर्वकर्मणाम् ।
त्वत्त आहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्च नान्यतः ॥ ७५ ॥

युष्मदाप्यायनाद्देवा वृष्टिशस्यादिहेतवः । भवन्ति सस्यादखिलं जगद्भवति नान्यतः

एवं त्वत्तो भवत्येतद्येन सत्येन वैजगत् । तथाहमद्य स्वं गेहं पश्येयं सति भास्करे

यथावै वैदिकं कर्मस्वकाले नोज्झितंमया । तेनसत्येन पश्येयंगृहस्थोऽद्यदिवाकरम्

यथा च न परद्रव्येपरदारेच मे मतिः । कदाचित्साभिलाषाऽभूत्तथैतत् सिद्धिमेतुमे

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषेमन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्य-
वर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

कलिवरूथिनीसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं तु वदतस्तस्य द्विजपुत्रस्य पावकः । गार्हपत्यः शरीरे तु सन्निधानमथाकरोत्

तेन चाधिष्ठितःसोऽथ प्रभामण्डलमध्यगः । व्यदीपयततंदेशं मूर्त्तिमानिव हव्यवाट्

तस्यास्तु सुतरां तत्रताद्रूपे द्विजन्मनि । अनुरागोऽभवद्विप्रं पश्यन्त्या देवयोषितः

ततः सोऽधिष्ठितस्तेन हव्यवाहेनतत्क्षणात् । यथापूर्वंयथागन्तुं प्रवृत्तो द्विजनन्दनः

जगाम च त्वरायुक्तस्तया देव्या निरीक्षितः ।
आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ॥ ५ ॥

ततः क्षणेनैव तदा निजगेहमवाप्य सः । यथाप्रोक्तं द्विजश्रेष्ठश्चकार सकलाः क्रियाः
अथसा चारुसर्वाङ्गी तत्रासक्तात्ममानसा । निश्वासपरमानिन्येदिनशेषंतथानिशाम्
निश्वसन्त्यनवद्याङ्गी हाहेतिरुदतीमुहुः ॥ मन्दभाग्येतिचात्मानंनिनिन्दमदिरेक्षणा
न विहारे न चाहारे रमणीये न वा वने । न कन्दरेषु रम्येषु सा ववन्ध तदा रतिम्
चकाररममाणे च चक्रवाकयुगे स्पृहाम् । मुक्ता तेन वरारोहानिनिन्द निजयौवनम्
क्वागताहमिमंशैलं दुष्टदैवबलात्कृता । क्व च प्राप्तः समेदृष्टेर्गोचरं तादृशो नरः ॥
यद्यद्य स महाभागोन मे सङ्गमुपैष्यति । तत्कामाग्निरवश्यंमां क्षपयिष्यतिदुःसहः
रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् । तेन हीनं तदेवैतद्दहतीवाद्य मामलम् ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं सामदनाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् । ववृधेचंतदारागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम्
कलिर्नाम्ना तु गन्धर्वः सानुरागोनिराकृतः । तयापूर्वमभूत्सोऽथतदवस्थांददर्शताम्
स चिन्तयामास तदा किन्वेषागजगामिनी । निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरूथिनी

मुनिशापक्षता किन्नु केनचित् किं विमानिता ।
वाष्पवारिपरिक्लिन्नमियं धत्ते यतो मुखम् ॥ १७ ॥

ततःसदध्यौसुचिरंतमर्थंकौतुकात् कलिः । ज्ञातवांश्चप्रभावेणसमाधेः सयथातथम्
पुनः स चिन्तयामास तद्विज्ञाय मुनेः कलिः । ममोपपादितंसाधुभाग्यैरेतत्पुराकृतैः
मयैषा सानुरागेण बहुशः प्रार्थिता सती । निराकृतवती सेयमद्य प्राप्या भविष्यति
मानुषे सानुरागेयं तत्र तद्रूपधारिणि । रंस्यते मय्यसन्दिग्धंकिं कालेनकरोमितत्

मार्कण्डेय उवाच

आत्मप्रभावेण ततस्तस्य रूपंद्विजन्मनः । कृत्वाचचारयत्रास्तेनिषण्णासावरूथिनी
सातं दृष्ट्वा वरारोहा किञ्चिदुत्फुल्ललोचना । समेत्यप्राह तन्वङ्गी प्रसीदेति पुनःपुनः

त्वया त्यक्ता न सन्देहः परित्यक्ष्यामि जीवितम् ।
तत्राऽधर्मः कष्टतरः क्रियालोपो भविष्यति ॥ २४ ॥

मयासमेत्य रम्येऽस्मिन् महाकन्दरकन्दरे । मत्परित्राणजं धर्ममवश्यं प्रतिपत्स्यसे

आयुषः सावशेषं मे नूनमस्तिमहामते! । निवृत्तस्तेन नूनं त्वं हृदयाह्लादकारकः ॥

कलिरुवाच

किं करोमिक्रियाहानिर्भवत्यत्र सतो मम । त्वमप्येवं विधंवाक्यंब्रवीषितनुमध्यमे!

तदहं सङ्कटं प्राप्तो यद्ब्रवीमि करोषि तत् ।

यदि स्यात् सङ्गमो मेऽद्य भवत्या सह नान्यथा ॥ २८ ॥

वरूथिन्युवाच

प्रसीदयद्ब्रवीषित्वं तत्करोमि नते मृषा । ब्रवीम्येतदनाशङ्कं यत्ते कार्यं मयाधुना

कलिरुवाच

नाद्य सम्भोगसमयेद्रष्टव्योऽहंत्वया वने । निमीलिताक्ष्याःसंसर्गस्तवसुभ्रु!मयासह

वरूथिन्युवाच

एवं भवतु भद्रंते यथेच्छसि तथास्तुतत् । मया सर्वप्रकारं हि वशेस्थेयंतवाधुना

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषे मन्वन्तरे कलिवरूथिनीसम्वादवर्णनंनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कलिगन्धर्ववरूथिन्योर्विहारवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः सह तया सोऽथ रराम गिरिसानुषु । फुल्लकाननहृद्येषु मनोज्ञेषु सरःसु च

कन्दरेषु च रम्येषु निम्नगापुलिनेषु च । मनोज्ञेषु तथान्येषु देशेषु मुदितो द्विज !

वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपं तस्य तेजसा । अचिन्तयद्भोगकालेनिमीलितविलोचना

ततःकालेनसागर्भमवाप मुनिसत्तम! । गन्धर्ववीर्यतो रूपं चिन्तनाच्च द्विजन्मनः ॥

तां गर्भधारिणीं सोऽथ सान्त्वयित्वा वरूथिनीम् ।

विप्ररूपधरो यातस्तया प्रीत्या विसर्जितः ॥ ५ ॥
जज्ञे स बालो द्युतिमान् ज्वलन्निव विभावसुः ।
स्वरोचिभिर्यथा सूर्यो भासयन् सकला दिशः ॥ ६ ॥
स्वरोचिभिर्यतो भाति भास्वानिव स बालकः ।
ततः स्वरोचिरित्येवं नाम्नाऽऽख्यातो बभूव सः ॥ ७ ॥

ववृधे च महाभागो वयसानुदिनं तथा । गुणौघैश्चयथाबालःकलाभिः शशलाञ्छनः
स जग्राह धनुर्वेदं वेदांश्चैव यथाक्रमम् । विद्याश्चैव महाभागस्तदा यौवनगोचरः ॥
मन्दराद्रौकदाचित् सविचरंश्चारुचेष्टितः । ददर्शैकांतदाकन्यां गिरिप्रस्थेभयातुराम्

त्रायस्वेति निरीक्ष्यैनं सा तदा वाक्यमब्रवीत् ।
माभैषीरिति स प्राह भयविप्लुतलोचनाम् ॥ ११ ॥

किमेतदितितेनोक्ते वीरवाक्येमहात्मना । ततःसा कथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम्

कन्योवाच

अहमिन्दीवराख्यस्य सुता विद्याधरस्यवै । नाम्नामनोरमा जातासुतायांमरुधन्वनः
मन्दारविद्याधरजा सखोमम विभावरी । कलावती चाप्यपरा सुता पारस्य वै मुनेः
ताभ्यांसह मयायातं कैलासतटमुत्तमम् । तत्रदृष्टो मुनिः कश्चित्तपसातिकृशाकृतिः
क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षितारकः । मयावहसितः क्रुद्धःसतदामां शशाप ह
क्षामक्षामस्वरः किञ्चित्कम्पिताधरपल्लवः । त्वयावहसितो यस्मादनार्येदुष्टतापसि!

तस्मात् त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभिभविष्यसि ।
तत्ते शापे मत्सखीभ्यां स तु निर्भर्त्सितो मुनिः ॥ १८ ॥
धिक् ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या कृतं ते निखिलं तपः ।
अमर्षणैर्धर्षितोऽसि तपसा नातिकर्षितः ॥ १९ ॥

क्षान्त्यास्पदं वै ब्राह्मण्यंक्रोधसंयमनंतपः । एतच्छ्रुत्वाददौशापं तयोरप्यमितद्युतिः
एकस्याः कुष्ठमङ्गेषुभाव्यन्यस्यास्तथाक्षयः । तयोस्तथैवतज्जातंयथोक्तंतेनतत्क्षणात्
ममाप्येवं महद्रक्षः समुपैति पदानुगम् । नश्टणोषि महानादं तस्यादूरेऽपि गर्जतः

तृतीयमद्य दिवसं यन्मे पृष्ठं न मुञ्चति । अस्त्रग्रामस्य सर्वस्य हृदयञ्चाहमद्य ते ॥

तं प्रयच्छामि मां रक्ष रक्षसोऽस्मान्महामते ! ।

प्रादात् स्वायम्भुवस्यादौ स्वयं रुद्रः पिनाकधृक् ॥ २४ ॥

स्वायम्भुवो वशिष्ठाय सिद्धवर्यायदत्तवान् । तेनापिदत्तं मन्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै

प्रादादौद्वाहिकं सोऽपि मत्पित्रे श्वशुरः स्वयम् ।

मयाऽपि शिक्षितं वीर ! सकाशाद् बालया पितुः ॥ २६ ॥

हृदयं सकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् । तदिदं गृह्यतां शीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥ २७

ततो जहि दुरात्मानमेनं ब्रह्मसमागतम् ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्तेततस्तेन वार्घ्युपस्पृश्यतस्यतत् । अस्त्राणांहृदयंप्रादात् सरहस्यनिवर्तनम्

एतस्मिन्नन्तरे रक्षस्तत्तदा भीषणाकृति ।

नर्दमानं महानादमाजगाम त्वरान्वितः ॥ ३० ॥

मयाभिभूता किं त्राणमुपैति द्रुतमेहि मे । भक्षाय किञ्चिरेणेति ब्रुवाणं तं ददर्श सः

स्वरोचिश्चिन्तयामास दृष्ट्वा तं समुपागतम् ।

गृह्णात्वेष वचः सत्यं तस्यास्त्विवति महामुने !॥ ३२ ॥

जग्राह समुपेत्यैनां त्वरया सोऽपि राक्षसः ।

त्राहि त्राहीति करुणं विलपन्तीं सुमध्यमाम् ॥ ३३ ॥

ततः स्वरोचिः संक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् । दृष्टानिवेश्य तद्रक्षो ददर्शानिमिषेक्षणः

तदाभिभूतः सतदा तामुत्सृज्य निशाचरः । प्रसीदशाम्यतामस्त्रं श्रूयतांचेत्यभाषत

मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते! । प्रदत्तादतितीव्रेणब्रह्ममित्रेण धीमता

उपकारोनमेत्वत्तो महाभागाधिकोऽपरः । येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः

स्वरोचिरुवाच

ब्रह्ममित्रेण मुनिना किन्निमित्तं महात्मना ।

शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापो दत्तोऽभवत् पुरा ॥ ३८ ॥

राक्षस उवाच

ब्रह्ममित्रोऽष्टधा छिन्नमायुर्वेदमधीतवान्। त्रयोदशाधिकारश्च प्रगृह्याथर्वणो द्विजः

अहं चेन्दीवराक्षेति ख्यातोऽस्या जनकोऽभवम्।

विद्याधरपतेः पुत्रो नलनाभस्य खड्गिनः ॥ ४० ॥

मया च याचितः पूर्वं ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः। आयुर्वेदमशेषंमे भगवन्! दातुमर्हसि

यदातु बहुशो वीर! प्रश्रयावनतस्य मे। नप्रादाद्याचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम

शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि। आयुर्वेदात्मिकाविद्या गृहीताभूत्तदानघ!

गृहीतायां तु विद्यायां मासैरष्टाभिरन्तरात्। ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीव पुनःपुनः

प्रत्यभिज्ञाय मां हासान्मुनिः कोपसमन्वितः।

विकम्पिकन्धरः प्राह मामिदं परुषाक्षरम् ॥ ४५ ॥

राक्षसेनैव यस्मान्मे त्वयाऽदृश्येनदुर्मते! । हृता विद्यावहासश्च मामवज्ञाय वै कृतः

तस्मात्त्वं राक्षसः पाप!मच्छापेननिराकृतः। भविष्यसिन सन्देहः सप्तरात्रेणदारुणः

इत्युक्ते प्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादितः। समामाह पुनर्विप्रस्तत्क्षणान् मृदुमानसः

यन्मयोक्तमवश्यं तद्भावि गन्धर्व! नान्यथा।

किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वं प्राप्स्यसे वपुः ॥ ४६ ॥

नष्टस्मृतिर्यदाक्रुद्धः स्वमपत्यञ्चिखादिषुः। निशाचरत्वं गन्तासितदस्त्रानलतापितः

पुनः संज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसि निजंवपुः। तथैवस्वमधिष्ठानं लोकेगन्धर्वसञ्ज्ञिते

सोऽहं त्वया महाभाग! मोक्षितोऽस्मान्महाभयात्।

निशाचरत्वाद् यद्वीर! तेन मे प्रार्थनां कुरु ॥ ५२ ॥

इमांतेत नयांभार्यां प्रयच्छामिप्रतीच्छताम्। आयुर्वेदश्चसकलस्त्वष्टाङ्गोयोमयाततः

मुनेः सकाशात् संप्राप्तस्तं गृह्णीष्व महामते!॥ ५३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरोज्ज्वलः।

स्रग्भूषणधरो दिव्यं पौराणं वपुरास्थितः ॥ ५४ ॥

दत्त्वाविद्यांततः कन्यांसदातुमुपचक्रमे। तमाहसातदाकन्या जनितारं स्वरूपिणत्
अनुरागो ममाऽप्यत्र तातातीव महात्मनि। दर्शनादेव सञ्जातोविशेषेणोपकारिणि

किन्त्वेषा मे सखी सा च मत्कृते दुःखपीडिते।
अतो नाभिलषे भोगान् भोक्तुमेतेन वै समम्॥ ५७॥
पुरुषैरपि नो शक्या कर्तुमित्थं नृशंसता।
स्वभावरुचिरैर्माद्दक् कथं योषित् करिष्यति॥ ५८॥
साऽहं यथा ते दुःखार्त्ते मत्कृते कन्यके पितः!।
यथा स्थास्यामि तद्दुःखे तच्छोकानलतापिता॥ ५९॥

स्वरोचिरुवाच

आयुर्वेदप्रसादेन ते करिष्ये पुनर्नवे। सख्यौ तव महाशोकं समुत्सृज्य सुमध्यमे॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः पित्रा स्वयं दत्तां तां कन्यां स विधानतः।
उपयेमे गिरौ तस्मिन् स्वरोचिश्चारुलोचनाम्॥ ६१॥
दत्तां तु तां तदा कन्यामभिशान्त्य च भाविनीम्।
जगाम दिव्यया गत्या गन्धर्वः स्वपुरं ततः॥ ६२॥

सचापि सहितस्तन्व्या तदुद्यानं तदाययौ। कन्यकायुगलं यत्रतच्छापोत्थगदातुरम्
ततस्तयोः स तत्त्वज्ञो रोगघ्नैरौषधैरसैः। चकार नीरुजे देहे स्वरोचिरपराजितः॥

ततोऽतिशोभने कन्ये विमुक्ते व्याधितः शुभे।
स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागं चक्राते तन्महीधरम्॥ ६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे कलिगन्धर्ववरूथिन्योर्विहारवर्णनं
नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

विभावरीकलावतीपाणिग्रहणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं विमुक्तारोगा तु कन्यका तं मुदान्विता । स्वरोचिषमुवाचेदंश्शृणुष्व वचनंप्रभो!

मन्दारविद्याधरजा नाम्ना ख्याता विभावरी ।

उपकारिन्! स्वमात्मानं प्रयच्छामि प्रतीच्छ माम् ॥ २ ॥

विद्याश्चतुभ्यं दास्यामिंसर्वभूतरुतानिते । यथाऽभिव्यक्तिमेष्यन्तिप्रसादप्रवणोभव

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति तेनोक्ते धर्मज्ञेनस्वरोचिषा । द्वितीयातु तदा कन्या इदं वचनमब्रवीत्

कुमार! ब्रह्मचार्यासीत् पारो नाम पिता मम ।

ब्रह्मर्षिः सुमहाभागो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५ ॥

तस्य पुंस्कोकिलालापरमणीये मधौ पुरा ।

आजगामाऽप्सराभ्याशं प्रख्याता पुञ्जिकास्तना (स्थला) ॥ ६ ॥

कामवैक्लव्यतां नीतः सतदा मुनिपुङ्गवः । तत्संयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामत्रमहाचले ॥

विहाय मां गता साचमाताऽस्मिन्निर्जनेवने । बालामेकांमहीपृष्ठेव्यालश्वापदसंकुले

ततः कलाभिः सोमस्य वर्द्धन्तीभिरव (रहःक्षये)क्षयम् ।

आप्यायमानाहरहो वृद्धिं याताऽस्मि सत्तम !॥ ९ ॥

ततः कलावतीत्येतन्मम नाम महात्मना । गृहीतायाः कृतं पित्रागन्धर्वेण शुभानना

न दत्ताहं तदा तेन याचितेन महात्मना । देवारिणानिशासुप्तस्ततोमेघातितःपिता

ततोऽहमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता । निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा

माशुचः सुभ्रुभर्त्तांते महाभागोभविष्यति । स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति

आज्ञांच निधयः सर्वे करिष्यन्तितवाद्रुताः । यथाभिलषितंवित्तंप्रदास्यन्तिचतेशुभे

यस्या वत्से! प्रभावेण विद्यायास्तां गृहाण मे।
पद्मिनी नाम विद्येयं महापद्माभिपूजिता ॥ १५ ॥
इत्याह मां दक्षसुता सती सत्यपरायणा।
स्वरोचिस्त्वं ध्रुवं देवी नान्यथा सा वदिष्यति ॥ १६ ॥
साऽहं प्राणप्रदायाद्य तां विद्यां स्वं तथा वपुः।
प्रयच्छामि प्रतीच्छ त्वं प्रसादसुमुखो मम ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विवति तामाह स तु कन्यां कलावतीम्।
विभावर्याः कलावत्याः स्निग्धदृष्ट्याऽनुमोदितः ॥ १८ ॥
जग्राह च ततः पाणी स तयोरमरद्युतिः। नदत्सु देवतूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषेमन्वन्तरे विभावरीकलावतीपाणिग्रहणवर्णनं नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

मृगेणमृगीणांपुरतःस्वरोचिर्गर्हणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स ताभिः सहितः पत्नीभिरमरद्युतिः। रराम तस्मिन् शैलेन्द्रेरम्यकानननिर्झरे
सर्वोपभोगरत्नानि मधूनि मधुराणि च। निधयःसमुपाजह्रुःपद्मिन्या वशवर्तिनः ॥
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् गन्धाढ्यमनुलेपनम्।
आसनान्यतिशुभ्राणि काञ्चनानि यथेच्छया ॥ ३ ॥
सौवर्णानि महाभाग! करकान् भाजनानि च।
तथा शय्याश्च विविधा दिव्यैरास्तरणैर्युताः ॥ ४ ॥

एवं स ताभिः सहितोदिव्यगन्धादिवासिते । रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते
ताश्चापि सह तेनेति लेभिरेमुदमुत्तमाम् । रममाणायथा स्वर्गे तथा तत्रशिलोच्चये
कलहंसीजगादैकां चक्रवाकींजलेसतीम् । तस्यतासांचललितेसम्बन्धेचस्पृहावती

धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ।
दयिताभिः सहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥ ८ ॥
सन्ति यौवनिनः श्लाघ्यास्तत्पत्न्यो नातिशोभनाः ।
जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ॥ ९ ॥
अभीष्टाः कस्यचित्कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥ १० ॥

धन्योऽयंदयिताभीष्टोह्येताश्चास्यातिवल्लभाः । परस्परानुरागोहिधन्यानामेवजायते
एतन्निशम्य वचनं कलहंसीसमीरितम् । उवाचचक्रवाकीतांनातिविस्मितमानसा

नायं धन्यो यतो लज्जा नान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।
अन्यां स्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्वास्वस्य मानसम् ॥ १३ ॥

चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठानेयतःसखि । ततोहिप्रीतिमानेषभार्यासुभविताकथम्
एता न दयिताः पत्युर्नैतासां दयितः पतिः । विनोदमात्रमेवैतायथापरिजनोऽपरः

एतासाञ्च यदीष्टोऽयं तत्किं प्राणान्न मुञ्चति ।
आलिङ्ग्यपरां कान्तां ध्यातो वै कान्तयाऽन्यया ॥ १६ ॥

विद्याप्रदानमूल्येन विक्रीतो ह्येष भृत्यवत् । प्रवर्त्ततोनहिप्रेमसमंवल्लीषुतिष्ठति ॥
कलहंसिपतिर्धन्योममधन्याहमेव च । यस्यैकस्यांचिरंचित्तंयस्याश्चैकत्रसंस्थितम्
बहुपत्नीपतिर्लोकशरणं पुण्यपापयोः । गृहाशनासनाद्यैश्च भूषणैश्च सहागमैः ॥

विषमैः क्रियमाणो हि युज्यते महदेनसा ।
ज्येष्ठां कनीयभावेन कनिष्ठां ज्येष्ठतां नयेत् ।
गुरवे तु वरं दत्वा हुत्वाऽन्यां समियां यथा ॥ २० ॥

ऊढया सहकर्तव्यानित्यनैमित्तिकीःक्रियाः । जगादाथान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः

मार्कण्डेय उवाच

सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौस्वरोचिरपराजितः । निशम्यलज्जितोदध्यौसत्यमेवहिनानृतम्
ततो वर्षशते याते रममाणोमहागिरौ । रममाणः समन्तामिर्ददर्श पुरतो मृगम् ॥

सुस्निग्धपीनावयवं मृगीयूथविहारिणम् ।
वासिताभिः स्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् ॥ २४ ॥

आकृष्टघ्राणपुटकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः।उवाचसमृगोरामालज्जात्यागेनगम्यताम्
नाहंस्वरोचिस्तच्छीलोनचैवाहंसुलोचनाः।निर्लज्जाबहवःसन्तितादृशास्तत्रगच्छतः
एकात्वनेकानुगता तथा हासास्पदंजने । अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्ट्यानिरीक्षितः
तस्य धर्मक्रियाहानिरहन्यहनिजायते । सक्तोऽन्यभार्य्ययाथान्यकामासक्तःसदैवसः

यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलः परलोकपराङ्मुखः ।
तं कामयत भद्रं वो नाऽहं तुल्यः स्वरोचिषा ॥ २६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेमृगेणमृगीणांपुरतःस्वरोचिर्गर्हणवर्णनं
नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

स्वरोचिरालिङ्गने मृग्या दिव्याङ्गनात्वप्राप्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं निरस्यमानास्ता हरिणेन मृगाङ्गनाः ।श्रुत्वास्वरोचिरात्मानं मेनेसपतितंयथा
त्यागे चकार च मनः सतासांमुनिसत्तम ।। चक्रवाकीमृगप्रोक्तोमृगचर्याजुगुप्सितः
समेत्य ताभिर्भूयश्च वर्द्धमानमनोभवः । आक्षिप्तनिर्वेदकथोरेमे वर्षशतानि षट् ॥

किन्तु धर्माविरोधेन कुर्वन् धर्माश्रिताः क्रियाः ।
भुङ्क्ते स्वरोचिर्विषयान् सह ताभिरुदारधीः ॥ ४ ॥

ततश्च जज्ञिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः। विजयोमेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबलः॥
मनोरमा च विजयं प्रासूतेन्दीवरात्मजा। विभावरी मेरुनन्दंप्रभावञ्च कलावती॥
पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका। सतेषांतत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम्
प्राच्यां तु विजयं नाम कामरूपे नगोपरि। विजयाय सुतायादौसददौपुरमुत्तमम्

उदीच्यां मेरुनन्दस्य पुरीं नन्दवतीमिति।
ख्याताञ्चकार प्रोत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम्॥ ६॥
कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम्।
पुरं तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम्॥ १०॥

एवं निवेश्य पुत्रान् स पुरेषु पुरुषर्षभः। रेमे ताभिःसमंविप्र मनोज्ञेष्वतिभूमिषु॥
एकदा तु गतोऽरण्ये विहरन् स धनुर्द्धरः। चकर्षधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम्॥
अथाह काचिदभ्येत्य तं तदा हरिणाङ्गना। मय्येवपात्यतांबाणःप्रसीदेति पुनः पुनः
किमनेन हतेनाद्यमामाशुविनिपातय। त्वया निपातितोबाणोदुःखान्मांमोक्षयिष्यति

स्वरोचिरुवाच

न ते शरीरं सरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते। किन्नुतत्कारणंयेनत्वंप्राणान्हातुमिच्छसि

मृग्युवाच

अन्यासक्तहृदये यस्मिश्चेतः कृतास्पदम्। ममतेनविनामृत्युरौषधंकिमिहापरम्

स्वरोचिरुवाच

कस्त्वान्नाभिलषेद्भीरु सानुरागाऽसि कुत्र वा।
यदप्राप्तौ निजान् प्राणान् परित्यक्तुं व्यवस्यसि॥ १७॥

मृग्युवाच

त्वामेवेच्छामि भद्रं ते त्वया मेऽपहृतं मनः।
वृणोम्यहमतो मृत्युं मयि बाणो निपात्यताम्॥ १८॥

स्वरोचिरुवाच

त्वं मृगी चञ्चलापाङ्गी नररूपधरा वयम्। कथंत्वयासमंयोगोमद्विधस्यभविष्यति

मृग्युवाच

यदिसापेक्षितश्चित्तंमयितेमांपरिष्वज । यदिवासाधुचित्तं तेकरिष्यामियथेप्सितम्

एतावताऽहं भवतां भविष्याम्यतिमानिता ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम् ।

तेन चालिङ्गिता सद्यः साऽभूद्दिव्यवपुर्धरा ॥ २१ ॥

ततःसविस्मयाविष्टःकात्वमित्यभ्यभाषत । साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम्

अहमभ्यर्थितादेवैः काननस्यास्यदेवता । उत्पादनीयोहि मनुस्त्वया मयि महामते!

प्रीतिमत्यां मयि सुतं भूर्लोकपरिपालकम् । तमुत्पादय देवानां त्वामहं वचनाद्वदे

मार्कण्डेय उवाच

ततःस तस्यां तनयं सर्वलक्षणलक्षितम् ।

तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् ॥ २५ ॥

जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्यानि सस्वनुः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः

सिषिचुः शीकरैर्नागा ऋषयश्च तपोधनाः । देवाश्च पुष्पवर्षञ्च मुमुचुश्च समन्ततः

तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम् ।

द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः ॥ २८ ॥

स बालो द्युतिमान्नाम महाबलपराक्रमः ।

स्वरोचिषः सुतो यस्मात्तस्मात् स्वारोचिषोऽभवत् ॥ २९ ॥

सचापि विचरन्रम्ये कदाचिद्गिरिनिर्झरे । स्वरोचिर्ददृशे हंसंनिजपत्नीसमन्वितम्

उवाच सतदा हंसीं साभिलषां पुनःपुनः । उपसंह्रियतामात्मा चिरं ते क्रीडितं मया

किं सर्वकालं भोगैस्ते आसन्नंचरमं वयः । परित्यागस्य कालोमेतव चापिजलेचरि!

हंस्युवाच

अकालः को हि भोगानां सर्वं भोगात्मकं जगत् ।

यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थं ब्राह्मणैः संयतात्मभिः ॥ ३२ ॥

दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान् वाञ्छमाना विवेकिनः ।
दानानि च प्रयच्छन्ति पूर्त्तान् धर्मांश्च कुर्वते ॥ ३४ ॥
स त्वं नेच्छसि किं भोगान् भोगश्चेष्टाफलं नृणाम् ।
विवेकिनां तिरश्चां च किं पुनः संयतात्मनाम् ॥ ३५ ॥

हंस उवाच

भोगेष्वासक्तचित्तानां परमार्थान्विताममतिः । भविष्यतिकदासङ्गमुपेतानाञ्चबन्धुषु
पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः । सरः पङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव
किं न पश्यसि वा भद्रे ! जातसङ्गं स्वरोचिषम् ।
आबाल्यात्कामसंसक्तं मग्नं स्नेहाम्बुकर्दमे ॥ ३८ ॥
यौवनेऽतीव भार्यासु साम्प्रतं पुत्रनप्तृषु । स्वरोचिषोमनो मग्नमुद्धारं प्राप्स्यते कुतः
नाऽहं स्वरोचिषस्तुल्यः स्त्रीवाध्यो (वश्यो) वा जलेचरि! ।
विवेकवांश्च भोगानां निवृत्तोऽस्मि च साम्प्रतम् ॥ ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच

स्वरोचिरेतदाकर्ण्य जातोद्वेगःखगेरितम् । आदायभार्यास्तपसे ययावन्यत्तपोवनम्
तत्र तप्त्वा तपो घोरंसह ताभिरुदारधीः । जगामलोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मषः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषे मन्वन्तरेस्वरोचिषालिङ्गनेमृग्यादिव्याङ्गनात्व-
प्राप्तिवर्णनंनाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सम्पूर्णस्वारोचिषमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततःस्वारोचिषं नाम्नाद्युतिमन्तंप्रजापतिम् । मनुञ्चकारभगवांस्तस्य मन्वन्तरंश्रृणु
तत्रान्तरे तुये देवामुनयस्तत्सुताश्च ये । भूपालाःक्रौष्टुकेयेतान् गदतस्त्वं निशामय
देवाःपारावतास्तत्रतथैवतुषिताद्विज! । स्वारोचिषेऽन्तरेचेन्द्रोविपश्चिदिति विश्रुतः
ऊर्ज्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा ।
निश्चरश्चार्ववीरांश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुतास्तस्यमहात्मनः । सप्तासन्सुमहावीर्याःपृथिवीपरिपालकाः
तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशविस्तरे । भुक्तेयमवनिः सर्वा द्वितीयं वै तदन्तरम्
स्वरोचिषस्तु चरितंजन्मस्वारोचिषस्यच । निशम्यमुच्यतेपापैःश्रद्दधानोहिमानवः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषकथानकसमाप्तिवर्णनं नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

———

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

पद्मिनीविद्याश्रितनिधीनाम्वर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्!कथितं सर्वं विस्तरेणत्वयामम । स्वरोचिषस्तुचरितं जन्मस्वारोचिषस्यतु
यातुसापद्मिनी नामविद्याभोगोपपादिका । तत्संश्रयायेनिधयस्तान् मेविस्तरतोवद

अष्टौ ये निधयस्तेषां स्वरूपं द्रव्यसंस्थितिः ।

भवताऽभिहितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ! ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पद्मिनीनामया विद्यालक्ष्मीस्तस्याश्चदेवता । तदाधाराश्चनिधयस्तन्मेनिगदतःशृणु

यत्र पद्ममहापद्मौतथा मकरकच्छपौ । मुकुन्दो नन्दकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः

सत्यामृद्धौ भवन्त्येते सिद्धिस्तेषां हि जायते ।

एते ह्यष्टौ समाख्याता निधयस्तव क्रौष्टुके !॥ ६ ॥

देवतानां प्रसादेन साधुसंसेवनेन च । एभिरालोकितंवित्तं मानुषस्यसदामुने !॥

यादृक् स्वरूपंभवति तन्मे निगदतःशृणु । पद्मोनामनिधिःपूर्वंसयस्यभवतिद्विज

स तस्य तत्सुतानाञ्च तत्पौत्राणाञ्च नित्यशः ।

दाक्षिण्यसारः पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ॥ ६ ॥

सत्त्वाधारो महाभागो यतोऽसौ सात्त्विकोनिधिः ।

सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनाञ्च परिग्रहम् ॥ १० ॥

करोत्यतितरां सोऽथतेषाञ्चक्रयविक्रयम् । करोतिचतथायज्ञान्दक्षिणाश्चप्रयच्छति

सम्पादयति कामांश्च सर्वानेव यथाक्रमम् ।

सभां देवनिकेतांश्च सकारयतितन्मनाः । सत्त्वाधारोनिधिश्चान्योमहापद्मइतिश्रुतः

सत्त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः । करोतिपद्मरागादिरत्नानाञ्चपरिग्रहम्

मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान् ।

ददाति योगशीलेभ्यस्तेषामावसथांस्तथा ॥ १४ ॥

सकारयति तच्छीलः स्वयमेव च जायते । तत्प्रसूतास्तथाशीलाःपुत्रपौत्रक्रमेणच

पूर्वर्द्धिमात्रः सप्तासौ पुरुषांश्च न मुञ्चति । तामसोमकरोनामनिधिस्तेनावलोकितः

पुरुषोऽथतमःप्रायःसुशीलोऽपि हिजायते । बाणखड्गर्ष्टिधनुषां चर्म्मणाञ्चपरिग्रहम्

रसनानाञ्च कुरुते याति मैत्रीञ्च राजभिः ।

ददाति शौर्यवृत्तीनां भूभुजां ये च तत्प्रियाः ॥ १८ ॥

क्रयविक्रये च शस्त्राणां नान्यत्र प्रीतिमेति च।
एकस्यैव भवत्येष न च तस्यानुयानुगः (नरस्यनसुतानुगः) ॥ १९ ॥
द्रव्यार्थं दस्युतो नाशं संग्रामे वापि स व्रजेत्।
कच्छपश्च निधिर्योऽसौ नरस्तेनाभिवीक्षितः ॥ २० ॥
तमःप्रधानोभवतियतोऽसौतामसोनिधिः। व्यवहारानशेषांस्तुपुण्यजातैःकरोतिच
कर्मस्थानखिलांश्चैव न विश्वसिति कस्यचित्।
समस्तानि यथाङ्गानि संहरत्येव कच्छपः ॥ २२ ॥
तथारिष्टस्वचित्तानि तिष्ठत्यायतमानसः। नददातिनवाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः
निधानमुर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः।
रजोगुणमयश्चान्यो मुकुन्दो नाम यो निधिः ॥ २४ ॥
नरोऽवलोकितस्तेन तद्गुणो भवति द्विज !।
वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्य परिगहम् ॥ २५ ॥
करोति गायतां वित्तं नृत्यतां च प्रयच्छति।
वन्दिमागधसूतानां विटानां लास्यपाठिनाम् ॥ २६ ॥
ददात्यहर्निशंभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमंद्विज। कुलटास्वरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधैः
प्रयाति सङ्गमेकं च यं निधिर्भजतेनरम्। रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधिः
उपैतिस्तम्भमधिकंनरस्तेनावलोकितः। समस्तधातुरत्नानांपुण्यंधान्यादिकस्यच
परिग्रहं करोत्येष तथैव क्रयविक्रयम्। आधारः स्वजनानाञ्चआगताभ्यागतस्य च
सहते नापमानोक्तिं स्वल्पामपिमहामुने !। स्तूयमानश्च महतींप्रीतिंवध्नातियच्छति
यं यमिच्छति वै कामं मृदुत्वमुपयाति च।
बह्व्यो भार्य्या भवन्त्यस्य सूतिमत्योऽतिशोभनाः ॥ ३२ ॥
रतये सप्त च नरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते। प्रवर्द्धमानोऽथनरमष्टभागेन सत्तम ॥ ३३ ॥
दीर्घायुष्ट्वञ्च सर्वेषां पुरुषाणां प्रयच्छति। बन्धूनामेवभरणं ये च दूरादुपागताः ॥
तेषां करोति वै नन्दः परलोकेन चादृतः। भवत्यस्य नच स्नेहःसहवासिषु जायते

पूर्वमित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैःकरोति च। तथैव सत्त्वरजसीयोबिभर्त्तिमहानिधिः

स नीलसञ्ज्ञस्तत्सङ्गी नरस्तच्छीलवान् भवेत्।

वस्त्रकार्पासधान्यादि फलपुष्पपरिग्रहम् ॥ ३७ ॥

मुक्ताविद्रुमशङ्खानां शुक्त्यादीनां तथा मुने !।

काष्ठादीनां करोत्येष यच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥ ३८ ॥

क्रयविक्रयमन्येषांनान्यत्ररमतेमनः। तडागान्पुष्करिण्योऽथतथाऽरामान्करोतिच वन्धश्च सरितां वृक्षांस्तथारोपयते नरः। अनुलेपनपुष्पादिभोगंभुक्त्वाऽभिजायते त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैषजायते। रजस्तमोमयश्चान्यःशङ्खसंज्ञोहियोनिधिः

तेनापि नीयते विप्रं तद्गुणित्वं निधीश्वरः।

एकस्यैव भवत्येष नरं नान्यमुपैति च ॥ ४२ ॥

यस्य शङ्खो निधिस्तस्य स्वरूपं क्रौष्टुके! शृणु।

एक एवात्मना सृष्टमन्नं भुङ्क्ते तथाम्बरम् ॥ ४३ ॥

कदन्नभुक् परिजनो नच शोभनवस्त्रधृक्। नददाति सुहृद्भार्य्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु स्वपोषणपरः शङ्खी नरो भवतिसर्वदा। इत्येतेनिधयः ख्यातानराणामर्थदेवताः ॥

मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः।

यथा ख्यातस्वभावस्तु भवत्येव विलोकनात्।

सर्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेषा द्विजपद्मिनी ॥ ४६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे निधिनिर्णयवर्णनंनामाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

औत्तममन्वन्तरवर्णने ऋषिदर्शनवर्णनम्

कौष्टुकिरुवाच

विस्तरात् कथितंब्रह्मन्ममस्वारोचिषंत्वया। मन्वन्तरंतथैवाष्टौयेपृष्टानिधयोमया
स्वायम्भुवं पूर्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम्। मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयोत्तमसञ्ज्ञितम्

मार्कण्डेय उवाच

उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नाम नामतः। सुरुच्यास्तनयःख्यातोमहाबलपराक्रमः॥
धर्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः। अतीत्यसर्वभूतानि बभौभानुपराक्रमः
समः शत्रौ च मित्रेचपुरे पुत्रे च धर्मवित्। दुष्टेचयमवत्साध्वौसोमवच्च महामुने !॥
बाभ्रव्यां बहुलां नाम उपयेमे स धर्मवित्। उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः॥

ख्यातामतीव तस्यासीद्द्विजवर्य मनः सदा।
स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम्॥ ७॥

अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैति न हि तन्मनः। स्वप्ने चैवतदालम्बिमनोऽभूत्तस्यभूभृतः
सच तस्याः सुचार्वङ्ग्यादर्शनादेवपार्थिवः। ददातिस्पर्शनंगात्रेगात्रस्पर्शेच तन्मयः
श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्यं प्रियमप्यवनीपतेः। तस्यापि भूरिसन्मानंमेने परिभवं ततः॥
अवमेने स्रजं दत्तां शुभान्याभरणानि च। उत्तस्थावर्धपीतेवपिबतोऽस्यवरासवम्
भुञ्जता च नरेन्द्रेण क्षणमात्रं करे धृता। बुभुजेस्वल्पकं भक्ष्यंद्विजनातिमुदावती
एवं तस्यानुकूलस्य नानुकूला महात्मनः। प्रभूततरमत्यर्थं चक्रे रागंमहीपतिः॥
अथ पानगतो भूपः कदाचित्तांमनस्विनीम्। सुरावृतं पानतात्रंग्राहयामाससादरः॥
पश्यतां भूमिपालानां वारमुख्यासमन्वितः। प्रगीयमानमधुरैर्गेयगायनतत्परैः॥
सातुनेच्छति तत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी। समक्षमवनीशानांततःक्रुद्धःसपार्थिवः
उवाच द्वाःस्थमाहूयनिश्वसन्नुरगो यथा। निराकृतस्तया देव्याप्रिययापतिरप्रियः

द्वाःस्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजने वने। परित्यजाशु नैतत्तेविचार्यं वचनं मम ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो नृपस्य वचनमविचार्यमवेक्ष्य सः। द्वाःस्थस्तत्याजतांसुभ्रमारोप्यस्यन्दनेवने

सा च तं विपिने त्यागं नीता तेन महीभृता। अदृश्यमानातं मेने परं कृतमनुग्रहम्

सोऽपितत्रानुरागार्तिदह्यमानात्ममानसः।औत्तानपादिर्भूपालोनान्यांभार्यामविन्दत

सस्मार तां सुचार्वङ्गीमहर्निशमनिर्वृतः। चकारचनिजंराज्यंप्रजाधर्मेणपालयन् ॥

प्रजाः पालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान्।

आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच

महाराज! भृशार्त्तोऽस्मिश्रूयतां गदतोमम। नृणामार्तिपरित्राणमन्यतोननराधिपात्

मम भार्याप्रसुप्तस्यकेनाप्यपहृता निशि। गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि ॥

राजोवाच

न वेत्सि केनापहृता क वा नीता तु सा द्विज!।

यतामि विग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामि ताम् ॥ २६ ॥

ब्राह्मण उवाच

तथैव स्थगितेद्वारि प्रसुप्तस्यमहीपते!। हृताहिभार्या किं केनेत्येतद्विज्ञायते भवान्

त्वंरक्षितानो नृपते!षड्भागादानवेतनः। धर्मस्यतेननिश्चिन्ताःस्वपन्तिमनुजानिशि

राजोवाच

नतेदृष्टा मयाभार्या यादृग्रूपा च देहतः। वयश्चैव समाख्याहिकिंशीलाब्राह्मणी च ते

ब्राह्मण उवाच

कठोरनेत्रा सात्युच्चा ह्रस्वबाहुःकृशानना। लम्बोदरीह्रस्वस्फिजंतथाह्रस्वस्तनीं नृप

विरूपरूपा भूपाल! न निन्दामिं तथैव ताम् ॥ ३० ॥

वाचि भूपाऽतिपरुषा न सौम्या सा च शीलतः।

इत्याख्याता मया भार्या सा करालनिरीक्षणा ॥ ३१ ॥

मनागतीतंभूपाल! तस्याश्चप्रथमं वयः। तादृग्रूपा हि मे भार्यासत्यमेतन्मयोदितम्

राजोवाच

अलं तेब्राह्मण! तयाभार्यामन्यांददामिते । सुखायभार्याकल्याणी दुःखहेतुर्हि तादृशी
अल्पा सुरूपताविप्र! कारणंशीलमुत्तमम् । रूपशीलविहीनाया त्याज्यासा तेनहेतुना

ब्राह्मण उवाच

रक्ष्याभार्या महीपाल!इतिचश्रुतिरुत्तमा । भार्यायांरक्षमाणायां प्रजा भवति रक्षिता
आत्मा हि जायते तस्यां सा रक्ष्याऽतो नरेश्वर ! ।
प्रजायां रक्षमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥ ३६ ॥
तस्यामरक्षमाणायां भवितावर्णसङ्करः । सपातयेन्महीपाल!पूर्वान् स्वर्गादधःपितॄन्
अनुज्ञायगुरुंराजन् दत्वान्यां जातवेदसे । समिधं तु मया भार्या वृत्तेयं कर्कशायतः
कथमेतां विहायान्यभार्यया सहसङ्गरे । गृह्यधर्मो यतो ब्रह्मप्राप्यते शाश्वतं नरैः
पूर्वोढया तु धर्मेण गृही कुर्वन्न सीदति ।
त्यक्त्वा तां च क्रियां कुर्वन्नैव कर्मफलं लभेत् ॥ ४० ॥
अग्निना सह या नूनमाजगामगृहंशुभा । धर्मस्य ग्रहणे सा तु पूर्वोढैव प्रशस्यते
शठायाश्चारणात्तस्या जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥
धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्य भवेन्मम । नित्यक्रियाणांविभ्रंशात् सचापिपतनायमे
तस्याश्चपृथिवीपाल! भवित्रीमम सन्ततिः । तवषड्भागदात्रीसा भवित्रीधर्महेतुकी
तदेतत्ते मयाख्याता पत्नीयामे हृताप्रभो! । तां समानय रक्षायां भवानधिकृतो यतः

मार्कण्डेय उवाच

स तस्यैवं वचः श्रुत्वा विमृष्यच नरेश्वरः । सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोह महारथम्
इतश्चेतश्च तेनासौ परिबभ्राम मेदिनीम् । ददर्श च महारण्ये तापसाश्रममुत्तमम् ॥
अवतीर्यचतत्राऽसौप्रविश्यददृशेमुनिम् । कौश्यांबृष्यांसमासीनंज्वलन्तमिवतेजसा
सदृष्ट्वा नृपतिंप्राप्तं समुत्थायत्वरान्वितः । संमान्य स्वागतेनैवशिष्यमाहार्घ्यमानय
तमाह शिष्यः शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्य किं मुने! ।
तदाज्ञापय सञ्चिन्त्य तवाज्ञां हि करोम्यहम् ॥ ४६ ॥

ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्यसद्विजः । सम्भाषासनदानेनंचक्रे सम्मानमात्मवान्

ऋषिरुवाच

किं निमित्तमिहायातोभवान्किन्तेचिकीर्षितम् । उत्तानपादतनयंवेद्मित्वामुत्तमंनृप!

राजोवाच

ब्राह्मणस्य गृहाद्भार्या केनाप्यपहृता मुने! । अविज्ञातस्वरूपेण तामन्वेष्टुमिहागतः

पृच्छामियत्त्वेतन्मे त्वं प्रणतस्यानुकम्पया । अभ्यागतस्याथगृहं भगवन्!वक्तुमर्हसि

ऋषिरुवाच

पृच्छ मामवनीपाल! यत्प्रष्टव्यमशङ्कितः । वक्तव्यश्चेत्तवमया कथयिष्यामि तत्त्वतः

राजोवाच

गृहागताययो मह्यं प्रथमे दर्शने मुने! । त्वया समुद्यतोदातुं कथंसोऽर्घ्यो निवर्तितः

ऋषिरुवाच

त्वद्दर्शनेन रभसादाज्ञप्तोऽयं मया नृप! । यदा तदाहमेतेन शिष्येण प्रतिबोधितः ॥

एष वेत्ति जगत्यत्र मत्प्रसादादनागतम् । यथाहं समतीतञ्च वर्त्तमानञ्च सर्वतः ॥

आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततो ज्ञातंमयापितत् । ततो नदत्तवानर्घ्यमहं तुभ्यंविधानतः

सत्यं राजन्! त्वमर्घ्यार्हः कुले स्वायम्भुवस्य च ।
तथाऽपि नार्घ्ययोग्यं त्वां मन्यामो वयमुत्तमम् ॥ ५६ ॥

राजोवाच

किं कृतं हि मया ब्रह्मन्! ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ।
येन त्वत्तोऽर्घ्यमर्हामि नाऽहमभ्यागतश्चिरात् ॥ ६० ॥

ऋषिरुवाच

किं विस्मृतं ते यत्पत्नी त्वया त्यक्ता च कानने ।
परित्यक्तस्तया सार्द्धं त्वया धर्मो नृपाखिलः ॥ ६१ ॥

पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतांनरः । विण्मूत्रैर्वार्षिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मणः

पत्न्यानुकूलयाभाव्यं यथाशीलेऽपिभर्त्तरि । दुःशीलापितथाभार्यापोषणीयानरेश्वर!

प्रतिकूला हि सा पत्नी तस्य विप्रस्य यां हृता ।
तथाऽपि धर्मकामोऽसौ त्वामुद्योतितवान् नृप! ॥ ६४ ॥
चलतः स्थापयस्यन्यान् स्वधर्मेषु महीपते ! ।
त्वां स्वधर्माद्विचलितं कोऽपरः स्थापयिष्यति ॥ ६५ ॥
द्वीपे कडंगरीये वा राज्ञि चान्यायवर्त्तिनि ।
पापकृत्सु च विद्वत्सु नियन्ता जन्तुरत्र कः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

विलक्ष्यःसमहीपाल! इत्युक्तस्तेनधीमता । तथेत्युक्त्वाचपप्रच्छहृतांपत्नीं द्विजन्मनः
भगवन्! केननीतासा पत्नीविप्रस्यकुत्रवा । अतीतानागतंवेत्ति जगत्यवितथं भवान्

ऋषिरुवाच

तांजहाराद्रितनयो बलाको नामराक्षसः । द्रक्ष्यसेचाद्य तांभूप ! उत्पलावतके वने
गच्छ संयोजयाऽऽशु त्वं भार्यया हि द्विजोत्तमम् ।
मा पापास्पदतां यातु त्वमिवाऽसौ दिने दिने ॥ ७० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तमेमन्वन्तरे ऋषिदर्शनवर्णनं नामै
कोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

ब्राह्मणभार्यालब्धिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथारुरोह स्वरथं प्रणिपत्य महामुनिम् । तेनाख्यातंवनं तच्च प्रययावुत्पलावतम् ॥
यथाख्यातस्वरूपाञ्चभार्यांभर्त्राद्विजस्यताम् । भक्षयन्तींददर्शाथ श्रीफलानिनरेश्वरः

पप्रच्छ च कथं भद्रे ! त्वमेतद्वनमागता । स्फुटं ब्रवीहि वैशालेरपि भार्या सुशर्मणः

ब्राह्मण्युवाच

सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्यवनवासिनः । पत्नीविशालपुत्रस्य यस्यनामत्वयोदितम्

साहं हृता बलाकेन राक्षसेन दुरात्मना । प्रसुप्ता भवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता

भस्मीभवतु तद्रक्षो येनाऽस्म्येवं वियोजिता ।

मात्रा भ्रातृभिरन्यैश्च तिष्ठाम्यत्र सुदुःखिता ॥ ६ ॥

अस्मिन् वनेऽतिगहने येनानीयाहमुज्झिता । नवेद्मिकारणंकितन्नोपभुङ्क्तेन खादति

राजोवाच

अपितज्ज्ञायते रक्षस्त्वामुत्सृज्यक्कवैगतम् । अहंभर्त्रातवैवात्र प्रेषितो द्विजनन्दिनि!

ब्राह्मण्युवाच

अस्यैवकाननस्यान्तः सतिष्ठतिनिशाचरः । प्रविश्यपश्यतुभवान् नविभेतिततोयदि

मार्कण्डेय उवाच

प्रविवेश ततः सोऽथ तया वर्त्मनि दर्शिते । ददृशे परिवारेण समवेतश्च राक्षसम् ॥

दृष्टमात्रेततस्तस्मिन् त्वरमाणःसराक्षसः । दूरादेवमहींमूर्ध्नास्पृशन्पादान्तिकंययौ

राक्षस उवाच

ममात्रागच्छतागेहं प्रसादस्ते महान्कृतः । प्रशाधिकिं करोम्येष वसामि विषये तव

अर्घ्यञ्चेमं प्रतीच्छ त्वं स्थीयताञ्चेदमासनम् ।

वयं भृत्या भवान् स्वामी दृढमाज्ञापयस्व माम् ॥ १३ ॥

राजोवाच

कृतमेवत्वया सर्वं सर्वामेवातिथिक्रियाम् । किमर्थंब्राह्मणवधूस्त्वयानीता निशाचर!

नेयं सुरूपा सन्त्यन्या भार्यार्थञ्चेद्धृता त्वया ।

भक्ष्यार्थं चेत्कथं नात्ता त्वयैतत्कथ्यतां मम ॥ १५ ॥

राक्षस उवाच

नवयंमानुषाहारा अन्ये ते नृप! राक्षसाः । सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप!

सुकृतस्य फलं यत्तु तत्ते वक्ष्याम्यहं नृप !।
राक्षसीं योनिमापन्नः क्रूरां लोकभयङ्करीम् ॥ १७ ॥
स्वभावश्चमनुष्याणांयोषिताञ्चविमानिताः। मानिताश्चसमश्नीमोनवयंजन्तुखादकाः
यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा।
भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥ १६ ॥
सन्तिनःप्रमदाभूप!रूपेणाप्सरसांसमाः । राक्षस्यस्तासुतिष्ठत्सुमानुषीषुरतिःकथम्

राजोवाच

यद्येषा नोपभोगाय नाहाराय निशाचर!। गृहं प्रविश्य विप्रस्यतत्किमेषाहृता त्वया

राक्षस उवाच

मन्त्रवित् सद्विजश्रेष्ठो यज्ञेयज्ञेगतस्य मे । रक्षोघ्नमन्त्रपठनात् करोत्युच्चाटनं नृप ॥
वयं बुभुक्षितास्तस्य मन्त्रोच्चाटनकर्मणा । क्वयामःसर्वयज्ञेषुस ऋत्विग्भवतिद्विजः
ततोऽस्माभिरिदं तस्य वैकल्यमुपपादितम् ।
पत्न्या विना पुमानिज्याकर्मयोग्यो न जायते ॥ २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

वैकल्योच्चारणात्तस्य ब्राह्मणस्यमहामते । ततः स राजातिभृशं विषण्णःसमजायत
वैकल्यमेव विप्रस्य वदन्मामेव निन्दति । अनर्हमर्घस्यच गां सोऽप्याह मुनिसत्तमः
वैकल्यंतस्य विप्रस्य राक्षसोऽप्याहमेयथा । अपत्नीकतयासोऽहंसङ्कटंमहदास्थितः

मार्कण्डेय उवाच

एवं चिन्तयतस्तस्य पुनरप्याह राक्षसः । प्रणामनम्रो राजानं बद्धाञ्जलिपुटो मुने !
नरेन्द्राज्ञाप्रदानेन प्रसादः क्रियतां मम । भृत्यस्य प्रणतस्येत्थंयुष्मद्विषयवासिनः

राजोवाच

स्वभावं वयमश्नीमस्त्वयोक्तं यन्निशाचर! । तदर्थिनोवयं येन कार्येण शृणु तन्मम
अस्यास्त्वयाऽद्य ब्राह्मण्या दौःशील्यमुपभुज्यताम् ।
येन त्वयात्तदौःशील्या तद्विनीता भवेदियम् ॥ ३१ ॥

नीयतां यस्य भार्येयं तस्यवेश्मनिशाचर! । अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंगृहमभ्यागतस्य मे

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राक्षसस्तस्याः प्रविश्याऽन्तः स्वमायया ।
भक्षयामास दौःशील्यं निजशक्त्या नृपाज्ञया ॥ ३३ ॥

दौःशील्येनातिरौद्रेणपत्नीतस्यद्विजन्मनः । तेनसासम्परित्यक्तातमाहजगतीपतिम्
स्वकर्मफलपाकेन भर्तुस्तस्य महात्मनः । वियोजिताऽहं तद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥
नास्यदोषोनवा तस्यमम भर्तुर्महात्मनः । ममैव दोषो नान्यस्य सुकृतं ह्युपभुज्यते

अन्यजन्मनि कस्याऽपि विप्रयोगः कृतो मया ।
सोऽयं मयाप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ॥ ३७ ॥

राक्षस उवाच

प्रापयामि तवादेशादिमां भर्तृगृहं प्रभो! । यदन्यत्करणीयन्ते तदाज्ञापय पार्थिव !

राजोवाच

अस्मिन् कृतेकृतंसर्वं त्वयामे रजनीचर! । आगन्तव्यश्चतेवीर! कार्यकाले स्मृतेन मे

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् ।
निन्ये भर्तृगृहं शुद्धां दौःशील्यापगमात्तदा ॥ ४० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्य्यानयनवर्णनं नाम
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

ऋषिणा नृपभार्यादौःशील्याभाववर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तांप्रेषयित्वाराजापिस्वभर्तृगृहमङ्गनाम्। चिन्तयामासनिःश्वस्यकिमत्रसुकृतंभवेत्

अनर्घयोग्यताकष्टं समामाहमहामनाः। वैकल्यं विप्रमुद्दिश्य तथाहार्यं निशाचरः॥

सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिसा। अथवाज्ञानदृष्टिंतंपृच्छामिमुनिसत्तमम्

सञ्चिन्त्येत्थं सभूपालःसमारुह्यचतंरथम्। ययौयत्रसधर्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः

अवरुह्य रथात्सोऽथ तं समेत्य प्रणम्य च। यथावृत्तंसमाचख्यौ राक्षसेनसमागतम्

ब्राह्मण्या दर्शनंचैव दौःशील्यापगमं तथा। प्रेषणंभर्तृगेहे च कार्यमागमने च यत्॥

ऋषिरुवाच

ज्ञातमेतन्मया पूर्वं यत्कृतं ते नराधिप। कार्यमागमने चैवमत्समीपेतवाखिलम्॥

प्रष्टुं मामिह किं कार्यंमयेत्युद्विग्नमानसः। त्वच्यागतेमहीपालश्रृणुकार्यंचयत्त्वया

पत्नीधर्मार्थकामानां कारणंप्रबलंनृणाम्। विशेषतश्चधर्मंश्चसन्त्यक्तस्त्यजताहिताम्

अपत्नीको नरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम्। ब्राह्मणक्षत्रियोवापिवैश्यःशूद्रोऽपिवानृप

त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम्।

अत्याज्यो हि यथा भर्त्ता स्त्रीणां भार्या तथा नृणाम्॥ ११॥

राजोवाच

भगवन् किं करोम्येष विपाको मम कर्मणाम्।

नानुकूलानुकूलस्य यस्मात्त्यक्ता ततो मया॥ १२॥

यद्यत्करोति तत्क्षान्तं दह्यमानेनचेतसा। भगवंस्तद्वियोगार्तिविभीतेनान्तरात्मना

साम्प्रतं तु वने त्यक्ता न वेद्मि क नु सा गता।

भक्षिता वापि विपिने सिंहव्याघ्रनिशाचरैः॥ १४॥

ऋषिरुवाच

नभक्षितासा भूपाल! सिंहव्याघ्रनिशाचरैः । सात्वविप्लुतचारित्रासाम्प्रतन्तुरसातले

राजोवाच

सानीता केनपातालमास्ते साऽदूषिताकथम् । अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि

ऋषिरुवाच

पाताले नागराजोऽस्ति प्रख्यातश्चकपोतकः । तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने
सारूपशालिनी तेन सानुरागेणपार्थिव । वेदितार्थेन पातालं नीता सा युवती तदा
ततस्तस्य सुता सुभ्रूर्नन्दा नाम महीपते !। भार्यामनोरमाचास्यनागराजस्यधीमतः
तया मातुः सपत्नीयं साभवित्रीतिशोभना। दृष्टास्वगेहंसानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा
यदातुयाचिता नन्दा न ददातिनृपोत्तरम् । मूकाभविष्यसीत्याहतदातांतनयांपिता
एवं शप्ता सुता तेन साचास्तेतत्रभूपते । नीता तेनोरगेन्द्रेण धृता तत्सुतया सती

मार्कण्डेय उवाच

ततो राजा परं हर्षमवाप्य तमपृच्छत । द्विजवर्यं स्वदौर्भाग्यकारणं दयितां प्रति

राजोवाच

भगवन् सर्वलोकस्य मयिप्रीतिरनुत्तमा । किन्नुतत्कारणं येन स्वपत्नीनातिवत्सला
ममचासावतीवेष्टा प्राणेभ्योऽपिमहामुने । साचमांप्रतिदुःशीलाब्रूहि यत्कारणंद्विज

ऋषिरुवाच

पाणिग्रहणकाले त्वं सूर्यभौमशनैश्चरैः । शुक्रवाचस्पतिभ्याञ्चतवभार्यावलोकिता
तन्मुहूर्त्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा । परस्परविपक्षौतौततःपार्थिवतेभृशम्
तद्गच्छत्वं स्वधर्मेण परिपालय मेदिनीम् । पत्नीसहायःसर्वाश्चकुरुधर्मवतीःक्रियाः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ते प्रणिपत्यैनमारुह्य स्यन्दनं ततः । उत्तमःपृथिवीपालआजगाम निजं पुरम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे उत्तमेनऋषिमुखात्पातालस्थस्वभार्यावृत्त ज्ञानवर्णनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

लब्धभार्यब्राह्मणस्यौत्तमेनसहसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वनगरं प्राप्य तं ददर्श द्विजं नृपः । समेतं भार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम्

ब्राह्मण उवाच

राजवर्य कृतार्थोऽस्मि यतोधर्मोहिरक्षितः । धर्मज्ञेनेह भवताभार्यामानयता मम ॥

राजोवाच

कृतार्थस्त्वं द्विजश्रेष्ठ निजधर्मानुपालनात् । वयंसङ्कटिनो विप्र येषां पत्नीनवेश्मनि

ब्राह्मण उवाच

नरेन्द्र साहिविपिनेभक्षिता श्वापदैर्यदि । अलंतयाकिमन्यस्यानपाणिर्गृह्यते त्वया

क्रोधस्य वशमागम्य धर्मो न रक्षितस्त्वया ॥ ४ ॥

सन्ति राज्ञां गृहे कन्या शोभना नृपनन्दन! ।

राजोवाच

नभक्षिता मे दयिताश्वापदैः साहिजीवति । अविदूषितचारित्राकथमेतत्करोम्यहम्

ब्राह्मण उवाच

यदि जीवति ते भार्या न चैव व्यभिचारिणी ।

तदपत्नीकताजन्म किं पापं क्रियते त्वया ॥ ६ ॥

राजोवाच

आनीतापि हि सा विप्र!प्रतिकूलासदैव मे । दुःखायनसुखायालंतस्यामैत्रीनवैमयि

यथा ते ब्राह्मणी विप्र! वशगा तवसुन्दरी ।

तथा त्वं कुरु यत्नं मे यथा सा वशगामिनी ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच

त्वयि सम्प्रीतये तस्या वरेष्टिरपकारिणी ।

क्रियते मित्रकामैर्या मित्रविन्दां करोमि ताम् ॥ ८ ॥
अप्रीतयोः प्रीतिकरीसाहिसंजननीपरम् । भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्रतां तवेष्टिंकरोम्यहम्
यत्र तिष्ठति सा सुभ्रूस्तव भार्या महीपते !।
तस्मादानीयतां सा ते परां प्रीतिमुपैष्यति ॥ १० ॥
तस्यास्तव हितार्थाय धर्मो यत्र न संशयः ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तः सतु सम्भारानशेषानवनीपतिः । आनिनायचकारेष्टिं स चतां द्विजसत्तमः॥
सप्तकृत्वः सतुतदा चकारेष्टिं पुनः पुनः । तस्यराज्ञोद्विजश्रेष्ठो भार्यासम्पादनाय वै
यदारोपितमैत्रां ताममन्यत महामुनिः । स्वभर्त्तरि तदा विप्रस्तमुवाच नराधिपम्
आनीयतां नरश्रेष्ठ! या तवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ।
भुङ्क्ष्व भोगांस्तया सार्द्धं यज यज्ञांस्तथाऽऽदृतः ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा । सस्मारतं महावीर्यं सत्यसन्धंनिशाचरम्
स्मृतस्तेन तदा सद्यः समुपेत्य नराधिपम् ।
किं करोमीति सोऽप्याह प्रणिप्रत्य महामुने !॥ १६ ॥
ततस्तेन नरेन्द्रेण विस्तरेण निवेदिने । गत्वा पातालमादाय राजपत्नीमुपाययौ ॥
आनीता चाऽतिहार्देन सा ददर्श तदा पतिम् ।
उवाच च प्रसीदेति भूयोभूयो मुदान्विता ॥ १८ ॥
ततः स राजा रभसा परिष्वज्याऽऽह मानिनीम् ।
प्रिये! प्रसन्न एवाहं भूयोऽप्येवं ब्रवीषि किम् ॥ १६ ॥

पत्न्युवाच

यदि प्रसादप्रवणं नरेन्द्र ! मयि ते मनः । तदेतदभियाचेत्वां तत्कुरुष्व ममार्हणम्

राजोवाच

निःशङ्कं ब्रूहि मत्तो यद्भवत्या किञ्चिदीप्सितम् ।

तदलभ्यं न ते भीरु! तवायत्तोऽस्मि नाऽन्यथा ॥ २१ ॥

पत्न्युवाच

मदर्थं तेन नागेनसुता शप्तासखी मम । मूका भविष्यसीत्याह सा च मूकत्वमागता
तस्याःप्रतिक्रियांप्रीत्याममशक्नोतिचेद्भवान् । वाग्विघातप्रशान्त्यर्थं ततःकिन्नकृतंमम

मार्कण्डेय उवाच

ततःसराजातंविप्रमाहास्मिन्द् कीदृशीक्रिया । तन्मूकतापनोदायसच तंप्राहपार्थिवम्

ब्राह्मण उवाच

भूप!सारस्वतीमिष्टिं करोमि वचनात्तव । पत्नीतवेयमानृण्यं यातु तद्वाक् प्रवर्तनात्

मार्कण्डेय उवाच

इष्टिंसारस्वतीं चक्रेतदर्थंस द्विजोत्तमः । सारस्वतानि सूक्तानिजजाप च समाहितः
ततःप्रवृत्तवाक्यां तां गर्गः प्राहरसातले । उपकारः सखी भर्त्रा कृतोऽयमतिदुष्करः
इत्थंज्ञानं समासाद्यनन्दाशीघ्रगतिः पुरम् । ततोराज्ञीं परिष्वज्यस्वसखीमुरगात्मजा
तञ्च संस्तूय भूपालं कल्याणोक्त्या पुनः पुनः । उवाचमधुरंनागी कृतासनपरिग्रहा
उपकारः कृतोवीर! भवतायो ममाधुना । तेनास्म्याकृष्टहृदया यद्ब्रवीमिश्रृणुष्वतत्
तवपुत्रो महावीर्योभविष्यति नराधिप! । तस्याऽप्रतिहतंचक्रमस्यांभुविभविष्यति
सर्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मानुष्ठानतत्परः । मन्वन्तरेश्वरोधीमान्! भविष्यतिस वैमनुः

मार्कण्डेय उवाच

इतिदत्त्वा वरं तस्मै नागराजसुताततः । सखीं तां सम्परिष्वज्यपातालमगमन्मुने!
तत्रतस्यतया सार्द्धंरमतःपृथिवीपतेः । जगाम कालः सुमहान् प्रजाः पालयतस्तथा

ततः स तस्यां तनयो जज्ञे राज्ञो महात्मनः ।
पौर्णमास्यां यथा कान्तश्चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ॥ ३५ ॥

तस्मिन् जातेमुदं प्रापुः प्रजाःसर्वामहात्मनि । देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिः पपात च
तस्यदृष्ट्वावपुः कान्तं भविष्यं शीलमेवच । औत्तमश्चेतिमुनयो नाम चक्रुः समागताः
जातोऽयमुत्तमे वंशेबालः काले तथोत्तमे । उत्तमावयवस्तेन औत्तमोऽयं भविष्यति

मार्कण्डेय उवाच

उत्तमस्यसुतःसोऽथनाम्ना ख्यातस्तथोत्तमः। मनुरासीत्तत्प्रभावोभागुरेश्रूयतांमम
उत्तमाख्यानमखिलं जन्मवैवोत्तमस्यच। नित्यंश्रृणोतिविद्वेषं सकदाचिन्नगच्छति
इष्टैर्दारैस्तथा पुत्रैर्बन्धुभिर्वा कदाचन। वियोगोनास्य भविताश्रृण्वतःपठतोऽपिवा
तस्यमन्वन्तरं ब्रह्मन्!वदतोमे निशामय। श्रूयतां तत्र यश्चेन्द्रो ये च देवास्तथर्षयः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे औत्तमजन्मवर्णनं नाम
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

देवेन्द्रर्षिराजवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्औत्तमस्यप्रजापतेः। देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम

स्वधामानस्तथा देवा यथानामानुकारिणः।
सत्याख्यश्च द्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानां तथा गणः ॥ २ ॥

तृतीयेतु गणेदेवाः शिवाख्यामुनिसत्तम!। शिवाःस्वरूपतस्तेतु श्रुताःपापप्रणाशनाः
प्रतर्दनाख्यश्च गणो देवानां मुनिसत्तम!। चतुर्थस्तत्र कथित औत्तमस्यान्तरे मनोः
वशवर्तिनः पञ्चमेऽपि देवास्तत्रगणेद्विजः। यथाख्यातस्वरूपास्तु सर्व एवमहामुने!
एते देवगणाः पञ्चस्मृता यज्ञभुजस्तथा। मन्वन्तरे मनुश्रेष्ठे सर्वे द्वादशका गणाः
तेषामिन्द्रो महाभागस्त्रैलोक्ये सगुरुर्भवेत्। शतंक्रतूनामाहृत्य सुशान्तिर्नामनामतः
यस्योपसर्गनाशाय नामाक्षरविभूषिता। अद्यापि मानवैर्गाथा गीयते तु महीतले॥

सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्ति स प्रयच्छति।
सहितः शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्तिनः (वशवर्तिभिः)॥ ६ ॥

अजःपरशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रमाः । पुत्रास्तस्यमनोरासन् विख्यातास्त्रिदशोपमाः
तत् सूतिसम्भवैर्भूमिः पालिताऽभून्नरेश्वरैः । यावन्वन्मन्तरं तस्यमनोरुत्तमतेजसः
चतुर्युगानां सङ्ख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादिसञ्ज्ञानां यान्युक्तानि युगे (पुरा) मया ॥ १२ ॥
स्वतेजसा हितपसोवरिष्ठस्य महात्मनः । तनयाश्चान्तरेतस्मिन् सप्तसप्तर्षयोऽभवन्
तृतीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया । तामसस्य चतुर्थं तु मनोरन्तरमुच्यते ॥ १४
वियोनिजन्मनोयस्य यशसाद्योतितंजगत् । जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मन् ! श्रूयतांगदतोमम
अतीन्द्रियमशेषाणामनूनाश्चरितं तथा । तथा जन्माऽपि विज्ञेयं प्रभावश्च महात्मनाम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण औत्तममन्वन्तरसमाप्तिवर्णनं नाम
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

स्वराष्ट्रराजस्यराज्यभङ्गपूर्वकंतपःकरणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

राजाभूद्भुविविख्यातःस्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् । अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञःसंग्रामेष्वपराजितः
तस्यायुः सुमहत् प्रादात् (दत्तं) मन्त्रिणाराधितो रविः (सूर्येणसुमहाद्युतेः) ।
पत्नीनाञ्च शतन्तस्य धन्यानामभवद् द्विज ! ॥ २ ॥
तस्यदीर्घायुषःपत्न्यो नातिदीर्घायुषोमुने! । कालेनजग्मुर्निधनंभृत्यमन्त्रिजनास्तथा
सभार्याभिस्तथा युक्तोभृत्यैश्चसहजन्मभिः । उद्विग्नचेताःसंप्रापवीर्यहानिमहर्निशम्
वीर्यहीनं निभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तं सुदुःखितम् ।
अनन्तरो विमर्द्दाख्यो राज्याच्च्यावितवांस्तदा ॥ ५ ॥
राज्याच्च्युतं सोऽपि वनं गत्वा निर्विण्णमानसः ।

पुरा भगवता विप्र! मन्त्रिणाराधितेन वै ।
तपस्तेपे महाभागो वितस्तापुलिने स्थितः ॥ ६ ॥

ग्रीष्मेपञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वभ्रंकषाशिकः । जलशायीच शिशिरेनिराहारो यतव्रतः
ततस्तपस्यतस्तस्य प्रावृट्कालेमहाप्लवः । वभूवानुदिनं मेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥
नदिग्विज्ञायते पूर्वा दक्षिणावा न पश्चिमा । नोत्तरा तमसा सर्वमनुलिप्तमिवाभवत्
ततोऽतिप्लवनेभूपः स नद्याः प्रेरितस्तटम् । प्रार्थयन्नपिनावाप ह्रियमाणोऽतिवेगिना
अथदूरे जलौघेन ह्रियमाणोमहीपतिः । आससादजलेरौहींस पुच्छे जगृहे च ताम्
तेन प्लवेन स ययावुह्यमानो महीतले । इतश्चेतश्चान्धकारे आससाद तटं ततः ॥
विस्तारि पङ्कमत्यर्थं दुस्तरं सनृपस्तरन् । तथैव कृष्यमाणोऽन्यद्व्यंवनमवाप सः
तत्रान्धकारे सारौही चकर्ष वसुधाधिपम् । पुच्छेलग्नंमहाभागं कृशं धमनिसन्ततौ
तस्याश्च स्पर्शसंभूतामवापमुदमुत्तमाम् । सोऽन्धकारे भ्रमन् भूयो मदनाकृष्टमानसः
विज्ञाय सानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम् । नरेन्द्रं तद्वनस्यान्तः सा मृगी तमुवाच ह
किं पृष्ठं वेपथुमता करेण स्पृशसे मम । अन्यथैवास्यकार्यस्य सञ्जाता नृप ते गतिः
नास्थाने वोमनो यातं नागम्याहंतवेश्वर! । किन्तुत्वत्सङ्गमे विघ्नमेषलोलःकरोतिमे

मार्कण्डेय उवाच

इतिश्रुत्वा वचस्तस्यामृग्याश्चजगतीपतिः । जातकौतूहलो रौहीमिदंवचनमब्रवीत्
कात्वं ब्रूहिमृगी वाक्यं कथं मानुषवद्वदेत् । कश्चैवलोलोयोविघ्नंत्वत्सङ्गं कुरुतेमम

मृग्युवाच

अहंते दयिता भूप प्रागासमुत्पलावती । भार्या शताग्रमहिषी दुहिताद्दृढधन्वनः ॥

राजोवाच

किन्तु यावत्कृतं कर्मयेनेमां योनिमागता । पतिव्रता धर्मपरासाचेत्थं कथमीदृशी ॥

मृग्युवाच

अहं पितृगृहे बालासखीभिः सहितावनम् । रन्तुं गतादद‍र्शैकं मृगं मृग्यासमागतम्
ततः समीपवर्त्तिन्या मयासाताडितामृगी । मया त्रस्तागतान्यत्रक्रुद्धःप्राहततोमृगः

मूढे! किमेवं मत्ताऽसि धिक्ते दौःशील्यमीदृशम् ।
आधानकालो येनाऽयं त्वया मे विफलीकृतः ॥ २५ ॥

वाचं श्रुत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषतः । भीतातमब्रुवंकोऽसीत्येतांयोनिमुपागतः
ततः स प्राहपुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः । सुतपानाममृग्यां तुसाभिलाषोमृगोऽभवम्
इमाश्चानुगतःप्रेम्णावाञ्छितश्चानयावने । त्वयावियोजितादुष्टे तस्माच्छापंददामिते
मयाचोक्तं तवाज्ञानादपराधः कृतो मुने !। प्रसादं कुरु शापं मे न भवान् दातुमर्हति ॥

इत्युक्तः प्राह मां सोऽपि मुनिरित्थं महीपते !।
न प्रयच्छामि शापं ते यद्यात्मानं ददामिते ॥ ३० ॥

मयाचोक्तंमृगीनाहंमृगरूपधरावने । लप्स्यसेऽन्यांमृगीं तावन्मयिभावोनिवर्त्यताम्
इत्युक्तः कोपरक्ताक्षः स प्राह स्फुरिताधरः । नाहंमृगीत्वयेत्युक्तंमृगीमूढेभविष्यसि
ततो भृशं प्रव्यथिता प्रणम्य मुनिमब्रुवम् । स्वरूपस्थमतिक्रुद्धं प्रसीदेतिपुनः पुनः
बालानभिज्ञावाक्यानांततःप्रोक्तमिदं मया । पितर्यसतिनारीभिर्व्रियतेहिपतिःस्वयम्
सति ताते कथञ्चाहं वृणोमि मुनिसत्तम !। सापराधाथवापादौप्रसीदेशनमाम्यहम्
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रणताया महामते । इत्थं लालप्यमानायाः स प्राह मुनिपुङ्गवः
न भवत्यन्यथाप्रोक्तं मम वाक्यं कदाचन । मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्नेवजन्मनि
मृगत्वे च महाबाहुस्तव गर्भमुपैष्यति । लोलो नाम मुनेःपुत्रः सिद्धवीर्यस्यभाविनि

जातिस्मरा भवित्री त्वं तस्मिन् गर्भमुपागते ।
स्मृतिं प्राप्य तथा वाचं मानुषीमीरयिष्यसि ॥ ३६ ॥
तस्मिन् जाते मृगी (ग) त्वात्त्वं विमुक्ता पतिनाऽर्चिता ।
लोकानवाप्स्यसि प्राप्या येन दुष्कृतकर्मभिः ॥ ४० ॥
सोऽपि लोलो महावीर्यः पितृशत्रून् निपात्य वै ।
जित्वा वसुन्धरां कृत्स्नां भविष्यति ततो मनुः ॥ ४१ ॥
एवं शापमहं लब्ध्वा मृता तिर्यक्त्वमागता ।
त्वत्संस्पर्शाच्च गर्भोऽसौ सम्भूतो जठरे मम ॥ ४२ ॥

अतोऽब्रवीमिनास्थानेतवयातंमनोमयि। नचाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नंकरोत्यसौ

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्तस्ततः सोऽपि राजा प्राप्य परां मुदम्।
पुत्रो ममाऽरीक्षित्वेति पृथिव्यां भविता मनुः ॥ ४४ ॥

ततस्तं सुषुवेपुत्रंसामृगीलक्षणान्वितम्। तस्मिन्जातेचभूतानिसर्वाणिप्रययुर्मुदम्
विशेषतश्च राजासौ पुत्रे जातेमहाबले। साविमुक्तामृगीशापात्प्रापलोकाननुत्तमान्
ततस्तस्यर्षयः सर्वे समेत्य मुनिसत्तम!। अवेक्ष्य भाविनीमृद्धिं नाम चक्रुर्महात्मनः
तामसीं भजमानायां योनिंमातर्यजायत। तमसा चावृते लोकेतामसोऽयंभविष्यति
ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्द्धितो वने। जातबुद्धिरुवाचेदं पितरं मुनिसत्तम!॥
कस्त्वं तात कथं वाहं पुत्रो माताचकाामम। किमर्थमागतश्च त्वमेतत्सत्यंब्रवीहिमे

मार्कण्डेय उवाच

ततः पितायथावृत्तंस्वराज्यच्यावनादिकम्। तस्याचष्टेमहाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः

श्रुत्वा तत्सकलं सोऽपि समाराध्य च भास्करम्।
अवाप दिव्यान्यस्त्राणि स संहाराण्यशेषतः ॥ ५२ ॥
कृतास्त्रस्तानरीक्षित्वा पितुरानीय चाऽन्तिकम्।
अनुज्ञातान् मुमोचाऽथ तेन स्वं धर्ममास्थितः ॥ ५३ ॥
पिताऽपि तस्य स्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान्।
विसृष्टदेहः सम्प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रमुखं सुखम् ॥ ५४ ॥
जित्वा समस्तां पृथिवीं तामसाख्यः स पार्थिवः।
तामसाख्यो मनुरभूत्तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥ ५५ ॥

ये देवास्तत्पतिर्यश्च देवेन्द्रो ये तथर्षयः। ये पुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालकाः
सत्यास्तथान्ये सुधियः सुरूपा हरयस्तथा। एते देवगणास्तत्र सप्तविंशतिकामुने
महाबलो महावीर्यः शतयज्ञोपलक्षितः। शिखिरिन्द्रस्तथा तेषां देवानामभवद्विभुः

ज्योतिर्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा।

पीवरश्च तथा ब्रह्मन् सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ५९ ॥

नरः क्षान्तिः शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ।

पुत्रास्तु तामसस्याऽऽसन् राजानः सुमहाबलाः ॥ ६० ॥

इत्येतत्तामसं विप्र! मन्वन्तरमुदाहृतम् । यःपठेच्छृणुयाद्वापि तमसा स न बाध्यते

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेतामसमन्वन्तरेनानाराज्ञांवर्णनंनाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

रैवतमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

पञ्चमोऽपि मनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुतः । तस्योत्पत्तिंविस्तरशःश्रृणुष्वकथयामिते

ऋषिरासीन्महाभागऋतवागितिविश्रुतः । तस्यापुत्रस्य पुत्रोऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मनः

स तस्य विधिवच्चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः ।

तथोपनयनादींश्च स चाशीलोऽभवन्मुने ! ॥ ३ ॥

यतःप्रभृति जातोऽसौ ततः प्रभृति सोऽप्यृषिः । दीर्घरोगपरामर्षमवाप मुनिपुङ्गवः

माता तस्य परामार्त्ति कुष्ठरोगादिपीडिता ।

जगाम स पिता चास्य चिन्तयामास दुःखितः ॥ ५ ॥

किमेतदिति सोऽप्यस्य पुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ।

जग्राह भार्यामन्यस्य मुनिपुत्रस्य सम्मुखीम् ॥ ६ ॥

ततो विषण्णमनसा ऋतवागिदमुक्तवान् । अपुत्रता मनुष्याणां श्रेयसे न कुपुत्रता

कुपुत्रो हृदयायासं सर्वदा कुरुते पितुः । मातुश्च स्वर्गसंस्थाश्चस्वपितॄन्पातयत्यधः

सुहृदां नोपकाराय पितॄणाञ्च नतृप्तये । पित्रोर्दुःखायधिग्जन्म तस्य दुष्कृतकर्मणः

धन्यास्ते तनया येषां सर्वलोकाभिसम्मताः ।

परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्मण्यनुव्रताः ॥ १० ॥

अनिर्वृतं तथा मन्दं परलोकपराङ्मुखम् । नरकाय न सद्गत्यै कुपुत्रालम्बिजन्मनः

करोतिसुहृदां दैन्यमहितानां तथामुदम् । अकालेचजरां पित्रोः कुपुत्रः कुरुतेध्रुवम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं सोऽत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्य चरितैर्मुनिः । दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तं गर्गमपृच्छत ॥

ऋतवागुवाच

सुव्रतेनपुरा वेदा गृहीताविधिवन्मया । समाप्तवेदान् विधिवत् कृतो दारपरिग्रहः

सदारेण क्रियाः कार्याः श्रौताः स्मार्त्ता वषट्क्रियाः ।

न मे न्यूनाः कृताः काश्चिद्यावदद्य महामुने ! ॥ १५ ॥

गर्भाधानविधानेन न काममनुरुध्यता । पुत्रार्थं जनितश्चायं पुन्नाम्नो बिभ्यता मुने!

सोऽयं किमात्मदोषेण मम दोषेण वा मुने! ।

अस्मद् दुःखावहो जातो दौःशील्याद् बन्धुशोकदः ॥ १७ ॥

गर्ग उवाच

रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ ! जातोऽयंतनयस्तव । तेन दुःखाय ते दुष्टे काले यस्मादजायत

नतेऽपचारो नैवास्यमातुर्नायंकुलस्यते । तस्यदौःशील्यहेतुस्त्वं रेवत्यन्तमुपागतम्

ऋतवागुवाच

यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्यन्तसमुद्भवम् । दौःशील्यमेतत्सा तस्मात्पततामाशुरेवती

मार्कण्डेय उवाच

तेनैवं व्याहृते शापेरेवत्यृक्षं पपातह । पश्यतः सर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥

रेवत्यृक्षं च पतितं कुमुदाद्रौ समन्ततः । भासयामास सहसा वनकन्दरनिर्झरान् ॥

कुमुदाद्रिश्च तत्पातात् ख्यातो रैवतकोऽभवत् !

अतीव रम्यः सर्वस्यां पृथिव्यां पृथिवीधरः ॥ २३ ॥

तस्यर्क्षस्यतुया कान्तिर्जातापङ्कजिनीसरः । ततोजज्ञेतदाकन्या रूपेणातीवशोभना

रेवतीकान्तिसम्भूतां तांदृष्ट्वाप्रमुचो मुनिः । तस्यानामचकारेत्थं रेवती नाम भागुरे

पोषयामासचैवैतांस्वाश्रमाभ्याससम्भवाम् । प्रमुचःसमहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले

तां तु यौवनिनीं दृष्ट्वा कन्यकां रूपशालिनीम् ।
स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या भर्त्ता भवेदिति ॥ २७ ॥

एवंचिन्तयतस्तस्य ययौकालोमहान्मुने! । नचाससाद सदृशंवरं तस्या महामुनिः

ततस्तस्या वरंप्रष्टुमग्निंस प्रमुचोमुनिः । विवेशवह्निशालां वै प्रष्टारं प्राह हव्यभुक्

महाबलो महावीर्यः प्रियवाग्धर्मवत्सलः । दुर्गमो नामभविता भर्त्ताह्यस्यामहीपतिः

मार्कण्डेय उवाच

अनन्तरंच मृगयाप्रसङ्गेनागतो मुने! । तस्याश्रमपदं धीमान् दुर्गमः स नराधिपः ॥

प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः । पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥

सप्रविश्याश्रमपदंतांतन्वीं जगतीपतिः । अपश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्यपृष्टवान्

राजोवाच

क्वगतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः । तंप्रणेतुमिहेच्छामि तत् त्वं प्रब्रूहि शोभने!

मार्कण्डेय उवाच

अग्निशालां गतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्य भाषितम् ।
प्रियेत्यामन्त्रणञ्चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥ ३५ ॥

सददर्श महात्मानं राजानं दुर्गमंमुनिः । नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥ ३६ ॥

तस्मिन् दृष्टे ततः शिष्यमुवाच स तु गौतमम् ।
गौतमानीयतां शीघ्रमर्घोऽस्यजगतीपतेः ॥ ३७ ॥

एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागतः । जामाताच विशेषेण योग्योऽर्घस्यमतो मम

मार्कण्डेय उवाच

ततःसचिन्तयामास राजा जामातृकारणम् । विवेदचन तन्मौनी जगृहेऽर्घञ्च तं नृप

तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घं महामुनिः । स्वागतं प्राह राजेन्द्रमपि ते कुशलं गृहे ॥

कोषेबलेऽथ मित्रेषु भृत्यामात्येनरेश्वर! । तथाऽऽत्मनिमहाबाहो!यत्रसर्वंप्रतिष्ठितम्

पत्नीचतेकुशलिनीयतएवानुतिष्ठति । पृच्छाम्यस्यास्ततोनाहं कुशलिन्योऽपरास्तव

राजोवाच

त्वत्प्रसादादकुशलं न क्वचिन्मम सुव्रत! । जातकौतूहलश्चास्मिममभार्याऽत्र कामुने!

ऋषिरुवाच

रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी । तवभार्यावरारोहातांत्वंराजन्नवेत्सिकिम्

राजोवाच

सुभद्रां शान्ततनयांकावेरीतनयां विभो !। सुराष्ट्रजांसुजाताञ्चकदम्बाञ्चवरूथजाम्

विपाठां नन्दिनीञ्चैव वेद्मि भार्यां गृहे द्विज । तिष्ठन्तिमेनभगवन्रेवतीं कान्वियम्

ऋषिरुवाच

प्रियेति साम्प्रतं येयंत्वयोक्तावरवर्णिनी । किंविस्मृतन्तेभूपालश्लाध्येयंगृहिणीतव

राजोवाच

सत्यमुक्तं मया किन्तु भावोदुष्टोनमे मुने । नात्रकोपंभवान्कर्तुमर्हत्यस्मासुयाचितः

ऋषिरुवाच

तत्त्वं ब्रवीषि भूपाल! न भावस्तव दूषितः । व्याजहारभवानेतद्वह्निना नृप चोदितः

मया पृष्टो हुतवहः कोऽस्या भर्त्तेति पार्थिव । भविता तेनचाप्युक्तोभवानेवाद्यवैवरः

तद्गृह्यतां मयादत्ता तुभ्यंकन्यानराधिप । प्रियेत्यामन्त्रिताचेयं विचारंकुरुषेकथम्

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽसावभवन्मौनी ते नोक्तः पृथिवीपतिः ।
ऋषिस्तथोद्यतः कर्तुं तस्या वैवाहिकं विधिम् ॥ ५२ ॥

तमुद्यतं सापितरं विवाहायमहामुने । उवाच कन्या यत्किञ्चित्प्रश्रयावनतानना ॥

यदि मे प्रीतिमांस्तात प्रसादं कर्तुमर्हसि । रेवत्यृक्षे विवाहं मे तत्करोतुप्रसादितः

ऋषिरुवाच

रेवत्यृक्षंनवैभद्रेचन्द्रयोगिव्यवस्थितम् । अन्यानिसन्तिऋक्षाणिसुभ्रुवैवाहिकानिते

कन्योवाच

तात तेनविनाकालोविफलःप्रतिभातिमे । विवाहोविफलेकालेमद्विधायाःकथंभवेद्

ऋषिरुवाच

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीं प्रति। चकारकोपंक्रुद्धेनतेनर्क्षंविनिपातितम्

मया चास्मै प्रतिज्ञाताभार्येति मदिरेक्षणा। नचेच्छसिविवाहंत्वंसङ्कटंनःसमागतम्

कन्योवाच

ऋतवाक् स मुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः।
न त्वया मम तातेन ब्रह्मबन्धोः सुताऽस्मि किम् ॥ ५६॥

ऋषिरुवाच

ब्रह्मबन्धोः सुता न त्वं बाले नैवतपस्विनः। सुतात्वंममयोदेवान्कर्तुमन्यान्समुत्सहे

कन्योवाच

तपस्वी यदि मे तातस्तत्किमृक्षमिदं दिवि। समारोप्यविवाहोमे तदृक्षे क्रियतेनतु

ऋषिरुवाच

एवं भवतु भद्रन्ते भद्रे प्रीतिमती भव। आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षं कृते तव॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यृक्षं महामुनिः। यथा पूर्वन्तथा चक्रे सोमयोगि द्विजोत्तम

विवाहश्चैवदुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम्। निष्पाद्यप्रीतिमान्भूयोजामातारमथाब्रवीत्

औद्वाहिकन्ते भूपालकथ्यतांकिंददाम्यहम्। दुर्लभ्यमपिदास्यामिममाप्रतिहतन्तपः

राजोवाच

मनोःस्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नःसन्ततौमुने। मन्वन्तराधिपंपुत्रंत्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम्

ऋषिरुवाच

भविष्यत्येष तेकामोमनुस्त्वत्तनयोमहीम्। सकलांभोक्ष्यतेभूपधर्मविच्चभविष्यति

मार्कण्डेय उवाच

तामादाय ततो भूपः स्वमेव नगरंययौ। तस्मादजायत सुतो रेवत्यां रैवतो मनुः॥

समेतः सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजितः। विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित्

तस्य मन्वन्तरे देवान् मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान्।

कथ्यमानान्मया ब्रह्मन् !निबोध सुसमाहितः ॥ ७० ॥
सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूपतयो द्विज । वैकुण्ठश्चामिताभाश्च चतुर्दश चतुर्दश ॥
तेषां देवगणानां तु चतुर्णामपि थ्रेश्वर । नाम्नाविभुरभूदिन्द्रः शतयज्ञोपलक्षकः ॥
हिरण्यलोमा वेदश्रीरूर्ध्वंवाहुस्तथापरः । वेदबाहुःसुधामाच पर्जन्यश्चमहामुनिः
वशिष्ठश्च महाभागो वेदवेदान्तपारगः । एते सप्तर्षयश्चासन् रैवतस्यान्तरे मनोः ॥
बलबन्धुर्महावीर्य्यःसुयष्टव्यस्तथापरः। सत्यकाद्यास्तथैवासन् रैवतस्यमनोःसुताः
रैवतान्तास्तु मनवः कथिता येमयातव । स्वायम्भुवाश्रयाह्येतेस्वारोचिषमृतेमनुम्
य एषां शृणुयान्नित्यं पठेद्वाऽऽख्यानमुत्तमम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकं प्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥ ७७ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रैवतमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनंनाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

चाक्षुषमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतत्कथितं तुभ्यं पञ्च मन्वन्तरं मया । चाक्षुषस्य मनोः षष्ठंश्रूयतामिदमन्तरम्
अन्यजन्मनिजातोऽसौचक्षुषःपरमेष्ठिनः । चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मन्यस्मिन्नपिद्विज
अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्राभार्यामहात्मनः । जज्ञेसुतं सुविद्वांसं शुचिं जातिस्मरं विभुम्
जातं माता निजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्यतंपुनः । परिष्वजतिहार्देनपुनरुल्लापयत्यथ ॥
जातिस्मरःसजातोवैमातुरुत्सङ्गमास्थितः । जहासतंतदामातासंक्रुद्धावाक्यमब्रवीत्
भीतास्मिकिमिदंवत्सहासोयद्वदनेतव । अकालबोधःसञ्जातःकच्चित्पश्यसिशोभनम्
तन्मातुर्बचनं श्रुत्वा प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।

पुत्र उवाच

मामत्तुमिच्छति पुरो मार्ज्जरी किं न पश्यसि।
अन्तर्द्धानगता चेयं द्वितीया जातहारिणी ॥ ६ ॥

पुत्रप्रीत्या च भवती सहार्द्रा मामवेक्षती। उल्लाप्योल्लाप्य बहुशःपरिष्वजतिमांयतः
उद्भूतपुलका स्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा। ततोममागतोहासःश्रृणुचाप्यत्रकारणम्
स्वार्थे प्रसक्ता मार्ज्जारी प्रसक्तं मामवेक्षते। तथान्तर्द्धानगाचैवद्वितीयाजातहारिणी
स्वार्थाय स्निग्धहृदया यथैवैते ममोपरि। प्रवृत्ते स्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभासिमे
किन्तुमदुपभोगायमार्ज्जारीजातहारिणी। त्वन्तु क्रमेणोपभोग्यंमत्तःफलमभीप्ससि॥

न मां जानासि कोऽप्येष न चैवोपकृतं मया।
सङ्गतं नातिकालीनं पञ्चसप्तदिनात्मकम् ॥ १२ ॥
तथापि स्निह्यसे सास्रा परिष्वजसि चाप्यति।
तातेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं ब्रवीषि माम् ॥ १३ ॥

मातोवाच

न त्वाहमुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे। नचेदेतद्भवत्प्रीत्यैपरित्यक्तास्मन्यहंत्वया

स्वार्थो मया परित्यक्तो यस्त्वत्तो मे भविष्यति।
इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिकागृहात् ॥ १५ ॥

जडाङ्गबाह्यकरणं शुद्धान्तःकरणात्मकम्। जहारतंपरित्यक्तं सा तदा जातहारिणी
सा हृत्वा तं तदा बालं विक्रान्तस्यमहीभृतः। प्रसूतपत्नीशयनेन्यस्यतस्याददेसुतम्

त्वमप्यन्यगृहे नीत्वा गृहीत्वा तस्य चात्मजम्।
तृतीयं भक्षयामास सा क्रमाज्जातहारिणी ॥ १८ ॥

हृत्वा हृत्वा तृतीयं तु भक्षयत्यतिनिर्घृणा। करोत्यनुदिनंसातुपरिवर्तन्तथान्ययोः

विक्रान्तोऽपि ततस्तस्य सुतस्यैव महीपतिः।
कारयामास संस्कारान् राजन्यस्य भवन्ति ये ॥ २० ॥

आनन्देति च नामास्यपिताचक्रेविधानतः। मुदापरमयायुक्तोविक्रान्तःसनराधिपः

कृतोपनयनं तं तु गुरुराह कुमारकम् । जनन्याः प्रागुपस्थानं क्रियताञ्चाभिवादनम्
स गुरोस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्यैवमथाब्रवीत् ।

आनन्द उवाच

चन्द्यामेकतमामाता जननीपाल्नीनुकिम् ॥ २३ ॥

गुरुरुवाच

नन्वियं ते महाभाग ! जनयित्री रुथात्मजा (जारुजात्मजा) ।
विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनीनाम नामतः ॥ २४ ॥

आनन्द उवाच

इयं जनित्री चैत्रस्य विशालग्रामवासिनः ।
विप्राग्र्यबोधपुत्रस्य योऽस्यां जातोऽन्यतो वयम् ॥ २५ ॥

गुरुरुवाच

कुतस्त्वं कथयाऽऽनन्द ! चैत्रः को वा त्वयोच्यते ।
सङ्कटं महदाभाति क्व जातोऽत्र ब्रवीषि किम् ॥ २६ ॥

आनन्द उवाच

जातोऽहमनमित्रस्य क्षत्रियस्यगृहेद्विज! । तत्पत्न्यांगिरिभद्रायामाददेजातहारिणी
तयात्र मुक्तोहैमिन्या गृहीत्वाचसुतश्चसा । बोधस्यद्विजमुख्यस्य गृहेनीतवती पुनः
भक्षयामासच सुतंतस्य बोधद्विजन्मनः । सतत्रद्विजसंस्कारैः संस्कृतोहैमिनीसुतः
वयमत्रमहाभाग ! संस्कृता गुरुणा त्वया । मयातववचः कार्यमुपैमि कतमां गुरो !

गुरुरुवाच

अतीवगहनं वत्स! सङ्कटं महदागतम् । न वेद्मि किञ्चिन्मोहेन भ्रमन्तीव हि बुद्धयः

आनन्द उवाच

मोहस्याऽवसरः कोऽत्र जगत्येवं व्यवस्थिते ।
कः कस्य पुत्रो विप्रर्षे ! को वा कस्य न बान्धवः ॥ ३२ ॥
आरभ्यजन्मनोनृणांसम्बन्धित्वमुपैतियः । अन्येसम्बन्धिनोविप्रमृत्युनासन्निवर्तिताः
अत्रापि जातस्य सतः सम्बन्धो योऽस्य बान्धवैः ।

सोऽप्यस्तमन्ते देहस्य प्रयात्येषोऽखिलक्रमः ॥ ३४ ॥

अतोब्रवीमिसंसारे वसतःकोन्नबान्धवः । कोवापिसततंवन्धुः किंवोविभ्राम्यतेमतिः

पितृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि । मातृद्वयञ्च किञ्चित्रं यदन्यद्देहसम्भवे ॥

सोऽहंतपःकरिष्यामि त्वयायो ह्यस्यभूपतेः । विशालग्रामतःपुत्रश्चैत्र आनीयतामिह

मार्कण्डेय उवाच

ततःसविस्मितोराजा सभार्यःसह बन्धुभिः । तस्मान्निवर्त्य ममतामनुमेनेवनायतम्

चैत्रमानीयतनयं राज्ययोग्यं चकारसः । सम्मान्यब्राह्मणं येनपुत्रबुद्ध्या स पालितः

सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेबालएवमहावने । कर्मणांक्षपणार्थाय विमुक्तेः परिपन्थिनाम्

तपस्यन्तं ततस्तञ्च प्राहदेवःप्रजापतिः । किमर्थंतप्यसे वत्स!तपस्तीव्रं वदस्व तत्

आनन्द उवाच

आत्मनःशुद्धिकामोऽहंकरोमिभगवंस्तपः । वन्धायममकर्माणियानितत्क्षपणोन्मुखः

ब्रह्मोवाच

क्षीणाधिकारो भवति मुक्तियोग्यो न कर्मवान् ।

सत्त्वाधिकारवान् मुक्तिमवाप्स्यति ततो भवान् ॥ ४३ ॥

भवतामनुनाभाव्यं षष्ठेन व्रज तत्कुरु । अलन्तेतपसा तस्मिन् कृतेमुक्तिमवाप्स्यसि

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि तथेत्युक्त्वा महामतिः ।

तत्कर्माभिमुखो यातस्तपसो विरराम ह ॥ ४५ ॥

चाक्षुषेत्याहतंब्रह्मा तपसोविनिवर्तयन् । पूर्वं नाम्ना वभूवाथ प्रख्यातश्चाक्षुषो मनुः ॥

उपयेमेविदर्भां ससुतामुग्रस्यभूभृतः । तस्याञ्चोत्पादयामासपुत्रान् प्रख्यातविक्रमान्

तस्यमन्वन्तरेशस्य येऽन्तरेत्रिदशाद्विज! । येचर्षयस्तथैवेन्द्रोयेसुताश्चास्यतान्शृणु

आप्यानामसुरास्तत्र तेषामेकोऽष्टकोगणः । प्रख्यातकर्मणांविप्र!यज्ञे हव्यभुजामयम्

प्रख्यातवलवीर्याणां प्रभामण्डलदुर्दृशाम् । द्वितीयश्चप्रसूताख्योदेवानामष्टकोगणः

तथैवाष्टकएवान्यो भव्याख्यो देवतागणः । चतुर्थश्च गणस्तत्रयूथगाख्यस्तथाष्टकः

लेखसंज्ञास्तथैवान्ये तत्र मन्वन्तरे द्विज! । पञ्चमेचगणे देवास्ततसञ्ज्ञाह्यमृताशिनः शतंक्रतूनामाहृत्ययस्तेषामधिपोऽभवत् । मनोजवस्तथैवेन्द्रःसङ्ख्यातोयज्ञभागभुक् सुमेधाविरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः । अतिनामासहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः उरूपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः । चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥ एतत्ते कथितं षष्ठं मयामन्वन्तरं द्विज! । चाक्षुषस्य तथा जन्म चरितञ्च महात्मनः साम्प्रतंवर्त्ततेयोऽयं नाम्नावैवस्वतोमनुः । सप्तमोयेऽन्तरेतस्यदेवाद्यास्तान्श्रृणुष्वमे

य इदं कीर्तयेद्धीमाञ्चाक्षुषस्यान्तरं भुवि ।

श्रृणुते च लभेत्पुत्रानारोग्यं सुखसम्पदाम् ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे षष्ठमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनं नाम

षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

वैवस्वतमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

मार्त्तण्डस्य रवेर्भार्या तनयाविश्वकर्मणः । संज्ञानाममहाभाग! तस्यांभानुरजीजनत् मनुं प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् । विवस्वतः सुतोयस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तुसः सञ्ज्ञाचरविणाद्दृष्टा निमीलयतिलोचने । यतस्ततःसरोषोऽर्कःसंज्ञांनिष्ठुरमब्रवीत् मयिद्दृष्टे सदा यस्मात् कुरुषेनेत्रसंयमम् । तस्माज्जनिष्यसेमूढे ! प्रजासंयमनं यमम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः सा चपलां दृष्टिं देवी चक्रे भयाकुला । विलोलितदृशं दृष्ट्वापुनराहच तां रविः

यस्माद् विलोलितादृष्टिर्मयिदृष्टे त्वयाऽधुना ।

तस्माद्विलोलां तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यसि ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्यां तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै । यमश्च यमुना चेयं प्रख्याता सुमहानदी
सापि सञ्ज्ञा रवेस्तेजःसेहे दुःखेनभाविनी । असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा
किंकरोमि क्व गच्छामिक्वगतायाश्चनिर्वृतिः । भवेन्ममकथंभर्त्ताकोपमर्कश्चनेष्यति
इति संचिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा । बहुमेनेमहाभागापितृसंश्रयमेव सा ॥
ततः पितृगृहे गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी । छायामयीमात्मतनुं निर्ममे दयितां रवेः

ताञ्चोवाच त्वया वेश्मन्यत्र भानोर्यथा मया ।
तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यं यथा रवौ ॥ १२ ॥

पृष्टयापि न वाच्यन्तेतथैतद्गमनं मम । सैवास्मिनाम सञ्ज्ञेतिवाच्यमेतत्सदा वचः

छायासञ्ज्ञोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि आशापाच्च वचस्तव । करिष्येकथयिष्यामि वृत्तंतुशापकर्षणात्
इत्युक्ता सा तदा देवीजगाम भवनं पितुः । ददर्शतत्र त्वष्टारं तपसा धूतकल्मषम् ॥
बहुमानाच्च तेनापिपूजिताविश्वकर्मणा । तस्थौ पितृगृहेसातुकञ्चित्कालमनिन्दिता

ततस्तां प्राह चार्वङ्गीं पिता नातिचिरोषिताम् ।
स्तुत्वा च तनयां प्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥ १७ ॥

त्वां तुमेपश्यतोवत्सेदिनानिसुबहून्यपि । मुहूर्त्ताद्धसमानिस्युःकिन्तुधर्मोविलुप्यते
बान्धवेषु चिरं वासोनारीणांनयशस्करः । मनोरथोबान्धवानांनार्याभर्तृगृहेस्थितिः
सात्वंत्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्येण सङ्गता । पितृगेहे चिरं कालंवस्तुं नार्हसिपुत्रिके

सा त्वं भर्तृगृहं गच्छ तुष्टोऽहं पूजिताऽसि मे ।
पुनरागमनं कार्य्यं दर्शनाय शुभे! मम ॥ २१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ता सा तदा पित्रा तथेत्युक्त्वा च सा मुने !।
सम्पूजयित्वा पितरं जगामाथोत्तरान् कुरून् ॥ २२ ॥

सूर्य्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती । तपश्चचार तत्रापिवडवारूपधारिणी

सञ्ज्ञेयमितिमन्वानो द्वितीयायामहस्पतिः ।
जनयामास तनयौ कन्याञ्चैकां मनोरमाम् ॥ २४ ॥
छायासञ्ज्ञा त्वपत्येषु यथा स्वेष्वतिवत्सला ।
तथा न सञ्ज्ञा कन्यायां पुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥ २५ ॥

नलिनाद्युपभोगेषु विशेषमनुवासरम् । मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्यान चक्षमे
ताडनाय च वै कोपात्पादस्तेन समुद्यतः । तस्याःपुनःक्षान्तिमतानतुदेहेनिपातितः

ततः शशाप तं कोपाच्छायासञ्ज्ञा यमं द्विज !।
किञ्चित्प्रस्फुरमाणोष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ॥ २८ ॥

पितुः पत्नीममर्य्यादं यन्मां तर्ज्जयसे पदा । भुवितस्मादयंपादस्तवाद्यैवपतिष्यति

मार्कंडेय उवाच

इत्याकर्ण्य यमः शापं मात्रा दत्तं भयातुरः । अभ्येत्य पितरं प्राहप्रणिपातपुरःसरम्

यम उवाच

तातैतन्महदाश्चर्यं न दृष्टमिति केनचित् । माता वात्सल्यमुत्सृज्यशापंपुत्रेप्रयच्छति
यथा मनुर्ममाचष्टे नेयं माता तथा मम । विगुणेष्वपिपुत्रेषु न माता विगुणाभवेत्

मार्कण्डेय उवाच

यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः । छायासंज्ञां समाहूय पप्रच्छक्वगतेतिसा
सा चाह तनयात्वष्टुरहं सञ्ज्ञाविभावसो !। पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे
इत्थं विवस्वतःसातुबहुशःपृच्छतो यदा । नाचचक्षेततः क्रुद्धोभास्वांस्तांशप्तुमुद्यतः
ततः सा कथयामासयथावृत्तंविवस्वतः । विदितार्थश्चभगवान्जगामत्वष्टुरालयम्
ततः स पूजयामासतदात्रैलोक्यपूजितम् । भास्वन्तं परयाभक्त्यानिजगेहमुपागतम्
संज्ञां पृष्टस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत् । आगतैवेह मे वेश्म भवतः प्रेषितेतिवै
दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् । तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ
सौम्यमूर्त्तिःशुभाकारोममभर्त्ताभवेदिति । अभिसन्धिश्चतपसोबुबुधेऽस्यादिवाकरः
शातनं तेजसो मेऽद्यक्रियतामितिभास्करः । तश्चाहविश्वकर्माणंसंज्ञायाःपितरंद्विज

संवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्मा रवेस्ततः। तेजसः शातनश्चक्रे स्तूयमानश्च दैवतैः॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे सञ्ज्ञोपाख्यानवर्णनंनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तंतुष्टुवुर्देवास्तथादेवर्षयोरविम्। वाग्भिरीड्यमशेषस्यत्रैलोक्यस्यसमागताः

देवा ऊचुः

नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः। यजुःस्वरूपरूपायसाम्नांधामवतेनमः

ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः। शुद्धज्योतिःस्वरूपाय विशुद्धायाऽमलात्मने॥

चक्रिणे शङ्खिने धाम्ने शार्ङ्गिणे पद्मिने नमः।

वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने। नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये॥

सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेसाम्॥ ६ ॥

नमः सूर्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे। भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः

शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृते नमः। त्वंसर्वमेतद्भगवान् जगदुद्भ्रमता त्वया भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम्। त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वं सञ्जायते शुचि क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनांपवित्रता। होमदानादिकोधर्मो नोपकारायजायते तावद्यावन्नसंयोगिजगदेतत् त्वदंशुभिः। ऋचस्तेसकलाह्येतायजूंष्येतानिचान्यतः सकलानि चसामानिनिपतन्ति त्वदङ्गतः। ऋङ्मयस्त्वंजगन्नाथ!त्वमेवच यजुर्मयः यतःसाममयश्चैव ततोनाथ! त्रयीमयः। त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परञ्चापरमेव च॥ १३॥

मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः।

निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः।
प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजः शमनं कुरु ॥ १४ ॥
इदंस्तोत्रवरं रम्यं श्रोतव्यंश्रद्धयानरैः। शिष्योभूत्वासमाधिस्थोदत्त्वा देयंगुरोरपि
न शून्यभूतैः श्रोतव्यमेतत्तु सफलं भवेत्।

मार्कण्डेय उवाच

एवंसंस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा। मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः
यत्तस्यऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी। यजुर्मयेनापिदिवं स्वर्गः साममयं रवेः ॥
शातितास्तेजसो भागा ये त्वष्ट्रादशपञ्चच। त्वष्ट्रैवतेन सर्वस्य कृतं शूलं महात्मना
चक्रंविष्णोर्वसूनाञ्च शङ्करस्य सुदारुणा। पावकस्यतथा शक्तिःशिविकाधनदस्यच
अन्येषाञ्च (म) सुरारीणामस्त्राण्युग्राणि यानि वै।
यक्षविद्याधराणाञ्च तानि चक्रे स विश्वकृत् ॥ १६ ॥
ततश्चषोड़शं भागं बिभर्त्तिभगवान्विभुः। तत्तेजः पञ्चदशधा शातितं विश्वकर्म्मणा
ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून्। ददृशे तत्र सञ्ज्ञाञ्च वड़वारूपधारिणीम् ॥
साचदृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया। जगाम सम्मुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः। नासत्यदस्रौतनयावश्वीवक्त्र विनिर्गतौ
रेतसोऽन्तेव्वरेवन्तःखड्गी चर्म्मीतनुत्रधृक्। अश्वारूढः समुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः
ततः स्वरूपमतुलं दर्शयामास भानुमान्। तस्यैषा च समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे
स्वरूपधारिणींचेमामानिनाय निजाश्रयम्।
सञ्ज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ॥ २६ ॥
ततःपूर्वसुतोयोऽस्याःसोऽभूद्वैवस्वतोमनुः। द्वितीयश्चयमः शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुतः
तृतीयो मां (कृमयो मांस) समादाय पादतोऽस्य महीतले।
पतिष्यतीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥ २८ ॥
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रेतथाऽहिते। ततोनियोगं तं याम्ये चकार तिमिरापहः
यमुनाच नदी जज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी। अश्विनौदेवभिषजौ कृतौ पित्रामहात्मना

गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः।
छायासञ्ज्ञासुतानाञ्च नियोगः श्रूयतां मम ॥ ३१ ॥

पूर्वजस्यमनोस्तुल्यश्छायासञ्ज्ञासुतोऽग्रजः। ततःसावर्णिकींसञ्ज्ञामवापतनयोरवेः भविष्यतिमनुसोऽपिवलिरिन्द्रोयदातदा। शनैश्चरोग्रहाणाञ्चमध्येपित्रानियोजितः तयोस्तृतीयायाकन्यातपतीनाम सा कुरुम्। नृपात्संवरणात्पुत्रमवाप मनुजेश्वरम्

तस्य वैवस्वतस्याऽहं मनोः सप्तममन्तरम्।
कथयामि सुतान् भूपानृषीन् देवान् सुराधिपम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनं नामा-
ऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

वैवस्वतमन्वन्तरेदेवर्षिगणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः।
भृगवोऽङ्गिरसश्चाऽष्टौ यत्र देवगणाः स्मृताः ॥ १ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः।
साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥ २ ॥

भृगोस्तुभृगवोदेवाः पुत्राह्यङ्गिरसःसुताः। एषसर्गश्चमारीचो विज्ञेयः साम्प्रताधिपः ऊर्ज्जस्वीनामवैवेन्द्रो महात्मा यज्ञभागभुक्। अतीतानागतायेच वर्तन्तेसाम्प्रतञ्चये सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः। सहस्राक्षाः कुलिशिनःसर्वएव पुरन्दराः मघवन्तो वृषाः सर्वे शृङ्गिणो गजगामिनः । ते शतक्रतवः सर्वे भूताभिभवतेजसः

धर्माद्यैःकारणैः शुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः। भूतभव्यभवन्नाथाःशृणु चैतत्त्रयंद्विज!
भूर्लोकोऽयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं दिवः स्मृतम्।
दिव्याख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यमिति गद्यते ॥ ८ ॥
अत्रिश्चैववशिष्ठश्चकाश्यपश्च महानृषिः। गौतमश्चभरद्वाजोविश्वामित्रोऽथकौशिकः
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः। जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ॥
ईक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टाशर्यातिरेव च। नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागो दिष्ट एव च
करूषश्च पृषध्रश्च वसुमान् लोकविश्रुतः। मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्तिताः
वैवस्वतमिदं ब्रह्म! कथितन्तेमयाऽन्तरम्। अस्मिन्श्रुतेनरः सद्यःपठितेचैव सत्तम!
मुच्यते पातकैः सर्वैः पुण्यञ्च महदश्नुते ॥ १३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरेदेवर्षिगणवर्णनं नामै
कोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

अष्टममन्वन्तरदेवर्षिगणवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

स्वायम्भुवाद्याः कथिताः सप्तैते मनवो मया। तदन्तरेषुयेदेवाः राजानो मुनयस्तथा
अस्मिन्कल्पेसप्त येऽन्येभविष्यन्तिमहामुने! । मनवस्तान् समाचक्ष्वयेचदेवादयश्चये

मार्कण्डेय उवाच

कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्च यः। पूर्वजस्यमनोस्तुल्यः समनुर्भविताष्टमः
रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान् कृप एव च।
ऋष्यश्रृङ्गस्तथा द्रोणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥

सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चैव त्रिधा सुराः ।
विंशकः कथिताश्चैषां त्रयाणां त्रिगुणो गणः ॥ ९ ॥

तपस्तपश्च शक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरः । प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगणः । प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगणः सुराणाममितानां तुतृतीयमपिमेश्रृणु । दमोदान्तोऋतःसोमोविन्ताद्याश्चैवविंशतिः मुख्याह्येतेसमाख्यातादेवामन्वन्तराधिपाः । मारीचस्यैवतेपुत्राःकाश्यपश्यप्रजापतेः

भविष्याश्च भविष्यन्ति सावर्णस्याऽन्तरे मनोः ।
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने ! ॥ १० ॥
पाताल आस्ते योऽद्यापि दैत्यः समयबन्धनः ।
विरजाश्चार्ववीरश्च निर्मोहः सत्यवाक् कृतिः ॥
विष्णवाद्याश्चैव तनयाः सावर्णस्य मनोर्नृपाः ॥ ११ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरेऽष्टमेदेवर्षिगणवर्णनंनामा-
ऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

अथ दुर्गासप्तशती

देवीमाहात्म्येमधुकैटभवधवर्णनम्

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः । निशामयतदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम

---

* श्रीगणेशायनमः *

॥ ॐनमश्चण्डिकायै ॥

अथ शान्तनवीटीकाप्रारभ्यते

ब्रह्मायस्यैहरिर्यस्यैरुद्रोयस्यैव्यधान्नमः । नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

अव्युत्पन्नमुखान्धकूपपतितागावोमुनेःखिन्दते,
ताः प्रोद्धर्तु महोयतध्वमभितःस्वस्वार्थवत्सोत्सुकाः ।
सूत्रैः पाणिनिसम्भृतैरतितरामाकृष्यमाणाःपुन-
स्तावःकामदुघाभवन्त्यपि तमस्तोमद्विषःसत्विषः ॥ २ ॥

ऐं श्रींह्रींपदभावितंजगददः स्रष्टुं स्वयं रक्षितुं,
संहर्त्तुं समये क्षमामयमयीं ब्राह्मीं श्रियं चण्डिकाम् ।
आराध्यादिमशक्तिमार्त्तिदविनींश्रीतोमरःशन्तनु-
र्मार्कण्डेयपुराणसिद्धमहिमा व्याख्या तु विख्यायते (?)॥३॥

मार्कण्डेयपुराणोक्तं देवीमाहात्म्यमद्भुतम् । अल्पाक्षरमनल्पार्थमपपाठपराङ्मुखम् ॥
शुभंयुः शन्तनुः शंयुः सत्कीर्त्तिस्तोमरान्वयः ।

व्याकरोति पराकृत्य कुव्याख्यानपरम्पराम् ॥ ५ ॥

ॐनमश्चण्डिकायै

—अवतीत्युपासकं अवतिब्रह्मवेतिविगृह्य । अवरक्षणादौ अवतेष्टिलोपश्चेति-मन् प्रत्ययः । तस्यप्रत्ययस्यैवटिलोपःन प्रकृतेः, अन्यथाहिमडित्येवविदध्यात् ज्वरत्वतेत्यादिनावकारस्योपधायाश्चऊठौ द्वयोरूठोः सवर्णदीर्घत्वेसार्वधातुकार्ध-धातुकयोरितिगुणः । कृन्मेजन्तइत्यव्ययत्वमोम् ।

ओमित्यनुमतौ प्रोक्तं प्रथमेवाप्युपक्रमे । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म सर्वमन्त्राधिदैवतम् । गुर्वादिभजनेदानेनमःस्यात्क्वाप्यनादरे । चतुर्थीस्यान्नमोयोगान्नमःस्वस्त्यादिसूत्रतः

चण्डिकायै चण्डते कुप्यते चण्डा चण्डी च । चण्डैवचण्डिकाकोपना । वह्वादिभ्यश्चेतिवा ङीप् । केणइतिह्रस्वः । कुत्सिताशत्रुभिर्निन्दतेतिसञ्ज्ञायां कन् । अथवाह्रस्वादीर्घविलक्षणाकारासूक्ष्मरूपतयादुरधिगमत्वात्सञ्ज्ञायांकन् । अथवा चण्डउग्रःतस्यस्त्रीचण्डीपूर्ववत्सञ्ज्ञायांकन् । अथवाचण्डतेचण्डिका । ण्वुल् । युवोरनाकौ । प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यातइदाप्यसुपइतिइत्त्वम् । मार्कण्डेय उवाच । कडि मदे । मृगवत्कण्डतेयोगात्माद्यतिमृकण्डुः । मृकण्ड्वादयश्चेत्युः । मृगान् कण्डयतिमदयतिवामृकण्डुः मृगस्येवास्यकण्डुरितिवा पृषोदरादित्वात्साधुः । वर्णागमोवर्णविपर्ययश्चद्वौचापरौवर्णविकारनाशौ । धातोस्तदर्थातिशयेनयोगस्त-दुच्यतेपञ्चविधंनिरुक्तम् । मृकण्डोरपत्यंपुमान्मार्कण्डेयः । शुभ्रादिभ्यश्चेत्यपत्येढक् प्रत्ययः । कितिचेत्यादिवृद्धिः । ढेलोपोऽकद्र्वाःइत्युकारलोपः । ढस्यएयादेशः । उवाचऊचिवान्स्वशिष्यायाष्टममनूत्पत्तिहेतुमुक्तवानितियावत् । इहखलुब्रह्मकल्पे-चतुर्दशमनवःक्रमशःक्रमन्ते । तद्यथा । स्वायम्भुवोमनुःपूर्वं ततः स्वारोचिषोमनुः । औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा । षडेते मनवोऽतीता अथवैवस्वतोमनुः । सावर्णाःपञ्चरौच्यश्चभौत्यश्चागामिनस्त्वमी । तत्र सवर्णायाः सम्बन्धिनः सुताः पञ्चापिसावर्णाःसावर्णयोमनवःकथ्यन्ते । ततश्चस्वायम्भुवाद्याःषट्सप्तमोवैवस्वतः अष्टमःसावर्णिःनवमोदशमएकादशोद्वादशश्चसावर्णयएव । त्रयोदशोमनुः रौच्यः

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः । स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः

चतुर्दशस्तुमनुर्भौत्यः, । इति चतुर्दशमनवः । तत्र अष्टमस्यमनोःसावर्णेरुत्पत्तिस्व-
शिष्यायवेदयितुं प्रस्तौतिमार्कण्डेयोभगवान् । वृणोतिव्रियतेवर्ण्यतेचवर्णनंवर्णः ।
'वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ स्तुतौ वर्णं तुचाक्षरे ।' वर्णेनस्तुत्यासहवर्त्तमानासवर्णा ।
अथवाआत्मभर्त्रासवित्रासमानोवर्णोयस्याःसासवर्णा । सवर्णायाः अपत्यम्पुमा-
न्सावर्णिःस्त्रीभ्योढकंबाधित्वावह्वादिभ्यश्चेतिइञ्प्रत्ययः । सावर्णाःपञ्चेतितुप्रयोगः
सम्बन्धविवक्षयादाशरथोरामइतिवद्दंतोज्ञेयः । सूर्यस्यतनयः । सकतमोमनुरित्य-
पेक्षायामाह । योमनुःकथ्यतेष्टमइति । यच्छब्देनोच्यतेयोर्थःतच्छब्दस्तस्यवाचकः ।
यःपुराणज्ञैर्वैवस्वतमनोःसप्तमादनन्तरं सूर्यतनयः सावर्णिर्नाममनुः कथ्यतेसोऽष्टमो-
मनुर्भविष्यतीत्यर्थः । अष्टमत्वं विधेयम् । सावर्णिरष्टमोमनुरित्येवोक्तेसवर्णायाः
प्रागुक्तसामान्यव्युत्पत्त्यातादृश्याःअन्यजोऽपिकश्चिन्मनुःस्यात् । अतउक्तंसूर्यतनय-
इति। सूर्यतनयोष्टमोमनुरित्येवोक्तेछायासुतोपिसूर्यतनयःशनैश्चरोमनुःस्यात् । अत-
उभयमुक्तंसावर्णिसूर्यतनयइति । तस्य सावर्णेरष्टममनोरुत्पत्तिविस्तराच्छब्द-
प्रपञ्चनात् गदतो मम मुखं वा संमुखं निशामय हे शिष्य ! दत्तावधानः सन् पश्ये-
त्यर्थः । निशामयश्रृणवितितुकुव्याख्यानम् । तथाहि । शमउपशमे दिवादिः ।
शमलक्षआलोचनेचुरादिः । आभ्यां यथायोगंणिचिअतउपधायावृद्धौ । शमोदर्शने ।
शमोणौदर्शनादन्यत्रार्थेमित्सञ्ज्ञोभवति । अमंतत्वादेवमित्त्वसिद्धौ नियमार्थोऽयं
योगः । मितांह्रस्वः । शमयतिव्याधिं निवर्त्तयति । निशामयतिश्लोकाञ्छृणोति ।
दर्शने तुमित्त्वाभावाद्ध्रस्वत्त्वाभावादतउपधायावृद्धिरेव । निशामयतिरूपंचक्षुषा-
रूपंपश्यतीत्यर्थः । 'निःशर्करमिदंतीर्थंभारद्वाजंनिशामय ।' चक्षुषापश्येत्यर्थः । तथा
च दुर्घटः । निशामयतदुत्पत्तिमित्यत्रनिशामनंचक्षुःसाधनंज्ञानमितियावत् ॥ १ ॥
सप्रसिद्धःसावर्णिःरवेस्तनयःमहाभागः महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिपो बभूव
तथाविस्तरतोवदिष्यामीत्यन्वयः । मात्यस्यां विश्वं माया । माकाभ्यामयच् ।

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः। सुरथोनामराजाऽभूत् समस्तेक्षितिमण्डले

अथवा मानपूजायांचुरादिः। मानयितुमर्हामाया। पृषोदरादित्वन्नलोपः। अथवा। मांलक्ष्मीः माइतिअयःशुभावहोविधिर्यस्याःसामाया महतीचासौमाया चमहामाया तस्या परमशक्तेः अनुभावः प्रभावः सामर्थ्यं महामायानुभावः तेन। अथवा, महती चाद्यामायायस्याःसामहामायातस्यामनुभावःमतिनिश्चयःअबाध्याध्यवसायः महामायानुभावः तेन। अथवा,अः विष्णुः तस्यमाया महती चासौ अमायाच महामाया तस्याःअनुभावः तेन। 'अनुभावःप्रभावेचसतांच मतिनिश्चये।' अथवाअयगतौ। अययतिअर्पयतीतिणिजंतात्पचाद्यच्स्त्रियांटापिअया। आसमंतादभिव्याप्तांमां लक्ष्मीमुपासकायअययतिअर्पयतिवाशक्तिर्भवतिसामहामायातस्याः अनुपश्चादबाध्याध्यवसायादनन्तरंभावःपरमतयानुसन्धानंअनुभावः। 'तम्भावंभावयेद्योगी' तिस्मरणात्। 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु।' तेन। 'पश्चात्सादृश्ययोरनु।' मन्वन्तराधिपः इहप्रकरणतः सप्तममनुजीवितकालात्परभूतोनवमम नूदयात्पूर्वो यः कालःसमन्वंतरशब्देन विवक्षितःततश्चान्तरशब्दोमध्येवर्त्तते। मनोः सप्तमनवमयोरंतरेमध्यकाले ब्रह्मणाअधिकृतः रक्षकः प्रजानां पतिरधिकोमन्वन्तराधिपः। अन्तरमवकाशावधिपरिधानांतर्द्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनावहिरवसरमध्येन्तरात्मनिच।' महाभागः। भजसेवायां। भावे घञ्। चजोःकुघिण्यतोः महान्भागोभक्तिर्यस्य सः। अथवा भासृदीप्तौ कर्त्तरिक्विप्। भासते भाः। भासंधर्मंवागच्छतिप्राप्नोतीतिभागः। गमेर्डोऽन्यत्रापिदृश्यतइतिकर्त्तरिडः। महांश्चासौभागश्चेतिमहाभागः। अथवाभासंपरदेवतांगायतिइतिभागोमंत्रः। आतोनुपसर्गेकः। महान्भागोमंत्रोयस्यसमहाभागः। अथवा,भगस्यैश्वर्यादेरिदंभागं भवितव्यतालक्षणंहेतुवस्तुमहद्भाग्यंयस्यसमहाभागः। 'ऐश्वर्यस्यसमग्रस्यधर्मस्य यशसःश्रियः। वैराग्यस्याऽथमोक्षस्यषण्णांभगइतिस्मृतिः'। 'भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु।' तनोतिकुलंतनयः। रूयतेस्तूयतेरविः

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ४ ॥

तस्य ॥ २ ॥ अष्टमोमनुः कथ्यतइतिप्राग्यःप्रस्तुतस्तस्यसावर्णेः प्राग्जननिदानत्ता माहेमचरित्राणिवर्णयतिमार्कण्डेयोऽनेनश्लोकेन । पूर्वंप्रथमस्वायम्भुवमन्वंतरकाल-मपेक्ष्यंद्वितीयमन्वन्तरलक्षणेस्वारोचिषोऽन्तरेस्वारोचिषमन्वन्तरकालेपुराकल्पेचैत्र-वंशसमुद्भवः सुरथोनामप्रसिद्धः समस्तेक्षितिमंडलेराजाऽभूत्अजनिष्ट (अवर्तत) अवृतेत्यन्वयः । स्वस्यैवआत्मनइवब्रह्मणइवरोचिः प्रभायस्य सः स्वरोचिः मनुः । अथवा, अःविष्णुः सुष्ठुअस्यैवविष्णोरिवरोचिर्यस्यसः स्वरोचिःमनुः । स्वरो-चिषइदंस्वारोचिषंतस्मिन्स्वारोचिषे । आगमशासनानित्यत्वादैजभावः । 'रोचिःशोचिरुभेक्लीवेप्रकाशोद्योतआतपः ।' अन्तमवसानंरातिगृह्णात्यन्तरं । तस्मि-न्कालविशेषेपूर्वंकालं अपेक्षणाक्रियापेक्षाद्वितीया । चितिसञ्ज्ञाने । सर्वधातुभ्य ष्ट्रन् । चेततिजानातिधर्माधर्मप्रवृत्त्यप्रवृत्तीः कर्त्तुमितिचित्रः कश्चिद्राजा तस्याप-त्यंपुमान्चैत्रः । शिवादिभ्योऽण् । तस्यवंशः संतानः । तस्मात्सम्यगुद्भवतिइ-तिचैत्रवंशसमुद्भवः । अथवाचिञ्चयने । 'अमिचिमिदिशसिभ्यःक्त्रः ।' चीयते चित्रमद्भुतं कर्म तस्यायंचैत्रः । तस्यराज्ञोवंशःतस्मात्समुद्भवः । 'विद्ययाजन्मना वाप्राणिनामेकलक्षणः संतानोवंश' इत्युच्यते । रमन्तेयस्मिन्रथः । शोभनोरथोय-स्यसुरथः । 'नामप्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने ।' राजतेइतिराजा । अभूत्भू-सत्तायांलुङ् । क्षितेर्भूमेर्मण्डलंचक्रवालंतस्मिन् ॥ ३ ॥ तदातस्मिन्स्वारोचिषमन्व-न्तरेकाले । औरसान् उरसोत्पादितान् । उरसा निर्मितान् । उरसोयच्च । पुत्रा-निवसम्यक्अनवद्यंयथास्यात्तथा । प्रजाःलोकान्पालयतःदुःखेभ्योरक्षतस्तस्यराज्ञः कोलाविध्वंसिनोभूपाःशत्रवः शातयितारःबभूवुरित्यन्वयः । को ब्रह्मा अःविष्णुःउः महेश्वरः तान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्काः लान्तिअर्चयितुंगृह्णन्तीतिकोलाब्राह्मणादयः । तानासमन्ताद्विध्वंसयंतीतिकोलाविध्वंसिनःरक्षोयोनयः । अथवाकोलाःशूकराःता-

तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः। न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ६ ॥

न्विध्वंसयन्तीतिकोलाविध्वंसिनःयवनाः। अथवा। कोलान्शूकरान्विध्यन्तिता डयन्तिकोलाविधः। नहिवृतिवृषिव्यधिइतिदीर्घः। कोलाविधःक्षत्रियादयःतान् ध्वंसयन्तीतिकोलाविध्वंसिनोयवनाः। ननुचकोलान्शूकरान्अवन्तिरक्षन्तीतिको-लाविनोयवनाः तान्ध्वंसयतीतिकोलाविध्वंसी तस्यकोलाविध्वंसिनः। इतिसु-रथस्यापिविशेषणमेतत्स्यात्। अस्तुयदीत्थंव्युत्पाद्येत। उत्तरश्लोकेतुकोला-विध्वंसिभिरित्येतद्यवनविशेषणतयाव्युत्पादयिष्यामः। उरसानिर्मितः। उर-सोयच्च। 'औरसोधर्मपत्नीजः' इतिस्मृतिः। पुत्अव्ययंनरकवाचिपितरंपुत्नर-कात्त्रायतेपुत्त्रः। अथवा। पूञ्पवने। पुनातिपुत्रः। 'पुवोह्रस्वश्चे'तिक्त्रः। 'पुत्रःस्यादात्मसंभवः'। 'पुन्नाम्नोनरकाद्यस्मात्पितरंत्रायतेसुतः। ततःपुत्रइतिप्रो-क्तःस्वयमेवस्वयंभुवे'तिस्मृतिः ॥ ४ ॥ तस्यअतितरांप्रकृष्टंबलंहस्त्यश्वरथ-पादातसमृद्धंबलंसैन्यंयेषांशत्रूणांतेअतिप्रबलाः तान्दण्डयतीत्यतिप्रबलदण्डीतस्य-सुरथस्य तैःकोलाविध्वंसिभिर्यवनैर्भूपैः सहयुद्धमभवत्। तस्मिन्युद्धेसुरथोरा-जान्यूनैरल्पबलैरपितैः कोलाविध्वंसिभिर्यवनभूपैर्जितः अभिभूतइत्यन्वयः। इह जितइतिनायंजिजयेइत्यस्यप्रयोगः। कस्य 'तर्हि जिअभिभवे'इत्यस्य। तदुक्तम्, 'जयिर्जयाभिभवयोराद्यर्थेसावकर्मकः। उत्कर्षप्राप्तिराद्योर्थोद्वितीयेऽर्थेसकर्मकइति। कोलानामनगरीतांराजधानीं विध्वंसयन्तीति इतिकोलाविध्वंसिनः। सुरथोनाम राजाऽभूत्समस्तेक्षितिमण्डले। इतिसुरथस्ययत्सार्वभौमत्वमुक्तंप्राक्तदिदानींन। दैवघटनाच्छत्रुभिरल्पैरथाक्रान्तः सागरान्ताखिलावनिवलयत्वात्तस्येतिभावः ॥ ५ ॥ ततएवाह स्वकीयपुरजनपदमात्राधिपएवआसीन्नतुसार्वभौमइत्यन्वयः। स यद्यपि शत्रुभिराक्रान्तस्तथापितदाक्रान्तिजनितोद्वेगोपगतवनवासिमुनिवरोपदिष्टमहामायै-

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्यदुरात्मभिः । कोषो बलञ्चाऽपहृतं तत्रापि स्वपुरे सतः
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः । एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्

कसमाराधनलब्धवरावाप्तव्य साम्राज्यसम्प्राप्तव्याष्टममनुत्वपदलक्षणभवितव्यता-
वाप्तिपात्रतयामहाभाग इति विशेषणमर्थवदेव । यदुक्तं । 'सम्भवेव्यभिचारेचस्या-
द्विशेषणमर्थवदिति ।' दिश्यतेदेशः स्थानमात्रम् । ननुचनीवृज्जनपदःदेशस्तुविषयः
स्थानमात्रंतत्कथंदेशग्रहणेनेहजनपदोलभ्यते । तदभ्यधादमरः । 'नीवृज्जनपदोदेश
विषयौतूपवर्त्तनम् ।' इति । 'त्वंताथादिनपूर्वभागि'तिचयंत्पर्यभापिष्ट । नैषदोषः ।
नीवृदादीन्पञ्चैकार्थानाहुरपरेत्वित्याश्रयणात् । आत्मात्मीयज्ञातिधनवाचीस्वश-
ब्दः ॥ ६ ॥ तत्राऽपितन्मात्रेसपत्नापहृतभूचक्रेगर्हितेस्वपुरे सतोनिवसतोदुर्ब-
लस्यशत्रुभिर्गृहीतभूचक्रस्यप्रभुर्मन्त्रोत्साहशक्तिशून्यस्यसुरथस्यकोशोवलञ्च बलि-
भिर्बलवद्भिर्दुष्टैरुल्लङ्घितमर्यादैर्दुरात्मभिर्दुष्टाशयैः राज्यंगृहीतुंकृततिश्चयैरमात्यै-
मन्त्रिभिः अपहृतंआत्मसात्कृतमित्यन्वयः । अमासहसमीपेभवाअमात्याः । 'स्थौ-
ल्यसामर्थ्यसैन्येषुबलं नाकाकसीरिणोः ।' कोशः स्वर्णादिलोहाष्टकसंग्रहः । 'सुव-
र्णंरजतंताम्रं रीतिः कांस्यंतथात्रपु । सीसंकालायसंचैवंह्यष्टलोहानिचक्षते ।' अप
हृतःकोशः अपहृतंचबलमितिविगृह्य नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्यामिति
नपुंसकशेषः । एकवद्भावश्च । अपिशब्दो गर्हायां । 'दुरीषदर्थकुत्सनवैवर्ण्यासंभ
वलाभेषु ।' दुष्टैरिति । दुषवैकृत्ये । क्तःकर्त्तरि । वैकृत्यं रूपभङ्गः ॥ ७ ॥
ततः अमात्यैरपहृतकोशबलत्वाद्धृतस्वाम्यः अपहृतस्वामित्वः ससुरथोभूपतिः ।
एकाकीअसहायः । केवलः मृगयाव्याजेनहयमारुह्यगहनं निरन्तरव्याप्तलतादिपि-
हितोदरं वनं काननंजगामगतवानित्यन्वयः । मृग्यन्तेऽन्वेष्यन्तेप्राणिनोमृगादयो
अस्यांमृगयापापर्द्धिः तस्या व्याजेनाखेटकवृत्तिमिषेणमुनिवनोपगमनमेवात्रमुख्यं
कार्यं नतुमृगयाचरणं । मुख्यकार्यस्वरूपाच्छादनं व्याजः । स्वामिनईश्वरस्य भावः
स्वाम्यं हृतं स्वाम्यं यस्यसहृतस्वाम्यःएकएवएकाकी । 'एकादाकिनिच्चासहाये ।'

सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यस्यमेधसः । प्रशान्तश्वापदाकीर्णंमुनिशिष्योपशोभितम्
तस्थौ कञ्चित्सकालञ्च मुनिनातेनसत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे
सोऽचिन्तयत्तदा तत्रममत्वाकृष्टचेतनः । मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मयाहीनं पुरं हि तत्
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ॥११॥

'एकत्वेतुएककः कलिलङ्गहनंसमे' ॥ ८ ॥
द्विजेतिसम्बुद्ध्यन्तं वर्यइतितुराजविशेषणं । मार्कण्डेयः स्वशिष्यंसम्बोधयति । हेद्विजइतःसुरथचरित्रकथायाःश्रवणप्रवणोभवेति । सवर्यःवराहःसुरथस्तत्रतस्मिन्वनेसुमेधसोनाममुनेःशिष्योपशोभितं प्रशान्तश्वापदाकीर्णं आश्रममद्राक्षीत् ददर्शेत्यन्वयः । मुनेरितिसुमेधसोविशेषणम् । विधेयत्वेनआश्रम्यन्तितपस्यन्ति अत्रेत्याश्रमः । द्वाभ्यांमातृमौञ्जीभ्यांजायतेद्विजः । हेद्विजसुष्ठुशोभनामेधायस्य ससुमेधाः । 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोरि'तिअसिच्समासान्तः । तस्यमुनेःपरमसामर्थ्यात्प्रशान्ताःसंत्यक्तहिंस्रताःयेषांश्वापदाः व्याघ्रादयःतैराकीर्णंव्याप्तंशुनइवपदानियेषां तेश्वापदाः । 'शुनोदन्तदंष्ट्राकर्णककुदवराहपदपुच्छेष्वितिदीर्घत्वम् । वरंपुनाराज्यावाप्त्यष्टममनुत्वावाप्तिलक्षणमर्हतीतिवर्यःसुरथः । 'दण्डादिभ्यो यः ।' अथवा 'छन्दसिचे'तियत् । छन्दोवत्पुराणानिभवन्ति । 'तपोभिरिष्यतेयस्तुदेवेभ्यःसवरोत्तमः । देवाद्वृतेवरःश्रेष्ठेत्रिषुक्लीवेमनाक्प्रिये' । शिष्यैर्वेदानधीयद्भिरुपशोभान्वितं सञ्जातशोभम् ॥ ९ ॥ तेनसुमेधसामुनिनासत्कृतःआदृतःपूजितःससुरथःतस्मिन्मुनिवराश्रमेइतश्चेतश्चइतस्ततश्चविचरन्परिभ्रमन्कञ्चित्कालंतस्थौस्थितश्चेत्यन्वयः । कालमिति'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगेद्वितीया । मुनिषुवरःश्रेष्ठःसुमेधाःमुनिस्तस्याश्रमे । अथवा, । ससुरथस्त्वस्मिन्मुनिवराश्रममेतेनमुनिनाइतःप्राप्तःअभ्यागतः सत्कृतश्चसन् कञ्चित्कालंचेतश्च स्वान्तंचविचरन् तपःक्षमं स्यान्नवेतिविचिन्तयन् तस्थावित्यपरोऽन्वयः ।१०। तदामुनिसन्दर्शनकाले तत्राऽऽश्रमेममत्वाकृष्टमानसःस सुरथः स्वचेतसाऽचिन्तयत् कुटुम्बंसंस्मृतवानित्यन्वयः । ममेतिविभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् । मामितिभावो ममत्वं ममताममत्वमितिमदीयताबुद्धिः तथा

नजाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः । मम वैरिवशं यातःकान् भोगानुपलप्स्यते
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः । अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्

आकृष्टंवशीकृतंमानसंस्वान्तंचेतोयस्य सतथोक्तः । किमचिन्तयदित्यपेक्षायामाह । पूर्वमत्पूर्वैर्मत्पित्रादिभिः धर्मतः पालितं मत्कुलागतंपुरंसम्प्रतिविधिवशेनमयाहीनं त्यक्तंतत् हिनिश्चयेनअसद्वृत्तैरसच्चरितैस्तैर्मद्भृत्यैर्मदमात्यप्रभृतिभिःपुम्भिर्धर्मतः धर्ममाश्रित्यदुःखेभ्यः पाल्यतेकिंनवेतिसोऽचिन्तयत्सुरथइत्यन्वयः । 'स्वान्ववायागतंवस्तुधर्माद्यर्थोपसाधनम् । 'सान्ववयोद्भवैः सम्यक्पालनीयं हि धर्मतः' इति यमगीतातोयुक्तैषाराज्ञः स्वपुरानुस्मृतिः । मत्पूर्वैःममैवापूर्वामत्पूर्वाःतैः । पूर्वं कालं । भरणीयाभृत्याः । भृञोसञ्ज्ञायांक्यप् । 'हिर्हेतावधारणे ।' 'वृत्तंपद्येचरित्रे त्रिष्वतीतेदृढनिस्तले । धर्माःपुण्ययमन्यायस्वभावाचारसोमपाः' । उपमायां विकल्पेवा ॥ ११ ॥' किं नुभविष्यतीति तन्नजानेइतिसोऽचिन्तयदित्यन्वयः । सुखेनअकृच्छ्रेणप्रकर्षेणधीयतेधार्यतेपोष्यते च प्रधानः । आतोयुगितिईषुद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषुउपपदेषुदधातेर्युक् । युवोरनाकौ । सप्रधानइत्यपपाठः । सइति च्छेदेपिप्रधानइतिनस्यात् । प्रदधातिप्रधानमिति नपुंसकत्वात् । यदभ्यधुः 'परमात्मधीप्रकृतिमहामात्रमुख्येषुप्रधानमजहल्लिङ्गमद्वयोरितिप्रधानेनामात्येनसहवर्तते स प्रधानइतिचेन्न । ममवैरिवशंयातइत्यनेनपौनरुक्तिप्रसंगात । प्रसह्याक्रान्तराज्यत्वादमात्याएवहि वैरिणइत्यलंविस्तरेण । सदा सर्वदामदोयस्येतिसदामदः । यद्वा । स इतिपदात्सप्रसिद्धो मे हस्तीति सम्बन्धनीयम् । दामानिद्यतिखण्डयति दामदः । आतोऽनुपसर्गेकः । नपुंसिदामसन्दानम् । भुज्यन्तेभोगः । 'पालनेऽभ्यवहारेचनिर्वेशेचपणेस्त्रियाम् । भोगःसुखेभुजङ्गानां शरीरफणयोरपि ।' जाने इति । ज्ञाजनोर्जाशिति । अनुपसर्गात्ज्ञाइत्यात्मनेपदम् ॥ १२ ॥

ये नित्यं सन्ततमनवरतं शश्वत् प्रसादधनभोजनैः । प्रसादैरुचितदानैर्धनैर्वेतनरूपैर्भोजनैःममअनुगताअनुजीविनः तेअद्यइदानींमद्विहीनाअनाथाःसन्तःअन्यमहीभृतां मदितरमहीभृतां राज्ञां अनुवृत्तिं सेवां ध्रुवं निश्चितं कुर्वन्ति निश्चिता-

असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ।

सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोषो गमिष्यति ॥ १४ ॥

एतच्चान्यच्च सततंचिन्तयामासपार्थिवः । तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः

मनुवृत्तिं विदधति इति सोऽचिन्तयदित्यन्वयः । 'ध्रुवोभभेदे क्लीवं तुनिश्चिते शाश्वतेत्रिषु' ॥ १३ ॥'

अतिदुःखेन मत्पूर्वैर्मयाऽत्रसञ्चितः उपार्जितः ससुवर्णादिद्रव्याणां कोशःराशिःअसम्यग्व्ययशीलैरसम्यक् विफलः व्ययः द्रव्योत्सर्गः शीलं स्वभावो येषां ते तथोक्ताः तैः सततं व्ययं वित्तोत्सर्गं कुर्वद्भिः तैरमात्यप्रभृतिभिः करणैः क्षयं नाशंगमिष्यतिप्राप्स्यतीतिसोऽचिन्तयदित्यन्वयः । आहुश्च 'आगमेचव्ययाभावेव्ययेचानागमेक्रमात् । कोशस्य वृद्धिनाशौ स्ततस्तत्साम्येपूर्वरूपते'ति । सततंसन्ततं । 'लुम्पेदवश्यमःकृत्येतुंकाममनसोरपि । समोवाहिततयोर्मांसस्यपचियुङ्घञोः' । अत्यर्थं दुःखंयस्मिंस्तत् अतिदुःखं तेन कर्मणा । 'शीलंस्वभावेसद्वृत्ते ।' व्ययवित्तसमुत्सर्गेचुरादावदन्तः । व्ययनंव्ययः । यदभ्यधुः । 'वित्तत्यागेव्ययतिर्व्ययनेगतौ' इति ॥ १४ ॥ सपार्थिवःसुरथःएतच्च पूर्वोक्तंअतोन्यच्च सततं विस्तारितंअन्तः पुरगतंपुरांतरगतंदेशान्तरगतंचस्वकीयं वस्तुसर्वंचिन्तयामासेत्यन्वयः । सततमित्यत्र स इतिच्छेदः ततंविस्तारितमित्यर्थः । एकपदत्वेतुसततंसन्ततमितिंहिव्याख्यानंस्यात् । ततश्चसुरथश्चिन्तासन्ततिकाक्रान्तस्वान्ततया वक्ष्यमाणप्राप्तव्याष्टममनुत्वपदावाप्त्यै चिन्तानुकूलतयासमाधानविधानविधुरःप्रसज्येत । ननुचसोचिन्तयदितिक्रियापदेकृतेपुनश्चिन्तयामासेतिवाचोयुक्तिर्नयुक्तिमितीतिचेत् । तन्न । उक्तंचानुक्तंचममत्वाकृष्टमानसतयापुनःपुनश्चिन्तितमेवाचिन्तितमिवअचिन्तयद्राजेतियुक्तिमत्येवतद्वाचोयुक्तिरिति । पृथिव्याःईश्वरः पृथिव्यां विदितःज्ञातश्चपार्थिवः । तस्येश्वरस्तत्रविदितइति चेत्यञ् । ससुरथःतत्रतपोवनेतथातथातत्रस्वकीयं वस्तुविचिन्तयन्सन्विप्राश्रमा-

सपृष्टस्तेन कस्त्वं भोहेतुश्चागमनेऽत्रकः। सशोकइव कस्मात्त्वं दुर्मनाइव लक्ष्यसे
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्। प्रत्युवाचसतंवैश्यः प्रश्रयावनतोनृपम्
समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनांकुले। पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः

भ्याशेविप्रस्यसुमेधसोमुनेःआश्रमस्याभ्याशेनिकटेदेशेएकंकंचिद्वैश्यंतृतीयंद्वितीयं ददर्शद्वष्टवानित्यन्वयः। तृतीयंआत्ममुन्यपेक्षयाद्वितीयमात्मापेक्षयेत्यर्थः। विशोऽपत्यंजातिवश्यः। गर्गादित्वाद्यञ्। ददर्शहेतिक्वचित् पाठः। स इति तुप्रकरणतो लभ्यते। तुहिचस्मह्वैपादपूरणे। अशूव्याप्तौ। तालव्यान्तःकर्मणिघञ् अभ्यश्यते व्याप्यतेअभ्याशः। एकंकेवलमेकाकिनम्॥ १५॥ तेनसुरथेनसवैश्यः पृष्टः किं पृष्टः इत्याह। भोअहोत्वंकःकोऽसिजातितः किंचअत्रमुन्याश्रमेतवागमनेचकोहेतुः किं कारणंइत्यन्वयः। अव्ययंएषभोशब्दइतिभाष्यम्। अथेचतद्भवत्शब्दस्यसंबुद्धौरूपं रुत्वोत्वयत्वलोपेषु (?)। 'सामान्यालेशतोज्ञातमपिवस्तुविशेषतः' जिज्ञासमानोजिज्ञास्यंपृच्छन्नेवान्यदीप्सितम्'। राजावैश्यंपुनःपृच्छति। भोअहोत्वंकस्माद्धेतोःसशोकइवलक्ष्यसे सखेदइवप्रतीयसेकस्माच्चहेतोः त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे विमनस्कइववीक्ष्यसेइत्यन्वयः। मन्युशोकौतुशुक्स्त्रियाम्। 'मन्युर्दैन्येक्रतौक्रुधि'। शोकेनसहितःसशोकः। दुर्मनाविमना। स्यात्। दुःस्थंमनोयस्यसदुर्मनाःइवसाम्ये शारदाभ्रमिवपेलवमायुरितिवत्॥ १६॥ इतीत्थंप्रणयोदितंप्रणयेनप्रेम्णा उदितंकथितम्। तस्यभूपतेःसुरथस्यवचः आकर्ण्यश्रुत्वासवैश्यः तंनृपंसुरथमुद्दिश्य प्रश्रयावनतः प्रश्रयेणविनयेनावनतोनम्रः सन्प्रत्युवाचेत्यन्वयः। सुरथकृतप्रश्नानां प्रत्युत्तरंवक्तुंवाक्यमग्रहीदितिभावः। 'विश्रम्भयाच्ञाप्रेमाणःप्रणयेनसमार्थकाः' ॥१७ धनिनांकुलेउत्पन्नोऽहंसमाधिर्नामविख्यातः जात्यावैश्योऽस्मीत्यन्वयः। अनेनकस्त्वंभोइतिप्रश्नस्योत्तरमुक्तम्। इभ्यआढ्योधनी। कुलंगृहेपिवंशेपि। धनेषुलोभात् गार्ध्यात्आसाधुभिरसज्जनैःपुत्रैश्चदारैश्चपुत्राणांचदारैःनिरस्तश्चनिराकृतोऽस्मीत्यन्वयः। एतेनसशोकइवकस्मात्त्वं इतिप्रश्नस्योत्तरमुक्तम्॥ १८॥ विहीनः

विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् । वनमभ्यागतोदुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ।
प्रवृत्तिं स्वजनानाञ्च दाराणाञ्चाऽत्र संस्थितः ॥ २० ॥
किन्नुतेषां गृहेक्षेममक्षेमंकिन्नुसाम्प्रतम् । कथन्तेकिन्नु सद्वृत्तादुर्वृत्ताः किन्नुमेसुताः

स्वजनैःबान्धवैश्चरहितोऽस्मि । इतोऽपिसशोकोस्मीत्यन्वयः । दारैःपुत्रैरादायिमे धनंमदीयैर्दारैः पुत्रैश्चमेधनंआदायिगृहीतमित्यन्वयः । अनेनदुर्मनाइवलक्ष्यसेकस्मादितिप्रश्नस्योत्तरमुक्तं । मदीयैराप्तैर्बन्धुभिः पुत्रमित्रकलत्रादिभिर्हृतधनोनिरस्तश्चाहंदुःखीउद्विग्नमनाः सन्वनमभ्यागतोऽस्मीत्यन्वयः । अनेनहेतुश्चागमनेऽत्रक इतिप्रश्नस्योत्तरमुक्तम् ॥ १९ ॥ तथाविधःसोऽहंअत्रवनेसंस्थितःसन्पुत्राणांचस्वजनानांचकुशलाकुशलात्मिकां कुशलस्वरूपांअकुशलस्वरूपां च द्विविधरूपां प्रवृत्तिं वार्त्तां न वेद्मि न जानामीत्यन्वयः संगतोत्रत्यैः स्थितः संस्थितः । संस्थाधारे स्थितौ मृतौ इतिवा । दारशब्दःपुंस्येवभूम्न्येवकलत्रवाची । कुशलंचाकुशलं चात्मास्वभावोयस्याःसातथोक्ता । शेषाद्विभाषेतिकप्समासान्तइत्वंच ॥ २० ॥

। किम्नुइतिछेदः । किम्पृच्छायांजुगुप्सने नुपृच्छायांविकल्पेच । तत्रकिमित्यनव्ययं च । सम्प्रत्येवसाम्प्रतंप्रज्ञादिभ्यश्चेत्यण् इहक्षेमत्वाश्रयोविकल्पःनुशब्देनसूच्यते । साम्प्रतमिदानींतेषांपुत्रादीनां गृहेकिमपिक्षेमंनुवर्तते । अथवा सांप्रतमिदानीं तेषां पुत्रादीनांगृहेकिमपिअक्षेमंनुवर्त्तते इतितदुभयंनवेद्मीत्यन्वयः । क्षेमंवाक्षेमंवानवेद्मीत्यर्थः । 'कुशलंक्षेममस्त्रियाम्' । क्षिणोतिहिनस्तिक्लेशान्क्षेमं । तेसुताःसाम्प्रतंकिंसद्वृत्ता नु अथवातेसुताःसांप्रतं किंदुर्वृत्तानुइतितदुभयंकथंमेज्ञेयंस्यादित्यन्वयः । ते सुताःसाम्प्रतं सद्वृत्तावादुर्वृत्तावाकथंमयाज्ञेयाइतिभावः । तत्साधुवृत्तंचरित्रं येषांतेसद्वृत्ताः । अथवासतामिववृत्तंचरित्रंयेषांतेसद्वृत्ताः । दुष्टमसाधुवृत्तंचरित्रंयेषांतेदुर्वृत्ततः । अथवा, दुष्टानामसज्जानानामिव वृत्तं चरित्रं येषां तेदुर्वृत्ताः ॥ २१ ॥

राजोवाच

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः । तेषुकिंभवतः स्नेहमनुवध्नातिमानसम्

वैश्य उवाच

एवमेतद्यथा प्राहभवानस्मद्गतं(तो)वचः । किं करोमिनवध्नाति मम निष्ठुरतां मनः
यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः । पतिस्वजनहार्दंञ्च हार्दि तेष्वेव मे मनः

इति दुर्दैवतोवैश्याद्द् द्रुह्यत्पुत्रादिवन्धुतः ।

नदुःखतः कथितं वाक्यमाकर्ण्योचेपुनर्नृपः । हेसमाधेहेवैश्यभवान्धनैः कारणैःलुब्धैःगृघ्नुभिर्यैःपुत्रदारादिभिर्दुर्वृत्तैर्वन्धुभिः निरस्तोऽभूत् तेषुभवतः मानसंकर्तृ स्नेहंकिमनुवध्नातिकिमर्थंकरोतीत्यन्वयः । तादृशेषुस्नेहनिवन्धनंजुगुप्सितंगर्हितंत्यजनीयंभवतइतिभावः । यदाहुः । 'भवतःस्निह्यतिस्निह्येद्द्रुह्येद्यद्रुह्यतेपुनः । सौजन्यंसुजनेकुर्याद्दौर्जन्यमपिदुर्जन'इति । भवाँल्लुब्धैरित्यत्रतोर्लिइतिनकारस्य परसवर्णोऽनुनासिकोलकारः ॥ २२ ॥ यन्मद्गतमित्यपिक्वचित्पाठः सभ्यः । ममेत्येकवचनपाठौचित्यादस्मद्गतमितिपाठेराजाग्रेवैश्यस्यप्रश्रयावनतस्यसतःप्रागल्भ्यनौचित्यप्रसङ्गाच्च । हेनृपभवान् यन्मद्गतंवचः यथाप्राहब्रवीतिएतद्वचः एवमिदमित्थमेव अथाप्यहंकिंकरोमिममेमनः कर्तृ निष्ठुरतांपरुषतांन बध्नातिनाचरतिनाश्रयतिइत्यन्वयः । इवेत्थमर्थयोरेवं अस्मद्गतं अस्मद्गतम् । अस्मत्पृथक् ॥ मद्गतं मद्गतं मत्पृथक् ॥ अथवा अस्माभिर्गतंज्ञातंअस्मद्गतं ॥ मयागतंज्ञातंमद्गतम् । गत्यर्था धातवो ज्ञानार्था अपि भवन्ति ॥ २३ ॥

हेराजन् ! पितृस्नेहं सन्त्यज्य धनलुब्धैः यैर्मत्पुत्रैर्निराकृतोऽस्मितेष्वेवपुनर्मेमनः हार्द्दिंवर्त्ततेे॥ किंच ॥ पतिस्वजनहार्द्दं भर्तृलक्षणवंधुस्नेहंसन्त्यज्यधनलुब्धैर्यैर्मद्दारैर्निराकृतोस्मितेष्ववपुनर्मेमनः हार्द्दिदवर्त्ततेकरोमि किंइत्यन्वयः । हृदयस्यस्वान्तस्य कर्महार्द्दंप्रेमस्नेहइतियावत् युवादित्वादण् ॥ हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेष्वितिहृद्भावः । हार्द्दमस्त्यस्यतत् हार्द्दिदमेमनः हृदयनिविष्टस्नेहोपेतंस्नेहनिवद्धमितियावत् । पतिरेवस्वभर्त्तैव स्वजनोवन्धुस्तस्मिन् हार्दंस्नेहःपतिस्वजनहा-

किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते! । यत्प्रेमप्रवणञ्चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ॥
तेषांकृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यञ्चजायते । करोमिकिंयन्नमनस्तेष्वप्रीतिषुनिष्ठुरम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौसहितौ विप्र! तं मुनिं समुपस्थितौ ।
समाधिर्नामवैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ॥ २७ ॥

द्रुदं तत् । 'लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक्' ॥ २४ ॥
हेमहामतेराजन् विगुणेष्वपिबन्धुषुप्रेमप्रवणंमेचित्तमितिजानन्नपिनाभिजानामिकि मेतदित्यन्वयः । अथवाहेमहामतेराजन् यद्यस्मात्कारणात् बन्धुषु असत्स्वप्यस्ति मेचित्तं प्रेमप्रवणं इतिजानन्नप्येतद्वारयितुं नाभिजानामिकरोमिकिमित्यन्वयः । अथवाहेराजन् बन्धुषुविगुणेषुसत्स्वपि यच्चित्तं प्रेमप्रवणं स्यात् । तत्किनामकुत्सितं गर्हितं इतिजानन्नपिनाभिजानामीत्यन्वयः । महतीमतिर्यस्यसःमहामतिः । हेमहामतेप्रवणं प्रह्वं नम्रमनुकूलम् प्रवणं कमनिम्नोर्व्या प्रह्वेनातुचतुष्पथे । अगुणेषु अस्नेहेषुविगुणेषुविस्नेहेषु ॥ २५ ॥ करणंकृतिःकृतं नपुंसकेभावेक्तः । अथवा । करणं कृतिः कृत्तस्यै संपदादित्वाद्भावेस्त्रियांक्विप् । निर्गलतिश्वासोयस्मात्सनिःश्वासः शोकः । दुःस्थंमनोयस्य दुर्मनाः तद्भावोदौर्मनस्यं प्रतिपक्षिणिनास्तिप्रीति र्येषांतेअप्रीतयः निष्ठुरंकठोरं तेषांपुत्रादीनांकृतेमेलाभायासंसिद्धविषयेसंसिद्धि प्रयुक्तयैवमेनिःश्वासः शोकाद्दैन्यंदौर्मनस्यंदुःस्थितमनस्कत्वंचजायते । यद्यस्मात्कारणात् मयिअप्रीतिष्वपितेषुपुत्रादिषुमेमनः निष्ठुरंनजायतेअतः करोमिकिमित्यन्वयः तदित्थंसंप्रतिसांसारिकचिन्तातःकांदिशीकोस्मीतिभावः । कांदिशीको भयद्रुतःकांदिशंव्रजामीतिव्याकुलोऽस्मीतिभावः ॥ २६ ॥ हेविप्रहेशिष्यसमाधिर्नाम असौवैश्यश्चपार्थिवसत्तमः ससुरथश्चतौद्वौसहितौमिलितौहितसंयुक्तौवासन्तौ तं प्रसिद्धं सुमेधसंनाममुनिंसमुपस्थितौसम्यक्जग्मतुः इत्यन्वयः । तिष्ठातेरुपपूर्वो गत्यर्थोऽपि । पार्थिवेषुसन् अतिशयेन पार्थिवसत्तमः ॥ २७ ॥

कृत्वातुतौयथान्यायं यथार्हन्तेनसंविदम् । उपविष्टौकथाःकाश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ

राजोवाच

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ।
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ॥ २९ ॥
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ! ॥ ३० ॥

अल्पाच्तरत्वाद्वैश्यस्य पूर्वनिपातः । अभ्यर्हितस्तुपार्थिवःक्षत्रियत्वात् । यथान्यायं तुशश्वत् वर्णोक्तविधिमनतिक्रम्यैव यथार्हंअर्हं पूज्यंवृद्धंअनतिक्रम्यैवयथाश्रमंतस्मै सुमेधसेमुनयेसंविदंसंभाषणाद्याचारं कृत्वा तेनापिपूजितौतदनुमत्याउपविष्टौसंतौ वैश्यपार्थिवौ काश्चित्स्वार्थपराःउचिताःकथाःउक्तीःचक्रतुःविदधतुरित्यर्थः। 'तुः स्याद्भेदेवधारणे' । स्त्रीसंविदज्ञानसंभाषाक्रियाकाराजिनामसु । प्रतिज्ञातोषणाचारें ष्वपिसंवित्प्रयुज्यते' ॥ २८ ॥

हेभगवन् ! हेसर्वैश्वर्यसम्पन्नहेमुने ! त्वां अहमेकं रहस्यं प्रष्टुमिच्छामितद्वदस्व रहस्युपदिश । भासनोपसंभाषासूत्रेण रहस्युपच्छन्दने आत्मनेपदम् । यद्यस्मात्कारणात् स्वचित्तायत्ततां विनाऽवस्थानंमेमनसः दुःखायभवतीत्यन्वयः । यदहंएकंरहस्यंत्वांप्रष्टुमिच्छामितत्ममावश्यमाकर्णनीयम्। अन्यथा तदाकर्णनाभावेस्वचित्तायतत्वंनस्यात् । तद्भावस्तुमेमनसःदुःखायस्यात्संशयापन्न त्वात्तस्मात्तद्रहस्यंमयाश्रोतव्यमेवेतिभावः । ऐश्वर्यस्यसमग्रस्यधर्मस्ययशसः श्रियः वैराग्यस्याथमोक्षस्यषण्णांभगइतिस्मृतिः' ॥ २९ ॥

मुनिष्वतिशयेनसन् विपश्चिन्मुनिसत्तमः हेमुनिसत्तम । जानतोपिउत्पन्नज्ञानस्यापिगतराज्यस्यशत्रुहस्तं गतसाम्राज्यस्यमे अखिलेष्वपिराज्याङ्गेषुयथाअज्ञस्येव ममत्वंममतावर्त्ततेकिमेतदित्यन्वयः । विनष्टराज्यस्य पुंसः राज्यांगेषुकिंममत्वेन कृतंस्यादितिभावः । स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानिचेतिसप्तराज्याङ्गानि । ववा 'यथा' तथैवैवम् ॥ ३० ॥

अयञ्चनिकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः । स्वजनेनचसन्त्यक्तस्तेषुहार्द्दींतथाप्यति
एवमेष तथाहञ्च द्वावत्यन्तदुःखितौ । दृष्टदोषेऽपिविषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥ ३२
तत् किमेतन्महाभाग! यन्मोहोज्ञानिनोरपि । ममास्यचभवत्येषाविवेकान्धस्यमूढता

ऋषिरुवाच

ज्ञानमस्तिसमस्तस्यजन्तोर्विषयगोचरे । विषयाश्चमहाभाग!यान्तिचैवंपृथक् पृथक्

अयंवैश्यश्चयद्यपिपुत्रैर्निकृतः विप्रकृतःखिलीकृतः तथादारैः कलत्रैर्भृत्यैश्चउज्झितः उत्सृष्टः । स्वजनैर्भ्रात्रादिबन्धुभिरपिसन्त्यक्तस्तथाऽपितेषुपुत्रादिषुममत्वेनअतिस्नेहवानितिभावः । निकृतःस्याद्विप्रकृतःनिक्रियतेखिलीक्रियतेस्मनिकृतः । अथवा । निकृतस्त्वनृजुःशठःनिकृणोतिहिनस्तिनिकृतः हिंसकोयमनृजुःशठइत्युज्झितइत्यर्थः । कुसृतिर्निकृतिःशाठ्यम् । 'निष्कृतइत्यप्रस्तुतत्वादपपाठः' । तथाहि निष्कृतिःप्रायश्चित्तिः । यदाहुःकामयोब्राह्मणवधेजीवतोनस्तिनिष्कृतिरितिप्रायश्चित्तिर्नास्तीत्यर्थः प्रायश्चित्तिस्तुनिष्कृतिः' । अथवानिरर्थकःकृतोनिःकृतःअथवा निःक्रांतःकृतात्कारणात् राज्याद्वानिःकृतः ॥ ३१ ॥ द्वावपिअत्यंतदुःखितौ वर्त्तावहेइत्यन्वयः । इवेत्थमर्थयोरेवम् । षिञ्बन्धने । विषिणोतिवध्नातिविषयः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धलक्षणः । ग्रामसमूहादिलक्षणश्च विषयश्चदृष्टदोषत्वमध्रुवत्वं अन्ततोदुःखहेतुत्वञ्च । ममेतिभावोममत्वंतेनआकृष्टंमानसंययोस्तौतथोक्तौ ॥ ३२ ॥ हेमहाभागहेसुमेधोमुने !। ज्ञानिनोरपिआवयोर्नृपवैश्ययोर्मोहोभवतीतियत्तदेतत्किमित्यन्वयः । भगस्यैश्वर्यादेरिदंभागं महद्भागंयस्यसमहाभागः । तयोर्ज्ञानिनोःकोनुमोहइत्यतआह । हेब्रह्मन्मूढस्य विवेकान्धस्यइदंसुखायइदंदुःखायेतिहिताहितपार्थक्यैविषये अन्यस्यममचसुरथसमाधिसञ्ज्ञयोर्नृपवैश्ययोरेषामूढताविवेकविहीनतामोहापन्नताभवतीतिकिमेतदित्यन्वयः । 'अचक्षुषितमस्यन्ध्रंजलेतिमिरकृत्यपि' ॥ ३३ ॥ हेराजन्समस्तस्यसर्वस्यजंतोश्चेतनस्यप्राणिनः विषयगोचरेज्ञानंबुद्धिमात्रंअस्तीत्यन्वयःनहिमोक्षेधीर्ज्ञानंविवक्षितम् । किन्तु । विषयगोचरे

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥ ३५ ॥
ज्ञानिनोमनुजाः सत्यंकिन्तुतेन हिकेवलम्। यतो हिज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः
ज्ञानंतन्मनुष्याणांयत्तेषांमृगपक्षिणाम्। मनुष्याणाञ्चयत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः

इन्द्रियार्थस्यतत्तदिन्द्रियजंज्ञानं विद्यतएवतावन्मात्रमितिभावः। विषिणोतिबध्नातीतिविषयःशब्दादिः। गावःइन्द्रियाणिचरंत्यस्मिन्गोचरः। गोचरसंचरेतिसाधुत्वम्। 'यद्यपि रूपंशब्दोगंधरसस्पर्शाश्चविषयाअमी गोचराइन्द्रियार्थाश्चेत्यभिधानात् यएवविषयः सएवगोचर इतिपौनरुक्त्यंप्रतीयते। तथापीहदुःखितंसुखंप्रतिविषिणोतिबध्नातिविषयोदुःखहेतुरिंद्रियंवशीकरोतिगोचर इतिप्रदर्शनादपौनरुक्त्यंद्रष्टव्यम्। भगस्यैश्वर्यादेरिदंभागं। महद्भागन्तस्यासौमहाभागः। हेमहाभागराजन्एवंवक्ष्यमाणप्रकारेणविषयाश्चविषयवृत्तयश्चपृथक्विभिन्नायान्ति। पार्थक्येनेन्द्रियगोचरतां व्रजन्ति। अथवाप्रसरन्तिसञ्चरन्तिइत्यन्वयः। विषयाश्चमहाभागजातिश्चैवंपृथक्पृथगितिपाठेजातिः सामान्यंरूपत्वगन्धत्वाद्यमप्यनेकविधम् ॥ ३४ ॥ सत्यपिचक्षुर्गोलकेकेचिच्चेतनाःप्राणिनःदिवान्धाः उलूकादयःतथाअपरेकेचित्प्राणिनः काकादयोरात्रावन्धाः दृष्टिहीनाइत्यन्वयः। केचिद्दिवाश्वप्रभृतयः प्राणिनःयथादिवातथारात्रौचतुल्यादृष्टिर्येषांतेतुल्यदृष्टयोभवन्तीत्यन्वयः। पूर्वंराज्ञासुरथेनपृष्टंयन्मोहोज्ञानिनोरपितत्किमेतदितितत्रोत्तरमर्थाङ्गीकारेण ॥ ३५ ॥ मनुजाःज्ञानिनः सत्यंकिन्तुतेएवकेवलंज्ञानिनोनहि। यतोमनुजेभ्योऽन्येपिसर्वेपशुपक्षिमृगादयः ज्ञानिनः सन्त्येवहीत्यन्वयः। सर्वेऽपिमनुजादयोयथाविषयंयथोचितज्ञानाएवेतिभावः। मनुजामानवाःसन्तिसाधुसत्यम्। तुस्याद्भेदेवधारणे। हिहेतावधारणे। अतोह्यनेनापिकेवलं नियतमपरंक्रियाविशेषणं। इदानींज्ञानित्वाविशेषात्प्राणिनांप्रतिनियतज्ञाननिबन्धनव्यवहारसिद्धिःकथंस्यादित्याशङ्क्यतामुपपादयितुमाह ॥ ३६ ॥ तेषांमृगपक्षिणांयज्ज्ञानंस्वभावजम्। शास्त्रजमव्याहतज्ञानजंच्तन्नमृगपक्षिणाम्।

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतगाञ्छावचञ्चुषु ।
कणमोक्षादृतान्मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा ॥ ३८ ॥
मानुषा मनुजव्याघ्र! साभिलाषाः सुतान् प्रति ।
लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेते (तान्) किं न पश्यसि ॥ ३९ ॥

तुल्यमन्यत्तथोभयोःतथातेनप्रकारेणप्रतिनियतं तत्तत्स्वजातिप्रत्युक्तोपयुक्तंविषयज्ञानादन्यत्यत्ज्ञानंशरीरमात्रोपयोगितत् उभयोर्मृगादिमनुष्ययोः । आहारनिद्रादिविषयज्ञाननिबन्धनव्यवहारपार्थक्यसंसिद्धेरसाङ्कर्यमितिभावः ॥ ३७ ॥ प्रागुक्तंराज्ञायन्मोहोज्ञानिनोरपितत्किमेतदितितत्रकिमाश्चर्यमित्याहसदृष्टान्तम् । हे राजन्ज्ञानेसत्यपिमोहात्ममत्वात्शावचञ्चुषुशिशुत्रोटिषुकणमोक्षादृतान्आदृतकणमोक्षान्क्षुधाबुभुक्षयापीड्यमानानपिएतान्पतङ्गान्पश्येत्यन्वयः । ज्ञानेसत्यपिते । येशावचंचुषुनिक्षेप्तव्यकणास्तेयद्यस्माभिरेवभक्ष्येरन्तर्हिनूनं वयंक्षुधानपीड्यामहेइतिस्वार्थंजानंतोपिस्वयंक्षुधापीड्यमानाअपिमोहान्ममत्वाद्वाशावचञ्चुष्वेवकणान्निक्षिपन्तिपक्षिणइतिभावः । पतेरङ्गच्पक्षिणि । चञ्चुस्त्रोटिरुभेस्त्रियौ । आदृताःकणमोक्षायैस्तेकणमोक्षादृताः । वाहिताग्न्यादिषुपरनिपातः । कणमोक्षहितानित्यपि क्वचित्पाठः ॥ ३८ ॥ हेमनुजव्याघ्रराजन्मानुषालोभात्प्रत्युपकारायप्रत्युपकृतिलोभात्हेतोः सुतान्सुतेषुविषयेषुकालांतरेप्रत्युपकारमेतेऽस्मदर्थंकरिष्यन्तीतिसाभिलाषाः सकामाःभवन्तिइतिपादत्रयान्वयः । तत्रनिदर्शनमाह । ननुभोराजन्त्वंएतान्लोकेप्रसिद्धान्पक्षिमृगादीन्ममत्वात्सुतान्प्रतिसाभिलाषान् सादृतान्किंनपश्यसि इतिचतुर्थपादान्वयः । अहोराजन्नेतेयदिपशुपक्षिमृगादयोपिकिलप्रत्यपकारनिरपेक्षा अपिकेवलंममत्वादेवसुतान्प्रतिसाभिलाषाः सादराः दृश्यन्तेकिमुतमानुषाममत्वाकृष्टमानसाः प्रत्युपकारगृध्नवः सुतान्प्रतिसाभिलाषाः स्युः अतितरामेवेतिभावः मनुजोऽयंव्याघ्रइवशूरःश्रेष्ठः मनुजव्याघ्रः । उपमितंव्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगइतिसमासः 'स्युरुत्तरपदेव्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसिश्रेष्ठार्थ-

तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः । महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा

तन्नाऽत्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत् ॥ ४१ ॥

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति

गोचराः ।' 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणेननु' । सुतान्प्रतिइतिप्रतियोगेद्वितीया-सप्तम्यर्थेत्रापिउपकृततत्पुत्रकर्तव्यप्रत्युपकारलोभात् पितरो मनुष्याः पुत्रवात्सल्यं कुर्युर्ममत्वाच्चविशेषतइत्यलंविस्तरेण ॥ ३६ ॥ यद्यप्यमीमनुष्यायथाप्रत्युपकारार्थं पुत्रान्पालयन्तितद्वन्मोक्षार्थमपियतन्तएव । तथापि संसारस्थितिकारिणामहामाया-प्रभावेणममतावर्त्तेमोहगर्त्ते निपातिताः इत्यन्वयः । ममताआवर्त्त इवममतावर्त्तः । तत्रतत्रचमहत्यामायायाः प्रभावः सामर्थ्यं सर्वाकलनशक्तिविजृम्भःतेन । अथवामहा मायांप्रतिपूरयतिमहामायाप्रःसचासौभावश्चेतितेन । 'भावःसत्तास्वभावाभिप्रायचे-ष्टात्मजन्मसु ।' संसारस्यस्थितिःप्रवाहनित्यतयावस्थानंनकदाचिदनीदृशंजगदिति भावाभावावपिजगद्रूपौसंसाररूपावेवसंसारस्थितिंकरोतीतितच्छीलः संसारस्थि-तिकारीतेन ॥ ४० ॥ च शब्दो हेतौ यतोमहामायेतिशाऽनादिः प्रसिद्धास्तिभवती एषाजगत्पतेः हरेर्विष्णोः योगनिद्रेतिकथ्यते । तथाजगत्सम्मोह्यतेमुह्यत्सम्प्रयुज्यते मोहपरायणंक्रियते । तत्तस्मात् ज्ञानेसत्यपिपुत्रादिपुममत्वंकथंजायतेइतिअत्र विस्मयोनकार्यइत्यन्वयः । विस्मयोद्भुतम् । योगोनिद्रेवयोगनिद्राप्रपंचात्मावगमो-योगोऽत्रध्यानलक्षणोविषयेभ्यश्चित्तवृत्तिनिरोधोविवक्षितः । नतुसाक्षान्निद्राअस्व प्नत्वाद्देवानाम् । 'योगः सन्नहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु । अपूर्ववस्तुलाभेपिभेष-जेपिचरेऽपिच' । ममभायादुरत्ययेतिभगवद्वचनान्महामायायाः प्राधान्यमाह । ४१ । हियस्मादनादिःप्रसिद्धावैष्णवीमायाभगवतीऐश्वर्यादियुता । अतःसादेवीस्वेच्छ-यादीव्यन्तीसतीज्ञानिनामपिउपनिषत्स्थज्ञानानामपिपुंसांचेतांसिबलात्सामर्थ्यादा-कृष्यमोहायसांसारिकत्वायममत्वायप्रयच्छति ददातिचित्तानिममत्वाधीनानिकरो

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतगाञ्छावचञ्चुषु ।
कणमोक्षादृतान्मोहात् पीड्यमानानपि क्षुधा ॥ ३८ ॥
मानुषा मनुजव्याघ्र! साभिलाषाः सुतान् प्रति ।
लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेते (तान्) किं न पश्यसि ॥ ३९ ॥

तुल्यमन्यत्तथोभयोःतथातेनप्रकारेणप्रतिनियतं तत्तत्स्वजातिप्रत्युक्तोपयुक्तंविषयज्ञा-नादन्यत्यत्ज्ञानंशरीरमात्रोपयोगितत् उभयोर्मृगादिमनुष्ययोः । आहारनिद्रादि-विषयज्ञाननिबन्धनव्यवहारपार्थक्यसंसिद्धेरसाङ्कर्यमितिभावः ॥ ३७ ॥ प्रागु-क्तंराज्ञायन्मोहोज्ञानिनोरपितत्किमेतदितितत्रकिमाश्चर्यमित्याहसदृष्टान्तम् । हे राजन्ज्ञानेसत्यपिमोहात्ममत्वात्शावचञ्चुषुशिशुत्रोटिषुकणमोक्षादृतान्आदृतकण-मोक्षान्क्षुधाबुभुक्षयापीड्यमानानपिएतान्पतङ्गान्पश्येत्यन्वयः । ज्ञानेसत्यपिते । येशावचंचुषुनिक्षेप्तव्यकणास्तेयद्यस्माभिरेवभक्ष्येरन्तर्हिनूनं वयंक्षुधानपीड्यामहेइ-तिस्वार्थंजानंतोपिस्वयंक्षुधापीड्यमानाअपिमोहान्ममत्वाद्वाशावचञ्चुष्वेवकणान्नि क्षिपन्तिपक्षिणइतिभावः । पतेरङ्गच्पक्षिणि । चञ्चुस्त्रोटिरुभेस्त्रियौ । आदृताःकण-मोक्षायैस्तेकणमोक्षादृताः । वाहिताग्न्यादिषुपरनिपातः । कणमोक्षहितानित्यपि क्वचित्पाठः ॥ ३८ ॥ हेमनुजव्याघ्रराजन्मानुषालोभात्प्रत्युपकारायप्रत्युपकृति-लोभात्हेतोः सुतान्सुतेषुविषयेषुकालांतरेप्रत्युपकारमेतेऽस्मदर्थंकरिष्यन्तीतिसा भिलाषाः सकामाःभवन्तिइतिपादत्रयान्वयः । तत्रनिदर्शनमाह । ननुभोराजन्त्वंएता न्लोकेप्रसिद्धान्पक्षिमृगादीन्ममत्वात्सुतान्प्रतिसाभिलाषान् सादृतान्किंनपश्यसि इतिचतुर्थपादान्वयः । अहोराजन्नेतेयदिपशुपक्षिमृगादयोपिकिलप्रत्यपकारनिरपेक्षा अपिकेवलंममत्वादेवसुतान्प्रतिसाभिलाषाः सादराः दृश्यन्तेकिमुतमानुषाममत्वा-कृष्टमानसाः प्रत्युपकारगृध्नवः सुतान्प्रतिसाभिलाषाः स्युः अतितरामेवेतिभावः मनुजोऽयंव्याघ्रइवशूरःश्रेष्ठः मनुजव्याघ्रः । उपमितंव्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगइ-तिसमासः 'स्युरुत्तरपदेव्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसिश्रेष्ठार्थ-

तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः । महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा

तन्नाऽत्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ।
महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत् ॥ ४१ ॥

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति

गोचराः ।' 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणेननु' । सुतान्प्रतिइतिप्रतियोगेद्वितीया-सप्तम्यर्थेत्रापिउपकृततत्पुत्रकर्तव्यप्रत्युपकारलोभात् पितरो मनुष्याः पुत्रवात्सल्यं कुर्युर्ममत्वाच्चविशेषतइत्यलंविस्तरेण ॥ ३९ ॥ यद्यप्यमीमनुष्यायथाप्रत्युपकारार्थं पुत्रान्पालयन्तितद्वन्मोक्षार्थमपियतन्तएव । तथापि संसारस्थितिकारिणामहामाया-प्रभावेणममतावर्त्तेमोहगर्त्ते निपातिताः इत्यन्वयः । ममताआवर्त्त इवममतावर्त्तः । तत्रतत्रचमहत्यामायायाः प्रभावः सामर्थ्यं सर्वाकलनशक्तिविजृम्भःतेन । अथवामहा मायांप्रतिपूरयतिमहामायाप्रःसचासौभावश्चेतितेन । 'भावःसत्तास्वभावाभिप्रायचे-ष्टात्मजन्मसु ।' संसारस्यस्थितिःप्रवाहनित्यतयावस्थानंनकदाचिदनीदृशंजगदिति भावाभावावपिजगद्रूपौसंसाररूपावेवसंसारस्थितिंकरोतीतितच्छीलः संसारस्थि-तिकारीतेन ॥ ४० ॥ च शब्दो हेतौ यतोमहामायेतिगाऽनादिः प्रसिद्धास्तिभवती एषाजगत्पतेः हरेर्विष्णोः योगनिद्रेतिकथ्यते । तयाजगत्सम्मोह्यतेमुह्यत्सम्प्रयुज्यते मोहपरायणंक्रियते । तत्तस्मात् ज्ञानेसत्यपिपुत्रादिषुममत्वंकथंजायतेइतिअत्र विस्मयोनकार्यंइत्यन्वयः । विस्मयोद्भुतम् । योगोनिद्रेवयोगनिद्राप्रपंचात्मावगमो-योगोऽत्रध्यानलक्षणोविषयेभ्यश्चित्तवृत्तिनिरोधोविवक्षितः । नतुसाक्षान्निद्राअस्व प्नत्वाद्देवानाम् । 'योगः सन्नहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु । अपूर्ववस्तुलाभेपिभेष-जेपिचरेऽपिच' । ममभायादुरत्ययेतिभगवद्वचनान्महामायायाः प्राधान्यमाह । ४१ । हियस्मादनादिःप्रसिद्धावैष्णवीमायाभगवतीऐश्वर्यादियुता । अतःसादेवीस्वेच्छ-यादीव्यन्तीसतीज्ञानिनामपिउपनिषत्स्थज्ञानानामपिपुंसांचेतांसिबलात्सामर्थ्यादा-कृष्यमोहायसांसारिकत्वायममत्वायप्रयच्छति ददातिचित्तानिममत्वाधीनानिकरो

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् । सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

तीत्यन्वयः । 'स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषुबलंनाकाकसीरिणोः ।' दाणोयच्छः शिति ॥ ४२ ॥

तयादेव्याचराचरंविश्वंविसृज्यते विशेषेणसृज्यतेउत्पाद्यते । अथचसैषादेवीप्रसन्ना सतीनृणांपुंसांवरदाभवति । अप्रसन्नाऽवरदाभवति । अथच सैषादेवीनृणांभक्तानां प्रसन्नासतीमुक्तयेचभवतीत्यन्वयः । तयाविसृज्यतेतयाअविसृज्यतेइत्यकारप्रश्लेषोविवक्षितोज्ञेयःअइत्येतत्पृथगव्ययम् । 'अमानोनाःप्रतिषेधवचना'इतिस्मरणात् । अभ्ययुश्च 'अभावेनह्यनोनापी'ति । चरतीतिचराचरंजंगमरूपंविश्वत्यिर्थः । 'चरिष्णुजंगमचरंत्रसमिंगंचराचरम्' ।चरिचलिपतिवदीनांद्वित्वमच्याकुचाभ्यासस्यवा चरादीनांपचाद्यचिद्विर्भावोभ्यासस्यागागमश्चआग्विधानसामर्थ्याद्धलादिःशेषेण अन्यथाऽकारादेशएववक्तव्यः स्यात् । नचेहचरंचाचरंचेतिविगृह्यैकवद्भावेनविश्वविशेषणंचराचरमित्येतदितिशङ्कनीयम् । विश्वग्रहणादेवजगद्ग्रहणादेववा तस्यपौनरुक्त्यप्रसङ्गात् । नहिस्थावरजङ्गमात्मकादन्यद्विश्वस्यशब्दवाच्यंवास्ति । तस्माच्चराचरमिहजङ्गममेवविवक्षितम् । विश्वजगच्छब्दयोरिहभिन्नवाक्यस्थतयाविवक्षितत्वादपौनरुक्त्यम् । समंसर्वम् । विश्वमशेषंकृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानिनिःशेषं ।'विष्टपंभुवनंजगत्' ।'जगतिजगद्विश्वम् । जगत्स्याद्विष्टपेक्लीवेयौवनेजंगमेत्रिषु' इतिरुद्रकोशः ॥ ४३ ॥ इह महामाया अविद्यारूपा बन्धहेतुःविद्यारूपातुमुक्तिहेतुरितिप्रतिपाद्यते । तत्रअविद्यापक्षस्तावत् साप्रसिद्धादेवी अविद्या विद्याविद्येतरा । यद्वावेत्तिवित्ब्रह्मज्ञानसम्पन्नः ततोऽन्यः अवित्सांसारिकः तं यातिअविद्या कीदृशीअविद्याअपरमा पराउत्कृष्टामामोक्षलक्ष्मीःततोऽन्याऽपरमा । अथवा,नविद्यतेपराउत्कृष्टामामोक्षलक्ष्मीर्यस्याःसाअपरमा । अथवा, अःविष्णुःपरमःपरोऽन्योऽधिकरणभूतोयस्याःसाअपरमा । पुनःकी-

दृशी अविद्या अमुक्तेर्हेतुभूता नविद्यते मुक्तिर्यस्मात्त्रिवर्गात्सोऽमुक्तिस्त्रिवर्गः धर्मकामार्थलक्षणः क्षयस्थानवृद्धिलक्षणोवा त्रिवर्गः तस्य हेतुभूता । पुनः कीदृशी अविद्या असनातना नसना सदाभवा असनातनी । अनादिरपिह्यविद्याविनिवर्त्तनीयत्वादनित्या अध्रुवा । पुनःकीदृशी अविद्या सर्वेश्वरी सर्वे ईश्वराः ईशनशीलाः स्वामिनः स्वस्वामिभावसम्बन्धसम्बन्धिनोभवन्ति । यतःसासर्वेश्वरी अखिलप्रपञ्चरूपा सैवेश्वरी ऐश्वर्यसम्पन्ना अत एव संसारबन्धहेतुः संसार इति बन्धस्तस्य हेतुः कारणम् अथवा सर्वेषां लोकानां ईश्वराः ईश्वराः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः तेषां ब्रह्मादीनां ईश्वरी ब्राह्मीवैष्णवीमाहेश्वरीति व्यपदेशस्तत्र तद्दृशीकृत्यौचित्यात् स्वामिनीतियावत् । पुनःकीदृशी अविद्या साअः विष्णुस्तेनसहवर्त्तमाना विष्णुमायेत्यर्थः चकारेण विद्यारूपाहि महामायेतिपक्षःसमुच्चीयते । तथाहि । सा वैष्णवीमाया सैव विद्या अतीतप्रपञ्चब्रह्मगोचरा । पुनः कीदृशी विद्या परमापरात्मात्मतत्त्वगोचरत्वाद्दुस्तरा । पुनःकीदृशी विद्या सनातनी 'सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्मे'तिश्रुतेः । ब्रह्मरूपत्वान्नित्या ब्रह्मतत्त्वगोचरत्वोपचारौचित्यापि शाश्वती । 'शाश्वतस्तुध्रुवोनित्यःसदातनसनातनाः' सायंचिरमित्यादिना ट्युःतुट् टित्वान्ङीप् । पुनःकीदृशी विद्या सर्वा सम्पूर्णा विश्वरूपा । पुनः कीदृशी विद्या ईश्वरस्य ईश्वरी ईश्वरेश्वरी । ईश्वरस्यापिहि स्वरूपदिदृक्षुत्वौचित्या वाप्तव्यत्वात् अवश्याश्रयणीयत्वात्तस्याः स्थेशभासपिसकसोवरच् इष्ट इति ईश्वरः । ईश्वर इति रूपं अशूव्य · अश्नुते अशूव्याप्तौ व्याप्नोति इति विगृह्य ईश्वरीति भवति । अश्नोतेराशुकर्मणिवरट् चेचोपधाया इत्यौणादिकोवरट् । पुनःकीदृशी विद्या ।संसार बन्धहेतुःपुंसःमुक्तेर्हेतुभूता कारणभूतेत्यर्थः । संसाररूपबन्धस्यहेतौ तृचिषष्ठ्येकवचनान्तमेतत् । षष्ठीसमासः। कर्तरिचेतितुषष्ठीसमासप्रतिषेधःप्रायिकोजनिकर्त्तुः प्रकृतिरितिपाणिनिप्रयोगाल्लिङ्गादवसीयते । हेतुशब्दस्तु उकारान्तः कारणवाची । अविद्यः अहंमतिः विद्यातु मोक्षफलं ज्ञानम् ॥ ४४ ॥

सुरथः सुमेधसंमुनिंमहामायामहिमानंप्रष्टुंवाक्यमूचे । हे भगवन् द्विज!सुमेधः

राजोवाच

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्माऽस्याश्च (कर्मचास्याश्च) किं द्विज !॥ ४५ ॥
यत्स्वभावा चसादेवीयत्स्वरूपायदुद्भवा। तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामित्वत्तोब्रह्मविदांवर

ऋषिरुवाच

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्। तथापितत्समुत्पत्तिर्बहुधाश्रूयतांमम
देवानांकार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवतिसायदा। उत्पन्नेतितदालोकेसानित्याप्यभिधीयते

मुनेभवान्यामहामायेतिब्रवीतिआहकाहिसादेवीसाचकथंकेनप्रकारेण उत्पन्नाउद्भूत् अस्याःदेव्याःकर्मचकिंपराक्रमश्चकइत्युवाचराजेत्यन्वयः। 'इतिहेतुप्रकरणप्रकर्षादिसमाप्तिषु' ॥ ४५ ॥ पुनःपृच्छतिराजा। हेब्रह्मविदाम्वरश्रेष्ठत्वत्तःसकाशात्। तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामितदितिकिंसादेवी यत्प्रभावायत्सामर्थ्यायत्स्वरूपायदाकृतिः यदुद्भवावयदुत्पत्तिका च। तस्याःदेव्याः सामर्थ्यंकीदृशंकिंस्वरूपंकीदृशंच प्रादुर्भवनमितिप्रश्नतात्पर्यम्। त्वत्तःत्वत्। आख्यातोपयोगइत्यपादानता यः भावोयस्याः सा यत्स्वरूपंयस्याः सायथोक्ता ब्रह्मविदन्तिब्रह्मविदःतेषांमध्ये वर। 'वेदस्तत्त्वंतपोब्रह्मब्रह्माविप्रःप्रजापतिः। ब्रह्मवेदोब्रह्मतपोब्रह्मज्ञानञ्चशाश्वतम्'। ब्रह्मन्निति संबुध्यन्तःपाठःक्वचित् ॥ ४६ ॥ अथसुमेधाऋषिरुवाच। हे राजन् जगन्मूर्त्तिः सादेवीतित्यैवतयादेव्याइदंलोकमयंसर्वंततंकृतम्। सातुकेनापिनततानकृता। तथापिलोकोपकारार्थातत्समुत्पत्तिस्तत्प्रादुर्भावः। बहुधाअनेकैःममवाचोयुक्तितः त्वयाश्रूयतामित्यन्वयः। जगत्जगतीमूर्त्तिःकायोयस्याः सातथोक्ता। तस्याः समीचीनाउत्पत्तिः तत्समुत्पत्तिः 'मूर्त्तिःकाठिन्यकाययोः ॥ ४७ ॥ सादेवी देवानांकार्यसिद्ध्यर्थंयदाविभर्वतिप्रकाशतेतदा सादेवीनित्यापिसतीलोके उत्पन्ना लब्धजन्मेतिअभिधीयतेकथ्यतेजनतयेत्यन्वयः। आत्मवचनादात्मरूपत्वादकृतकत्वाच्चनित्यन्तस्याइतिभावः। 'प्रकाशेप्रादुराविःस्यात्'। आविर्भवतिप्रकाशते

योगनिद्रांयदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते । आस्तीर्यशेषमभजत्कल्पान्तेभगवान्प्रभुः
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥ ५० ॥

इत्यर्थः । नियतंभवानित्यानेर्ध्रुवेत्यप् । 'गतानुगतिकोलोकोनलोकःपरमार्थिकः । सतीमप्यसतीमाहसीतांरक्षःक्षयाश्रयात् । सहजोयः समुल्लासःक्षीराब्धेःसोऽपिमंस्यते । चन्द्रइत्यत्रकिंकुर्मोगतानुगतिकंजगत्' ॥ ४८ ॥ कल्पान्तेप्रलये ब्रह्मादीनां निशावसाने जगतिभुवनेएकार्णवीकृते एकार्णवत्वेन कृते सति एकोदकपूरत्वावस्थापितेसतिभगवानैश्वर्यादिसङ्गतः प्रभुः स्वामीविष्णुर्व्यापकोनारायणः शेषमनन्तफणीश्वरंआस्तीर्यआप्रसार्यतल्पकीकृत्ययदायोगनिद्रामभजत् योगनिद्रामिवाऽसेवत । तदातस्मिन्कालेयोगनिद्रोपलक्षितेकालेविष्णुकर्णमलोद्भूतौमधुकैटभावितिविख्यातौनाम्ना कथितौद्वावसुरौसुरविद्विषौ ब्रह्माणं विष्णोर्नाभिकमलस्थंवेधसंहिंसितुंउद्यतौउद्युक्तावुन्मुखावभूतामितिश्लोकयुग्मान्वयः । योगोनिद्रेवध्यानांगनिद्रातांवेवेष्टिव्याप्नोतिविश्वंविष्णुः जङ्गम्यतेजगत्तस्मिन् यस्मिन् रणन्त्यंभांसिसन्तिबहूनिसोऽर्णवः। अर्णसोलोपश्चेतिवः । एकःकेवलोऽर्णवःसमुद्रः पूर्णोयस्मिंस्तत् एकार्णवंजगत् प्रलयतः प्राक्सप्तार्णवत्वेनजगद्व्यवस्थापितंप्रलयेतु एकार्णवस्यजगतोभावः ऐकार्णव्यं ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् । वृद्धिः स्त्रियामैकार्णव्यमेवऐकार्णवी षिद्गौरादिभ्यश्चेतिङीप् । तयाऐकार्णव्या एकार्णवत्वेनकृतंव्यवस्थापितंजगत् तस्मिन् । अथवा, नियत्याभगवत्या (?)जगत्येकार्णवेकृतेइति मुक्तसंशयः पाठः । 'संवर्त्तः प्रलयः कल्पःक्षयः कल्पांतइत्यपि । 'कल्पःशास्त्रेविधौ न्यायेसंवर्त्तेब्रह्मणोदिने ।' कल्पस्यांतोवधिः कल्पान्तः तस्मिन् । मन्यतेऽहमेव शूरइतिमधुः । 'मधुःपुंस्यसुरेचैत्रेमधुकेसुरभावपि । क्लीबंतुमधुमद्येस्यात् क्षौद्रे पुष्परसेपिच' । कीटस्येवभाःप्रभायस्यतत्कीटभंकर्णजंमलंतत्रभवः कैटभः । बृंहतिवर्धतेब्रह्मातं । विष्णोःकर्णान्तयोर्मलंतदुद्भूतौ ॥ ४६ ॥ ५० ॥ विष्णो-

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तञ्च जनार्दनम् ॥ ५१ ॥
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः । वि(प्र) बोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्

(ब्रह्मोवाच ?)

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ ५२ ॥
(स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः) ॥

नाभिकमलेस्थितः सप्रजापतिर्ब्रह्मातावसुरौचउग्रौ दृष्ट्वाजनार्दनं च प्रसुप्तंयोगनिद्रा पन्नंदृष्ट्वाएकाग्रहृदयस्थितः सन्हरेःविष्णोः प्रबोधनार्थायहरिनेत्रकृतालयांतां योग-निद्रांमहामायांतष्टावस्तुतवान् । इति श्लोकयुग्मान्वयः । नाभिरेवकमलंयत्रस्थि-तउपविष्टः । ब्रह्माविप्रोऽपिकश्चित्स्यात् । अतउक्तंप्रजापतिरिति । प्रजापतिर्मनु रपिस्यादतउक्तंब्रह्माइति । अर्दहिंसायांचुरादिः जनानर्दयतिहिनस्तिजनार्दनः । अर्दगतौयाचनेच । भ्वादिःजनान्अर्दतिगच्छति । ष्टुञ्स्तुतौस्तुघनक्रियाफलं स्वरक्षालक्षणंब्रह्मणएवेत्यात्मनेपदेसतितुष्टुवे इतिपाठः । अथवास्तवनक्रियाफलं पारम्पर्यात् देवरक्षणेलक्षणमेवेतियुक्तंपरस्मैपदंतुष्टावेति । यदुक्तम् । इतिहरेःप्रबोध नार्थायेतितुयद्यप्यव्यवहितंस्तवनक्रियाफलंसाक्षात्प्रयोजनम् । तथापिप्रयोजनंदैत्य वधविधिद्वारकंपारंपर्यावधृतंदेवसंरक्षणमेवस्तवनक्रियाफलम् । एकमद्वितीयं अग्रं प्रमुखंहृदयंस्वान्तंयस्यसएकाग्रहृदयः । अनन्यमनस्कःस्थितः निष्कम्पः । अ-थवा, एकमद्वितीयंअग्रं प्रधानंहृत् चित्तंयस्यसः एकाग्रहृत् । अयेशुभावहेविधौ दैत्यवधलक्षणेविषयेस्थितः दत्तावधानः अयस्थितः । हरेर्नेत्रेएवकृतआलयोयया सातथोक्ता । अथवा, हरिणानेत्राभ्यां कृतआलयोग्रहंयस्याः सातथोक्ता । अथवा, हरेर्नेत्रेणचक्षुषाप्रमाणेनकृतः आलयः असंश्लेषःअनाशः अमोक्षोवायस्याः सातथो-क्ता । अथवा, हरेःपरमात्मनोनेताप्रापयितावेदान्तः हरिनेतातेनअकृतः आलयः गृहंप्रतिनियतंस्थानंयस्याः सातथोक्तातम् । प्रबोधनमेवार्थः प्रयोजनंतस्मैप्रबोध-

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ॥ ५४ ॥

नार्थाय । ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ब्रह्मातावत्तांस्तोतुंस्वयमेवप्रतिजानीतेप्रतिज्ञांकरोति । अतुलंअसदृशंतेजोयस्यसः अतुलतेजाःतस्यविष्णोर्ध्यानरूपांनिद्रांस्तौमि । 'तेजः प्रभावेदीप्तौचलेशुक्रेऽपिकीर्त्तितम्' । तेजःअलहनत्वेऽपि । यदाहुः । 'अधिक्षेपावमानादेःप्रयुक्तस्यपरेणयम् । प्राणात्ययेप्यसहनंतत्तेजः समुदाहृतम्' । कीदृशींनिद्राम् । विश्वेश्वरींविश्वस्यईश्वरींव्यापिकांजनयित्रीम् ।अश्नोतेराशुकर्मणि।वरट्चेच्चोपधायाः । पुनश्छेदे तु । कीदृशीं जगद्धात्रींजगतोधारयित्रींपोषयित्रीं च । पुनःकीदृशीं स्थितिसर्गसंहारमध्यमावस्थांकुर्वाणाम् । संहारंचसर्गस्थित्युत्तरावस्थकुर्वाणाम् । सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये । पुनःकीदृशींभगवतीम् । षडैश्वर्यसङ्गतां । जगदिति । धात्रीमितिताच्छील्येतृन्योगेनलोकाव्ययसूत्रेण षष्ठीनिषेधात् कर्मणिद्वितीयान्तंजगदिति । एतेनविष्णुयोगनिद्रैवजगत्सर्गस्थितिसंहारकारिणीब्राह्मीवैष्णवीमाहेश्वरीमयीशक्तिरितिस्तुतितात्पर्यं सूचितम् ॥ ५३ ॥ अशेःसरत् । षत्वकत्वषत्वानि । 'अक्षरंवर्णनिर्माणंवर्णमप्यक्षरंविदुः' । 'अक्षरंनक्षरंविद्यादक्षरं श्रुतितोययोः' । अश्नाति त्रीन्लोकान्भुङ्क्तेभूतात्मकत्वादक्षरा । अश्नुतेव्याप्नोति विश्वात्मकत्वाच्चअक्षरा । यद्वा, क्षरतिसञ्चलतिक्षरंनक्षरंअक्षरंध्रुवं अक्षराध्रुवाअतएव । हेअक्षरेध्रुवेहेनित्येहेशाश्वतिहेदेवित्वं स्वाहादेवतोद्देशेनद्रव्यत्यागजनितदेवतापितृरूपत्वेनआस्थिताअङ्गीकृता । प्रज्ञासिशास्त्रेण । अव्ययंस्वाहेति । यदभ्यधुः । 'स्वाहादेवहविर्दानेश्रौषड्वौषट्स्वधेतिच' । यद्वा, त्वं स्वाहेति देवहविर्दानमन्त्ररूपाऽसि । यद्वा, त्वं स्वाहेत्येवमसिस्वाहात्वं देवस्वरूपेत्यर्थः ॥ यद्वा, त्वंस्वाहासिहुभुतक्प्रियासि । सुष्ठुआहूयतेस्वाहासास्त्यस्याः इतिवास्वाहा । स्वाहाग्नाय्यनलप्रिया । यद्वा,

'आकारः स्यात्पितामहः' । त्वंसुष्ठुआं पितामहंब्रह्माणंजिहीषेगच्छसिस्व ाहासि ब्रह्यसिब्राह्मयसि । आतोनुपसर्गेकः । हेदेवि! त्वंस्वधापितृदुद्देशेनदीयमानद्रव्यजनितृप्तिरसि । यद्वा, त्वं स्वधेत्येवमत्सिस्वधात् । स्वधेतिमंत्रतोभुञ्जानापितृरूपासीत्यर्थः । यद्वा, 'अकारोवासुदेवःस्यात्' । सुष्ठुअं वासुदेवंदधासिपोषयसिस्वधासिलक्ष्मीरसि । हेदेविहियतः त्वंवषट्कारोऽसि । अतः-वषडिन्द्रायेतिवषट्कार भागिन्द्रइतित्वंइन्द्राण्यसीत्यर्थः । यद्वा, हेदेवित्वंहित्वमेववषट्कारोऽसिवषट्कारो यजमानःऋत्विक्चाऽसि । 'हिहेतावधारणे' । हेदेवित्वंस्वरात्मिका । स्वःस्वर्गः आत्मायस्याःसास्वर्गरूपाऽसि । यद्वा, त्वंपरलोकात्माऽसि । 'स्वर्गेपरेचलोकेस्वः' यद्वा, त्वंस्वरात्वंस्वरात्मिकाऽनुदात्तादिस्वरूपासि । अथ च निषादऋषभादिस्वरात्मिकाऽप्यसि । अथवा । वषट्कारस्वरात्मिकाइत्येकं पदम् । वषट्कारयति वषट्कारं स्वः फलंतपःप्रयोजनंआत्मायस्याः सा । वषट्कारप्रवर्त्तकस्वर्गरूपफलात्मासि । हे देवि! त्वं सुधामत्सिसुधात् असि । हे देवि ! त्वंत्रीन् लोकान् त्रीन् वेदान् त्रीन् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् वा दधासि इति त्रिधाऽसि । यद्वा, त्रिधामासि । त्रीणिधामानि गृहाणि भुवनलक्षणानि देहानि ब्रह्मादिरूपाणि तेजांसि चन्द्रार्काग्निरूपाणि प्रभावरूपाणि च त्रिशक्तिलक्षणानियस्याः सा त्रिधामा । हे देवि! त्वं त्रात्मिका । त्रैङ्पालने । त्रायतेत्राः विष्णुः क्विप् त्रा आत्मास्वभावोयस्याः सा विष्णुरूपाऽसि । यद्वा सम्पदादित्वाद्भावे क्विप् । त्राणं त्राः पालनंआत्मास्वरूपंयस्याःसापालनरूपासियद्वा, हेदेवि! त्रिभिःप्रकारै एकमात्र द्विमात्र त्रिमात्ररूपस्वरा परम्परयावर्णात्मकह्रस्वदीर्घप्लुतभेदभिन्नमात्रा आत्मा यस्या सा त्रिधामात्रात्मिका स्वरवर्णरूपासि स्थितासि अस्थिता च । यद्वा, त्रिधा त्रिभिः प्रकारैः ब्राह्मी वैष्णवी माहेश्वरीरूपाः मातरः आत्मा स्वरूपंयस्याः सा त्रिशक्त्याकृतिस्त्रिमात्रात्मिकेयं विष्णुयोगनिद्रास्थितेति । त्रिधामात्रात्मिका । ॐकाररूपेति च मात्राअकारः उकारः मकारश्चेति तदात्मिकातत्स्वरूपेतिकश्चिदोम् पदगतवर्णानभाङ्क्षीत् । तच्चपापात् पापीयः । इदृशी-

अर्द्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याविशेषतः। त्वमेवसात्वंसावित्रीत्वंदेवीजननीपरा
(त्वमेवसन्ध्यासावित्री त्वं वेदजननीपरा।)

मोम्पदव्युत्पत्तिमत्सूत्रान्मन्धस्यचान्धलग्नस्यचिनिपातःपदेपदे'इत्यन्धपरम्परापारं पर्यपर्यागतामन्धकुक्कुटीगतिमिवपदेपदेस्खलन्तींप्रतिकियदवतुष्यामःकिं। यद्वा, तुष्यामः। कियद्वा तुष्यामः। तथा हि। वर्णेषु ये वर्णैकदेशावर्णान्तरसमानाकृत-यस्तेषु तत्कार्यं न भवति। तच्छायानुकारिणो हि तेन पुनस्तएवेतिपृथक् प्रयत्न-निवर्त्यं हि वर्णमिच्छन्त्याचार्याः। दर्शिताचास्माभिरोंपदव्युत्पत्तिरोन्नमश्चण्डि कायाइत्यत्रवतेष्टिलोपश्चेतिसूत्रत इत्यलम्विस्तरेणपूर्वत्रत्रिधामात्रात्मिका इति विशेषणेनअकारादिस्वररूपमात्रकात्मतोक्ता। अर्द्धमात्रात्वमित्येनतुककारादिव्यञ्जन रूपमात्रकात्मतोच्यते। हे देवि!त्वंअर्धमात्राअर्धंमात्रा अर्धमात्रासाव्यञ्जनवर्णस्वरूप मात्रकात्वमेव। अर्धंनपुसकमितिसमासः। तदुक्तं। 'एकमात्रोभवेद्ह्रस्वोद्विमात्रो दीर्घउच्यते। त्रिमात्रस्तुप्लुतोज्ञेयो व्यञ्जनश्चार्धमात्रकमिति' १ अथवापूर्वत्रत्रिधा मात्रात्मिकेत्यनेनओमात्मकत्वम् विवक्षितम्। तत्र ॐ इति द्वे मात्रेदीर्घत्वात्। मकारस्त्वर्धमात्रःव्यञ्जनत्वात्। एवंत्रिधामात्रात्मकता। अथवा, ओमभ्यादाने इतिसूत्रतोवेदादिप्रारम्भे ॐ अग्निमीलेपुरोहितमित्यादौ ओशब्द ॐ इतिप्लुतः। एवंत्रिधामात्रात्मकता। अथवा, प्रणवष्टेरितिसूत्रेणयज्ञकर्मणि अपांरेतांसिजिन्व-तो ३म् इत्येवं पादस्य वा अर्द्धस्यवा अन्त्यस्याक्षरस्योऽम् शब्दस्त्रिमात्रआदिश्यते एवं त्रिधामात्मकता। तत्रोश्म् शब्दे मकाररूपायाअर्द्धमात्रास्थितानित्या ध्रुवामोक्षं सूचयन्तीविशेषतः। अनुच्चार्या। परमात्मरूपत्वात्। 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासहे'तिश्रुतिविशेषतः। लक्षणीया सा अर्धमात्रात्वमेव। अर्धमात्रासूचितायामुक्तिः सात्वमेवेति भावः। अर्धमात्रायामर्धरूपतयास्थिते त्यपिव्याख्यातम्। अथ च। अंविष्णुंयातिअया रमासात्वमेव। अथ च वदेः क्विप्। वदतीतिउत् वाचकः शब्दः। न विद्यते उत् वाचकः शब्दोयस्याः सानुत् 'यतो वाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासहेतिश्रुतेः। चरितुङ्गन्तुं प्राप्तुमर्हाचार्या।

त्वयैव धार्यते सर्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा

अनुच्चार्या च अनुच्चार्यापरब्रह्मतासात्वमेव । हे देवि ! त्वमेव सन्ध्याऽसि सन्ध्यायन्त्यस्यांसन्धीयते अहोरात्रौवास्यां सन्ध्यापितृप्रसूः । पितृणां माता-सीतियावत् । अथवा, हे देवि ! त्वमेवसावित्री । सवितुरियंसावित्रीऋगसि यद्वा, साप्रसिद्धा सावित्री वैष्णवाशक्तिरसीति यावत् ।

यद्वा, सवितादेवतायस्याः सातदादिव्याहृतिरहिताऋक् । सैवव्याहृति-सहितागायत्रीत्युच्यते । हे देवि ! त्वं वेदजननी गायत्र्यसिइतियावत् । नित्य-स्यापि सतोवेदस्य गायत्र्युपदेशानुदयाद्वेदाध्ययनानुदय इति गायत्र्युपरिग्रैव सतीवेदाध्ययनम् । जननीत्यध्येयाध्ययनैक्योपचारौचित्यतोवेदं जनयति वेदज-ननी । वेदस्य वा जननी वेदमाता गायत्रीत्युक्तम् । हे देवि ! त्वं पराऽसि श्रेष्ठाऽसि । यद्वा, पृपालनपूरणयोः पिपर्त्तिपरा । वेदांश्च जनांश्च वेदजनान्नयन्ति सौख्यंप्रापयन्तीतिवेदजनन्योब्राह्मन्याद्यास्ता (सां) परापालयित्री च त्वमेवासि । वेदजननीति तु पाठे देवानां जननी अदितिस्त्वमेवपराउत्तमा । यद्वा, वेदजननीं गायत्रीं पान्ति वेदजननीपाः ऋषयः तान् रक्षितुं रासि गृह्णासि वेदजननी परा त्वमेववासि ॥ ५५ ॥

इहहिपाठक्रमादर्थक्रमोवलीयानितिसृष्ट्याद्युपक्रम्योच्यते । हे देवि! त्वयाब्राह्म्या शक्त्या एतज्जगत् सृज्यते उत्पाद्यतेहेदेवित्वयावैष्णव्याशक्त्याएतज्जगत् पाल्यते दुःखाद्रक्ष्यते । हेदेवित्वंरौद्रीशक्तिःसतीएतज्जगदन्तेऽवसानेअत्सिखादसि । तदित्थंसर्वदापुनःपुनःक्रमशःसर्गस्थितिसंहारलक्षणत्रिविधावस्थापन्नं एतद्विश्व-म्वस्तुतस्त्वयैकयापि ब्राह्मीवैष्णवीरौद्रीव्यपदेशभेदभिन्नयाशक्त्याधार्यते आत्म-शक्त्यामधिकरणरूपायां विश्वमाधेयीक्रियतेत्वयेतितात्पर्यंसर्वंददासीत्यन्वयः ॥ ५६ ॥ इह जगन्मयेइतिपाठः मयगतौ । मयतेजानातिमया । पचाद्यच्स्त्रियांटाप् । जगतोमयाजगन्मया । हेसर्वज्ञेसम्बुद्धौहेजगन्मये हे भुवनज्ञे । सर्वेंगत्यर्थाधातवः प्रयोगात्ज्ञानार्थाः । जगन्मयिइतिपाठेऽपिसम्बुध्यतमेव । देव्यानयास्रष्टव्यत्वेनपाल-

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वंस्थितिरूपा चपालने । तथासंहृतिरूपान्तेजगतोऽस्यजगन्मये
महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृतिः। महामोहाचभवतीमहादेवीमहासुरी(महेश्वरी

नीयत्वेनसंहर्त्तव्यत्वेनच देवीकर्तृकजगत्कर्मकतत्तत्सर्गादिक्रियाविषयभूताज्जगतो हेतोरागताजगत्सर्गादिव्यापारमुद्दिश्यआगताप्रादुर्भूतादेवीजगन्मयीत्युच्यते । तत आगतइत्यधिकृत्यमयडितिसूत्रेणहेतुभ्योमनुष्येभ्यश्च मयट्प्रत्ययः । ततआगत त्यर्थेजगतोहेतोरागतादेवीजगन्मयी । टित्वात् (न्) ङीप् । ह्रस्वः । अथवा तत्प्रकृतवचने मयट् । प्रकृतिप्रस्तुतं उच्यतेऽस्मिन्निति प्रकृतवचनं तदितिप्रथमा समर्थात्प्रकृवचनेऽभिधेये मयट् । जगत् । प्रकृतंप्रस्तुतं कर्त्तव्यत्येनोच्यतेऽस्यां जगन्मयीसम्बुद्धौह्रस्वः । हे देवि हेजगन्मयिभुवनज्ञे। अथवा । हे जगन्मयि! जगन्निर्मातुमागते जगन्निर्माणकारणादागतेत्वं अस्य जगतः विसृष्टौ विशेषतः सृष्टौउत्पादनेविषये सृष्टिरूपासितथान्तेऽवसाने संहारे विषये संहृतिरूपाचासी-त्यन्वयः । सृष्टिस्रष्ट्र्योः पालनपालयित्र्योः संहृति संहर्त्र्योश्चाभेदेनातिशयोक्तिः देव्याःसर्वात्मकत्वेनवास्वरूपकथनम् । हे देविजगन्मयित्रह्माणिवर्त्ततइतिव्यपदेश-मात्रं सृष्ट्यादिकंनुत्वमेवचकरोषिनाहमितिनम्रोक्तिरप्यवसेया॥ ५७ ॥

हे देवि! त्वं महतीविद्यापरब्रह्मगोचरज्ञानरूपासि। हे देवि! त्वं महतीअविद्या अनिर्वचनीयाऽविद्या प्रपञ्चपरिविज्ञानरूपासि । हेदेवि त्वं महतीमाया । 'अनात्म-न्यात्मेति बुद्धिरात्मन्यप्यनात्मेति बुद्धिर्माया' । हे देवि!त्वंमहामेधा महतीधारणा-वतीबुद्धिःमहती अमेधा धारणावतीधीः । हे देवित्वंमहास्मृतिर्महतीस्मृतिर्ध्या-नरूपामहतीअस्मृतिः अध्यानरूपा । हे देवित्वंमहामोहामहाममतामहाअममताच हे देवित्वंभगवती ऐश्वर्ययुक्ताच अभगवती अनैश्वर्याऽसि । हेदेवि! त्वं महादेवी महादेवस्यस्त्री । हेदेवि! त्वंमहेश्वरी महतीईश्वरीव्यापकस्वभावा । अश्नोतेरा-शुकर्मणिवरट्चेच्चोपधायाः । अथच, महतीविद्यायस्यांसामुक्तिः महती माया अविद्यायस्यांअमुक्तिः । इत्थंमहामेधास्मृतिः । महास्मृतिरितिइष्टदेवतोपासना महामोहा तृष्णा अस्मृतिः मूर्छा निद्रा च ॥ ५८ ॥

प्रकृतिस्त्वञ्च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ ६० ॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुसुण्डीपरिघायुधा ॥ ६१ ॥

हे देवि! त्वंचत्वमेवसर्वस्यप्रकृतिरिति । प्रक्रियते सर्वमनया प्रकृतिः सत्त्व-रजस्तमःसाम्यावस्थाऽव्यक्ताख्या प्रधानम् । अथचत्वमेवगुणान्सत्त्वरजस्तमांसि विभावयसि । पृथक्कृत्यजगद्रूपेणावस्थापयसि । गुणत्रयविभाविनी । सत्वंज्ञान-सुखहेतुःरजोरागात्मदुःखहेतुःतमआवरकंमोहहेतुः गुणाःप्रकृतिधर्माः । हेदेवित्वमेव कालरात्रिः जगत्संहारकारिणीयामभङ्गिनीयत्रप्रलीयतेजगत् । हेदेवि त्वमेवमहा-रात्रिःयत्रचतुर्मुखो मुक्तिमगात् । हेदेवि त्वमेवदारुणा मोहरात्रिश्चासि । ममता गर्भपातिनी महामायाख्यासंसृतिः दंष्ट्राकरालाग्निरुद्रप्रत्ययः अतिदारुणाः । 'मोह-रात्रिर्मोहतनुर्जगत्सूत्रे जगत्करी' ॥ ५९ ॥

हे देवि ! त्वं श्रीःसम्पत्तिरसिहरिप्रियाऽप्यसि । हे देवि त्वमीश्वरीईश्वरस्य पत्न्यसि अश्नोतेराशुकर्मणिवरट्चेश्चोपधायाइति । जगद्व्यापिनीचासि । हेदेवि त्वं ह्रीः असि । 'ह्रींकारोवैप्राण'इतिश्रूयते । प्राणभूतासि ह्रीमितिमकारान्तम-व्ययंप्राणवाचि ह्रीं मनुनासिकस्वरान्तपाठेतुहेदेवी प्रणवासीतिरहस्यंह्रीस्त्वमिति चपाठेलज्जाशब्देनपौनरुक्त्यंस्यात् । हेदेवित्वंबुद्धिरसिचिन्मात्रब्रह्मरूपासि त्वं बोधलक्षणाऽसि । बोधयितृव्यापारदर्शनासिअथवा, बोधरूपाविविधागमरूपासिहे देवित्वंलज्जासिव्रीडासि हेदेवित्वंपुष्टिरसि अवयवोपचितिरसि । हे देवित्वंतथा तेनतुष्टिरसि प्रीतिरसि । हे देवि! त्वंशांतिरूपारतिविषयव्यावृत्तिरसि हे देवित्व-मेवक्षान्तिस्तितिक्षाचासि ॥ ६० ॥

हे देवि ! हे चण्डिके! त्वं यथाउक्तलक्षण प्रकारेण खडगिनी शूलिनी गदिनी ।

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणांपरमात्वमेवपरमेश्वरी ॥

चक्रिणी शङ्खिनी चापिनीबाणावाणवतीपरिघायुधा च सती अतएवघोरा अत्युग्रदर्शनाभुशुण्डीतिभाष्यसे इत्यन्वयः । अतइनिठनौगदिनीत्यत्रतुव्रीह्यादिभ्यश्चेति इनिःसर्वत्र । ऋन्नेभ्योङीप् । बाणाबाणवतीअर्शआदिभ्योऽच्मत्वर्थीयः । परिघः परिघातनः लोहवद्धोलगुडआयुधंयस्याः सा तथोक्ता । खड्गशूलगदाचक्रशङ्खचापबाणपरिघैरष्टाभिरायुधैरष्टभुजाघोरात्युग्राकृतिश्चण्डिकादेवीभुशुण्डीतिवक्ष्यमाणलक्षणा सतीप्रसीदत्वितिभावः । मुडिखण्डने । शत्रून्मुण्डति खण्डयतिइतिकर्मण्यणिस्त्रियांङीप् शत्रुमुण्डी । भुजैःशत्रुमुण्डीभुजशत्रुमुण्डीचण्डिका । अत्रहि भुजशत्रुमुण्डीशब्दैः पृषोदरादीनि यथोपदिष्टमितिशिष्टोपदिष्टत्वात् जइत्यस्य अत्रुम् इत्यस्य चलोपेकृते भुशुण्डीतिव्युत्पाद्यते । 'भुजाभिरष्टभिः शत्रूनष्टावष्टाभिरायुधैः । 'मुण्डत्यत्युग्रचण्डोक्तिः भुशुण्डी चण्डिकास्मृता' । यद्वाहुः 'उड्डीयोड्डीयचप्राप्यनदन्तीदशकर्त्तिका । क्रमतेचानताङ्गी या सा भुशुण्डीनिगद्यते' । एतेन बाणभुशुण्डी परिघायुधेत्येकंपदमिति व्याख्यावगन्तव्या । बाणइत्यनाकारःपाठः इत्युक्तिरपिव्युदस्ता । भुशुण्डीगोफणिकेत्युक्तिरप्ययुक्तिमूलोपेक्षणीया प्रेक्षावद्भिः । परिघोलोहार्गलमितितुशब्दतोऽर्थतश्चभ्रष्टं व्याख्यातम् । यदाहक्षीरस्वामी । परितोहन्ति परिघः परौघइतिहेर्घत्वं । लोहवद्धोलगुडइति ॥ ६१ ॥

हे देवि! त्वमेव जगती सौम्यासि अक्रूराप्रशान्तासि । सोमदैवतिकाप्यसि । अथवा, शोभनामालक्ष्मीः यस्यासौसुमः विष्णुः सुमस्यभावः सौम्यं शोभनलक्ष्मीकत्वं तद्यस्या अस्त्यसौसौम्या । अर्शआद्यच् । शोभनलक्ष्मीकत्वयुतासि । अथवा । उमासहितः सोमः उमापतिस्तस्यभावः सौम्यंतद्यस्याःसा सौम्या उमापतित्वयुतासि । हे देवि त्वमेवसौम्यतरासि । सूयतेसुधासोमश्चन्द्रःसोमस्येयंसुधासौमी । सौमींसुधां अर्हतिसौम्यादेवावलिस्त्वञ्च । दण्डादित्वाद्यः । तयोस्त्वमतिशयेन सौम्यासौम्यतरा । द्विवचनमविभज्योपपदेतरबीयसुनाविति

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा (मया) ॥ ६३ ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातात्ति (पात्यत्ति) यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ६४ ॥

द्विवचनेऽपपदेतरप् । तसिलादिष्वाकृत्वसुचः इतिपुंवद्भावः । हे देवित्वंअशेष-सौम्येभ्यः अखिलसुन्दरेभ्यः पदार्थेभ्यस्तु पार्थक्येन अतिसुन्दरीअसि । सुष्ठु-नन्दयतिसुन्दरी मनोज्ञामनोरमासोमदेवतकेसौम्यः । 'सौम्यःस्यात्सुन्दरेऽपि च' । 'सौम्योऽक्रूरेबुधेसौम्य-सौम्यःशान्तेप्रयोगतः' । हेदेवि त्वमेवपराणांश्रेष्ठातःपरमा । अत्युत्कृष्टापरमोत्तमा । व्यवस्थात्रतुश्रेष्ठत्वस्यविवक्षितत्वात् । अन्यथा परे-षामिति स्यात् ॥ अथवा, परंब्रह्मअणन्तिकथयन्तिपराणः क्विप् । तेषां मध्ये त्वं परमासि । यद्वापरेचापरे चपरापराः । द्वन्द्वे चेतिसर्वनामत्वाभावात्सुडागमा-भावः । तेषां त्वं परमा । अथ च, हे देवि त्वमेवपरमा । उत्कृष्टालक्ष्मीः । अथवा, परमईश्वरः तस्य स्त्रीत्वमेवपरमेश्वरी । 'ईश्वरीस्वामिनीदुर्गालोकानां व्यापिका च सा' ॥ ६२ ॥

हे अखिलात्मिके देवि! क्वचित् । जगति सत् असद्वायच्चकिञ्चिद्वस्तुपदार्थ-रूपंप्रतीयते तस्य सर्वस्यसदसदात्मकस्ययाशक्तिः सामर्थ्यं सा त्वमेवासि । अतः परंमयाकिंस्तूयसेइत्यन्वयः । पदं च पदार्थश्चताभ्यां क्रियमाणास्तुतिश्चस्तोता च स्तुत्यं च तत्तदुचितशक्तिश्चत्वमेवेतित्वत्तोऽन्यत्वाभावाद्भेदनिबन्धनास्तुतिः कथं प्रवर्त्तनीयेतिभावः । इयमेव च परमावधिस्तुतिरतोऽपिकानामस्तुतिरित्यपरो भावः । अग्न्यादितत्तदौचित्यतत्तदर्थक्रियाकरीशक्तिरप्रतिबद्धात्माधर्मः साम-र्थ्यशब्दिता ॥ ६३ ॥

हे देवि ! त्वां स्तोतुं इहकईश्वरः कःसमर्थोऽस्ति न कोऽपि । तथाहि ययाजगत्स्रष्टाउत्पादयिता । तृन्नं तोयं । यद्वा । भविष्यदनद्यतनेलुडन्तोऽयम् ।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥ ६५ ॥

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि! संस्तुता । मोहयैतौदुराधर्षावसुरौमधुकैटभौ प्रबोधञ्च जगत्स्वामीनीयतामच्युतो लघु । बोधश्च क्रियतामस्यहन्तुमेतौमहासुरौ

यः जगत्पातिरक्षतिभविष्यत्सामीप्ये लट् । यद्वा जगत्पाता इतिपाठः । भविष्यदनद्यतनेलुडन्तोऽयम् । योऽवसानेजगत्अत्तिसंहरति । सोऽपिविष्णुरपिययायोगनिद्रयात्वयादेव्यानीद्रावशंनीतः निद्राधीनतांगमितः । 'वशीवन्ध्यगर्वीवश्यासुताङ्गीकरिणीवशा । इच्छायन्त्रणयोः पुंसि प्रभुत्वे च वशंगतः' ॥ ६४ ॥

हे देवि!यतःत्वयामहामायया अहंब्रह्माविष्णुश्चईशानश्चतेत्रयोऽपिशरीरग्रहणं कारिताःशरीरंगृह्णतः कारिताः ममतावृताः कृताः । अतस्त्वांकःपुमान्स्तोतुंशक्तिमान्भवेत् । न कोऽपि । यःकोपिशरीरधारीसत्वां स्तोतुमसमर्थ एवतदन्यस्तुमुक्तस्तद्रूपएवसन्कथंत्वामेवस्तोष्यति त्वं चाशरीरिणीस्तुतिश्च स्तुत्यस्तोतृभेदनिबन्धना अतस्त्वद्विषयास्तुतिः कथंघटेतसाकल्येनेतिस्तुत्युपसंहारएवचरमिति भावः ॥ ६५ ॥

हे देवि ! इत्थंवर्णितैरुदारैर्दक्षिणैः सरलैः वरैः स्वैरात्मीयैः प्रभावैः सामर्थ्यविशेषैः संस्तुताजगन्मोहयन्ती त्वां एतौ इमौ । यद्वाआइतौ एतौआगतौ दुर्धर्षौदुःखेनाभिभवनीयौ मधुकैटभौनामअसुरौसुरद्विषौ मोहयअविवेकं प्रापयेत्यन्वयः । 'दक्षिणे सरलोदारौ' ॥ ६६ ॥

हे देवि ! त्वयाजगत्स्वाम्यच्युतः दैत्यारिर्विष्णुर्लघुशीघ्रं प्रबोधं च उन्निद्रभावं नीयतां त्वया समुच्यताम् । किञ्च एतौ महासुरौ हन्तुं अस्यअच्युतस्य विष्णोर्बोधश्च क्रियतां उत्साहानुकूल्यं बुद्ध्युन्मेषश्चक्रियतां रच्यतामित्यन्वयः । प्रबोधमितिप्रधानेकर्मणिद्वितीया । अप्रधानेकर्मणितुनीयतामितितिङाभिहितत्वात्प्रथमा ॥ ६७ ॥

ऋषिरुवाच

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्रवेधसा। विष्णोःप्रबोधनार्थायनिहन्तुंमधुकैटभौ
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः। निर्गम्यदर्शने तस्थौब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तयामुक्तो जनार्दनः।एकार्णवे हि शयनात्ततःसदृद्दशेच तौ

तदा तस्मिन्प्रलयेकालेतत्रविष्णुनाभिकमलेवेधसाब्रह्मणाएवंस्तुतातामसीतमोगुणसम्मतानिद्रात्मिकादेवीमधुकैटभौनिहन्तुं विष्णोःप्रबोधनार्थायतस्यैवनेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः वक्षसश्च निर्गम्यव्यक्तजन्मनः प्रकटजननस्यब्रह्मणः अव्यक्तजन्मनश्चब्रह्मणः दर्शनविषयेतस्थौ प्रकटीबभूवेति श्लोकद्वयान्वयः। अव्यक्तात्प्रधानाज्जन्मयस्यसः अव्यक्तादात्मनः जन्मयस्य वा। यतो सावात्मनाभूत्। नेत्रे च आस्यंचनासिका च बाहवश्च हृदयंचेतिद्वन्द्वः। प्राण्ङ्गत्वात्प्राप्तस्यैकवद्भावश्चनदधिपयआदीनीतिनिषेधाद्बहुवचनम्। यद्वा, अयन्ते अयाः प्राणाः नेत्रास्यनासिकाबाहुहृत्तेनसहिताअयाः प्राणाः उच्छ्वासनिश्वासलक्षणाःतेभ्यःसकाशेभ्यःउरसश्चनिर्गत्यनिद्राब्रह्मदर्शनपथमगमदितिभावः॥ ६८-६९
तयानिद्रयादेव्यामुक्तः परित्यक्तोजगन्नाथोजनार्दनःविष्णुश्चएकार्णवे जगत्येकजलपूरेअहिशयनात्शेषनागशयनात्सकाशादुत्तस्थौउत्तस्थिवान् ततः शयनादुत्थाय उत्थानादनन्तरंवासजनार्दनः तौ मधुकैटभौददृशे। तावपितंददृशातेपरस्मैपदंबाधित्वात्कर्त्तरिकर्मव्यतिहारे आत्मनेपदम्। विष्णुकर्तृकदैत्यकर्मकंताबद्दर्शनं व्यतिबभूवे। अथ च तावत्। दैत्यकर्तृकविष्णुकर्मकंदर्शनंव्यतिबभूवे। अन्यथा ददर्श इति स्यात्॥ ७०॥

कीदृशौददृशेजनार्द्दनः। मधुश्चकैटभश्च तौ। मन्यतेऽहमेववीरइतिमधुः। कीटस्येव भायस्य तत्कीटभंकर्णमलं तत्रभवःकैटभः। इह हि पृषोदरादत्वाद्भ इत्युत्तरपदलोपोदृष्टव्योभीमसेनोभीम इतिवत्। क्वचित्वृत्तभङ्गमनुसृत्यततश्च मधुकैटभौ दुरात्मानाविति‌पाठः 'युजोर्जेनसरिद्भर्त्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्त्तितमि'ति

मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ । क्रोधरक्तेक्षणौहन्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ।
पञ्च वर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥ ७२ ॥
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ।

द्वितीयेचरणेअतिवीर्यपराक्रमावित्यत्रचतुरक्षारादूर्ध्वंजगणस्यसत्वान्नवृत्तभङ्गः । तेनमधुकैटभावित्यत्रभौ इतिनपठनीयमित्यर्थः । पथ्यावक्त्रतयानभौ । अन्यथामधुकैटभौदुरात्मानावितिनवाक्षरपादत्वेनअपिमाषंमषंकुर्याच्छन्दोभङ्गंनचाचरेदिति छन्दःशास्त्रसमयभङ्गप्रसङ्गःस्यात् । अथवाहुः । छन्दोवत्पुराणानिभवन्तिअन्यदेवेदंछान्दसंछन्दः । यदभ्यधुस्तद्विदः 'न्यूनाधिकाक्षरत्वेनयत्रपादःक्वचिद्भवेत् । तद्वैदिकंनिचृच्छंदोमृत्युञ्जयतुर्यथा ' इति । दुरात्मानौदुष्टबुद्धी अतिवीर्यपराक्रमौ अत्युत्कृष्टबलौअत्युत्कृष्टप्रभावौअत्युत्कृष्टशक्तीअत्युत्कृष्टोद्योगौच । 'वीर्यंबलंप्रभावश्चाशक्त्युद्योगौपराक्रमौ' क्रोधरक्तेक्षणौ क्रोधेनरक्तेईक्षणेययोस्तौप्रत्येकंतथोक्तौ । ब्रह्माणंहन्तुंजनितोद्यमौ । दुर्विधिनाजनितउत्पादितउद्यमउत्थितःयमःकालोययोस्तौ । यद्वा । जननंजनिःसञ्जाताजनिर्यस्यासौ जनितः । तारकादित्वादितच् । जनितोद्यमावासन्नकालावितियावत् ॥ ७१ ॥

ततः शयनात्समुत्थायभगवान् ऐश्वर्यादिमान्विभुः व्यापकः हरिः विष्णुस्ताभ्यांअसुराभ्यांसहयुगपत्बाहुप्रहरणःसन्पञ्चवर्षसहस्राणियुयुधे । युधसम्प्रहारेआत्मनेपदीदिवादिः । बाहवएवप्रहरणानिआयुधानियस्यासौबाहुयुद्धंचकारेत्यर्थः । वर्षाणांसहस्राणिपञ्चेतिसंख्यायाःशब्देप्राधान्येऽप्यन्वयार्थंवर्षाणामेवप्राधान्यमितिकालस्यात्यन्तसंयोगेद्वितीया । पंचसहस्राणिवर्षाण्यभिव्याप्ययुद्धंव्यधादितिभावः ॥ ७२ ॥

अतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहितौसन्तौ तावप्यसुरौअस्मत्तोवरोवांञ्छि-

उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ ७३ ॥

श्रीभगवानुवाच

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि। किमन्येन वरेणाऽत्र एतावद्धि वृतंमया(मम)

ऋषिरुवाच

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्।

विलोक्यं ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ॥ ७५ ॥

तोऽर्थस्त्वयाव्रियतामिति केशवमुक्तवन्तौऊचतुः। अत्यधिकबलेनसामर्थ्येनउन्मत्तावधिकमदौ महामाययाविमोहितौ प्रयुक्तौ प्रापिताविवेकौअस्मत्त-आवाभ्याम्। प्रशस्तःकेशःकेशवःविष्णुः ॥ ७३ ॥

असुरौप्रतिविष्णुरवोचत्। अद्येदानीं चेद्भवन्तौ मे तुष्टौस्तःतर्हिउभावपिअसुरौ ममवध्यौमयाहन्तुमर्हौ। इहहनोवावधचेतियत्तथे'तितुघात्यौभवेतांस्यातां। अत्रचप्रतिपक्षेविषयेकिमन्येनवधादपरेणकृतंस्यात्। (वरेण?) वरेप्रार्थितेशत्रुशेषप्रसङ्गःस्यात्। तदन्यत्तु वस्तु भगवतोममाप्रार्थ्यसिद्धमेवेत्याशयादाह। भवन्तौमयाएतावद्धिएतावदेवभवत्कर्मकमत्कर्तृकवधल (क्षणकंप्रा?) र्थितंनान्यत्। वाक्येसंधिकार्यमतन्त्रम्। 'एकाएकशिरोरुहात्रिचरणाएकेक्षणाद्धिस्तनीतिवत्' अथवावरेणातएतावद्धी'तिपाठः। अतएवाभ्यांभवद्भ्यां (प्रार्थितं) वधरूपंवस्तुमयावृतंनान्यदिति ॥ ७४ ॥

तदाअसुरवधवरप्रार्थनाकाले विष्णुना महामायानुकूलेनवञ्चिताभ्यांविप्रलब्धाभ्यां मधुकैटभाभ्यां सर्वंजगदापोमयं विलोक्यभगवान् कमलेक्षणः पुण्डरीकाक्षोविष्णु इतिगदितः इतिवक्ष्यमाणप्रकारेणउक्तः। विप्रलब्धस्तुवञ्चितः आप्लृव्याप्तौ आपःकर्माख्यायामितिआपसशब्दःसान्तोऽप्यस्ति। आपोभिर्मार्जनंकुर्वीतवत्। अपांसिकर्मसाधनानि। प्रकृतानि उच्यन्तेऽस्मिन् जगतितत्आपोमयंतत्। प्रकृतवचनेमयट्। अथवा, 'आपःस्त्रीभूम्नि-

प्रीतौस्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वम्मृत्युरावयोः ।
आवां जहि न यत्रोर्व्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ ७६ ॥

ऋषिरुवाच

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता । कृत्वा चक्रेण वैछिन्नेजघनेशिरसीतयोः
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणासंस्तुतास्वयम् । प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःशृणुवदामिते

मयगतौ ' । अनुदात्तेत्वलक्षणत्मात्मनेपदंचक्षिङोङित्त्वात्क्वचिदनित्यमितिलङिपरस्मैपदंआपः कर्त्र्यः । जगत्कर्म । आपोमयञ्जगदित्यत्रनकारस्यचुत्वेनञकारः । सर्वमापोमयञ्जगत् सर्वंजगत्कर्मआपःकर्त्र्यःअमयन् अगच्छन्व्याप्तवत्यइतिविलोक्यताभ्यांहरिरुक्तइतियोजना ॥ ७५ ॥

किंगदितः कमलेक्षणोभगवान्ताभ्याम् । हेविष्णोतवयुद्धेनआवामसुरौप्रीतौस्वःभवावः । हेविष्णोत्वंआवयोर्मधुकैटभयोः श्लाघ्यः स्तुत्यःमृत्युःअन्तकालोऽसि । किंतुयत्रोर्वीभूमिःसलिलेनपरिप्लुतानाभूत्आवांमधुकैटभौजहिहन्याःइतिताभ्यांविष्णुरुक्तः । आवयोर्वधरूपंवरंवाञ्छतामायिनातेनविष्णुनाआवामसुरौवञ्चितावभूताम् । ततोयेननौवधोनस्यात्सकोऽन्यस्त्वद्वधोपायः । अयमस्ति सम्प्रतिसर्वंजगदापोमयंजलमयमेववर्त्तते । ततश्चयत्रोर्वीजलमयीनदृश्येतत्रावयोरसुरयोःत्वत्कर्तृकोवधोऽस्त्विति । एवंचोक्तोहि सर्वापि पृथ्वी जलमध्येचेतिकनौ हनिष्यत्यसावित्यावाभ्यामसुराभ्यांमायाविभ्यांभगवानपिवञ्चितोभविष्यत्यशुभस्यकालयापनास्त्वितिभावः । आपोमयमित्यत्र,आपस्इतिसांतं,अपोभिर्मार्जनंकुर्यादितिप्रयोगश्च । 'भूजिमृङ्भ्यांयुक्त्युकौ' । 'मृन्युःस्त्रीपुंसयोरन्ते'जहीतिहन्तेर्विध्यादौलोटिसेर्ह्यपिचहन्तेर्जःआभीतयाजस्यासिद्धात्वाद्धेर्लुगभावः । वधिःप्रकृत्यन्तरमस्तीतिकेवलोऽप्यस्तिवधशब्दः शिष्टप्रयोगतः (!) ॥ ७६ ॥

सुमेधाऋषिःसुरथंप्रतिवाक्यमूचिवान् । हेमधुकैटभौ!यद्यथायुवाभ्या-

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येमधुकैटभवध-
वर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥
दुर्गासप्तशत्यां प्रथमः ॥ ६ ॥

———

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

(द्वितीयोऽध्यायः)

महिषासुरसैन्यवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा । महिषेऽसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे ॥ १ ॥

मगादि तत्तथानततोऽन्यथाइत्युक्त्वाशङ्खचक्रगदाभृताभगवता विष्णुनास्वकीये-
जघने उपस्थादूर्ध्वप्रदेशंतयोरसुरयोः शिरसीकृत्वानिधायावस्थाप्य वै प्रसिद्धेन
चक्रेणछिन्ने कृते अच्छेदिषातामित्यन्वयः। प्रलयकालजलपूरो भगवतो-
जघनादधोनाभूदितिभगवतोजघनंजलप्लुतं च न। उर्वौ च भवति पृथिव्या-
रुध्यत्वात्। इत्थंविष्णुचक्रोच्छिन्नशिरस्कत्वात्तयोरसुरयोःश्लाघ्यमृत्यु-
ताच। शङ्खश्चचक्रंचशङ्खचक्रंतेनसहितागदाशङ्खचक्रगदातांबिभर्त्तिशङ्खचक्र-
गदाभृत् तेन। यद्वा, स्त्रीकट्याःपुरोभागोहन्यतेजघनमित्युपलक्षणम् ॥ ७७ ॥

एवंप्रकारेणब्रह्मणाआत्मभुवा स्वयमात्मनासंस्तुताएषादेवीसममुत्पन्नादेव
कार्यार्थंप्रादुरभूत्। हेराजन्!सुरथ!त्वंभूयःपुनःभूयिष्ठंयथाभवतितथाचअस्याःदेव्याः
प्रभावंप्रादुर्भावंसामर्थ्यंचश्रृणुआकर्णय। भूयस्तेवदाम्यहम्सुमेधानामर्षिः ॥ ७७ ॥

इतिश्रीमद्राजाधिराजश्रीमत्तोमरान्वयश्रीमदुद्धरणात्मजश्रीशन्तनुचक्रवर्त्ति-
विरचितायां शान्तनव्यांमार्कण्डेये चण्डिकामाहात्म्यटीकायां मधुकैटभवधविध्यु-
पलक्षितंनामैकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१ ॥

सावर्णिमनुंकायतिसावर्णिकंसावर्णिःप्रयोजनमस्येतिसावर्णिकम्। पुराकल्पे-

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् । जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः

ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ३ ॥

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम्

महिषासुरे असुराणामधिपे सति देवानां च पुरंदरे इन्द्रे अधिपे सति देवासुरं युद्धं पूर्णमन्यूनं अब्दशतं वर्षशतं अभूदित्यन्वयः असुराणां विजिगीषूणां इदं आसुरं देवानामासुरं देवासुरम् । अथवा, देवैः सह आसुरं देवासुरं युद्धं । यद्वा, देवाश्चासुराश्च देवासुरं येषां च विरोधः शाश्वतिक इति एकवद्भावः । तस्मिन्नस्तितद्देवासुरं युद्धम् । अर्शआदित्वादच् । यद्वा, देवासुरस्येदं देवासुरं युद्धम् । संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति ह्यादिवृद्ध्यभावः । अन्यथा दैवासुरमेव स्यात् । पुराण्यरीणां दारयति पुरन्दरः । 'वाचंयमपुरंदरौ च' इति खश् महिषे सुराणामधिपे इति निचृच्छन्दो मधुकैटभौ दुरात्मानाविति वत् ॥ १ ॥

तत्र युद्धे महावीर्यैरसुरैर्देवसैन्यं पराजितं अभिभूतं अभ्यभावि । ततश्च महिषासुरः सकलान्देवान् जित्वा अभिभूय इन्द्रोऽभूदित्यन्वयः । 'वीर्यं बलं प्रभावश्च वीरकर्म च कीर्त्तितम्'। सिनोति बध्नाति सह इनेन स्वामिना वर्त्तते वा सेना सेनैव सैन्यं चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् ॥ २ ॥

ततो महिषासुरात्पराजिताः प्राप्तपराभवाः देवाः पद्मयोनिं पद्मजं प्रजापतिं ब्रह्माणं पुरस्कृत्य पुरोधाय तत्र गताः । क्व । यत्रेशः शर्वः यत्र च गरुडध्वजो विष्णुरास्ते इत्यन्वयः । 'योनिः स्यात्कारणे भगे'। पुरोऽव्ययं गत्याख्यम् । 'पराजेरसोढ' इत्यपादानाख्या ॥ ३ ॥

त्रिदशा देवाः तयोरीशकेशवयोः अग्रे यथा येन प्रकारेण वृत्तं निष्पन्नं महिषासुरचेष्टितं औद्धत्यं तद्वत्तथैव प्रकारेण वृत्तं देवाभिभवविस्तरं शब्दप्रपञ्चनं कथयामासुः । अथवा, त्रिदशाः तयोरीशकेशवयोरग्रे वृत्तं वृत्तं चरित्रमनतिक्रम्य महिषासुरचेष्टितं कथयामासुः । तद्वन्महिषासुरचेष्टितवत् । यथावृत्तं वृत्तमनतिक्रम्य देवाभिभवविस्तरं देवानामभिभवो यस्मिन्सः विस्तरो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा भवति

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनांयमस्यवरुणस्यच। अन्येषाञ्चाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेनदेवगणाभुवि। विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेणदुरात्मना
एतद्वःकथि 'सर्वममरारिविचेष्टितम्। शरणम्वःप्रपन्नाःस्मोवधस्तस्यविचिन्त्यताम्

तथा कथयामासुः महिषासुरचेष्टितं देवाभिभवं च विस्तरसहितं कथयामासुरितिभावः ॥ ४ ॥

चकारेणानुक्तदिक्पत्यनुक्तग्रहाः गृह्यन्ते। ततोऽन्येषां ब्रह्मर्षीणां च अमीषां सूर्यादीनामधिकारान्समहिषासुरः स्वयमेवाधिष्ठति सूर्यस्येन्द्राग्न्योरनिलस्येंन्दोर्यमस्य वरुणस्यततोऽन्येषां च देवानामृषीणां च अधिकारेषु स्वयमेवमहिषासुरस्तिष्ठति। 'अधिशीङ्स्थासांकर्मे' ति अधिकरणं कर्माख्यं 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' अन्यथाभिधाने ॥ ५ ॥

दुरात्मना तेन महिषेणासुरेण सर्वेदेवगणाः स्वर्गान्निराकृताः सन्तः भुवि विचरन्तिमर्त्यायथामरणधर्माणोमनुष्याइवप्रत्याख्याताः निरस्ताः निराकृताः ॥६॥

अत्र व इति ब्रह्मविष्णुमहेश्वरापेक्षं वहुवचनम्। अस्माभिर्देवैरिन्द्रादिभिः एतदमरारिविचेष्टितंदेवरिपोर्महिषासुरस्यचेष्टितमौद्धत्यं देवाभिभवञ्च सर्वंनिरवशेषं च युष्माकमग्रे कथितं वयमिन्द्रादयःसर्वेवोयुष्मान् शरणं रक्षितृन् दुःखेभ्यः पालयितृन् प्रपन्नाः प्राप्ताः स्मः। तस्यमहिषासुरस्यवधोहननं विचिन्त्यताम्। येन स,हन्येत स उपायोयुष्माभिश्चिन्तनीयः। शृहिंसायां शृणातिशत्रून् 'शरणं गृहरक्षित्रोः '। वेदाःप्रमाणमितिवच्छरणमिहैकवचनान्तंविवक्षितम्। अस्तेर्लडुत्तमपुरुषवहुवचनान्तंस्मइति। वधहिंसायांवन्धनंवधः। भावेवञ् 'जनिवध्योश्चे'तिवृद्ध्यभावः। अतएववधितुमर्हौवध्यौ 'ऋहलोर्ण्यदिति' वृद्ध्यभावः। तथा च ममवध्यावुभावपिइतिप्राक्तनेप्रयोगेइदं च साधनमवगन्तव्यम्। 'हनोवा वधचे'तितु अदन्तत्वंतत्रदर्शितम्। ममेतितत्र 'कृत्यानां कर्त्तरिचेति' षष्ठी। यद्वा। तत्रवधमर्हतोवध्यौ। 'दण्डादिभ्योयदि'तियत् ॥ ७ ॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः । चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटिकुटिलाननौ
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च
अन्येषाञ्चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत
अतीवतेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् । ददृशुस्तेसुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्

इत्थं देवानांवचांसि निशम्य आकर्ण्यमधुसूदनः कैटभजित् विष्णुश्चशंभुश्च मृत्युञ्जयः कोपं चकार । तौ कीदृशाकृती । भ्रुकुटीकुटिलाननौ भृकुटीकुटिलाननौभ्रुकुटिलाननौइतिपाठत्रयम् ।'भ्रुकुटीभृकुटीभ्रुकुटीस्त्रियः'। कुटकौटिल्ये । इक्कस्त्यादिभ्यः । यद्वा । सर्वधातुभ्यइन् । कुटादित्वातङित्त्वाद्गुणाभावः।'कृदिकारा दक्तिनो'वाङीप् । 'इकोह्रस्वोङ्यो गालवस्यौ'त्तरपदिकं ह्रस्वत्वम् । अकारोवा भ्रुकुंसादीनामितिपक्षे अन्वमौत्तरपदिकम् । ततश्चभ्रुवौक्रोधात् भुग्नेकुटीइव भ्रुकुट्यौ ताभ्यां भ्रुकुटीभ्यां कुटिलेभुग्ने आनने ययोः तौ भ्रुकुटीकुटिलाननौ हरिहरौ निशम्येतिशमेर्णौ'अतउपधाया' इतिवृद्धौ'शमोदर्शन'इतिसूत्रेणचक्षुःसाधन ज्ञानादत्र श्रवणेमित्वान्मितांह्रस्वः 'चक्षुः साधनज्ञाने तु निशामय पश्यत्यर्थे ह्रस्व-त्वाभावः । चकारात्ब्रह्माच भ्रुकुटीकुटिलाननः कोपं चकारेत्यनुसन्धेयम् ॥ ८ ॥

ततोऽनन्तरमतिकोपपूर्णस्यचक्रिणोविष्णोर्ब्रह्मणःशङ्करस्यततो विस्तृता-त्तस्माचवदनात्सकाशान्महत्तेजो निश्चक्राम निरगात् । 'तेजःप्रभावेदीप्तौचबले शुक्रेऽपिकीर्त्तितम्'॥ ९ ॥

तेभ्यःस्त्रियोऽन्येषांशक्रादीनां च देवानां सुमहत्तेजः कर्तृ शरीरत एवनिर्गतं निरगमत् । तत्तेजः कर्तृ ऐक्यं एकंअपृथक समगच्छत समपद्यत एकमभवत् । एक्यमितिचातुर्वर्ण्यादित्वा'स्वार्थेष्यञ् । 'अकर्मकाच्चे त्युनुवृत्तौ'समोगम्यृच्छी, त्यादिसूत्रेणगमेरात्मनेपदंतङ् । तच्चैक्यं समपद्यतेत्यपिक्वचित्पाठः । सकर्मत्वे परस्मैपदम् । तच्चैकतांसमगच्छत् ॥ १० ॥

ते इन्द्रादयः सुराः तत्रदेवसदसि । यद्वा । तत्रदैवेतेजसिदैदीप्यमाने

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् । एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा

यदभूच्छाम्भवंतेजस्तेनाऽजायत तन्मुखम् ।

याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १३ ॥

सौम्येनस्तनयोर्युग्मं मध्यमैन्द्रेणचाभवत् । वारुणेनच जङ्घोरूनितम्बस्तेजसाभुवः

जृम्भमाणे जयति । अतीव अत्यर्थं सुतरां सुष्ठुज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् । ज्वाला भिरर्चिभिर्व्याप्तंविद्योतितंदिशांदशानामन्तरंमध्यं अन्तरालं येनतथोक्तंज्वलन्तंदीप्यमानं पर्वतमिवहेमाद्रिमिवतेजसःकूटं पुञ्जं दद्दृशुर्द्दृष्टवन्तः । "माया निश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु । अयोघनेशैलश्रृङ्गे सीराङ्गेकूटमस्त्रियाम् । वलवत्सुष्ठुकिमुतस्वत्यतीवचनिर्भरे" ॥ ११ ॥

तत्र देवसदसिततत्प्रागुत्पन्नं ब्रह्मविष्णुरुद्रमुखजं तेजस्ततपश्चात् उत्पन्नं इन्द्रादिसर्वदेवशरीरजं च तेजः उभयत्विषा अतुलमनुपमंत्विषा दीप्त्या व्याप्तलोकत्रयं एकस्थं एकस्मिन्नेव समवायिनि तिष्ठत् एकत्वेनापृथग्भावेन तिष्ठत् वर्त्तमानं सन्नारीअभूत् । तत्तेजः स्त्रीरूपमभूदितिभावः । 'नृनरयोर्वृद्धिश्चे'तिशार्ङ्गरवादिपाठात् नृत्वजातिविवक्षायांङीषिवृद्धिः ॥ १२ ॥

यच्छंभोरिदं शाम्भवंतेजःतेनास्याः मुखमजायतसमजनिष्ट । याम्येनयमदेवताकेन तेजसा तस्याः नार्याः केशाअभवन् । विष्णुतेजसाः तस्याः नार्याः बाहवश्चाभवन् । 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्य' इत्यत्र यमाच्चेतिवक्तव्यमित्याहुः ॥ १३ ॥

सौम्येन सोमदेवताकेन तेजसा तस्याः नार्याःस्तनयोर्युग्ममभवत् ऐन्द्रेण तेजसामध्यमभवत् । वरुणसम्बन्धिनावारुणेन तेजसाजङ्घोरूजङ्घाभ्यां सहितौ ऊरूजङ्घोरूअभवताम् । जङ्घेच ऊरूचवारुणेनतेजसाप्रत्येकमभूतामित्यर्थः अन्यथा जानुबाहुवत्प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावान्नपुंसकत्वात् ह्रस्वत्वं स्यात् । जङ्घोरूइति'न दधिपयआदित्वान्नैकवत्वमि'तिपक्षे जङ्घाचऊरुश्चेतिजात्यैकवचनं विग्रहे । भुवः

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा। वसूनाञ्चकराङ्गुल्यः कौबेरेणचनासिका
तस्यास्तुदन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा। नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा
भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषाञ्चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १७ ॥
ततःसमस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्। तां विलोक्यमुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः

तेजसा नितम्बः कटिदेशः अभवत् ॥ १४ ॥

ब्रह्मणस्तेजसातस्याः नार्याः पादावभवतां तदङ्गुल्यः पादयोरङ्गुल्यःअर्कतेजसा अभवन्अष्टानांवसूनां च तेजसाकराङ्गुल्योऽभवन्। कौबेरेणकुबेरसम्बन्धिनातेजसानासिका अभवत् ॥ १५ ॥

तस्याः नार्याः दन्तास्तुप्राजापत्येन प्रजापतिसम्बंधिनातेजसासंभूताः समभवन् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः'। तथानयनत्रितयं नेत्रत्रयंपावकतेजसा वह्नितेजसाजज्ञेअजनिष्ट। जनेःकर्त्तरिपरोक्षेलिट्यात्मनेपदम् ॥ १६ ॥

तस्याःनार्याःयेभ्रुवौतत्सन्ध्ययोस्तेजः। यद्वा,यत्सन्ध्ययोस्तेजः। तत्तस्याः नार्याभ्रुवाविति ह्युभयथायोज्यम्। तथाअनिलस्यवायोर्यत्तेजः तौतस्यानार्याः श्रवणौशब्दग्रहणौ। यद्वा,यौतस्याःनार्याःश्रवणौशब्दग्रहणौतदनिलस्यवायोस्तेजः इत्युभयथापियोज्यम्। तदित्थं उक्तानां च ततोन्येषांचदेवानां संबंधिनांतेजसां संभवः साशिवासासर्वमंगलादेवी। यद्वा, याशिवासदेवानां तेजसां संभवः इत्युभयथापियोज्यम्। निर्द्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति। सर्वनामानिपर्यायेणतल्लिङ्गसंख्याभाञ्जिभवन्ति। श्रूयतेशब्दआभ्यामितिकरणेल्युटि। श्रवणौ शब्दग्रहौ इतिपुल्लिङ्गता। 'कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रंश्रुतिःस्त्रीश्रवणंश्रवः'इत्यभिधानतस्तुनपुंसकत्वे श्रवणे अनिलस्यचेतिपाठोऽपिसभ्यः ॥ १७ ॥

ततः शिवायाः देव्याआविर्भावानन्तरं समस्तदेवानांतेजोराशिसमुद्भवांतेजः

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रञ्च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ १६ ॥
शङ्खञ्च वरुणःशक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः । मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥
वज्रमिन्द्रःसमुत्पाट्यकुलिशादमराधिपः । ददौतस्यैसहस्राक्षोघण्टामैरावताद्गजात्
कालदण्डाद्यमो दण्डंपाशञ्चाम्बुपतिर्ददौ । प्रजापतिश्चाक्षमालांददौब्रह्माकमण्डलुम्

पुञ्जात्समुद्भवन्तींतांसर्वमंगलांदेवीं विलोक्य अमराःप्राक्महिषार्दिताअपिमहिषासुरेणहिंसिताअपिप्रीतिंप्रापुःप्राप्तवन्तः । अर्दहिंसायां चुरादिक्तः कर्मणि ॥ १८ ॥

ततो देवीदर्शनतः प्रमोदावाप्त्यतनन्तरं तेदेवाजयैषिणः सन्तस्तांदेवींजयन्तीं जयजयेत्युच्चैरूचुःअथतेदेवाःसर्वेपिऽतस्यैदेव्यैस्वानिस्वान्यायुधानिचददुः ॥ १६॥

देवायुधानि मन्त्रध्यानवशंवददेवताकृतीन्यत्यद्भुतशक्तीनि इतिशूलाधिदैवताद्विनिष्कृष्यपिनाकभृत् पिनाकी शिवः तस्यैदेव्यैशूलमायुधंस्वसदृक्षमायुधं ददौदत्तवान् । आयुधाधिदेवतासामर्थ्यादायुधंस्वसदृक्षमायुधं सूते यत्तत्तस्यै दत्तवानितिभावः । 'अस्त्री शूलंरुगायुधम्'। कृष्णश्च विष्णुश्चस्वचक्रतः सुदर्शनाचक्रतः समुत्पाट्यआकृष्यतस्यैदेव्यैदत्तवान् । यथा देव तेजोमयीदेवी समभवत्ताथतदायुधान्यपिदेवायुधसमुद्भवान्येवदैवतेच्छयेतिनात्राश्चर्यमितिभावः ॥ २० ॥
वरुणश्च शङ्खं तस्यैदेव्यैददौ । हुताशनश्चाग्निस्तस्यैदेव्यैददौ शक्तिमायुधविशेषं अत्रापिशङ्खतःशक्तितश्चशङ्खंशक्तिंचाकृष्यदत्तवन्तौताविितिभावः । मरुद्देवमारुतः वायुस्तस्यैदेव्यैचापंदत्तवान् । तथामारुतएववाणपूर्णेशरसंभृतेइषुधी दत्तवान् तस्यैदेव्यै अक्षयवाणपूर्णतूण्यौदत्तवान् । 'तूणोपासंगतूणीरनिषङ्गाइषुधिर्द्वयोः इषवोधीयन्तेऽत्रइषुधिः , इषुधी इति द्विवचनं सव्यासव्याभ्यांचापाकर्षणसूचनार्थम् ॥ २१ ॥

अमराधिपः सहस्राक्षः इन्द्रः शचीपतिः कुलिशाद्वज्रात् सकाशाद्वज्रं पविं समुत्पाट्याकृष्यतस्यैददौ । किं च सएवेन्द्रः शचीपतिः ऐरावतात्स्वर्गजात्

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवाकरः। कालश्चदत्तवान्खड्गंतस्याश्चर्मचनिर्मलम्
क्षीरोदश्चामलं हारमजरेच तथाम्बरे। चूडामणिन्तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च
अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु । नूपुरौ विमलौ तद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥

सकाशात् घण्टांच महतीं आकृष्य तस्यैदेव्यै ददौ। 'वज्रोस्त्रीहीरकेपवौ। संभ-वेऽव्यभिचारेचस्याद्विशेषणमर्मथवत्'इतिपरमैश्वर्येइन्दतिइन्द्रः। सोऽन्योपिस्यात् अतःउक्तममराधिपइतिसोऽन्योपिदेवःस्यात् अतउक्तंसहस्राक्षइति। सहस्रंअक्षीणि यस्यसः सहस्राक्षः सोऽहिःशेषोपि सहस्राननत्वात् सहस्रमेव अक्षीणियस्येत्येवं धृतविग्रहत्वस्यविवक्षितत्वादशे(दो)षः सुरूढिर्योगमपहरतीतितुन्यायोऽत्रनाश्रितः तत्रह्याश्रित्वे (ते) यंव्यावृत्त्याकीर्त्तनेन श्ले (शे) षो नास्तीति। यद्यपिस्यात् तथापितदा (दना) श्रयणजनितः पौनरुक्त्यदोषः प्रसज्येतेत्यलम्विस्तरेण। 'बहु-व्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोःस्वांगात्षच्'समासान्तः ॥ २२ ॥

यमोअन्तकःकालदण्डादाकृष्यदण्डंकालदण्डमायुधंतस्यैदेव्यैददौ। अम्बुपति-श्चवरुणःपाशादाकृष्यपाशंददौ। तस्यैदेव्यै पाशाख्यमस्त्रंददौ 'अश्वाख्याशालि शीघ्रार्थौपाशोवंधनशस्त्रयोः'। प्रजापतिर्ब्रह्मातस्यैदेव्यै अक्षमालां जपमालां कमण्डलुं च ददौ। 'अस्त्री कमण्डलुःकुण्डी'। ब्रह्माविप्रोपिकश्चित्स्यात्। अत-उक्तंप्रजापतिरिति। समनुरपिस्यात्। अतउक्तंब्रह्मेत्यपि। 'वेदस्तत्त्वंतपो-ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' ॥ २३ ॥

रविःनिजानात्मीयान्रश्मीन्किरणान्तस्यादेत्याः समस्तेषुरोम्णांकूपेषुददौ निक्षिप्तवान्। 'किरणप्रग्रहौरश्मी'। 'स्वकेनित्येनिजंत्रिषु'। कालोयमः तस्यै देव्यैनिर्मलंखड्गं निर्मलंस्वच्छंचर्मदत्तवान्। अङ्गत्राणसाधनंफलकंचर्मदत्तवान्। फलकोस्त्रीफलंचर्म'। 'कालोमृत्यौ महाकालेयमेऽनेहसि च स्मृतः' ॥ २४ ॥

क्षीणाण्युदकानि यस्ययस्मिन्वासक्षीरोदश्च। 'उदकस्योदः सञ्ज्ञायां'। क्षीराब्ध्यधिदैवतःअमलंहारं मुक्ताफलहारंददौ। दत्तवान्। तथा स एवक्षी-

अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च । विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुञ्चातिनिर्मलम्
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यञ्च दंशनम् । अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम्

रोदः । तस्यै देव्यै अजरे च नूतने जरारहिते अम्बरे वाससी दत्तवान् । 'अम्बरं व्योम्नि वाससि' ॥ २५ ॥

चूडामणिमित्यारभ्य श्लोकत्रयमेककर्तृकैकक्रियकं द्रष्टव्यं । तथाहि विश्वकर्मा देवशिल्पी सूर्योऽपि । यदभ्यधुः । 'विश्वकर्मार्कसुरशिल्पिनोरि'ति । विश्वस्य कर्मास्मादर्कात् । विश्वं कर्मास्य सुरशिल्पिन इति विश्वकर्मा । स देवशिल्पा तस्यै देव्यै यथा चातुर्येण रचितं दिव्यं दिविभवं 'द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्'। चूडामणिं शिरोरत्नं ददौ' । तथा कुण्डले कर्णवेष्टने सुवर्तुले तस्यै स एव विश्वकर्मा ददौ । 'कटकोर्द्ध्वर्चादित्वादस्त्रियां' । तथा स एव तस्यै देव्यै शुभ्रमर्द्धं चंद्रस्य समप्रविभागः अर्द्धचन्द्रः तां ददौ । 'अर्द्धं नपुंसकमिति' समासः। 'परवल्लिंगं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः तथा स एव विश्वकर्मा तस्यै देव्यै सर्वबाहुषु केयूरान्केयूराणि अंगदानि ददौ । केयूरोर्द्ध्वर्चादित्वादस्त्रियां । तद्वत्पूर्ववत् स एव विश्वकर्मा तस्यै देव्यै तस्याः देव्याः पादयो नूपुरौ मंजीरौ विमलौ निर्मलौ मञ्जीरौ ददौ । 'पादङ्गुलं तुलाकोटिर्मंजीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् । हंसकः पादकटकं तद्वत् पूर्ववच्चातुर्येण रचितं । अनुत्तमं नास्त्यतोऽन्यदुत्तमं यस्मात् तदनुत्तमवरेण्यं ग्रैवेयकं ग्रीवालंकारं कण्ठभूषणं तस्यै देव्यै ददौ विश्वकर्मा 'कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः स्वास्यलङ्कारे'ष्विति ढकञ् । 'नाम्नसत्करिणां ग्रैवमि'त्यत्र त्वनलङ्कारत्वादणेव । तथा स एव विश्वकर्मा देवशिल्पी तस्याः देव्याः समस्तासु सकलासु अङ्गुलीषु योग्यानि अङ्गुलीयकरत्नानि तस्यै देव्यै ददौ । 'जिह्वामूलङ्गुलेच्छः'। स्वार्थे कन् । अङ्गुलीषु भवानि अङ्गुलीयकानां रत्नानि अङ्गुलीयकान्येव वा रत्नानि । 'रत्नं स्वजातिश्रेष्ठे'पीत्यभिधानतः गुणतः श्रेष्ठानि मनोज्ञानि अङ्गुलीयकरत्नानि रमन्तेऽस्मिन्रत्नं जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते । अङ्गुलीयकानि रत्नानि चेति द्वन्द्वः तथा स एव विश्वकर्माभेद्यं दंशनं च दिव्यं

अददाज्जलधिश्चाऽस्यै पङ्कजञ्चातिशोभनम्। हिमवान्वाहनंसिंहंरत्नानिविविधानिच
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः। शेषश्चसर्वनागेशो महामणिविभूषितम्॥
नागहारं ददौतस्यै धत्तेयः पृथिवीमिमाम्। अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा

कवचं तस्यै देव्यै ददौ। दश्यन्ते बध्यन्ते दंशनम्। 'तनुत्रंवर्मदंशनं उरश्छदकं कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्' ॥ २६ ॥ २७ ॥

जलधिः समुद्रः तस्यै देव्यैशिरसि उरसि च अपरामम्लानपङ्कजांमालां स्रजंअददात्। डुदाञ्दाने। भूतानद्यतनेलङ्परस्मैपदम्। अददिति पाठेतुददाने 'चक्षिङोङित्करण लिंगादनुदात्तेत्वनिबंधनमात्मनेपदमनित्य' मित्यात्मनेपदाभावः। किं च स एवजलधिः तस्यैदेव्यै अतिशोभनं अत्यर्थंमनोहरंपङ्कजं लीलारविन्दं अददात् अददद्वा। अम्लानानि अशुष्काणि सदैवार्द्रीभूतानियस्यांसातथोक्ता ताम्। यद्वा। नास्तिम्लानं म्लानिः सर्वदैवयेषां तानिअम्लानानि पङ्कजानियस्यां सा तां मालयतेधार्यतेमालास्रक्ताम्। आसमन्तादाप्ता आप्तिक्रियापेक्षया आशब्दस्योपसर्गत्वंआपोऽम्भांसियैः यानिवातानिआपानि पङ्कजानि तानिरातिगृह्णातीति आपराताम्। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इतिअः समासांतः 'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योप ई' 'तुनईत्वमनवर्णा'तादितिवक्तव्यमि' तिस्मरणात् इत्थं च आपरां इति च्छेदः। यद्वा, नास्तिपरंश्रेष्ठंयतःसा अपरा अनुत्तमाताम्। यद्वा, नविद्यन्तेपराःशत्रवो यत्र धार्यमाणायां सा तां। यद्वा, ततोदेवीतः अपरानपराअपरा अभिन्नाअपृथक् भूतासदैवसंलग्नाताम्। यद्वा। शिरसि उरसि च अपरां पृथग्भूताम्। शिरसिमालां माल्यरूपांस्रजं 'माल्यंमालास्रजौमूर्ध्नि' इत्यभिधानात्। उरसितुकण्ठात्प्रालम्बरूपांमालां 'प्रालम्बमृजुलम्बिस्यात्कण्ठादि,त्यभिनात्। कण्ठाद्वक्षस्यवलम्बमानं माल्यं मालाख्यंप्रालम्बमुच्यत इति अपरत्वं पृथक्त्वं मालायाः ॥ २८ ॥

हिमवान्अद्रिराजः तस्यैदेव्यै सिंहंनामवाहनंददौ। वाहयतिप्रापयतिवाहनम्। यद्वा, वहतिवाहनम्। 'वाहनमाहितादितिप्रयोगादन्येषामपिदृश्यते' इतिदीर्घः

सम्मानिताननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः । तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरितं नभः ॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् । चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्चचकम्पिरे

॥ यद्वा ॥ उह्यतेप्राप्यतेऽनेनेतिवाहनम् । 'वाहनमाहितादि'तिनिपातनादुपधादीर्घत्वं । हिनस्तिसिंहःपञ्चास्यःकण्ठीरवः । किंच सएवहिमवान्तस्यैंदेव्यैविविधानिनानाप्रकाराणिरत्नानिअददात् । धनाधिपोधनदःसुरयाअशून्यंसर्वदापरिपूर्णंपानपात्रंददौ । सूयतेपरिवास्यतेसुरा गन्धोत्तमा ॥ २९ ॥

यइमांपृथिवींधत्तेधारयतिसर्वनागेशःसर्वनागाधिपःशेषःअनन्तश्चमहामणिविभूषितंनागहारंनागरूपंहारंतस्यैंदेव्यैंददौ । नागाःसर्पेभ्योऽन्येदेवयोनयःइत्याहुः 'अनन्तोनागराजःस्यात्सर्पराजस्तुवासुकिः'। नागाःकाद्रवेयाः । 'काद्रवेयेगजेसीसेनागःस्यान्नागकेसरे' ॥ ३० ॥

यैरायुधालङ्कारादिकंदेव्यैसमर्पितंदेवैस्ततोअन्यैरपिसुरैः सर्वविभूषणैस्तथा आयुधैश्चसम्मानितापूजितासतीदेवीसाट्टहासंअत्यधिकहासगर्भंयथास्यात्तथाउच्चैः उदग्रंयथास्यादुदात्तंवायथास्यात्तथामुहुर्मुहुःवारंवारं ननाद । 'णदअव्यक्तेशब्दे' । मुखतोनादमानन्दतःसिंहनादंचकार । एतेनसंग्रामतःशत्रून्संहरिष्यामीतिवीररसाविर्भावःसूचितःसिंहनादेन । 'क्ष्वेडातुसिंहनादःस्यात्' । सिंहस्येवनादोनदनंवीराणांयोद्धुकामानांखलुभवति । 'अट्टअतिक्रमहिंसनयोर्भावेघञ्' । अट्टनंअट्टः अट्टेनजातोहासोऽट्टहासः अट्टहासेनसहितंसाट्टहासं क्रियाविशेषणमेतत् ॥ ३१ ॥

तस्यादेव्याःघोरेणभयंकरेणनादेनसिंहनादेनकृत्स्नंनभः अन्तरिक्षंआपूरितंअभिव्याप्तंकवलितम् । अथचअमायताअमासमीपेआयताआगच्छताअतिमहताऽऽदीर्घेणवर्धमानेनतेनसिंहनादेनघोरेणजनितः प्रतिशब्दःप्रतिध्वनिःमहानभूत् । इणगतौ । आङ्पूर्वः यद्वाअनुपसर्गः । शतरिइणोयणादेशः तृतीयान्तं नादेनेत्यस्यविशेषणममायतेत्यदः । 'समीपार्थेसहार्थेचस्यादमेत्येतदव्ययम्' । कश्चिन्माङ्माने-

चचाल वसुधा चेलुःसकलाश्चमहीधराः । जयेतिदेवाश्चमुदा तामूचुःसिंहवाहिनीम्
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः । दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥
सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ ३५ ॥

दैवादिकः आत्मनेपदानित्यत्वेनशत्रंतंमायतेत्येतदित्याख्यत् तन्नङित्त्वनिमित्तात्मनेपदस्यनित्यत्वाभ्युपगमात् ॥ यद्वा , माङ्माने दिवादिःभूतानद्यतनेलङ्तेननादेनकृत्स्नंनभः आपूरितंसत् अमायतपरिमितमजायत । अहोविभुनभःअनन्तं महत्परिमाणमपिनेन सिंहनादेनआपूरितत्वादमायतपरिमितमजायतेत्याश्चर्योक्तिः । अन्यथाविभुनावन्नपरिमीयते । परिमीयतेचेद्विभुत्वव्याहतिरिति ॥ ३२ ॥

तेनप्रतिशब्देननिमित्तेनसकलालोकाः चुक्षुभुःक्षोभमापुः । क्षुभसञ्चलने । 'लोकस्तुभवनेजने '। तेनशब्देनसमुद्राश्चचकम्पिरेसरित्पतयश्चकम्पमापुः । कपिचलने । चचालवसुधाभूश्चलनमाप । चलकम्पने । चेलुःसकलाश्चमहीधराःपर्वताःचेलुःचकम्पिरेकम्पमापुः ॥ चलकम्पने ॥ सर्वत्रकर्त्तरिलिट् ॥ ३३ ॥

जयेतिचमुदादेवास्तामूचु सिंहवाहनां सिंहोवाहनंयस्याःसासिंहवाहनातांसिंहवाहनांदेवींजयलोकोत्कर्षेणवर्त्तस्व । यद्वा , जयशत्रूनभिभवइतिदेवाःमुदाहर्षेणऊचुःउक्तवन्तः । सिंहवाहिनीमितिपाठे । सिंहेनवाहयत्यात्मानंसिंहवाहिनी । यद्वा , सिंहंवाहयतियुद्धौचितींप्रापयतिसिंहवाहिनीताम् अथोएनांदेवींशक्तिनम्रात्ममूर्त्तयोमुनयस्तुष्टुवुः 'चकारादानर्चुश्चभक्त्यानम्राआत्ममूर्त्तयोयेषांतेतथोक्ताः । आत्ममूर्त्तयः स्वकायाः ॥ ३४ ॥

तदित्थंदेव्याः साट्टहाससिंहनादेनसमस्तंत्रैलोक्यंत्रिभुवनं संक्षुब्धंदृष्ट्वाप्राप्तक्षोभंवीक्ष्यतेसर्वेअमरारयः महिषासुरादयः दैत्याः सन्नद्धाखिलसैन्याः उदायुधाः - सन्तः समुत्तस्थुः योद्धुमुत्थिताअभूवनित्यन्वयः । सम्यक्क्षुब्धंयदाहुः । क्षुब्धस्वांतेतिनिपातनान्मन्थातिरिक्तविषयः क्षुभितमितिप्राप्नोतितत्रपरिहारः । क्षु-

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः। स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा

पादाक्रान्त्यानतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम्॥ ३७॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम्॥ ३८॥

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्। महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः॥

व्धागिरिनदीत्याद्यमिति। क्षुब्धागिरिनदीत्याद्यमुपमानाद्भविष्यतीति। त्रयोलोकाः त्रैलोक्यं चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थेष्यञ्। अमराणामरयः अमरावाअरयोयेषांतेअमरारयः। 'महिषासुरादयोदैत्याः सन्नद्धाःव्यूढकङ्कटाः'अखिलाः सैन्याः सैनिकाःयेषांसेनाधीश्वराणांतेतथोक्ताः। 'सन्नद्धोवर्मितःसज्जोदंशितोव्यूढकंकटः' 'सेनायांसमवेतायेसैन्यास्तेसैनिकाश्चते'। योद्दधुमूद्ध्र्वानिकृतानिआयुधानियैस्ते उदायुधाः समुत्तस्थुः। 'अनोरूर्ध्वकर्मणि'इत्युक्तेर्नात्रात्मनेपदम्॥ ३५॥

'आस्तुस्यात्कोपपीडयोः' महिषासुरः आः एतत्किंइतिक्रोधात् आभाष्य-उत्काअशेषैरसुरैर्वृतः परिवेष्टितः सन् तंदेव्याः सिंहनादलक्षणंशब्दं अभ्यधावत अभिययौ। 'धावुगतिशुद्धयोः' स्वरितेत्त्वादात्मनेपदम्॥ ३६॥

श्लोकद्वयमेकान्वयेद्रष्टव्यम्। ततःअभिधावनानन्तरंसमहिषासुरःतांदेवींददर्श कीदृशीम्। त्विषादीप्त्यातेजसाव्याप्तलोकत्रयाम्। पादाक्रांत्यानतभुवंनम्रवसुधांकिरीटेनउल्लिखिताम्बरांस्पृष्टगगनाम्। धनुर्ज्यानिःस्वनेनक्षोभिताशेष पातालां कंपितसकलरसातलाम्। भुजसहस्रेणसमन्तात्समन्ततःदिशःदशव्याप्यसंस्थितांसम्यगवस्थिताम्। 'किरीटंपुंनपुंसकम्'। धनुर्ज्याधनुषिआरोपितामौर्वीसन्मतात्समन्ततइत्यर्थेऽव्ययम्। 'संस्थाधारेस्थितौमृतौ'॥ ३७॥ ३८

ततोदेवीदर्शनादनन्तरंतयादेव्यासहसुरद्विषां महिषासुरादीनांयुद्धंप्रववृते प्रकर्षेण-अवर्तिष्ट। कीदृक्युद्धम्। बहधामुक्तैः उज्झितैः प्रयुक्तैः प्रेरितैः शस्त्रास्त्रैः खड्ग-

युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः । रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः॥
अयुध्यतायुतानाञ्च सहस्रेण महाहनुः । पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥

बाणादिभिःआदीपितदिगन्तरंआसमन्तात्दीपितमुद्द्योतितंदिशामंतरंमध्यमन्तरा-लंयस्ययत्रवातत् तथोक्तम् । क्रियाविशेषणंचैतत्स्यात् । तद्यथा'आयुधंतुप्रहरणंशस्त्रमस्त्रमि'त्यभिन्नार्थतयाऽप्यधुस्तथापिशस्त्राणिखड्गादीनिकरस्थानि । अस्त्राणितु बाणादीनि मोक्तव्यानि इत्यस्यावान्तरभेदः । अथवा, 'शस्त्रमायुधलोहयो'रित्यभिधानात्, । शस्त्रेणलोहेनकालायसेननिर्मितान्यस्त्राणि तैः । अतश्चसेनाङ्गत्वनिबन्धनैकवद्भावशंकाप्यपास्ता । शास्त्रैरितिपाठे शास्त्रैः आयुधशास्त्रेकथितान्यस्त्राणितैः । शास्त्रैस्तत्तद्दैवताकैर्मंत्रैः शिक्षितान्यस्त्राणिवाशास्त्राणि । यद्वा, शस्त्रस्यलोहस्येमानीत्यणिशास्त्राणिलोहमयानितैः ॥ ३९ ॥

सेनांनयमानः सेनानीर्महिषासुरस्यसेनानीः सेनाधिपः चिक्षुराख्यः चिक्षुरसंज्ञः समहासुरः युयुधे । युधसंप्रहारे आत्मनेपदी । सम्प्रहारोहननम् । अथच । अतोऽन्यः चामरः चामराख्यः महासुरश्चचतुरंगबलान्वितः सन्युयुधे सम्प्रजहार । 'हस्त्यश्वरथपादातंसेनांगंस्याच्चतुष्टयम् । चत्वारिअङ्गानियत्र-बलेतेनान्वितः ॥ ४० ॥

रथानांषड्भिरयुतैः अन्वितः रथानांषष्ट्यासहस्रैर्युक्तः । उदग्राख्योमहासुरः युयुधे । एकाद्याः संख्याअष्टादशपर्यन्ताः संख्येयेषुवर्त्तमानास्त्रिलिङ्गाः विशेष्यलिङ्गाः भवन्ति । इहषड्भिरित्येतदयुतैरित्यस्यविशेषणंद्रष्टव्यम् । किञ्च । विंशत्याद्यास्तुः सर्वाः सङ्ख्याः सङ्ख्यायांचसङ्ख्येयेचवर्त्तमानाः सत्य-एकवचनांताएवभवन्ति । किञ्च । सङ्ख्यामात्रार्थेवर्तमानायाविंशत्यादेः-संख्यायाः द्विवचनबहुवचनेअपिभवतः सरूपाणामेकशेषारम्भात् द्वेविंशती तिस्रो-विंशतयः गवां विंशती गवां विंशतयः । इहच षट्अयुतानिषड्भिरयुतैरित्ययुतशब्दस्यएकशेषस्ततोबहुवचनम् । एवमुत्तरत्रापियथासंख्याव्युत्पत्तिरनुस-

अयुतानां शतैः षड्भिर्वाष्कलो युयुधेरणे । गजवाजिसहस्रोघैरनेकैरुग्रदर्शनः ॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
विडालाख्योऽयुतानाञ्च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४२ ॥

न्धेया । दशसहस्राण्ययुतम् । महाहनुर्नाममहासुरः रथानांअयुतानिया-नितेषामयुतानां सहस्रेणरथायुतसहस्रेणयुद्धसाधनेनदेव्यासहअयुध्यत । रथानांकोट्यासाधनभूतयारयुद्धमकरोदित्यर्थः ॥ ४१ ॥

असयः खड्गाइवलोमानि असयः एव वा लोमानि यस्य सः । असि-लोमानाममहासुरश्चरथानां पंचाशद्भिर्नियुतैः युद्धसाधनैः देव्या सह अयुध्यतयुद्ध-मकरोत् । दशलक्षाणिनियुतम् । पञ्चाशन्नियुतानिपञ्चकोट्यः । रथानां पञ्चभिःकोटिभिरयुध्यतेत्यर्थः । द्वौपञ्चतौपङ्क्तिर्दशपङ्क्तयःशतंदशशतानिसहस्रं दशसहस्राण्ययुतं दशायुतानिप्रयुतंप्रयुतं(तत्तु)तुलक्षमेवदशलक्षाणिनियुतमेवलक्षा-दुपरिगणितस्थानं नियुतमुक्तंगणितागमे लक्षमयं नियुतमिति एतेन तन्निरस्तं यत्' 'अयुतं दशसाहस्रं नियुतं स्याद्दशायुतैरिति' । नियुतं दशायुतैरित्येतद-मूलप्रमाणमुपेक्ष्यं प्रेक्षावद्भिः । 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे'यद्यपिस्युस्तथापिसंख्या मात्रेर्थेवर्त्तमानानां विंशत्यादीनां सङ्ख्यानां द्विवचनबहुवचने अपिभवतःएकशे-षात् । ततश्चपञ्चाशद्भिरित्यत्रबहुवचनंयुक्तंनियुतैरित्यत्रबहुत्वात । रणेयुद्धे वाष्कलोनाममहासुरः अयुतानां षड्भिः शतैर्युयुधे । रथानांयानिषड्भिः शतैर्गुणितानिषष्टिलक्षाणि तैः साधनैर्देव्या समं वाष्कलो युद्धं चकार ॥ ४२ ॥

तस्मिन्युद्धे उग्रदर्शनोनाममहासुरः अनेकैर्गजवाजिसहस्रौघैश्चरथानां को ट्याचवृतः परिवेष्टितः सन्देव्या समं अयुध्यत । गजाश्चवाजिनश्चभूयांसःगज वाजि । सेनाङ्गत्वात्द्वन्द्वैकवद्भावः । गजवाजिनोभूयांसः सहस्राणि अपरिमितानितेषांसमूहाः अनेकेपरिमिताः तैर्वृतः परिवेष्टितः । अथच रथा-नांकोट्यावृतः परिवेष्टितः कोटिः संख्याविशेषः कोटिरर्बुदसंज्ञासंख्याप्रयुतस

वृतः कालो रथानाञ्च रणेपञ्चाशतायुतैः । युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारतः
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः । अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥
युयुधुः संयुगे देव्यासहतत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तुरथानांदन्तिनान्तथा ॥ ४६ ॥
हयानाञ्च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः । तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा

स्त्रंलक्षं अर्बुदसंज्ञाकोटिरितिह्याहुः ॥ ४३ ॥

अथत्रसंयुगेसङ्ग्रामेबिडालाख्यः विलाडोनाममहादैत्यःरथानांपञ्चाशाद्भिरयुतैः पञ्चभिर्लक्षैः परिवारितः परिवेष्टितः सन्देव्यासमंयुयुधेयुद्धंचकार ॥ ४४ ॥

कालोनाममहादैत्यःरणेरथानांपञ्चाशतायुतैःपञ्चाशत्संख्यागुणैस्तैरयुतैःपञ्चभिर्लक्षैर्वृतः वेष्टितः युयुधे । अपि च सःएवतत्रसंयुगेयुद्धेतावद्भिरेवहस्तिभिर्वाजिभिः पदातिभिश्च सेनाङ्गैः प्रत्येकं पञ्चाशल्लक्षैः परिवारितः सन् देव्यासमं युयुधे ॥ ४५ ॥

तत्र संयुगे युद्धे अन्ये च चिक्षुरादिभ्योऽपरेयेऽसुरास्तत्र तेषु महासुरा अयुतशः अयुतैरयुतैः दशसाहस्रीभिः रथनागहयैः करणवृताः परिवेष्टिताः सन्तः देव्यासहयुयुधुः । चक्षिङोङित्करणतोऽनुदात्तेत्त्वनिमित्तात्मनेपदस्यानित्यत्वात्परस्मैपदम् । अन्यथात्रयुयुधिरेइत्येवन्याय्यम् । युध्यतेरनुदात्तत्वात् । इहअन्ये चतत्रेतिनिर्द्धारणेसप्तमी । येचिक्षुरादिभ्योऽन्ये असुराः सन्ति तत्र तेषु महासुराइतियत्तदोरर्थतोनित्यःसम्बन्धः । परितोयस्तत्रशब्दःससंयुगेइत्येतदपेक्षयाधिकरणसप्तम्यन्तः । अयुतशइति । 'सङ्ख्यैकवचनाच्चवीप्सायामि'तिकारकवाचिनः सङ्ख्याशब्दाद्वीप्सायां शस् प्रत्ययः । रथैः सहिताः नागाः गजाः रथनागाः रथनागैः सहिताः हयाः रथनागहयास्तैः सामानाधिकरण्याधिकारे'शाकपार्थिवादीनामुपसङ्ख्यानमुत्तरपदलोपश्चे'तिसमासः अन्यथा रथाश्च नागाश्च हयाश्चेतितुद्वन्द्वेरथनागहयमितिसेनाङ्गत्वादेकवद्भावःस्यात् ॥ ४६ ॥

युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ ४७ ॥
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
साऽपि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ ४८ ॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी । अनायस्तानना देवी स्तूयमानासुरर्षिभिः

महिषासुरस्तु तत्र युद्धे रथानां दन्तिनां हयानां च प्रत्येकं कोटिकोटिसहस्रैर्वृतः परिवेष्टितः सन् तया देव्या सह योद्धुमवहितोऽभूत् । कोट्यागुणिता कोटिः कोटिकोटिः कोटिकोट्यागुणितानि सहस्राणि कोटिकोटिसहस्राणि तैः चकारात्पदातिनामपि तावद्भिरेव कोटिकोटिसहस्रैर्वृतइत्यवगन्तव्यम् ॥ ४७ ॥

संयुगे युद्धे चिक्षुराद्याः सर्वेऽपि महासुराः तोमराद्यैरायुधैः साधनैः देव्या समं युयुधुः । चक्षिङोङित्करणादत्र आत्मनेपदानित्यत्वात्परस्मैपदम् । अन्यथा युयुधिरेइत्येवस्यात् । युधेरनुदात्तेत्त्वात् । 'सर्वला तोमरोऽस्त्रियाम्' । स्तोम्यन्तेश्लाघ्यन्ते तोमराः । स्तोमश्लाघायाम् । 'भिन्दिपालः सृगस्तुल्यौ' । भिन्दतः शत्रोः प्रयोक्तारं पालयतिभिन्दिपालः हस्तक्षेप्योलगुडः 'कासूसामर्थ्ययोः शक्तिः' । कासूर्नामायुधविशेषः । 'अथोग्रं मुसलोस्त्रीऽस्यात्' । मुस्यते खण्ड्यतेऽनेनमुसलं, खण्डयतिभिनत्तिखड्गः द्विधारः करवालोऽसिरित्यर्थः । परान् श्यन्तितनूकुर्वन्ति परशवः कुठारभेदाः । 'पट्टिःक्षेत्रादिविन्यासहिंसास्त्रधारयोरपि' । पट्टिर्धाराविशेषोस्त्यस्मिन्पट्टिशः । लोमादित्वात्शः परशुभिः सहिताः पट्टिशाः परशुपट्टिशाः तैः । परशवश्च पट्टिशाश्च आयुधविशेषाइतिद्वन्द्वे तु सेनाङ्गत्वाद् द्वन्द्वैकवद्भावः स्यात् ॥ ४८ ॥

ततोयुद्धप्रवृत्तेरनन्तरं केचिन्महासुराः देवीं हन्तुं शक्तीश्चिक्षिपुः क्षिपप्रेरणे आचिक्षिपुरितितुपाठे प्रयोक्तुमाकृष्टवन्तः । तथा केचिद्देवीं हन्तुं पाशांश्चिक्षिपुः पाशान्प्रेरितवन्तः । तथैव अपरेकेचित्तु खड्गप्रहारैर्देवीं हन्तुं प्रचक्रमुः । आदि

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी। सोऽपिक्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी
चचारासुरसैन्येषुवनेष्विव हुताशनः। निःश्वासान्मुमुचेयांश्चयुध्यमानारणेऽम्बिका
तएव सद्यःसम्भूता गणाः शतसहस्रशः। युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः

कर्मणि प्रयोक्तव्ये'प्रोपाभ्यामि'त्यात्मनेपदेनभाव्यमितिचेत् उच्यते। पूर्वं धातुः साधनेनयुज्यतेपश्चादुपसर्गेणेत्यादिकर्मणिवृत्तिः। अथवानायप्रःत्युपसर्गः। तर्हिंप्रोपसर्गःप्रतिरूपकः अव्ययाख्यः अन्यथाप्रचक्रमिरेइत्यात्मनेपदमेवस्यात् ॥ ४६ ॥

ततः सादेवीविजिगीषमाणाचण्डिकाऽपिनिजान्यात्मीयानिशस्त्राणिखङ्गादीनि अस्त्राणिचबाणादीन्यायुधानिदिवर्षतिप्रवर्त्तयतितच्छीलेतितथोक्तासतीतानि महासुरप्रवर्त्तितानिप्रयुक्तानि शस्त्राणि खड्गादीनिअस्त्राणि च। बाणा'न्यायुधानिलीलयैवप्रचिच्छेद'द्वैधाचकार खण्डयामास। 'छिदिर्द्वैधीकरणे'। हलादिःशेषे पुनःपुनःप्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धमिति प्रसक्तोऽपि। ननुकिंहलादिः शेषःनावयवावयवः समुदायावयवोभवतीतिवचनात्। शस्त्राण्यस्त्राणिचण्डिकेतिपाठेअन्तरेणापि चकारंचार्थोऽर्थतःक्वचिल्लभ्यते। यथाअहरहर्नयमानोऽपिगामश्वंपुरुषंव्रजंवैवस्वतोन तृप्यतीतिवाक्ये। अथवा। शस्त्राण्यस्त्राणिचाम्बिकेतिपाठः। शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरीतितुक्वचित्पाठः। 'लीलाहेलाविलासाःखेलाक्रीडा वा तथा'॥ ५० ॥

अनायस्तमखिन्नमम्लानंआननंमुखमूयस्याः सा तथोक्ता देवी विजिगीषमाणा सुरैर्ब्रह्मादिभिर्ऋषिभिर्वसिष्ठादिभिश्च। यद्वा नारदादिभिः सुरर्षिभिःस्तूयमानाईश्वरीच भगवतीअसुराणां देहेषु। यद्वा। असुरेष्वसुरसम्बन्धिषु देहेषुशस्त्राणिखड्गादीनिअस्त्राणिबाणादीन्यायुधानिमुमोचप्रयुक्तवतीप्रेरितवती। ईश्वरस्यस्त्रीईश्वरी। यद्वा। 'अश्नोतेराशुकर्मणिवरट् चेच्चोपधाया'इतिईश्वरीविश्वव्यापिकाभगवतीत्यर्थः॥ ५१ ॥

स प्रसिद्धः देव्या वाहनीभूतःकेसरीसिंहोऽपिक्रुद्धः धुतसटः कम्पितस्क-

नाशयन्तोऽसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥ ५३ ॥
मृदङ्गांश्चतथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे । ततोदेवीत्रिशूलेन गदयाशक्तिवृष्टिभिः

न्धकेसरः सन् आसुरसैन्येषु । यद्वा असुरसैन्येषु चचार प्रससारपरिबभ्राम । केषु कइव वनेषुहुताशनोऽग्निरिव । सिंहक्रोधेनज्वलद्रूपत्वात् हुताशनइव । हुताशनसादृश्यंसिंहस्यवर्णितम् । यथा च वनानिवनाग्निदग्धानिभस्मीस्युस्तथादैत्यसैन्यान्यपिदेवीवाहनीभूतसिंहरोषानलदग्धानिभवेयुरितिदैत्यसैन्यानां वनसादृश्यं द्रष्टव्यम् । 'क्रुद्धःकण्ठीरवोगर्ज्जन्नुज्ज्वलोज्ज्वलदीधितिः । उद्धमन्निव-जज्वालसज्वालाज्वलनंयुधि'इतिभावः । व्रतिनस्तुसटाजटेत्यभिधानाद्व्रतिनः शिखासटेत्युच्यते इहतुसटेवसटाइत्युपमानात्धुताः सटायेनसतथोक्तइतिसटाप्रयोगसिद्धिः ॥ ५२ ॥

अम्बिकाचण्डिकारणेसङ्ग्रामेमहासुरैः समं युध्यमानासतीयान् यान् यानेव यावत स्वनिःश्वासान् उच्छ्वासान् मुमुचेउज्झितवती । ते एव तावन्तएव निश्वासाः प्रत्येकंसद्यःतस्मिन्नेव क्षणे शतसहस्रशः गणाः चण्डिकागणाःसम्भूताःसमदृश्यन्त । इहगणाःशताधिकंसहस्रं चेद्विवक्षिताः स्युस्तदा शतसहस्रंएकादशशतानिशतसहस्रंशतसहस्रमितिवीप्सायां शतसहस्रशः । सङ्ख्यैकवचनाच्च वीप्सायां शस् । अथच गणाः शतगुणितानिसहस्राणिशतस्वासहस्राणिस्युस्तदाशतसहस्राणिलक्षमित्यर्थः ॥ ५३ ॥

ते रणे देवीरोषनिःश्वासजागणाः युध्यध्वं युध्यध्वमिति देव्याउपबृंहिताः प्रोत्साहिताः परशुभिः भिन्दिपालासिपट्टिशैरायुधैः असुरगणान्नाशयन्तः महासुरैः समं युयुधुः । चक्षिङो.ङत्करणाज्ज्ञापकादनुदात्तङितइत्यात्मनेपदनित्यत्वाद्युयुधिरेइत्यात्मनेपदमेवस्यात् । भिन्दिपालैःसहिताअसयःखड्गाःतैश्चसहिताः पट्टिशाःतैः । द्वन्द्वे तुसेनाङ्गत्वादेकत्वंस्यात् । बृहिवृद्धौ । उपपूर्वःप्रोत्साहने

खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवाऽन्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ ५५ ॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ ५६ ॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते । वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥

वृद्ध्युत्कर्षैवावर्तने । देवीशक्त्यपबृंहितानितिपाठेअपपूर्वोबृहिर्वृद्धिवाची । ते गणाः देवीसामर्थ्यात्क्षीणानसुरगणान्नाशयन्तःयुयुधुरित्यर्थः । अस्मिन्पाठे गणानांशौर्योत्कर्षोनास्ति । यतोदेवीशक्त्युपबृंहितानेवासुरान्नाशयन्तोयुयुधुः ॥ ५४ ॥

युद्धेमहोत्सवेइवतस्मिन् युद्धमहोत्सवेदेव्यागणाः पटहानानकानवादयन्तवादितवन्तः । वदेर्ण्यन्ताल्लुङि'णिचश्चे'त्यात्मनेपदम् । 'आनकःपटहोऽस्त्रीस्यात्'। तथःपरेगणाः शङ्खानवादयन्तप्रदध्मुः । तथान्येचगणाः मृदङ्गान् मुरजानवादयन्त । युद्धमहोत्सवइत्यनेनवाणानांरणोन्मुखत्वेनशौर्योत्कर्षःसङ्ग्रामजयित्वंसूच्यते । उत्सूतेसुखमुत्सवः । महानुत्सवोमहोत्सवः ॥ ५५ ॥

ततः रणोत्सवोत्साहकारणपटहादिवादनादनन्तरं देवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभिः खड्गादिभिश्चसङ्ग्रामसाधनैरायुधैः शतशः शतैः शतैः महासुरान् निजघाननिरन्तरंनितरांजिहिंस । आदिशब्देनपट्टिशपरशुकुन्तमुद्गरमुशलकर्त्तरिकरवालिकाभिन्दिपालपरिघशङ्कुतोमरवज्रशक्तिपाशचक्राद्यायुधानिगृह्यन्ते ॥ ५६ ॥

अथ च देवीघण्टास्वनविमोहितान् घण्टानिर्घोषमूर्छितानन्यानसुरान् पाशेनबद्ध्वाभुविपातयामास । अथ च देवी अन्यानसुरान्पाशेनाकर्षयदाकृष्टवती । कृषेश्चु(श्चौ)रादिकात्स्वार्थेणिचिलङिरूपम् । ननुचनायंपठ्यतेचुरादौ यदैवं । यत्तु'कर्षत्याकर्षणेशेतुकर्षतेकृषतीत्युभे'इत्येवंपठ्यते । एवंतर्हिभ्वादेः

केचिन्निपातिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि। निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे
सेनानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषाञ्चिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ ५६ ॥

कर्षतेः कर्षणं कर्षः कर्षमकरोत् अकर्षयत् तत्करोतीतिणिच् ॥ ५७ ॥

देव्यास्तीक्ष्णैः खड्गपातैः केचिन्महासुराः द्विधाकृताः द्विधाखण्डिताः। तथा-ऽपरे महासुरा देव्या गदयाकृतेन निपातेन विपोथिताः सन्तः भूमौ शेरते शयितवन्त-इत्यर्थः। लङो ङः। 'आत्मनेपदष्वनतः शीङो रुट् शीङः सार्वधातुके गुणः विपोथिता इति पुथ हिंसायां दिवादिः। यदाहुः। 'पुथ्येत्पुन्थति हिंसार्थे भाषार्थे पोथयेदि'ति। विविधं पोथनं विहननं विपोथः सञ्जातएषां विपोथिताः सञ्जातविघाता इत्यर्थः। यद्वा विविधः पोथः विघातो येषां ते विपोथाः। विपोथाः कृताः विपोथिताः तत्करोतीति णिचि कर्मणि क्तः। ननु च पुथ्यतेर्णिचि कर्मणि क्तः। ननु च पुथ्यतेरुदुपधत्वान्नपुंसके भावे क्ते कृते कित्वनिषेधपक्षे पोथितमिति स्यात्। ततश्च विविधं पोथितं पोथनं विहननं येषां ते इति बहुव्रीहौ वाहिताग्न्यादित्वान्निष्ठान्त-स्य परनिपाते विपोथिनाः स्युः न स्युः यत उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्यामिति-शब्विकरणानामेवोदुपधानां तत्र सूत्रे ग्रहणं नान्येषामित्यभ्युपजग्मुः। यद्वा, विपु-न्थिता इति पाठे पुथि हिंसासंक्लेशनयोः भ्वादिः कर्मणि क्तः विपुथिता विहिंसिताः संक्लेशिता वधिता इति यावत् ॥ ५८ ॥

केचिन्महासुराः देव्या मुशलेन भृशं अत्यर्थं हताः ताडिताः रुधिरं रक्तं वेमुः उज्जगरुः। केचिच्च महासुराः देव्या शूलेन वक्षसि भिन्नाः विदारिताः सन्तः भूमौ निपातिताः न्यपतन्। वेमुरिति 'अतएकहल्मध्येनादेशादेर्लिटि' इति 'टुवमउद्गिरण' इत्यस्य नशसददवादिगुणानामिति निषेधादेत्वाभ्यासलोपौ न स्त इत्याहुः। ततश्च ववमुरित्येवं भवितव्यमिति। अत्र समादधुः 'अतएकहल्मध्येनादेशादेर्नशसदद-वादिगुणानां लिटी'त्येकयोगे कर्त्तव्ये योगविभागादस्यानित्यत्वमिति ततः वेमुरित्य-

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥ ६० ॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधाकृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ ६१ ॥

पिकचित्साधुस्यादिति ॥ ५६ ॥

केचिच्छैलानुकारिणः शैलान् स्वगात्रपरिमाणतः अनुकुर्वाणाःपर्वताय-मानाःत्रिदशानांदेवतानांअर्द्दनाःअर्द्दयितारःहिंसकाःअसुराःरणाजिरेरणस्याग्रे देव्या प्रयुक्तेननिरंतरशरौघेण अविच्छिन्नवाणव्यूहेनकृताः छिन्नाः विद्धाः प्राणानसून्मुमुचुः व्यमुञ्चन् । शराणामोघः तेनशरौघेण । 'कुमतिचे'तिणत्वं । निरन्तराः शरानिरन्तरशराः तेषामोघः समूहः तेन । सेनानुकारिणइतिक्वचित्पाठः । शरौघेणप्रतिलोमकूपं निरन्तरा व्याप्तावियवाः कृताः । सेनानुकारिणः सेना सैन्यं अनुपश्चात्कर्तुंशीलंयेषांतेतथोक्ताःअसुराःशूराः त्रिदशार्दिनःदेवहिंसिनःकेचि-दसुराःरणाजिरेप्राणान्मुमुचुः अत्याक्षुः । सेधानुकारिणइतिपाठे सिध्यन्तिसेधाः । शल्यानुकारिण इतितुलभ्यः पाठः । श्वाविक्तुशल्यइत्यभिधानात् । शल्यः शल्यकोभक्ष्यः पञ्चनखः निरन्तराइतिपाठे शरौघेणनिरन्तराः प्रतिलोमकूपंव्याप्ताः कृताःसिद्धाः । अतएवशल्यकाइवशललीकण्टकशतावृताः । शल्यकाइवदृश्यमानार णाग्रे प्राणान्मुमुचुः । केचिदसुराइत्यर्थ निरन्तराःशरौघेणकृताइतितुपाठेकृता-रचिताइत्यर्थः ॥ ६० ॥

तयादेव्याकेषांचिदसुराणां बाहवोभुजाः छिन्नाः खण्डिताः भुवि पेतुः तथादेव्याऽपरेसुराः छिन्नाग्रीवाः शिरोधयोयेषां तेछिन्नग्रीवाः सन्तः पेतुः । तथा देव्याऽन्येषामसुराणांछिन्नानिशिरांसिभुविपेतुःतथादेव्याऽन्येऽसुराःवपुषोमध्येदेशे विदारिताः खण्डिताः सन्तः पेतुः भूमौ बभ्रंशुः । असाकल्येतुचिच्चन । छिन्नं लातं लूनंकृत्तं दितं वृकणं 'दारितौभिन्नभेदितौ' ॥ ६१ ॥

कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः । ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥

कवन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठतिष्ठेतिभाषन्तो देवीमन्येमहासुराः ॥ ६३ ॥

पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा । अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥

अपरेतुमहासुरायुद्धतःदेव्याविच्छिन्नजंघाःखण्डितजङ्घकाः सन्तःउर्व्या भुविपेतुः प्रवभ्रशुः । केचित्तुयुध्यन्तः एकबाह्वक्षिचरणाः एकबाहुकाएकाक्षाः एकचरणकाश्चसंतोदेव्याद्विधाकृताः खण्डिताउर्व्यां पेतुः न्यपतन् । बाहुश्च अक्षिचचरणं च बाह्वक्षिचरणं युद्धतः प्रतिमहासुरं सम्पन्नमेकबाह्वक्षिचरणंयेषान्ते। द्वन्द्वांतेश्रूयमाणंपदंव्यावर्त्तकंप्रत्येकमभिसम्बध्यते । तथासम्पन्नव्रीहियवोग्रामः तथाचव्रीहियवधनाः प्रजाः ॥ ६२ ॥

अन्येमहासुराः शिरसिछिन्नेऽपिसतिभूमौपतिताः पुनस्तदनुउत्थिताः कंशिरोबध्नन्तिकबन्धाः सन्तः पुनः शिरोधारिणः सन्तःगृहीतपरमायुधाः आत्तोत्तमशस्त्राः सन्तःपुनर्देव्यासमं युयुधुः । चक्षिङोङित्वादनुदात्तेत्वनिमित्तात्मनेपदानित्यत्वाद्युध्यतेरनेदात्तत्वेऽपि परस्मैपदम् । अन्यथा' युयुधिरे' इत्यात्मनेपदमेवस्यात् । गृहीतपरमायुधादेव्या इतितृतीयान्तम् । गृहीतपरमायुधेः तिह्यविसर्गपाठेतुगृहीतापरमा आसमन्तात् युत्युद्धं ययासादेवी गृहीतपरमायुत् गृहीतपरमायुधेतितृतीयान्तमेतत । 'कबन्धोऽस्त्रीक्रियायुक्तमपमूर्द्धकलेवरम्' । कस्यशिरसोबन्धोत्रकबन्धः कंबध्नाति वा कबन्धः । 'कबन्धंसलिलेतुण्डे' । 'युद्धेयोधृषुवीरेषुसहस्रंकृत्तमूर्द्धसु'। तदावेशात्कबन्धः स्यादेकोऽमूर्द्धाक्रियान्वित' इतिकबन्धलक्षणम् । 'देवीदानव युद्धेतुकबन्धाबुर्दकोटयः । क्षणेक्षणे समुत्पन्नादेव्यायुयुधिरेपुनः । देवादानवयुद्धोत्थकबन्धाबुर्दकोटयः । देवी रोषोत्थहुङ्कारज्वलज्ज्वलनभस्मिताः' ॥ ६३ ॥

तत्रयुद्धेअपरेमहासुराः तूर्याणां वाद्यादीनांततवितानद्धघनशुषिराणां चतुर्णां

शोणितौघा महानद्यःसद्यस्तत्रविसुस्रुवुः। मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम्

लयः साम्यंवाद्यादीनामन्योन्यसमत्वमाश्रिताः वीररसावेशवशाः खड्गशक्त्यृष्टिपा-णयःयुध्यमानाःपूर्वंदेव्याछिन्नशिरसोऽपिवीररसाविष्कारात्सङ्ग्रामाधिदेवतावेशा-च्चाविष्कृतचेतनाः सन्तः पश्चात्कंशिरोवध्नंतिस्वंस्वंयथास्थानंसंनिवेशयंतीतिक-बन्धाः सन्तः पुनः शिरोधारिणः सन्तः ननृतुर्नृत्यंचक्रुः। चकारात्केचिद्देव्या-समंयुयुधिरे च। तूर्यलयाश्रिताहिनृत्यन्तिखड्गशक्त्यृष्टिपाणयोहियुध्यन्ते। 'ततंवीणादिकंवाद्यमानद्धंमुरजादिकम्। वंशादिकंतुशुषिरंकांस्यतालादिकंघनम्'। तथाचभरतः। 'ततंचैवावनद्धंचघनं शुषिरमेवच। 'चतुर्विधंतुविज्ञेयमातोद्यंल-क्षणान्वितम्'। अतएवाभ्यधुः। 'चतुर्विधमिदंवाद्यंवादित्रातोद्यनामकमि'ति। यद्यपिखड्गेतुनिस्त्रिंशचन्द्रहासासिऋष्टय इतिऋष्टिः खड्गपर्यायस्तथाप्याकृतिसं-निवेशविशेषभेदभिन्नतयापृथक्प्रयुक्तः। खड्गशक्त्यृष्टपाणय इतितुपाठेखड्गैः शक्तिभिश्चअष्टाव्याप्ताः पाणयोयेषांते। यद्वा। दैत्याः केचिदष्टभुजाश्चसन्तीति खड्गाश्चशक्तयश्चअष्टस्वष्टसुपाणिषुयेषांते ॥ ६४ ॥

अन्येमहासुराः सङ्ग्रामशूराःयुद्धेतिष्ठतिष्ठेतिदेवींभाषंतः कथयंतःस्वकी-यामहमहमिकाप्रकटयंतो देव्या समंयोद्धुमाजग्मुरितिशेषः। तिष्ठतिष्ठेत्य-त्र'नित्यवीप्सयो'र्नित्ये आभीक्ष्ण्येचतिङन्तस्यद्विर्वचनम्। भाषन्तइतिभाषव्य-क्तायांवाचि। अनुदात्तेत्त्वात्प्राप्तस्यात्मनेपदस्यचक्षिङोङित्त्वादनित्यत्वात्परस्मै-पदं शतृप्रत्ययः। तिष्ठतिष्ठेत्यभाषंतेतिपाठेतु अन्येमहासुरादेवींतिष्ठतिष्ठअ-द्यास्मदग्रेक्वयास्यसिक्वनिलीयसे इतिसभर्त्सनंनामग्राहमालपन्नित्यर्थः। 'तिष्ठ-तिष्ठेयिचैवोक्त्वादेव्याऽन्येयुयुधुर्मृधे। अन्येचमहासुरामृधेयुद्धेदेवि!तिष्ठतिष्ठे-तिसभर्त्सनमुक्त्वादेव्याचसमंयुयुधुः। लोमानिरोमाणिहृष्यंत्युद्भवंत्यनेनेतिलो-महर्षणंतस्मिन् रोमांचोद्गमकारिणिसंग्रामेरुधिराणां ओघास्तोमाः तैः रक्तसमूहैः विलुप्ताङ्गाअपरेमहासुराः। देवीमपलायस्वेति सम्भर्त्सनमुक्त्वैवं देव्यासमं युयु-

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणांतथाम्बिका। निन्ये क्षयं यथावह्निस्तृणदारुमहाचयम्
सचसिंहो महानादमुत्सृजन् धुतकेसरः। शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति

धिरे। 'रोमांचोरोमपुलकोरोमहर्षणमित्यपि। 'ओघोवृन्देऽम्भसांरये' ॥ ६५ ॥

देव्यापातितैः भ्रंशितैः रथैर्नागैर्गजैरश्वैरसुरैश्चाकीर्णासावसुन्धराअगम्याऽनधिगम्यागन्तुमशक्या तत्राभवत्। क यत्र स महान् रणः सङ्ग्रामः देव्या समं महिषासुरसैन्यानामभूत्। पातितैरथैत्यत्ररोरीति रेफलोपः। रथसहिताःनागाः रथगानाः तत्सहिताअश्वाः तैः द्वन्द्वेतुसेनाङ्गत्वादेकवद्भावःस्यात्। वसूनिधारयति सा वसुन्धरा नगम्या अगम्या असेव्या गमेः'पोरदुपधादि'तियत् ॥ ६६ ॥

किंच तत्र युद्धे असुरसैन्यस्यमध्येसद्यः सपदितत्क्षणे देव्या सहसङ्ग्रामारम्भक्षणे एववारणानां गजानां असुराणां दैत्यानां वाजिनां घोटकानांशोणितौघारक्तसमूहाएवमहानद्यःसमुद्रगाः आपगाःसद्यः विसुस्रुवुःप्रसुस्रुवुरित्यर्थः। रक्तप्रवाहमय्यो महानद्योवभूवुरित्यर्थः। विसुस्रुवुः स्रुगतौ लिट् उस्युवङ् ॥ ६७ ॥

यथा यद्वत् अम्बिकादेवी असुराणां तत्प्रसिद्धं महासैन्यंक्षणेनतत्क्षण मात्रेणक्षयंविनाशंनिन्येप्रापयामास। नयतिर्द्विकर्मकः तृणानि च दारूणि च तृणदारूणि तेषां महान्चयः गणः समूहः तं यथावह्निस्तद्वत्। यद्वा, 'यथातथैव साम्यम् ॥ ६८ ॥

न केवलंअम्बिकैव असुरसैन्यं क्षयं निन्ये अपि तु स सिंहश्चसप्रसिद्धो देव्यावाहनीभूतो धुतकेसरः कम्पितस्कन्धकेसरः सिंहश्च महानादं महान्तं नादंकण्ठीरवत्वात्। कण्ठगर्जनंउत्सृजन्कुर्वन्यथोचितं असुरसैन्यं क्षयं नाशंनिन्ये प्रापयामास। यच्चाख्यत्सोऽपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी।चचाराऽसुरसैन्येषु वनेष्विवहुताशनः। अथवा सचसिंहः कर्त्ता विचिन्वतीतिविचयनक्रिययासम्बन्धनीयः स सिंहः महानादमुत्सृजन् धुतकेसरः सन्नमरारीणां सुरद्विषां शरीरेभ्यः सकाशतः असून् प्राणान् विचिन्वतिप्राणान् गृह्णीयादिवसंहरेदिव। विचिन्व-

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतंयुद्धं तथाऽसुरैः। यथैषांतुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यबध-
वर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥
दुर्गासप्तशत्यां द्वितीयः ॥ २ ॥

तीतिचिञ्चयने। विध्यादौलिङर्थेलेट्कर्त्तरिस्वादिभ्यः श्नुः लेटस्तिप् 'लेटोऽडाटा'वितिअडागमः। छान्दसोगुणाभावःइकोणयवितुःनकिन्तुहुश्नुवोसार्वधातुके-यण्इतश्चलोपः परस्मैपदेष्विवितितुवा। तेनात्रइति श्रूयते। अथवाविचिन्वतीति सप्तमीयम्। स सिंहश्च धुतकेसरःमहानादमुत्सृजन् असुरान् व्यापाद्यतच्छरीरेभ्यः प्राणान् विचिन्वतीवेत्युत्प्रेक्षते। ततश्चतस्मिन् सिंहेऽमरारीणांशरीरेभ्यःप्राणान् विचिन्वतीव इतस्ततः संहतुंगवेषयतीवसतिदेव्यागणैश्चतैरसुरैः सहयुद्धं कृतं व्यधायीत्यर्थः ॥ ६९ ॥

तत्रसङ्ग्रामभूमौ देव्यारोषनिश्वाससम्भूतैर्गणैश्चतैरसुरैः सह युद्धं तथा कृतं यथादिविस्वगदेवाः पुष्पवृष्टिमुचः सन्तः एनां देवींतुष्टुवुः स्तुतवन्तःपुष्पाणां वृष्टीर्मुञ्चन्तिपुष्पवृष्टिमुचः। अथैनां तुष्टुवुरितिपाठेतुदेव्यागणैश्चतत्रभूमौमहासुरैः समंयुद्धंकृतं अथानन्तरं पुष्पवृष्टिमुचोदेवाःदिविषदः एनां युध्यमानां ससिंहां सगणामम्बिकान्तुष्टुवुः। अहोइदंनामाश्चर्यंयोद्धारोमायाविनोमहासुराः तैः सममेकाकिन्यबला युध्यते महासुरसैन्यान्यप्यनेकानि दशशःशतशः सहस्रशः अयुतशः लक्षशः नियुतशः कोटिशः कोटिकोटिशश्चक्षयंतयैकयैवनीतानि तद्रणेकम्बन्धा अपितयाऽवलयायुध्यन्ते ते च तदवलारोषहुङ्काररज्वलज्ज्वलनज्वालावलीढाः क्षणे क्षणे भस्मीभवन्ति अथच रणमण्डले तदवलाविखण्डित प्रचण्डविक्रमोल्लासिमहायोद्धृमहासुरवपुर्विगलद्रुधिरौघामहानद्यः प्रवहन्तीतितामत्यद्भुताद्भुतचरितां-लोकाभ्युदयैकफलोदयामम्बिकांदिविषदः स्तुवन्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

(तृतीयोऽध्यायः)

महिषासुरवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

निहन्यमानं तत् सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाऽम्बिकाम् ॥ १ ॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः । यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येशान्तनव्यां-
महिषासुरसैन्यवधवर्णनंनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

अथमहिषासुरसेनानाःचिक्षुरसञ्ज्ञःमहासुरःतरसैन्यं तस्य महिषासुरस्य सैन्यंदेव्यानिहन्यमानंनिरन्तरंहन्यमानमवलोक्यवीक्ष्यकोपाद्योद्धुमम्बिकां देवीं ययौ जगाम । निहन्यमानमितिवर्त्तमानसामीप्ये'वर्त्तमानवद्वे'तिभूतेलट्निहत-मित्यर्थः ॥ १ ॥

सचिक्षुरनामाऽसुरःसमरेसङ्ग्रामेशरवर्षेणनिरन्तरप्रयुक्तवाणपातनेनदेवीं ववर्षछादयामास । कःकेनकमिवतोयदोमेघःतोयवर्षेणसन्ततप्रवृद्धपाथःप्रथित-पातनेनमेरुगिरेःशृङ्गमिव । 'नभिन्नेवचनेलिङ्गे नहीनाधिकतापिवा । उपमादूष-णायालंयत्रोद्वेगोनधीमताम् । क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकोऽत्रार्थःप्रदर्शितः । प्रयोग

तस्य छित्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारञ्चैव वाजिनाम् ॥ ३ ॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजञ्चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ४ ॥
सच्छिन्नधन्वा विरथोहताश्वोहतसारथिः । अभ्यधावततांदेवींखड्गचर्मधरोऽसुरः

तोनुवर्त्तव्याअनेकार्थाहिधावतः (धातवः?)। यद्वा, 'यथातथैवैवंसाम्ये' ॥ २ ॥

ततोऽनन्तरंदेवीसङ्ग्रामेलीलयैवक्रीडयैवअनायासेनैवबाणैस्तस्य चिक्षुर-सञ्ज्ञस्यशरोत्करान् बाणगणान्छित्वाखण्डयित्वातुरगान् घोटकान्बाणैर्जघान । अथचबाणैरेववाजिनाङ्घोटकानांयन्तारंसारथिंजघान । 'क्रीडालीलाचनर्मच' । स्त्रीणांविलासविब्बोकविभ्रमाललितंतथा । हेलालीलेत्यमीहावाःक्रियाःशृङ्गा-रभावजाः '। 'नियन्ताप्राजितायन्तासूतःक्षत्ताचसारथिः '॥ ३ ॥

सादेवीसद्यःसपदितत्क्षणेएवाशुगैर्बाणैःधनुःकोदण्डञ्चचिच्छेदअच्छिनत् अतिसमुच्छ्रितमत्युच्चतरंध्वजञ्चकेतुंबाणैश्चिच्छेद । छिन्नंधन्वधनुर्यस्यसतथो क्तः तंछिन्नधन्वानञ्चिक्षुरंमहासुरंगात्रेषुसर्वावयवेषु आशुगैर्विव्याधताडयामास व्यधताडनेलिट्यभ्यासस्योभयेषामितिसम्प्रसारणम् । 'आशुगौवायुविशिखौ' । धनुरर्धर्चादित्वान्नपुंसकेऽपि । अन्यथा'धनुश्चापोधन्वशरासनङ्कोदण्डकार्मुकमि'त्य भिधानात् पुंस्येवस्यात् । 'धनुर्दशवितृद्धोऽपिनिर्गुणः किं करिष्यति' इतिवत् ॥ ४ ॥

सचिक्षुराख्योऽसुरः देव्याछिन्नन्धन्वधनुर्यस्यविच्छिन्नोरथोयस्यविरथः हताअश्वायस्यसः'हतःसारथिर्यस्यसः ईदृगवस्थः खड्गचर्मधरः सन् तांदेवींहन्तु-मभ्यधावतउपाद्रवत् । सृगतौ सर्त्तेः वेगितायांगतौधावादेशोवक्तव्यः । यद्येवं सर्त्तेःपरस्मैपदित्वादात्मनेपदंनस्यात् । स्यात्कर्तरिकर्मव्यतिहारइति । नस्यात् । नगतिहिंसार्थेभ्यइतिनिषेधात् अतश्चाभ्यधावत्ततोदेवीमित्यपाठिषुः । यद्वा ।

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्द्धनि । आजघान भुजेसव्ये देवीमप्यतिवेगवान्
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन । ततोजग्राहशूलं स कोपादरुणलोचनः

चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत । तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः ॥

धावुगतिशुद्ध्योरित्येतस्यस्वरितेत्त्वात्पाक्षिकमस्यात्मनेपदमिति अस्त्वभ्यधाव ततांदेवीमित्यपिपाठपाटवंपठितॄणाम् । 'फलकोऽस्त्रीफलंचर्म'। गात्रत्राणञ्चर्ममय त्वाच्चर्म । धृञ्धारणे धरतेधरः । खड्गश्चचर्मच सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः । खड्ग चर्मणो धरः खड्चर्मधरः अन्यथाकर्मण्यण्स्यात् ॥ ५ ॥

अतितरांवेगवान्सचिक्षुरः सेनानीरसुरःतीक्ष्णातिग्माधारायस्यतेनखड्गेनमण्डलाग्रेणसिंहंमूर्धनिआहत्यप्रहृत्यदेवीमपिसव्येवामेभुजेआजघानप्रजहार । अकर्मकत्वात्पराङ्गकर्मकत्वा'च्चाङोयमहन'इत्यात्मनेपदाप्राप्तिः । 'वामंशरीरंसव्यं स्यादपसव्यंतुदक्षिणम्' ॥ ६ ॥

हेनृपनंदनसुरथनिशामय । तस्यादेव्यावामंभुजंप्राप्यचिक्षुराख्य-महासुरप्रयुक्तःखड्गमण्डलाग्रःपफाल । ञिफलाविशरणेविशशारचूर्णोबभूववि-शीर्णोऽभूत्ततःखड्गभङ्गानन्तरंकोपादरुणलोचनःरक्तलोचनः चिक्षुरःशूलंत्रिशूलमायुधं जग्राहअग्रहीत् । 'अस्त्रीशूलंरुगायुधम्' ॥ ७ ॥

ततस्तुत्रिशूलग्रहणादनन्तरञ्चिक्षुरोमहासुरः ततःप्राग्गृहीतंत्रिशूलंतमायुधंभद्र कालयांदेव्यांविषयेचिक्षेपअक्षैप्सीत् । क्षिपप्रेरणेकीदृशंशूलंअम्बरादाकाशात्अम्ब-रमाक्रम्यतेजोभीरविबिंबमिवजाज्वल्यमानन्देदीप्यमानमित्यर्थः । अम्बरादितिकर्म-णिल्यब्लोपेपञ्चमीतेजोभीरविबिंबमित्यत्ररोरीतिरेफलोपेढ्लोपेपूर्वस्यदीर्घोऽणः । तेजोभिरविबिंबमित्यदीर्घपाठे । अवेः सूर्यस्यबिंबमिवेत्यर्थः । 'अघयःशैलमेषार्का'इ त्यभिधानात् । अम्बरमततिअम्बरात्इतिप्रथमान्तत्वेतुरविबिंबविशेषणंद्रष्टव्यं भद्राचसाकालस्यकालाग्निरुद्रस्यस्त्रीकाली । यद्वाकालीचण्डिका ॥ ८ ॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।

हुङ्काराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ ११ ॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।

चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १२ ॥

ततः सिंहः समुत्पत्यगजकुम्भान्तरस्थितः । बाहुयुद्धेनयुयुधेतेनोच्चैस्त्रिदशारिणा

तच्चिक्षुरप्रयुक्तंआपतदागच्छत् शूलंकर्मदृष्ट्वादेवीस्वकीयंशूलममुञ्चत प्रयुक्तवती तेनदेवीप्रयुक्तेनशूलेनतच्चिक्षुरप्रयुक्तं शूलंशतधाशतप्रकारैः चूर्णतांनीतंप्रापितं नकेवलंत्रिशूलमेवअपितुचिक्षुरमहासुरश्चचूर्णतांनीतइत्यर्थः । अमुञ्चतमुचलृ मोक्षणेस्वरितेत् ॥ ९ ॥

महिषासुरस्यचमूपतौसेनापतौतस्मिन् चिक्षुराख्येमहावीर्ये देव्याहतेसति चामरोनामत्रिदशार्दनः अमरहिंसनः महासुरः गजारूढः सन्देव्यासहसंग्रामयितुं आजगामागतवान् । वीर्यंबलंप्रभावश्चमहत् यस्य अर्दयतिहिनस्तिअर्दनः त्रिदशानामर्दनः ॥ १० ॥

अथसचामरनामापिमहादैत्यः देव्याः प्रतिघातनायशक्तिमायुधविशेषं मुमोचप्रचिक्षेप । अथाम्बिकादेवीद्रुतंशीघ्रंसत्वरंहुङ्काराभिहतां अतएवनिःप्रभां-ताञ्चामरमहादैत्यप्रयुक्तांशक्तिंभूमौपातयामास ॥ ११ ॥

चामराख्योमहासुरः आत्मीयांशक्तिमायुधंदेव्याभूमौनिपतितांप्रभ्रष्टाञ्च दृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः अप्रतिहतशक्तिः अद्यमदीयाहताईदृगवस्थामास्तादितिक्रोधोऽभिमूर्छितः सन्देवींप्रतित्रिशूलञ्चिक्षेपमुमोच । तदपिशूलंसादेवीअच्छिनत्बाणैः कृत्वा । छिदिर्द्वैधीकरणे । भूतानद्यतनेलङ्लिड्विषयेऽपिक्वचिदस्ति । पुराकल्पएतदासीदितिभाष्यकारप्रयोगादित्याहुः ॥ १२ ॥

ततोदेव्याचामरीयेशूलाग्रेचूर्णितेसत्यनन्तरम् । सिंहः उच्चैःसमुत्पत्य

युध्यमानौ ततस्तौतुतस्मान्नागान्महींगतौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौप्रहारैरतिदारुणैः
ततो वेगात् खमुत्पत्यनिपत्य च मृगारिणा । करप्रहारेणशिरश्चामरस्यपृथक्कृतम्
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥

देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वास्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १७ ॥

गजस्यकुम्भयोरन्तरेमध्येविषयेस्थितःसन् तेनत्रिदशारिणासुरद्विषाचामरेणदैत्येन समंउच्चैरतितरां बाहुभ्यां प्रवर्त्तितेनयुद्धेनबाहुयुद्धेनयुयुधेसंप्रजह्रे । युध्यतोनु-दात्तेत्त्वादात्मनेपदम् । 'कुम्भौतुपिण्डौशिरसः तयोर्मध्येविदुः पुमान्' ॥ १३ ॥

ततोबाहुयुद्धप्रवृत्तितस्तुपुनर्युध्यमानौ तौ सिंहचामरौ तस्मान्नागाद्गजा-त्सकाशात् महींभूमिंगतौसन्तावतिदारुणैर्भयंकरैःप्रहारैरतिसंरब्धौअतितरांक्रोधा-विष्टौयुयुधाते । सम्पूर्वोरभिः क्रोधार्थः । युयुधातेअतिसंरब्धौ इतिच्छेदः । मणीवादित्वात्प्रगृह्यत्वाभावात्प्रकृतिभावाभावादेङः पदान्तादतीतिपूर्वरूपत्वमेव । अथवाशिष्टप्रयोगतः सञ्ज्ञापूर्वकोविधिरनित्यः ओर्गुणादित्यतः स्वायम्भुवप्रयो-गवत् ॥ १४ ॥

ततोयुद्धरसावेशतोवेगाज्जगज्जयरयात् खमन्तरिक्षंउत्पत्यउत्प्लुत्यपुनर्वेगान्निपत्यच मृगारिणासिंहेनचामरनाम्नोमहासुरस्यशिरोमस्तकंकरप्रहारेण करकृतः प्रहारःता-डनंतेनपृथक्कृतंदूरीकृतंछिन्नम् । 'प्रहारजवयोर्वेगोविण्मूत्रातिप्रवर्त्तने' ॥ १५ ॥

रणेदेव्याशिलाभिः पाषाणैर्वृक्षैस्तरुभिः आदिशब्दाद्धनुराद्यायुधैश्चउ-दग्राख्योमहासुरःहतःव्यसुकृतःकरालोनाममहासुरःचशब्दात्ससैन्यःदन्तमुष्टिभिःत-लैःप्रतलैःचशब्दात्खड्गाद्यैरायुधैः सिंहेन गणैः देव्या च निपातितः न्यघाति व्यसु-कृतः । 'पाणौचपेटप्रतलप्रहस्ताविस्तृताङ्गुलौ' दंतैः सहितामुष्टयः दन्तमुष्टयः दन्तमुष्टिभिःसहिताःतलाःतैः । द्वन्द्वेतुप्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावःस्यात् । दन्तोगजदन्तः तेननिर्मितोमुष्टिः छुरिकामुष्टिः तस्यतलैर्भागदेशैः छुरिकाधाराविशेषैश्चनिपातित-

उग्रास्यमुग्रवीर्यञ्च तथैव च महाहनुम् । त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामासवैशिरः । दुर्द्धरंदुर्मुखञ्चोभौशरैर्निन्येयमक्षयम्
कालं च कालदण्डेन कालरात्रिरपातयत् । उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् ॥

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ।
गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः ॥ २० ॥

इत्यपिव्याख्यानम् । केचिद्दत्तमुष्टितलैरितिक्कान्तंपठन्ति । दत्तं मुष्टितलंयैर्गुणैःते दत्तमुष्टितलाःतैर्निपातितइत्यपिव्याख्येयम् ॥ १६ ॥

रणेक्रुद्धादेवीउद्धतंनाममहासुरञ्चशब्दात्ससैन्यंगदापातैश्चूर्णयामाससंपिपेष । परासुमकार्षीत् । त्रिनेत्रापरमेश्वरी चण्डिकादेवीरणेक्रुद्धासतीभिन्दिपालेनहस्तक्षेप्येणलगुडेनवाष्कलंनाममहासुरंजघान ।"भिन्दिपालःसृगस्तुल्यौ"। "रिष्टिःकृपाणिकाप्रोक्ताभिन्दिपालस्तुगोफणिः"इतिभिण्डिपालव्याख्यानममूलमपव्याख्यानं मूलेप्रेक्ष्यं प्रेक्ष्यावद्भिः । तथा परमेश्वरीबाणैः ताम्रं नाममहासुरंजघान । तथापरमेश्वरीबाणैरेव अन्धकनाममहासुरंजघान । तथापरमेश्वरीबाणैरेवउग्रमास्यं यस्यतंउग्रास्यंनाममहासुरंजघान । तथापरमेश्वरीबाणैरेवउग्रंवीर्यंनाममहासुरंच जघान । तथैवपरमेश्वरीबाणैरेवमहान्तौहनूकपोलाधोभागौयस्यतं महाहनुं नाममहासुरंजघान । त्रिनेत्रंचेतितुपाठेत्रीणिनेत्राणियस्य तं त्रिनेत्रं महासुरं त्रिशूलेनजघानचशब्दात्ससैन्यम् ।'परमाईश्वरीअश्नोतेराशुकर्मणिवरट्चेच्चोपधायाः' यद्वा, परमेश्वरस्यस्त्रीपरमेश्वरी ॥ १७ ॥ एकार्थवाचकौ ॥ १८ ॥

रणेदेवीअसिनाखड्गेनबिडालस्यमहासुरस्यशिरोमूर्द्धानंकायाच्छरीरात् वै प्रख्याततः पातयामास । रणेदेवीशरैःदुर्धरंनामदुर्मुखञ्चोभौनाममहासुरौ कर्मणी यमक्षयंयमगृहंद्वितीयंकर्म निन्ये प्रापयामास ॥ १६ ॥ नयतिर्द्विकर्मकः । 'क्षयोयक्ष्मणिकल्पान्तेनिलयेऽपचयेऽपि च' । 'कालञ्चकालदण्डेनकालरात्रिरपातय

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः । माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्यान् शृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥ २२ ॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च । निश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपञ्चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २४ ॥

त्'। कालंनाममहासुरंकालरात्रिरम्बिकाकालदण्डेनापातयदपभ्रंशयत् ।
उग्रदर्शनंनाममहासुरंअत्युग्रैःखड्गपातैः अताडयत् । तडआघातेचु-
रादिः । असिनैवअसिलोमानंमहासुरमच्छिदत् अच्छैत्सात् । 'गणैः सिं-
हेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः, । गणादिभिःउत्सवैरणोत्सवैःजयसम्बन्धिनि
क्ष्वेडाकृताजयसिंहनादः कृतइत्यर्थः । 'क्ष्वेडातुसिंहनादः स्यात्' । 'कालं'चे-
त्यादिश्लोकद्वयंकेचित्पठन्तिकेचित्तु न ॥ २० ॥

एवंप्रागुक्तभङ्ग्यास्वसैन्येआत्मीयसैन्येस्वयंसङ्क्षीयमाणेसतिमहिषासुरस्तु-
तदसहमानः सन्माहिषेणमहिषसम्बन्धिनामहिषाकारेणस्वरूपेणतान्देवीगणान्त्रा
सयामासउद्वेजयामास । संक्षीयमाणइतिक्षिक्षयेभ्वादिरकर्मकः परस्मैपदीइति तु
प्रयोगतोन्तर्भावितण्यर्थविवक्षायां'नाभुक्तंक्षीयतेकर्म'क्षीयन्तेचास्यकर्माणी'तिवत्स-
कर्मकत्वेसतिकर्मकर्त्तरिलटःशानचि'कर्मवत्कर्मणातुल्यक्रिय'इतियक्यात्मनेपदे'अकृ-
त्सार्वधातुकयोर्दीर्घे'रूपम् ॥ २१ ॥

महिषासुरःतुण्डप्रहारेणतुण्डेनवक्त्रेणजनिताघातेनकांश्चिद्गणान्देवीरोष
जनितान् पुरुषान्रणशूरान्भूतलेपातयामास । तथाक्षुरक्षेपैरपरान्भूमौपातयामास ।
'शफंक्लीवेक्षुरः पुमान्' । सतथान्याल्लाङ्गूलताडितान्गणान्भूमौपातयामास ।
'पुच्छोऽस्त्रीलूमलाङ्गूले' । सतथान्यांश्चशृङ्गाभ्यांविदारितान्गणान्भूमौपातया
मास । 'दारितेभिन्नभेदितौ '॥ २२ ॥

सोऽपि कोपान्महावीर्यः क्षुरक्षुण्ण महीतलः । शृङ्गाभ्यांपर्वतानुच्चांश्चिक्षेपचननादच

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।

लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६ ॥

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।

श्वासानिलास्ताःशतशोनिपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥

सतथावेगेनजवेनकांश्चिदपरान्भूमौपातयामास । सतथामहिषः नादेन ध्वनिनाकण्ठगर्जितेनापरान्व्याकुलचित्तान्भूमौपातयामास । अपरान्भ्रमणेनपरितोऽग्रतःपार्श्वतश्चभूतलेपातयामास । समहिषः अन्यान्निःश्वासपवनेननिःश्वासख्वपवनोवायुः तेनभूतलेपातयामास ॥ २३ ॥

इत्थंसमहिषासुरोः महादेव्याः अम्बिकायाः प्रमथानांपार्षदानांअनीकानि सैन्यानिप्रमथगणान निपात्यभूमौनितरांपातयित्वातस्याः सिंहंहन्तुंअभ्यधावतआभिमुख्येनाधावत् आद्रवत् । 'धावुगतिशुद्ध्योः' लङ्स्वरितेत्त्वादात्मनेपदम् । 'वरूथिनीवलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्' । ततः प्रमथगणमथनतःसिंहं हन्तुंआगमनंतस्य ततश्चमहिषे महासुरे विषयेऽम्बिकाचण्डिकाकोपंचक्रे ॥ २४ ॥

महावीर्यः समहिषासुरः क्षुरक्षु(खु)ण्णमहीतलः सन्योद्धुं क्रोधात् अग्रैकपादशफनिष्पिष्टकृताग्रक्षोणिभागः सन् उच्चैरभ्रँलिहाभ्यां शृङ्गाभ्यां उच्चैरभ्रँलिहान् पर्वतान् उच्चैरभ्रँलिहमुकुटमूर्द्धनि देव्याउच्चैश्चिक्षेप उच्चैरक्षैप्सीत् । अथचोच्चैर्ननाद । 'णदअव्यक्तेशब्दे' । गलगर्जनंचोच्चैचकार । महावीर्यः वीर्यसम्पन्नः सत्ववान् महिषोऽतितरामितियावत् ॥ २५ ॥

तस्यमहिषासुरस्यवेगेनजवेनयुक्तंभ्रमणंतेन विक्षुण्णाविशेषेणसंपिष्टामही व्यशीर्यतस्वयमेवविशीर्णाऽभवत् । 'शृहिंसायांक्र्यादिः'परस्मैपदीविपूर्वोऽकर्मकः । इहतुअन्तर्भावितण्यर्थविविवक्षायाम् । विशीर्यतेमेघः स्वयमेवविशीर्यते हेतुः स्वयमेवेतिवत्कर्मकर्त्तरिलङिरूपम् । किं च तस्यमहिषस्यलाङ्गूलेन पुच्छेन

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् । दृष्ट्वासाचण्डिकाकोपंतद्वधायतदाकरोत्

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २६ ॥

आहतः ताडितोऽब्धिः अर्णवः सर्वतः सर्वत्रपृथिव्यांसकलजनान् प्लावयामास । वारिपूरमग्नंविश्वं चकार । तसिप्रकरणे'आद्यादिभ्यउपसङ्ख्यानमि'त्यधिकरणेतसिः । यद्वा, 'कर्मणिल्यब्लोपेपञ्चमी' । सर्वतः सर्वांपृथ्वींप्लावयामास । मज्जयामास ॥ २६ ॥

घनाश्चमहान्तोमेघाः तेनमहिषासुरेणधुताभ्यां शृङ्गाभ्यां विभिन्नाः विदारिताः सन्तः खण्डं खण्डं शकलं शकलं ययुः प्रापुः । महिषेणधुतशृङ्गविदारिताः महान्तोमेघाः खण्डप्रकाराः खण्डसदृशाः सन्तः ययुरित्यर्थः । 'प्रकारेगुणवचनस्ये'त्यधिकस्यालपसादृश्येगुणवचनस्यद्विर्भावः । खण्डखण्डं ययुरितितुपाठे कर्मधारयवदुत्तरेष्विति'विकल्पेनकर्मधारयत्वातिदेशात् द्विरुक्तयोर्भागयोर्मध्येपूर्वभागसम्बधिन्याविभक्तेर्लुक् । 'श्वासानिलास्ताविशीर्णाः'श्वासानिलास्ताः शतशः, 'श्वासानिलाहताः शीर्णानिपेतुर्नभसोचलाः' । अत्रपाठत्रयेतस्यमहिषस्यरोषजाः श्वासाएवअनिलाः वायवः तैरस्ताः क्षिप्ताः अतएवविशीर्णाः चूर्णीभूताः अचलाः पर्वताःनभसःसकाशान्निपेतुः निपतिताः । यद्वा, श्वासानिलास्ताः शतशः शतं शतं शतशः । 'सङ्ख्यैकवचनाच्चवीप्सायां'शस्प्रत्ययः । यद्वा, । श्वासानिलैराहताः ताडिताइत्यनुसन्धेयम् । शीर्णाः चूर्णीभूताः ॥ २७ ॥

इतिप्रागुक्तरीत्याक्रोधसमाध्मातंक्रोधाग्निसंयुक्तंक्रोधेनसमन्तादाविष्टंविजृम्भितंतंअभ्यापतन्तं महिषं महासुरं दृष्ट्वावीक्ष्यतदातद्वधायतं महिषं हन्तुं चण्डिकादेवी कोपमकरोत्वधहिंसार्थः इतिवधिःप्रकृत्यन्तरं 'जनिवध्योश्चे'तिवधिग्रहणादवसीयते तद्वधायेति तस्यवधनंवधः तद्वधः भावेघञ् । जनिवध्योश्चेत्यतउपधाया वृद्ध्यभावः । 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणिस्थानिन' इतिचतुर्थी तद्वधंविधातुं

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।

छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत् ॥ ३० ॥

ततएवाऽऽशुपुरुषंदेवीचिच्छेद शायकैः । तंखङ्गचर्मणा सार्द्धं ततःसोऽभून्महागजः करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च । कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥

कोपं क्रोधमकरोत् अकुप्यत चडिकापेचण्डतेचण्डतिवाचण्डिका ॥ २८ ॥

म्रियन्तेऽस्मिन्वीराः मृधंयुद्धं तत्रमहतिमृधेसादेवीतावत्तस्यमहिषासुरस्यवधायवैप्रसिद्धं वरुणादवाप्तं पाशमायुधं क्षिप्त्वा प्रवर्त्य तं महासुरं वबन्ध । अथसपाशबन्धमसहिष्णुः माहिषं रूपं तत्याजअत्याक्षीत ततोनुससंत्यक्तमहिषाकारोमायावित्वादन्यएवपशुः शार्दूलः खड्गः पौत्रीवाप्रशस्तं प्रमथेनक्षमगात्रोऽभूत् । अथदेव्यापाशेनसोऽपिचाबद्धएवाभूत् ॥ २६ ॥

ततोमहिषादिरूपपरित्यागादनन्तरंसमहासुरोमायावित्वात्सद्यःसपदि देव्या समं योद्धुं सिंहोऽभवत् । ततोऽम्बिकादेवी तस्य मायामयसिंहस्यशिरः मूर्द्धानंयावद्यावताकालेनच्छिनत्तिछेत्स्यति तावत्तावत्येवकाले स मायावीमहासुरः खड्गपाणिः पुरुषः प्रादुर्भवन्नदृश्यतऐक्ष्यतदेव्येतिशेषः । 'यावत्तावच्चसाकल्येवधौमानेऽवधारणे'। खड्गः पाणौयस्य सतथोक्तः । 'प्रहरणार्थेभ्यः परेनिष्ठासप्तम्यौभवतः' इतिवक्तव्यम् ॥ ३० ॥

ततःखड्गपाणेःपुरुषस्यदर्शनानन्तरमेवदेवीआशुसत्वरंसायकैःआशुगैःखड्गचर्मणासार्द्धंतं खड्गपाणिपुरुषं कण्ठेचिच्छेद । खड्गचर्मचपुरुषंचसायकैश्चिच्छेदेति सूचयितुं सार्द्धमित्युक्तम । खड्गश्चचर्मचखड्गंच चर्मसेनाङ्गत्वादेकवद्भावः । तेनसार्द्धम । 'फलकोऽस्त्रीफलंचर्म'। चर्ममयश्चर्मगात्रत्राणंहस्तग्राह्यफलकम् । 'करेणचमहासिंहंतञ्चकर्षजगर्जच' । ततः पुरुषरूपतः सकाशात्समहासुरः महागजोऽभूत् ॥ ३१ ॥

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः । तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासाऽरुणलोचना ॥ ३४ ॥

सच महागजः करेण शुण्डादण्डेनतंप्रसिद्धं देवीवाहनंसिंहंचकर्षआकृष्टवान् जगर्जचवृंहितंचचकार। (गर्जशब्दे) भ्वादिः परस्मैपदी। गजःसिंहं चकर्षेतिहिअसुरविनाशसूचकउत्पातोऽयम्प्रसिद्धवैपरीत्यात् ॥ ३२ ॥

ततोदेवीतुपुनः सिंहंकर्षतः आक्षिपतः आहरतःतस्यमहागजस्यकरंशुण्डादण्डंखड्गेनचन्द्रहासेननिरकृन्ततनिकृष्याच्छैत्सीत्। 'कृतीछेदनेपरस्मैपदी। यदभ्यधुः,। 'कृणत्तिकृन्ततीत्येतेवेष्टनेछेदनेक्रमादिति'। इहतुछान्दसमात्मनेपदं ऋषयश्छान्दसम्पदमनुकुर्वन्ति'। 'अन्यथानिरकृन्तदित्येवस्यात्'। कर्षतस्तत्करंदेवीतिपाठेकर्षतोगजस्यकरः प्रसिद्धः तत्करइतिव्याख्या।। इहसमहासुरः प्राक्महाद्दयक्षमः। 'महिषोऽभूत्ततोव्याघ्रः खड्गः पोत्रीहरिःपुमान्। गजोऽथमहिषोभूयोमायावीसमहामृधे' इत्येतदावेदयितुमाह। ततोगजवपुस्त्यागानन्तरं भूयःपुनरपि समहासुरः माहिषम्वपुराश्रितःप्राप्तवान्सन् तथैवपूर्ववदेवप्राग्वतमहिषःसन्तथैवत्रैलोक्यंक्षोभयामासक्षोभम्प्रापयामास। तथैवसचराचरंत्रैलोक्यंलोकत्रयंक्षोभयामास। आश्रितइतिश्रिञ्सेवायाम्। प्रतिष्ठितप्रतिज्ञानार्थःसकर्मकः। गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासेत्यादिनाकर्त्तरिक्तः। वपुराश्रितः अङ्गीकृतवान्सन्त्रैलोक्यंक्षोभयामासेत्यर्थः। आस्थितेत्यविसर्गपाठेतु 'आङःस्थ प्रतिज्ञाने' इत्यात्मनेपदंकर्तरिलुङ्'स्थाघ्वोरिच्चे'त्यकारस्यइत्वंसिचःकित्वञ्चतेनगुणाभावः। ह्रस्वादङ्गादितिसिचोलोपः। सइतिच्छेदेतुमहासुरइत्यर्थः। चराश्चदेवाः अचराश्चपर्वतादयः चराचरं 'सर्वोद्वन्द्वोविभाषैकवद्भवति। चराचरात्मकंत्रैलोक्यंसमहासुरः क्षोभयामासेत्यर्थः। यद्वा, चराश्चाचराश्चचराचराःतैः सहितं त्रैलोक्यंसचराचरंसम्भवात्स्वरूपाख्यानतोविशेषणविशेष्यभावः। चरिर्गत्य-

ननर्द चासुरः सोऽपि वलवीर्य्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्याञ्च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥ ३५ ॥
सा चतान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्तीशरोत्करैः । उवाचतंमदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्

देव्युवाच

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ!मधुयावत्पिवाम्यहम् । मयात्वयिहतेऽत्रैवगर्जिष्यन्त्याशुदेवताः

र्थः । 'चरित्रलिपतिवदीनांवाद्धित्वमचयाक्त्राभ्यासस्ये'तिपचाद्यचिद्धिर्भावेऽभ्यासस्यचआगागमः । आग्विधिसामर्थ्याद्धलादिशेषाभावः । अन्यथाह्यागमादेशयोर्विशेषाभावादागमलिङ्गमपार्थकंस्यात् । 'चरिष्णुजङ्गमचरंत्रसमिङ्गंचराचरम्' ॥ ३३ ॥

ततस्त्रैलोक्यक्षोभणाज्जगन्माताजगताञ्जननीजगद्धिताचण्डिकादेवीक्रुद्धासतीअतएवारुणलोचना अरुणेरक्तेलोचनेयस्याः सा उत्तमंअमृतम्पानंमधुपुनः पुनः-पपौ । पापाने :कर्मणिल्युट् । लीलयामध्वेवपपौ पुनःपुनश्चजहासैवयुद्धन्तुनगणयामास । हसेहसनेलिटस्तिपोणल् । पपावित्यातऔणलः । वीरपानञ्चकारेत्यर्थः । 'वीरपानन्तुयत्पानंवृत्तेभाविनिवारणे' । वीराणांकर्त्तव्यंमद्यपानंवीरपानम् । 'मुहुःपुनःपुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः' । 'घटायुतायुतोन्मानंमधुमांसोपदंशकम् । एकैकवारतश्चण्डीपपावत्ररणोत्सवे '॥ ३४ ॥

बलेनसामर्थ्येनवीर्येणप्रभावेणतेजसामदेनहर्षेणगर्वेणचोद्धतः अविनीतो निर्मर्यादउत्कटः समहिषासुरोऽपिननर्दचकण्ठगर्जनञ्चकार । नर्दगर्दशब्दे । चण्डिकाम्प्रतिभूधरान् गिरीन् विषाणाभ्यांश्रृङ्गाभ्याञ्चिक्षेपप्रक्षिप्तवान् । अविनीतः समुद्धतः । 'स्थैर्यसामर्थ्यसैन्येषुबलंनाकाकसीरिणोः' । 'वीर्यंबलंप्रभावश्च ॥ ३५ ॥

साचण्डिकातेनमहिषासुरेणप्रहितान्क्षिप्तान्तान्भूधरान्गिरीन्शरोत्करैः शराणामुत्करैः उत्क्षेपैःचूर्णयन्तीनिःशेषयन्तीसतीतंमहिषासुरंमदोद्धूतमुखरागा-

ऋषिरुवाच

एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम् । पादेनाक्रम्य कण्ठेच शूलेनैनमताडयत्॥

ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्द्ध निष्क्रान्त एवाति (सीद्दे) देव्यावीर्येण सम्वृतः ॥ ३९ ॥
अर्द्धनिष्क्रान्त (निःक्रान्त) एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ४० ॥

कुलाक्षरंयथास्यात्तउवाच । मदान्मधुपानजादुद्भूतोमुखेरागः तेनाकुलान्यक्षराणिवर्णायस्मिन्कर्मणिवचनेतन्मदोद्ध धूतमुखरागाकुलाक्षरंक्रियाविशेषणानांकर्मत्वं नपुंसकैकत्वञ्चवाच्यम् । यद्वा, मदोद्धूतमुखरागादेवामदेनमधुपानजेन-उद्धतोजातोमुखेरागः कषायभावोयस्याः सा आकुलाक्षरमितिक्रियाविशेषणम् । आकुलानिव्यामिश्रितान्यस्पष्टाक्षराणियस्मिन्कर्मणितत् ॥ ३६ ॥

अत्रह्याकुलाक्षरमित्युक्तत्वाद्गर्जगर्जइत्येवम्प्रतिपदंव्यत्यस्ताक्षरं देव्योक्तं ऋषिणातुतत्सत्कृत्यार्थसङ्गत्याप्रणीतम् । हे मूढ हेअज्ञत्वंक्षणंतावद्गर्जगर्जयावदहंमधुपिबामि । यावताक्षणेनमधुपास्यामितावन्तंक्षणंत्वमपिकण्ठगर्जनंकुरुकुरु । तावदेवतवायुः ततः क्षणान्तरेमयात्वयिहतेव्यसूकृतेसतिअत्रैवसंग्रामभूमावेव अत्रैवअस्मिन्नेवक्षणेवा आशु अविलम्बितंदेवताइन्द्रादयोदेवागर्जिष्यन्त्यानन्दतोगास्यान्ति । गृजिशब्देलट् पिबामीतिपानाग्रे भविष्यतिकाले'यावत्पुरानिपातयोर्लंडिति'लट् । 'अज्ञेमूढयथाजातमूर्खवैयर्थ्यबालिशाः' ॥ ३७ ॥

सादेवीएवमुक्त्वासमुत्पत्यसम्यक्उत्पत्यतंमहिषासुरंआरूढाआरूढवतीएवं महिषासुरं कण्ठेच कण्ठप्रदेश एव एकेन पादेन उचितेनाक्रम्यशूलेनाताडयत् । तडआघातेचुरादिः । आरूढा इहतु'गत्यर्थाकर्मके'त्यादिनाकर्त्तरिक्तः । एनमित्यन्वादेशेरूप'मिदमेतदोऽन्यतरस्याम्' ॥ ३८ ॥

ततोऽनन्तरं स महिषासुरः तयादेव्यापदापादेन आक्रान्तः स शूलेन ताडितोऽपितस्मान्निजमुखादात्मीयमुखात्सकाशादर्द्धनिःक्रान्त एव अर्द्धेन शरीरेण

एवं समहिषोनाम ससैन्यः ससुहृद्गणः । त्रैलोक्यंमोहयित्वा तुतयादेव्यानिपातितः
त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषेविनिपातिते । जयेत्युक्तं ततः सर्वैः स देवासुरमानवैः ॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् (यत्)। प्रहर्षञ्च परंजग्मुःसकलादेवतागणाः
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सहदिव्यैर्महर्षिभिः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येमहिषासुरवध वर्णनंनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

दुर्गासप्तशत्यांतृतीयः ॥

निर्गतः देव्या वीर्येण बलेन सामर्थ्येनसम्वृत्तः सञ्छादितः स्तम्भितः आसीत् तथैवाऽऽस । न सम्पूर्णोनिःक्रान्तः अर्धनिष्क्रान्तः अर्द्धेन वा निष्क्रान्तःअर्धनिक्रान्तः ॥ ३६ ॥

असौमहासुरो महिषवक्त्रादर्द्धनिःक्रान्तः शरीरार्द्धेननिर्गतः युध्यमानः युध्यमानः युद्धंकुर्वाणएवतयादेव्या भगवत्या महासिनामण्डलाग्रेणशिरः तस्यासुरस्य उत्तमाङ्गंछित्वाभूमौनिपातितः । शरीरस्यार्द्धःनिःक्रान्तःविशेषेणसमासः अर्द्धेनवानिःक्रान्तः कर्त्तृकरणेकृताबहुलमितिसमासः । नबहुव्रीहिः । अर्द्धोनिःक्रान्तोदेहभागोयस्येतिविग्रहप्रसङ्गात् ॥ ४० ॥

एवमुक्तरीत्यामहिषोनामप्रसिद्धः स महासुरःसैन्यसहितःसुहृद्गणसहितः त्रैलोक्यं त्रींल्लोकान्मोहयित्वा मोहंदुःखम्प्रापय्य ततो युद्धं कुर्वाणः तयादेव्यानाशं प्रापितः । महाकाल्यानिपातित इति पाठेमहान्कालः ;उग्रः तत्पत्नी महतीकाली दुर्गा तया वा ॥ ४१ ॥

तदातस्मिन्समये देव्या महिषेमहासुरेविनिपातितेसति त्रैलोक्यस्थैः सर्वैः पुरुषैः देवीं प्रति जयलोकोत्कर्षेणवर्तस्वेत्युक्तम् । कीदृशैः देवाः स्वर्लोकसञ्ज्ञानः इन्द्रादयः असुराः पातालवासिनो बलिप्रभृतयः मानवा भूलोकसञ्ज्ञानो ब्राह्मणादयः तैः सहितैः पुनःकीदृशैः तस्मान्महिषासुरादाभूताः पीडाम्प्राप्तवन्तः तैः

'आस्तुस्यात्कोपपीडयोः'। भूप्राप्तावात्मनेपदीचुरादिः। 'आधृषाद्वेति'णिजभावपक्षेकर्त्तरिक्तेरूपम्। योगविभागात्समासः। इत्थं भूतेतिनिर्द्देशाद्वा॥ ४२॥

ततो महिषमर्द्दनादनन्तरं यत्किञ्चिद्दैत्यसैन्यमवशिष्टं स्वल्पं तदपि हाहाकृतंहाहा इति स सम्भ्रमं दीनभावेन कृतं आहितंतत्ननाश। णशअदर्शने। अदर्शनमभावः। अदृष्टमभूत्। किञ्चदेवतानांगणाः तु सकलाः सर्वेऽपिपरमुत्कृष्टं प्रहर्षं सन्तोषंजग्मुश्चप्राप्तवन्तः। 'हाविषादाशुगर्त्तिषु'। चापलेद्वेभवत इति वक्तव्यम्। सम्भ्रमेणप्रवृत्तिश्चापलं। हाहा इति सम्भ्रमप्रवृत्त्यादीनत्वेनकृतमनाथंननाश दैत्यसैन्यमित्यर्थः॥ ४३॥

अथ तां देवीं सुराःइन्द्रादयः दिविभवैर्दिव्यैर्महर्षिभिःसह सहिताःतुष्टुवुः स्तुतवन्तः। सुराश्चदिव्यामहर्षयश्चदेवींस्तुतवन्तइत्यर्थः। अथ गन्धर्वपतयश्चजगुः हाहाहूहूप्रभृतयोगन्धर्वाःगायमानाः तेषां पतयोगानविचक्षणाः तुम्बुरुप्रभृतयः गीतवन्तःगैशब्देलिट्। अथ अप्सरोगणाश्चननृतुः उर्वशीप्रभृतयः स्वर्गवाराङ्गनाः तासांगणाः नृत्यवन्तोदेवीविजयेमहोत्सवे। 'नृतीगात्रविक्षेपे नाट्ये'लिट् उस्॥ ४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे श्रीतो०श्रीमदुद्ध० श्रीशन्तनुचक्रवर्तिविरचितायांदेवीमाहात्म्यटीकायां महिषासुरवधवर्णनंनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

———

चतुरशीतितमोऽध्यायः

(चतुर्थोऽध्यायः)

शक्रादिस्तुतिवर्णनपुरःसरं देवेभ्योदेवीवरप्रदानम्

ऋषिरुवाच

ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इन्द्रपुरोगमाः । स्तुतिमारेभिरेकर्तुं निहते महिषासुरे
शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ॥
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥

महिषासुरेनिहतेसतिततोऽनन्तरंइन्द्रपुरोगमाः शक्रप्रमुखाःसर्वेऽपिसुरगणाः स्तुतिकर्त्तुंआरेभिरेउपक्रान्तवन्तः। रभराभस्ये। आत्मनेपदेलिट्। पुरोगच्छतीतिपुरोगमः इन्द्रःपुरोगमः अग्रेसरोयेषां ते ॥ १ ॥

रणेदेव्या चण्डिकया तस्मिन्नतिवीर्येसुरारिबलेमहिषासुरसैन्ये च अति वीर्येदुरात्मनिमहिषासुरेच हतेसति प्रणतिनम्रशिरोधरांसाः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः शक्रादयः सुरगणाःतां देवींवाग्भिःतुष्टुवुः स्तुतवन्तः। 'वीर्यम्बलम्प्रभावश्च'। प्रणतिभिर्नम्राः शिरोधराः कन्धराग्रीवाअंसाः स्कन्धाभुजशिरांसिच येषां ते धरन्तीतिधराः शिरसांधराः शिरोधरा प्रहर्षेप्रमोदेपुलकाः रोमाञ्चाः तेषां उद्गमः प्रादुर्भावः ते न चारवोमनोहरादेहा येषां ते। वाग्भिरितिचतुर्विधाभिर्वाणीभिः। यद्भाष्यं 'चतुष्टयी शब्दानाम्प्रवृत्तिः'। जातिशब्दाः' गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाश्चतुर्धाइति।'अन्येत्वाहुः। 'द्रव्यंगुणंक्रियाञ्जातिमाहुः शब्दाश्चतुर्विधाः। यदृच्छयाप्रयुक्ताः स्युः सञ्ज्ञाशब्दाश्चपञ्चमाः'। अपरेत्वाहुः। 'वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमाश्रुतिगोचरा। द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मावा-

देवा ऊचुः

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलञ्च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनायनाशाय चाशुभभयस्यमतिं करोतु ॥ ४ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीःपापात्मनांकृतधियांहृदयेषुबुद्धिः ।
श्रद्धासतां कुलजनप्रभवस्यलज्जातांत्वांनताःस्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥ ५ ॥

प्यनपायिनाचे'तिचतुर्विधावागुच्यते । शब्दानांनिष्पत्तिर्यस्याः सा घटाद्यर्थ-रूपावाक्वैखरीत्युच्यते । श्रुतिगोचराश्रोत्रग्राह्यावाक् मध्यमेत्युच्यते । द्योतितार्थोययासाद्योतितार्था ज्ञानरूपावाक् पश्यन्तीत्यच्यते । अनपायिनी ब्रह्मरूपावाक्सूक्ष्मेत्युच्यते ॥ २ ॥

निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्यायया देव्या आत्मशक्त्यास्वशक्त्याइदंजगत् प्रपञ्चितं तां अखिलदेवमहर्षिपूज्यां अम्बिकां देवीं भक्त्याआनताः स्म । सानोऽस्माकं शुभानिविदधातुकरोतु । 'तुहिचस्महवैपादपूरणे' । निःशेषाः सर्वेदेवाः तेषांगणाः तेषांशक्तयःतासांसमूहाः तएवमूर्त्तयोयस्याः सा । अखिलाः सर्वेदेवाः महर्षयश्चतैस्तैश्चपूज्यां पूजनीयां आनतावयं भक्तिप्रह्वाः ॥ ३ ॥

यस्याः देव्याअतुलमनुपमंप्रभावं बलं वक्तुं साकल्येनवर्णयितुंब्रह्माचतुर्मुखः भगवान्सर्वैश्वर्यसम्पन्नःअनन्तोविष्णुःहरश्चनालं नहिसमर्थः हि प्रसिद्धमेवतत् । साचण्डिकादेवी अखिलजगत्परिपालनायअशुभभयस्य नाशायमतिंकरोतु । अखिलंजगत्परिपालयितुं अशुभेभ्योभयं नाशयितुं च स्वयं स्वान्तं सदाऽवधानंकरोतु । प्रभावः प्रभुत्वम् । 'स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषुबलम्' । अशुभभवस्येतिपाठेभवउद्भवः ॥ ४ ॥

किं वर्णयाम तव रूममचिन्त्यमेतत् किञ्चातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ।
किञ्चाहवेषु चरितानि तवातियानि(द्भुतानि) सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापिदोषैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥

हे देवि! सुकृतिनां पुण्यवतां भवनेषुगेहेषु याश्रीः सम्पत्तिरभूदस्तिभविष्यतिस्वयं तां त्वा नताः प्रणतावयंस्म । अतः त्वं सुकृत्यात्मकं विश्वं श्रीः सतीपरिपालय । हे देवि! पापात्मनांभवनेषुयाऽलक्ष्मीः अभूदस्तिभविष्यति स्वयंतांत्वांनताः प्रणताः वयम् । अतस्त्वंपापात्मकं विश्वंअलक्ष्मीः सतीपरिपालय । हे देवी! कृतधियांज्ञानिनांहृदयेषुयाबुद्धिःअभूदस्तिभविष्यतिस्वयंतांत्वांनताः प्रणतावयं अतस्त्वंकृतमध्यात्मकं विश्वं बुद्धिः सतीपरिपालय । हे देवि! सतांसज्जनानांहृदयेषुयाश्रद्धासत्कर्मनिष्ठाऽभूदस्तिभविष्यतिस्वयं तां त्वां नतावयं अतः त्वंसदात्मकं विश्वंश्रद्धासतीपरिपालय । हे देवि!त्वंकुलजनप्रभवस्यहृदयेयालज्जाभूदस्तिभविष्यति तांत्वांनतावयम् । अतः त्वंसत्कुलाचारसं रक्षणं लज्जालज्जासतीसत्कुलजनप्रभात्मकं विश्वं परिपालय । स्मशब्दः पादपूरणे । स्वयमव्ययम् । सुष्ठुअयः शुभावहोविधिर्यस्मिन्कर्मणिनमने परिपालनेचातत् । स्वयमितिक्रियाविशेषणं नपुंसकलिङ्गम् ॥ ५ ॥

असुराश्चदेवाश्च असुरदेवाः शाश्वतिकविरोधचिवक्षायांत्वसुरदेवं तेषां गणाःआदयोयेषां ते मनुष्यादानांतेतथोक्ताः । 'तेषु अजाद्यदन्तमि'त्यसुरशब्दस्य पूर्वप्रयोगः । अजाद्यदन्तत्वादभ्यर्हितत्वाच्च अमरदैत्यगणादिकेष्विति तुपाठः सभ्यः । हे देवि!सर्वेष्वसुरादिगणेषु तवाद्भुतंरूपमचिन्त्यं मनसापिचिंतयितुंस्मर्त्तुमप्यशक्यं एतत्तवमनोहरं रूपं वाचाकिंवर्णयाम । वर्णवर्णक्रियायांचुरादिलोडन्तम् । यन्मनसापिस्मर्त्तुमशक्यंतद्वाचाकिंवर्णयितुंशक्यंस्यादितिभावः । हे देवि ! तवभूर्यधिकं असुरक्षयकारिअतिवीर्यंचकिंवाचावर्णयामयन्मनसा

यस्याः समस्तसुरतासमुदीरणेनतृप्तिं प्रयान्तिसकलेषुमखेषु देवि !।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैःस्वधा च ॥ ८ ॥

प्यचिन्त्यंस्यात् । हे देवि! सर्वैष्वसुरदेवगणादिकेष्वाहवेषु संग्रामेषुतवाद्भुता निचरितानि वीरकर्माणि किं वर्णयामवाचायानि मनसाऽपि स्मर्त्तुम-शक्यानि ॥ ६ ॥

हे देवि! त्वंत्रिगुणापित्रयोगुणायस्यां सा सत्त्वंरजस्तम इतित्रयोगुणाः । सत्त्वगुणात्वं वैष्णवीशक्तिः सती जगन्ति रक्षसि रजोगुणा त्वं ब्राह्मीशक्तिः स तीसृजसि तमोगुणारौद्रीशक्तिः सतीसंहरसिअतः सर्जनीयसंरक्षणीयसंहरणीया-निचिविधानिजगन्तिस्वर्गभूपातालाख्यानियेषांत्वंहेतुरसि । हे देवि!त्वंहरिहरादि-भिरपिदेवैः तत्त्वतोनज्ञायसेमायारूपत्वात् । हे देवि! त्वं अपाराअनवधिरनन्ता । त्वं सर्वाश्रयासर्वआश्रयोयस्याःसा । आश्रीयतेआश्रयासर्वस्याश्रयासर्वाश्रया । हे देवि! इदमखिलंजगत्तवैवांशभूतंमायामयत्वात् । जगतःअंशरूपेण निष्पन्नं-अंशत्वंभूतंप्रापदितिवांशभूतम् । त्वं अव्याकृताकेनापिनव्याकृतासिशब्देनवाक्येन वा । 'यतोवाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसासहे'तिश्रुतेः । त्वं च विद्यात्वेन परब्रह्मतत्त्वमेव । यद्वा, हे देवि! त्वं अव्याकृतासिनकेनापिप्रकाशितासि । परप्रकाश्यत्वानभ्युपगमाद्ब्रह्मस्वरूपस्यस्वयंप्रकाशत्वाभ्युपगमाच्च । त्वं च परब्रह्मतत्त्वमेवस्वयंप्रकाशमनतिशयानन्दचिद्रूपमसीत्यर्थः । यद्वा, अव्याकृता ऽव्याहताकेनापिनहिंसिताऽसि । कृञ्हिंसायांस्वादिः । त्वमेवतुयुद्धेऽहिता-न्व्याकृणोषिव्याहंसि । यदाहुः । 'हिंसाकरणयोःस्वादौकृणोतिकृणुतेकृञः । करोतिकुरुतेद्वेद्वेसम्पद्येतुक्रमादि'ति । अव्याकृताहिपरमेतिपाठेतुहियस्मात् । हे देवि! त्वंपरमापराउत्कृष्टामालक्ष्मीःततः अः विष्णुः तेनव्याकृताउरसिस्थापिता लोकेषु वा । यद्वा, हे देवि ! हियस्मात्तवरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवा-करः ददौ अतः त्वं अव्याकृतासि अविनासूर्येणआसमन्तात्कृतातेजोभिर्निर्मि-

यामुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रतात्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्याऽसिसाभगवती परमा हि देवि! ॥ ६
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतांश्च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्ताऽसि सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥ १०

तासि। अतएव त्वं परमापराश्रेष्ठा मातेजोलक्ष्मीः। 'अवयःशैलमेषार्काः'। यद्वा, 'अव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या'। हे देवि! हियतः त्वं जगतामाद्या मूलभूता। अतः सृष्टेः प्राक्केवलैवेत्यव्याकृतासत्त्वरजस्तमोगुणानुदयाद् भेदप्रत्ययानुदयात्सत्त्वादिना अपृथक्कृता साङ्ख्यदर्शनप्रसिद्धा परमाप्रकृतिः प्रधानाख्यासि। इयं देवीसाङ्ख्यमतेप्रकृतिराख्याता। वेदान्तिनस्तुतामनिर्वचनीयामात्ममायामनादिमविद्यामाहुः। शाब्दिकास्तां शब्दशक्तिमाचक्षते। तान्त्रिकास्तां कर्मणामपूर्वोत्पादनसामर्थ्यंललणांफलगतिमाहुः। तार्किकास्तां च वस्तुतत्त्वावसितिसिद्धिभेदामाहुः। शैवास्तांशिवशक्तिसंसक्तिमाहुः। वैष्णवाः विष्णुमायांतामाहुः। शाक्तास्तुतांमहामायामनादिमाहुः। पौराणिकाः तां देवीमाहुः॥ ७॥

सुरऐश्वर्ये। सुरन्तिसुराः सुराणांभावःसुरतासास्तियेषांतेसुरताः इन्द्रादयः। मत्वर्थेऽर्शआदित्वादच्। समस्ताश्चतेसुरताश्च समस्तविबुधा इतियावत्। हेदेवि! सा वैप्रसिद्धास्वाहात्वमेवासि'स्वाहावहुतभुक्प्रिया'। यस्याःसमुदीरणेन सकलेषु मखेषु यज्ञेषु समस्तसुरताः यज्ञभुजः तृप्तिं प्रयान्ति। किं च हे देवि! वै प्रसिद्धास्वाहाच त्वमेवासिअतएवखलुपितृयज्ञेषु जनैः श्राद्धकृद्भिः पुरुषैः पितृगणस्य तृप्तिहेतुः। स्वधेत्येवंमन्त्रात्मासतीत्वमेवोच्चार्यसेकथ्यसे। 'दैवेश्राद्धे भवेत्स्वाहा पित्र्ये श्राद्धेस्वधोच्यते। स्वाहादेवहविर्दानेश्रौषड्वौषट्वषट्स्वधे' त्यभिधानेतुविभागोनाश्रितः॥ ८॥

हेदेवि! हिनिश्चयेनयामुक्तिहेतुःअचिन्त्यमहाव्रतापरमावेदान्तोद्भावनीयपरब्रह्मत-

मेधाऽसि देवि! विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गाऽसि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरीत्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११॥

त्त्वावगतिरूपसाक्षात्कारलक्षणाविद्यास्तिभगवतीसात्वमेवसुनियतेन्द्रियतत्त्वसारै-मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैरभ्यस्यसेपुनःपुनरावर्त्यसेशिक्ष्यसेइत्यन्वयः। विद्यासिइतिपाठेतु हे देवि! हि निश्चयेन त्वमेव भगवती सा परमा वेदान्त श्रवणमनननिदिध्यासनवर्जनीयब्रह्मतत्त्वावगत्याकृतिसाक्षात् कृतिरूपाविद्यासि या यद्रूपा विद्या त्वमेव मुक्तिहेतुः अविचिन्त्यमहाव्रता त्वं सुनियतेन्द्रियतत्वसारै-मोक्षार्थभिरस्तसमस्तदोषैः मुनिभिरभ्यस्यसे शिक्ष्यसे शश्वद्गुरुभ्य इत्यन्वयः। मुक्तिरमृतं कैवल्यम्। 'ज्ञानादेवतुकैवल्यमि'त्यभ्युपगमात्। मुक्तिहेतुर्विद्या अविचिन्त्याचिन्तुयितुमशक्या। दुस्तराणिमहान्तिव्रतानि उपवासादीनिय-स्यांसाचिन्त्यमहाव्रता अभ्यस्यसे। असुक्षेपणेऽभिपूर्वः कर्मणिलटः 'थासः से'। सुष्ठुनियतानिविषयेभ्योव्यावर्तितानीन्द्रियाणियैः ते चते तत्त्वसाराश्च तत्त्वंतत्त्वज्ञानं सारं नान्यं येषां ते तत्त्वसाराः। मन्यन्तेमुनयः तैः मोक्षमर्थय-न्तेमोक्षार्थिनः अस्तः नष्टः समस्तदोषः कामादिरूपोयेषान्तेऽस्तसमस्तदोषाः तैः विद्यतेज्ञायन्तेऽनयाविद्याभगवतीसर्वैश्वर्यसम्पन्नापरमाउत्कृष्टा ॥ ९ ॥

हे देवि! भगवतीऐश्वर्यादिसम्पन्नाशब्दात्मिकावर्णपदवाक्यरूपवाणी-स्वरूपा। सुविमलर्ग्यजुषांउद्गीथरम्यपदपाठवतां साम्नां च निधानंसर्वजगतां आर्तिहन्त्रीपरमा उत्तमाचतुर्वर्गदर्शिनीवार्त्तावृत्तान्तरूपात्रय्यसि वेदानांत्रयीभवसी त्यन्वयः। अथवा हेदेवि! भगवती त्वं सर्वजगतां भवभावनायसंसृत्युत्पादनाय-परंनिधानमाश्रयः स्थानमसि। त्वं आर्तिहन्त्र्यसि। त्वं वार्तासिकृषिगो-रक्षादिवृत्तिरसि। त्वं शब्दात्मिकानादरूपासि। यद्वा, वर्णपदवाक्यरू-पाऽसिगद्यपद्यात्मिकाऽसि। हे देवि! त्वं सुविमलानिऋग्भिः सहितानियजूंषि तेषां। ऋचः ऋग्वेदाः यजूंषियजुर्वेदाः तेषां साम्नांसामवेदानां च त्रय्यसी-

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र विम्बानुकारि कनकोत्तमकान्ति कान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ १२ ॥

त्यन्वयः । वेदशाखानां बाहुल्याद्बहुवचनम् । उद्गीथउद्गीतं अतएवरम्य-पदपाठवतां उद्गीथरम्याणिपदानितैः कृत्वा पाठवतां अन्यथापदानांपाठः पदपाठः उद्गीथेनरम्यः पदपाठोयेषांतानिउद्गीथरम्यपदपाठानिसामानीतिस्यात् । उद्गीथः प्रणव इतिक्षीरतरङ्गिणीकारोव्याख्यत् । उद्गीथः सामवेदः इत्यौणादि-वृत्तिकारः । प्रणवपक्षेउद्गीथरम्यता ऋग्यजुषाणामप्यस्ति । यद्वा, उद्गीथउद्गीतंसाम्निप्रसिद्धं 'वार्त्तावृत्तौजनश्रुतौ' । वृत्तिः कुसीदपाशुपाल्यवाणिज्याख्या । जनश्रुतिर्वृत्तान्तः । 'स्त्रियामृक्सामयजुषी इतिवेदास्त्रयस्त्रयी' । ऋचः यजूंषि च ऋग्यजुषाणि अचतुरादिनासमासान्तः । इहतुसमासान्तवि-ध्यनित्यत्वमाश्रितम् । सुविमलानिऋग्यजूंषियेषां । यद्वा, समासान्तर-मुक्तमेव । भवभावनाय भवः शिवः परमात्मा यस्य भावनं ध्यानं तस्मैप्रवृत्तात्र-यीत्वमेवासीत्यर्थः । उग्रे जन्मनिकल्याणे प्राप्तौ संसृतिसत्तयोः भवः आर्त्तिह-न्त्रीति जनिकर्तुः प्रकृतिरितिनिर्देशात्समाससिद्धिः । 'अर्तिः पीडाधनुःकोट्योः' आङ्पूर्वताक्वचित् ॥ १० ॥

हे देवि! त्वं मेधासि अतएव त्वं विदिताखिलशास्त्रासि । यद्वा, हे हे देवि! त्वं विदिताखिलशास्त्रसारामेधासि । 'धीर्धारणावतीमेधा' । विदिता-न्यखिलानि शास्त्राणि साराणि चतुर्वर्गतत्त्वपराणिन्याय्यानियथामेधयासात्वमेवा-सि । 'प्रवृत्तिर्वानिवृत्तिर्वानित्येनकृतकेनवा । पुंसां येनोपदिश्येतत्तच्छास्त्रम-भिधीयते' । हे देवि! त्वमसङ्गासन्त्यक्ताखिलबन्धहेतुः अप्रतिबन्धाऽनिवारि-तगतिः । दुर्गादुःप्रापा दुःखेनगम्यमानादुर्गा । दुर्गभवसागरनौरसि दुर्गोदु-स्तरोभवः संसारः सागरइवतत्रनौः तरणिरसि । यद्वा, दुर्गंदुस्तरंभवंस्य-तिखण्डयतिदुर्गभवसा न विद्यतेगरोविषंदुःखं यत्रसाअगरा अगराचासौनौश्चेति

दृष्ट्वा तु देवि! कुपितं भ्रुकुटीकराल मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १३ ॥

अगरनौः दुर्गभवसाचासौ अगरनौश्च । यद्वा, त्वं दुर्गेदुर्गमेदुःप्रापेभवेश-रूमौपरब्रह्मभूतत्वेसागरेसा भूते विषये असङ्गारागादि रहितादुर्गादुःप्रापानौरसि । नौरिवनौर्देवी ब्रह्मप्राप्तिसाधनविद्यारूपेत्यर्थः । हे देवि ! त्वं कैटभारिहृदयंक कृताधिवासाश्रीरसि विष्णुवक्षस्थलनिवासिनी लक्ष्मीः त्वमेवासि । हे देवि! त्वमेवशशिमौलिकृतप्रतिष्ठागौरीउमासि । शशीचन्द्रः मौलौकिरीटेयस्य स शम्भुः तेनकृताप्रतिष्ठाऽवस्थितिरर्द्धशरीरभाक्त्वेनयस्याः सा । 'चूडाकिरीटं केशाश्चसंयतामौलयस्त्रयः' ॥ ११ ॥

ईषत्सहासं मन्दस्मितोपेतंरुचिरम्परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारिपूर्णेन्दुबिम्बोप मंकनकेषुउत्तमंयत्कनकंतस्यैवकान्तिःशोभायस्यतत् अतएव कान्तंमनोहरं एवम्भूतं तववक्त्रकमलंजगन्मोहनंजयति तथापितद्विलोक्यसहसाऽतर्कितंआत्तरुषाप्राप्तको-पेनमहिषासुरेणप्रहृतंअत्यद्भुतमेतत् । अहोईदृशञ्जगन्मोहञ्जगत्सञ्जीवनंवक्त्रंवि लोक्यपुमानानन्दमाप्नुयात् तत्कथंमहासुरः सञ्जातकोपः प्राहार्षीदितिभावः । अतर्कितेतुसहसाऽव्ययम् । सहसाबलेनवा । 'सहोबलंसहामार्गः' । सहतेसहः अनव्ययत्वेसहसाकृतमि'त्योजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयाया'इत्यौपपदिकमलुग्वि-धानञ्चावगमकम् । अद्भुतं अदिभुवोडुतच् । अदित्याश्चर्येव्ययम् । आत्तारुट् क्रुधेन सतेन ॥ १२ ॥

हेदेवि! कुपितन्क्रोधाविष्टंभृकुटीकरालं भृकुट्याकरालंविषमंभयङ्करंअत-एवक्रोधताम्रं उद्यच्छशाङ्कसदृशच्छविउद्यन्उदयंकुर्वन् शशाङ्कश्चन्द्रः आरक्तः पूर्णश्च तेनसदृशीछविः प्रभायस्यतत् । तदीयंसंग्रामोन्मुखं दृष्ट्वातुदृष्ट्वैवमहिषासुरः सद्यःसपदिदर्शनक्षणएवप्राणान्नमुमोचनतत्याजेतियत्तदतीवचित्रम् । युक्तोऽय-मर्थः । हिनिश्चयेन । कुपितान्तकदर्शनेन कुपितकृतान्तदर्शनेनकैःजन्तुभिः

देवि! प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयति कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४ ॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि नच सीदति धर्म(बन्धु) वर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १५

जीव्यतेनकैश्चिदपि। जीवप्राणधारणेअकर्मकत्वाद्भावेलटियगात्मनेपदप्रथमपुरुषैकवचनमेवभावस्यैकत्वात्प्राणधारणं प्रकृतावन्तर्भूतं इति'जीवतेदेवदत्त'इतिप्रयोगेपृथक्प्राणपदंकर्मवाचिनः प्रयुज्यतेअनुच्यमानेपितस्मिन्प्राणान् धारयतीतिगम्यमानत्वादतश्चजीवतिरकर्मकः। भ्रुवौकुटीवभ्रूकुटी। 'इकोह्रस्वोऽङ्योगालवस्यो'त्तरपदिकंह्रस्वत्वंअत्वञ्चवा। तेनभ्रुकुटीवभ्रूकुटी। करालं कुटिलं। 'बलवत्सुष्ठुकिमुतस्वत्यतीवचनिर्भरे'। 'करालोदन्तुरेतुङ्गे'। कृणोतिहिनस्तिः करालम् ॥ १३ ॥

हेदेवित्वंप्रसीदप्रसन्नाभव। परमापराउत्कृष्टामालक्ष्मीरसि। हेदेवि भवतीजगतांभवायसम्पदुद्भवायसद्यः सपदि भवति। भवतीत्वङ्कोपवतीअप्रसन्नान्वितर्हिंसद्यः जगतांकुलानिवंशान् समूहान्वाविनाशयति। इहभगवतीतिभवशब्दप्रयोगे युष्मदस्मच्छब्दान्यत्वेनशेषेप्रथमःपुरुषः विनाशयतीत्ययं। 'वंशेवृन्देगृहेकुलम्। उक्तमर्थंप्रकृतेनदेवीचरितेनयोजयतिविज्ञातमित्यर्द्धेन अधुनैव विज्ञातंविदितमस्माभिः एतत्कियत् त्वां आइतंएतंयोद्धुमागतम्। सुविपुलंसुष्ठुबहुलंमहिषासुरस्यबलंसैन्यंअस्तंविनाशन्नीतंप्रापितंइत्येतत्। प्रसादपरमेतिपाठेप्रसादेनप्रसन्नत्वेनपरमाउत्कृष्टाचेत्तर्हि लोकानां भवायभूतये सम्पदुदयायभवति। अस्तमदर्शने अस्तमितिमकारान्तमव्ययमनुपलब्धेऽर्थे वर्त्तते। असुक्षेपणइत्यतोनपुंसकेभावेक्तेतु अस्तंप्रेरणन्दूती (री) करणमन्यत्रक्षेपंनीतमित्यर्थः। विनाशंनीतमित्यर्थस्तुनस्यात्। अस्तमित्यव्ययत्वेत्विष्टसिद्धिः ॥ १४॥

हे देवि! भवतीसदाऽभ्युदयासतीयेषांप्रसन्नाऽस्तितेएवलोकाजनपदेषुजाव-

धर्म्याणि देवि! सकलानि सदैव कर्माण्यत्यद्दृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्र(द्व)येऽपिफलदा ननु देवि ! तेन ॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैःस्मृता मतिमतीव शुभांददासि ।

त्सुदेशेषुसम्मताः लब्धप्रतिष्ठाःस्युः तेषामेवधनानिस्युः तेषामेवयशांसिसत्कीर्त्त-यःस्युः । तेषाम्बन्धुवर्गश्चनसीदति । चकाराच्चतुष्पात्प्रभृतिश्च नसीदति । तएवधन्याः धनेषुसाधवः । यद्वा, धनानिलब्धारः प्राप्तारः धन्याः । 'धन-गणं लब्धे'तिसूत्रेणयत्प्रत्ययः । सुकृती पुण्यवान् धन्यः । हेदेवि येषांभवती प्रसन्नास्तिततएवनिभृताः विनीताः शिक्षितकुलाचाराअचपलाः आत्मजाः सुताः भृत्याः अनुचराः दाराः कुलस्त्रियश्चयेषांते। 'निभृतविनीतप्रश्रिताः समाः' ॥ १५ ॥

हेदेवि!भवतीप्रसादाद्भवत्याः प्रसादात्सम्भावितः सुकृती पुण्यवान्जनः प्रतिदिनंसदैवअत्यादृतः अतितरामादृतः सन्सकलानिसमस्तानिस्वशाखोक्तान्यत एवधर्म्याणिधर्मेणप्राप्याणिधर्मादनपेतानियथायथंश्रौतानिस्मार्त्तानिचकरोति । ज्योतिष्टोमादीनिहिस्वर्गकामः करोतिततश्चस्वर्गंप्रयातितेनहेतुनाहेदेविलोकद्वयेऽपिभुविदिव्यपित्वमेवफलदासि । ननुइदंइत्थमेव । 'प्रश्नावधारणानुज्ञाऽनुनयामन्त्रणे ननु' । 'नौवयोधर्मेतिधर्मेणप्राप्याणीत्यर्थेयत्प्रत्ययः' । यद्वा, 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेतेयत्' । अत्यादृतौसादरार्चितौ । ननुचभवतीप्रसादा दित्यत्रसर्वनाम्नोवृत्तिमात्रेपूर्वपदस्यपुंवद्भावोभवतीतिभवत्प्रसादादितिस्यात्तत्राह पुंवदितियोगविभागसाध्यमिदंपुंवत्वंकचिदेवयोगविभागादिष्टसिद्धिः । तत'श्चै-कोऽहंभवतीसुतक्षयकरोमातः कियन्तोरय'इतिवत्पुंवद्भावाभावः क्वचिदस्त्येव । भवतीतितुछित्वाप्रसादात्प्रसन्नत्वाद्भवतीलोकद्वयेऽपिफलदाऽस्तिइतिपुंवत्वशङ्का निरासपरव्याख्यानेभवतीसुतक्षयकरइतिप्रयोगः कदर्थितः स्यात् ॥ १६

हेदुर्गे !भीतस्याशेषजन्तोः सर्वस्यापिप्राणिनः स्वान्तेनस्मृतासतीत्वंभी

दारिद्र्यदुःखभयहारिणि ! का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ १७,
एभिर्हतैर्जगदुपैति (तु) सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
सङ्ग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसिदेवि! ॥

तिंहरसि। हे दुर्गे! त्वंस्वस्थैरभीतैस्तुजन्तुभिः स्मृतासतीअतीवशुभाम्मतिश्च-तुर्वर्गफलसाधनभूताम्बुद्धिं ददासि। त्वन्मंत्रत्वद्ध्यानत्वद्भजनपरांमतिम्घाद-दासि। तदित्थं हेदारिद्र्यदुःखभयहारिणिसर्वोपकारकरणायसर्वोपकारान् कर्त्तुं सदाआर्द्रचित्ताकृपार्द्रहृदयापरादेवतात्वदन्याकास्तुनकापि। अन्नन्यादितो भयंहर्त्तुं मतिंदातुमनुत्तमाम्। देवित्वदपराकास्तुसर्वोपकृतिकारिणा। दुःखे-नगन्तुं शक्यतेऽस्यां दुर्गा 'सुदुरोरधिकरणेचे'तिडः। 'वलवत्सुष्ठुकिमुतस्वत्य-तीवचनिर्भरे'। स्वस्थैः स्वर्गस्थैर्देवैः स्मृतेतिवा दरिद्रादुर्गतौ। दरिद्राति दुर्गच्छतिनिर्द्धनाभवतीतिदरिद्रः। दरिद्रस्यकर्मदारिद्र्यन्तस्यदुःखंदारिद्र्य-दुःखंतस्माद्भयंहरतीतितच्छीलातस्याः सम्बुद्धिः हेदारिद्र्यदुःखभयहारिणिसर्वेषु भक्तेषुअभक्तेषुउदासीनेषुत्रउपकाराणांकरणंविधानं तस्मै ॥ १७ ॥

यद्येषादेवीसर्वोपकारकरणायदयार्द्रचित्तास्यात्किमितिर्हिदैत्यान्निहन्ति तत्रोत्तरमाह उपैतु लोडन्तः पाठः। नाम्बइतिपाठे नअम्बइतिछेदः हेअम्ब हे स-र्वजननि त्वंसर्वोपकारायसदाकृपार्द्रचित्ताऽसीतियत्तत्तथैवनान्यथा। तथाहि। एभिरहितैर्महिषासुरादिभिर्हतैरणेत्वद्धतैः जगत्लोकः सुखंउपैतु पीडकाभावात्सुखं प्राप्नोतु। तथाप्तेअहितालोकत्रयद्रुहोमहिषासुरादयः चिरायनरकायनरकंग-न्तुंपापंन कुर्वन्तुकिन्तुसङ्ग्रामेमृत्युंमरणमधिगम्यप्राप्यदिवंस्वर्गंप्रयान्तुइतिमत्वा विचिन्त्यानुग्रहबुद्ध्याप्तान्दैत्यान् विनिहंसिन्यवधीः। ततोऽन्यानपिदैत्यान्वि-निहनिष्यसि। सिप्वर्त्तमानसामीप्येवर्त्तमानवद्वेति'लट्'। नूनमवश्यम्। 'नूनमवश्यंनिश्चयेद्वयम्'। 'चिरायचिररात्रायचिरस्याद्याश्चिरार्थकाः'अव्ययाख्याः। अम्बेति 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः'। नामेत्यत्रपाठे न आमनरकायकुष्ठादिमहाव्याधिप्र-

दृष्ट्वैव किन्न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥

धाननरकायपापंनकुर्वन्त्वित्यर्थः । अथवा'नामप्रकाश्य सम्भाव्यक्रोधोपगमकु' त्सने' । एभिरसुरैर्हतैर्जगत्सुखमुपैतु तथैतेऽसुराः यद्यपि पापं कृतवन्तः कुर्वन्तुनाम चिरायचिरकालन्तथावधेनोद्धरणीयाइत्यर्थः ॥ १८ ॥

हे देवि! भवतीसर्वासुरान् सर्वेषामपिअसून् प्राणान्रान्तिगृह्णन्तितान् असुरान्दृष्ट्वैव क्रूरदृष्ट्यैवभस्मभस्मीभूतान्किन्नप्रकरोतिकिं न भस्मीकरोतिकिन्तु सामर्थ्यतःकरोत्येव । अथापिहि हे देवि!त्वमरिषुशत्रुषुशस्त्रमायुधंप्रहिणोषिप्रयुङ्क्षे इत्तियत्तत्रतवाभिप्रायोऽन्य एव हि निश्चयेन रिपवोपिशत्रवोपिशस्त्रपूताःशस्त्रहताः कृतप्रायश्चिताइवशमितपापफलाःसन्तोलोकान्स्वर्गादीनप्रयान्त्विति । तदित्थं । हेदेवि तवनेष्वहितेष्वपिशत्रुष्वपिमाध्वीमतिरनुग्रहबुद्धिर्भवतिकिम्पुनः साधुषुस्वधर्मनिरतेषुसाध्वीतत्रमतिर्भवतीतिकिम्ब्रूमइतिभावः । भवतीशब्दप्रयोगेप्रकरोतीतिप्रथमपुरुषः भस्मत्वस्यविधेयत्वादेकत्वेऽपिनविरोधो वेदाःप्रमाणमितिवत् प्रहिणोषीतिहिगतौ । स्वादिभ्यःश्नुः 'हिनुमीना'इतिणत्वम् । 'लोकस्तुभुवनेजने'। साध्वी'वोतोगुणवचनात्'इतिङीप् ॥ १९ ॥

हेदेविरणेतवउग्रैः खड्गप्रभानिकरैर्विस्फुरणैःतथाउग्रेणशूलाग्रकान्तिनिवहेनवा असुराणांदृष्टयः विलयंविनाशंनागताःनअगमन्इतियत्तदेतदन्यदेवास्तिकारणंकितत् । अंशुमदिन्दुखण्डयोगिआननंसुधांशुखण्डयुक्तन्तववक्त्रंविलोकयतां इतिहेतुगर्भंविशेषणमसुराणाम् । यद्यमीअसुरारणेदेव्याअमृतांशुखण्डयुक्तमाननंन विलोकयेयुः तर्हिउग्रैः खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैः शूलाग्रकान्तिनिवहेनचविलयंगतदृशः सम्पद्येरन्निति भावः । अत्रक्रियातिपत्तिर्वर्त्तते यथा हेदेवियद्यसु

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि! शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यञ्च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपञ्च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि! वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २२ ॥

राः तत्रामृतांशुखण्डयुक्तंमुखंव्यलोकयिष्यन् तर्हि उग्रैः खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैः शूलाग्रकान्तिनिवहेनचविलीनदृशः समपत्स्यन्त । नचतदेतत्समपत्स्यन्त । यद्यस्मान्मुखंव्यलोकयिष्यन्तस्मादसुराविलीनदृशोनसमपत्स्यन्तेति । खड्गस्य प्रभाः तासान्निकरः स्तोमः तस्यविस्फुरणानिसम्वलयनानि तैः । शूलस्याग्राणित्रीणियेषांतेषांकान्तयः तासान्निवहः समूहः तेन । अंशवः किरणाः । इन्दुरमृतमयूखः तस्यखण्डः शकलः तेनयोगः सम्बन्धः तद्वत् । अंशुमदिन्दुखण्डेनयोक्तुमर्हंयोग्यं आननं इत्यपिशब्दः सवर्णदीर्घः ॥ २० ॥

हे देवि! तवशीलंसद्वृत्तंकर्तृ दुर्वृत्तवृत्तशमनं दुष्टंवृत्तं येषां तेदुर्वृत्ताः तेषां शमनंशमयितृनिवारकंवर्त्तते । यद्वा, दुष्टेनवृत्तेनवृत्तं निष्पन्नंफलंदुर्वृत्तवृत्तं दुष्टं फलंनरकलक्षणंतस्यशमनंतवशीलम् । तथा हेदेवि! तवैतत्सर्वसौभाग्यसौन्दर्यभाजनंरूपमचिन्त्यंमनसापिविचारयितुमशक्यंअविचार्यंसत् अन्यैर्मनोहरैरतुल्यंअसदृशंअसाधारणमसमानंवर्त्तते । तथा हे देवि ! तववीर्यंचहृतदेवपराक्रमाणां दैत्यानां हन्तृघातकंवर्त्तते । तथा हे देवि इत्थंप्रागुक्तभणित्यात्वया स्वकीया दयावैरिष्वपिप्रकटितैवप्रकाशितैव । 'वृत्तं पद्ये चरित्रेत्रिष्वतीते दृढनिस्तले' । 'शीलंस्वभावेसद्वृत्ते' । 'रूपंगुणेस्वभावे च' अचिन्त्यं स्मर्तुमशक्यम् वीर्यं बलं प्रभावश्च । वीर्यं कर्तृ हृतः देवानांपराक्रमो यैः तेषाम्असुराणाम् ॥ २१ ॥

हेदेवि वरदे! भुवनत्रयेपितेतवास्यपराक्रमस्यकेनसहउपमाभवतुनकेनापि । निरुपमत्वात्तेपराक्रमस्य । 'नन्वतुलोपमाभ्यां' इतिनिषेधात्तृतीयानस्यात् । सहविवक्षायां तृतीयास्त्येव । सूत्रंतुषष्ठ्यर्थंसहभावाविवक्षार्थं च । हेदेवि

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवन्नमस्ते ॥ २३ ॥
शूलेनपाहिनोदेवि! पाहिखड्गेनचाम्बिके! । घण्टास्वनेननःपाहिचापज्यानिःस्वनेनच
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके ! रक्ष दक्षिणे ।

रूपं चशत्रुभयकारि शत्रूणांभयोत्पादनशीलं ततोऽन्येषांतुअतिहारिअतिमनोहारित-वैवास्तिनत्वन्यस्य । त्वदीयचित्ते कृपाचसमरनिष्ठुरताचत्वय्येवदृष्टा नान्यत्र दृष्टेत्यर्थः । भवत्वितिलोट् दृष्टेतिनिष्ठा । दृष्ट्वा इतिक्तान्तोपपाठः । कृपा-समरनिष्ठुरताऽइति च प्रथमानतुद्वितीया । समरेनिष्ठुरायाभावः । 'त्वतलो-र्गुणवचनस्यपुंवद्भावः' ॥ २२ ॥

हे देवित्वयाएतत्त्रैलोक्यं रिपुनाशनेनानुलंयथाभवतितथात्रातंरक्षितम् । त्रैङ्पालने 'नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्' इतिवानिष्ठानत्वम् । त्वयासमर-मूर्द्धनिरिपुगणान् हत्वातेरिपुगणाः दिवंस्वर्गंनीताः । हे देवि त्वयाऽस्माकं देवानांउन्मदसुरारिभवंभयमप्यपास्तं अपक्षिप्तंदूरीकृतम् । हेसर्वजननिनमस्ते । लोकेखलुहिताःनतिमर्हन्ति । त्रयोलोकाःत्रैलोक्यंचातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थेष्यञ् । अखिलंत्रैलोक्यमितिपाठे पौनरुक्त्यभियानविद्यतेखिलंयत्रेति क्रियाविशेषणम् । 'सम्भवेव्यभिचारेचस्याद्विशेषणमर्थवत्' । रिपूणांनाशनेनसमरस्यमूर्द्धेवमूर्द्धा-युद्धाग्रभूमिःतथाचोच्छ्रितमदेभ्यःसुराणामरिभ्योदैत्येभ्यः भवं सम्भवम् । 'नमः स्वस्तीति'चतुर्थी ॥ २३ ॥

हे देवि!अम्बिके!त्वंशूलेनायुधेनशत्रुभ्योनोऽस्मान् पाहि रक्ष । पारक्षणे । सेर्ह्यपिच्च' । 'अस्त्रीशूलंरुगायुधम्' । त्वंघण्टायाः स्वनेनः शत्रुतः पापतश्च पाहि । हे देवि त्वंचापज्यानिःस्वनेनचापारोपिताकृष्टमौर्वींजनितनिस्वनेन नोऽस्मान् पाहि पापतः शत्रुभ्यश्चेतिशेषः ॥ २४ ॥

हे देवि! ईश्वरि! ईश्वरस्यपत्नि! । यद्वा, हेईश्वरिजगद्व्यापिनि । 'अश्नो

भ्रामणेनाऽऽत्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ! ॥ २५ ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थ(न्त)घोराणि तैं रक्षाऽस्मांस्तथा भुवम् ॥ २६ ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणितेऽम्बिके! । करपल्लवसङ्गीनितैरस्मान्रक्ष सर्वतः

तुराशुकर्मणिवरट्चेच्चोपधायाः'। हे चण्डिके! त्वंआत्मनःशूलस्यायुधस्यभ्रामणेन परितोऽभितश्चक्राकारेणपरिवर्तनेननोऽस्मान्प्राच्यांदिशिरक्षशत्रुतः। त्वंप्रतीच्यां पश्चिमायांदिशिआत्मशूलस्य भ्रामणेनरक्ष। त्वं आत्मशूलस्यभ्रामणेनदक्षिणे-दिग्विभागे तथा उत्तरस्यां दिशि रक्ष। भ्रमणस्येदंभ्रामणंप्रदक्षिणीकरणंपरि-तोमण्डलीकरणम्। अन्यथा चलनमात्रंशूलसमेताक्रियास्यात्। अतश्चप्रद-क्षिणाकृतिपरिभ्रमणंविवक्षितमितिसूचयितुं प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणेउत्तरस्यां इत्युक्तम्। चकाराद्विदिग्ग्रहणम् ॥ २५ ॥

हेदेवित्रैलोक्येत्रिषुलोकेषुतेतवयानिसौम्यानिसुन्दराणिप्रसन्नानिरूपाणि विचरन्ति विहरन्ति। यानिचात्यन्तघोराणिभयङ्कराणिरूपाणिविचरन्ति। तैस्तैश्चरूपैरुपलक्षितात्वं तैस्तैःकरणैर्वाऽस्मान् रक्ष। तथातैरेवद्विविधैरूपै-र्भुवं रक्ष। चकारात्पाताललोकं रक्ष। 'सौम्यंतुसुन्दरेसोमदेवते'। सोमाद्यणि सौम्यंसुन्दरेतूपचारतः। 'अनुगृह्णाति यान् देवी तेषांसौमीजगन्मयी। नाना गृह्णातियान्देवीतेषांघोराजगन्मया' ॥ २६ ॥

हेदेवि! खड्गशूलगदादीनियान्यायुधानितैः यानिचास्त्राणिधनुरादीनितै-श्चत्वंसर्वतःसमन्ततः। अस्मान्त्वदेकशरणान्रक्ष दुःखतः शत्रुतश्चपालय। 'हस्ति-शुण्डांशुवाहाग्रबलिषूक्तःकरःपुमान्'। करोहस्तः अङ्गुल्यःकरशाखाःकरपल्लवाः तैः सङ्गःतद्वन्तिकरपल्लवसंगीनि। करःपल्लवइवकरपल्लवः तेनसंगःतद्वन्तिवा हस्तस्थितानीत्यर्थः। 'समन्ततस्तुपरितःसर्वतोविष्वगित्यपि'। खड्गश्चशूलंचगदा च खड्गशूलगदंसेनाङ्गत्वादेकवत्त्वंतदादियेषांतानिधनुरादीनि ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच

एवंस्तुता सुरैर्दिव्यैःकुसुमैर्नन्दनोद्भवैः । अर्चिताजगतांधात्रीतथा (त्र)गन्धानुलेपनैः

भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपै (दिव्यधूपै) स्तु धूपिता।

प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ २६ ॥

देव्युवाच

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।

ददाम्यहमि(म) ति प्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ॥ ३० ॥

[कर्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तन्नविद्महे । इत्याकर्ण्यवचो देव्या प्रत्यूचुस्तेदिवौकसः]

एवमुक्तभणित्याजगतांधात्रीपोषयित्रीदेवासुरैस्तुताततोदिव्यैर्दिविभवैः नन्दनोद्भवैः नन्दनंस्वस्तनवनंततउद्भवैः कुसुमैः तथा दिव्यैः गन्धानुलेपनैश्चार्चितापूजिता । गन्धैरनुलेपनानि गन्धाःकुङ्कुमादयः । 'कुङ्कुमागरुकस्तूरीकर्पूरं चन्दनंतथा । महासुगन्धमित्युक्तंनाम्नास्याद्यक्षकर्दमः' । अनुलेपनमङ्गरागः ॥ २८

समस्तैरखिलैःत्रिदशैर्देवैःभक्त्यादिविभवैर्धूपराजैः सुधूपिता सुपूजिता । देवीप्रसादसुमुखीसती तान् प्रणतान् समस्तान् सुरानिन्द्रादीन् वाक्यंप्राहउवाच । उपसर्गप्रतिरूपकःप्रशब्दोऽव्ययाख्यः । अहेतिंनिपातस्तिङन्तप्रतिरूपःकाल सामान्यवचनः । शोभनंमुखमस्त्यस्याःसुमुखी । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधादिति'चात्ङीष्चटाप्च । 'नखमुखात्संज्ञायामि'तिङीषोनिषेधस्तुसंज्ञायामेव ॥ २६ ॥

हेत्रिदशाः युष्मत्कृतैरेभिः स्तवैः प्रपूजिताअहंअतिप्रीताऽस्मि । युष्माभिरस्मत्तः सकाशाद्यदभिवाञ्छितं अभिलषितं वर्त्ततेतद्वस्तुव्रियतां प्रार्थ्यतां अहंददामिदास्यामि । इहप्रीताप्रीत्येतिपाठद्वयंयत्तन्मत्तोऽभिवांछितमितिपाठः सभ्यः । यदस्मत्तोभिवाञ्छितमितिपाठेअस्मद्देवीभ्यः व्रीयतां अहंददामीतिवचनचातुर्यम् । कीदृक्स्यात् बहुत्वेनोपक्रम्यैकत्वेनोपसंहाराद्वाचोयुक्तिरियं युक्तिमतांउद्वेगंजनयतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

देवा ऊचुः

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते । यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥

यदि वा(चा) ऽपि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ! ।
संस्मृता संस्मृता त्वन्नो हिंसेथाः (हिंसीथाः) परमापदः ॥ ३२ ॥
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने! ।
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ॥
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाऽम्बिके ! ॥ ३३ ॥

हे देवि! अपरं युष्माभिः कर्त्तव्यंसत् दुःसाध्यं यत्तच्चमदग्रेमह्यं निवेद्यतां ज्ञाप्यतां तदप्यपरं महिषासुरवधापेक्षयाद्वितीयं कार्यंसाधयामिइतिभावः । इति इत्थंदेव्यावचः आकर्ण्यश्रुत्वातेसर्वेदिवौकसः इन्द्रादयः प्रत्यूचुः प्रतिवाक्यमुक्तवन्तः दिविओकोनिवासोयेषांतेदिवौकसः । पृषोदरादित्वात्साधुः ॥ ३१ ॥

हे देवि!यद्यस्मात् त्वया अस्माकं शत्रुरयं महिषासुरोनामनिहतः अतः त्वयासर्वमस्माकं प्रयोजनं कृतमेव । नकश्चिदवशिष्यते । नकिञ्चिदपिशत्रुरवशिष्टः ॥ ३२ ॥

हे महेश्वरिदेवि! यदिपक्षान्तरेत्वयाऽस्माकंत्वदनुग्रहजीविनांवरः देयोऽनुमतः स्यात् तर्हि वरः प्रार्थ्यतेऽस्माभिः कोऽसौ हेदेवि त्वं परमापत्सुअस्माभिः त्वदेकशरणैः संस्मृता संस्मृता सतीवारं वारं ध्यातानोऽस्माकं परमापदः । यद्वा, परमाअत्यर्था आपदः येभ्यः ते परमापदः शत्रवः तान्महासुरान्हिंसीथाःहिंसाहिंसि हिंसायां रुधादेः प्रार्थनेलिङ्व्यपरस्मैपदस्थानेव्यत्ययोबहुलं इत्यात्मनेपदस्यथासः सीयुट् । अस्माकं इति दानप्रतिग्रहभावाभावात्सम्बन्धेषष्ठ्यैव । 'रजकस्यांशुकं दत्तेस्वामीभृत्यस्यवेतनमि'तिवत् । पक्षान्तरेचेद्यदिच ॥ ३३ ॥

देवाः द्वितीयं वरं प्रार्थयन्ते । हे देवि! हे अम्बिकेअमलाननेप्रसन्नवदने त्वं अस्माभिः प्रपन्नाप्रणतासेवितासतीवरदाऽसिअतोयश्चमर्त्यः एभिस्त्वद्विषयैः

ऋषिरुवाच

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्राकाली बभूवान्तर्हिता नृप!
इत्येतत्कथितं भूप! सम्भूता सा यथा पुरा । देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् । वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी । तच्छृणुष्व मयाख्यातं यथावत्कथयामि ते

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधमनु-
शक्रादिस्तुतिवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥
दुर्गासप्तशत्यां चतुर्थः ॥

———

रस्माभिर्देवैः कृतैः स्तवैः त्वां देवीं स्तोष्यति भक्तितः स्तविष्यति तस्य मर्त्यस्य म-
नुष्यस्य वित्तर्द्धिविभवैः सह धनदारादिसम्पदां सदा वृद्धये भवेथाः । सर्वदा वि-
त्तस्य ऋद्धेः समृद्धेः विभवैरुद्भवैः सह धनस्य गोमहिष्यश्वादेर्दाराणां पत्नीनां
आदिशब्दात्सेवकानां सम्पदां क्षेत्रारामधान्यपुत्रमित्रादिसम्पत्तीनां च वृद्धये भवे
थाः प्रार्थने लिङ् 'व्यत्ययो बहुलं' इत्यात्मनेपदम् । यद्यपि वित्त धनं इति पर्यायस्तथा-
प्युपचाराद्गवाश्वादिकं धनशब्देन विवक्षितं वित्तर्द्धयश्च विभवाश्च ऐश्वर्याणि तैः
सहितं धनं गवादि दारादि पत्न्यादि येषां सम्पदः तासाम् ॥ ३४ ॥

हे नृप सुरथ! इति प्रागुक्तरीत्या देवैर्जगतोऽर्थे त्रैलोक्यसंरक्षणप्रयोजनाय तथा
त्मनोऽर्थे स्वार्थे देवकार्यार्थे च विषये प्रसादिता प्रसादसुमुखी कृता भद्रकाली भद्रा सर्व
मङ्गला काली रुद्रपत्नी कर्मधारयः । हे देवाः तथास्तु युष्मद्वाञ्छितं वस्तु सिध्य-
त्वित्युक्त्वाऽन्तर्हिताऽभवत् अदृश्या बभूव ॥ ३५ ॥

हे भूप जगत्त्रयहितैषिणी सा देवी! देवशरीरेभ्यो यथापुरा पूर्वं तेजोरूपा
सम्भूता महिषासुरवधाय प्रादुरभूदित्येतत्सर्वं ते तुभ्यं मया कथितम् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

(पञ्चमोऽध्यायः)

देवीस्तुतिवर्णनपूर्वकदेवीदूतसम्वादवर्णनम्

ऋषिरुवाच

पुराशुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः । त्रैलोक्यंयज्ञभागाश्च हृतामदबलाश्रयात्

श्लोकद्वयमेकान्वयम् ॥

शृणुत्वेतिपदद्वयम् । हेत्वचआत्मीयसुरथसाप्रसिद्धादेवानांउपकारिणीदेवीपुनश्च दुष्टदैत्यानां धूम्रलोचनचण्डमुण्डादीनांवधायच । तथा शुम्भनिशुम्भयोर्वधाय लोकानां रक्षणायच गौर्यादेहात्समुद्भूताऽभवदासीत् तत्सर्वंयथायद्यथार्थंयावत्ते-त्तुभ्यं कथयाम्यहं यथावद्यावत्प्रकारेणाख्यातंमयाकथितंशृणु । शृणुष्वेतिपाठे-'व्यत्ययोवहुलं' इत्यात्मनेपदम् । शुम्भभाषणेहिंसायाञ्चभ्वादिः । शुम्भतिभाषतेहि-नस्तिवाशुम्भः दन्त्यादिरयम् (?) । तालव्यादिपाठेतु 'शुभशुम्भशोभार्थे'तुदादिः । शुम्भतिशोभतेरणेष्वितिशुम्भः । यथाप्रकारवद्यथावत्क्रियाविशेषणम् ॥ ३८ ॥

इतिश्रीम० तो०श्रीम०शन्तनुचक्रवर्त्तिविरचितायांशान्तनव्यांदेवीमाहात्म्यटीकायां शक्रादिस्तुतिवर्णनंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

हे राजन् पुरापूर्वस्मिन्कल्पे शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यांद्वाभ्यांकर्त्तृभ्यां मदबलाश्रयात् मदेन गर्वेण सहितंबलंसामर्थ्यंयस्याश्रयणंतस्माद्धेतोः शचीपते-रिन्द्रस्यइन्द्राद्वासकाशात्त्रैलोक्यंहृतंगृहीतं यज्ञभागाश्चहृताः यज्ञविधिविहतिद्वारा "हर्षेगर्वेमदेक्षैब्येगजदानेचकीर्त्तितः । स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषुवलंनाकाकसीरिणोः' ?

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् । कौबेरमथ याम्यञ्च चक्राते वरुणस्य च तावेव पवनर्द्धिञ्च चक्रतुर्वह्निकर्म च । अन्येषां चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति

ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ।
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ ४ ॥
त्व (त) यास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः ॥ ५ ॥

इतिकृत्वा मतिं देवाहिमवन्तं नगेश्वरम् । जग्मुस्तत्रततो देवीं विष्णुमायांप्रतुष्टुवुः

तौ शुम्भनिशुम्भावेवकामरूपत्वात्सूर्यरूपतांचक्रातेसूर्याधिकारहरणात्सूर्यभावमिव ऐन्दवं इन्दुसम्बन्धिनमधिकारमाधिपत्यंतावेवचक्राते । तथा तावेवकौवेरसम्ब-न्धिनमधिकारञ्चक्राते । तावेवयाम्यंयमाधिकारं तथातावेववरुणस्याधिकारं-'चक्राते । याम्यंइति'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यइत्यत्रप्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु 'यमाच्चेतिवक्तव्यमि'तिण्यः । सूर्याद्यधिकारान् तावेवाग्रहीष्टामित्यर्थः ॥ २ ॥

तावेवासुरौपवनस्यवायोर्ऋद्धिमस्खलितगतिं ऐश्वर्यंचक्रतुः । तथा तावेववह्नेः कर्मव्यापारंचक्रतुः । तावेवान्येषां दिवौकसां देवानां अधिकारान् अग्रहीष्टम् । इदमर्धंकाप्येवदृश्यते । ततः ताभ्यामसुराभ्यांसकाशतः पराजिताः प्राप्तपराभवाःअतएवभ्रष्टराज्याःभ्रष्टाधिकारादेवाविनिर्द्धूताःस्वर्गाद्दूरीकृताआसन् ताभ्यामसुराभ्यांविनिर्द्धूताः त्यक्ताइतिभावः ॥ ३ ॥

ताभ्यां शुम्भनिशुम्भाभ्यांहृताधिकारा अथहृतराज्यानिराकृतानिरस्ताः सर्वेत्रिदशाःदेवा तांप्रसिद्धांअपराजितांकैरप्यपराभूतांदेवींस्मरन्तिस्मस्मृतवन्तः । स्मेत्यध्याहृत्य (लट्स्मे इतिलट्) 'प्रत्यादिष्टोनिरस्तःस्यात्प्रत्याख्यातोनिराकृतः' ॥ ४ ॥

अपराजितानामदेशंगता इत्याह (?) यथाप्रागुक्तप्रकारेण आपत्सुस्मृता

देवा ऊचुः

नमोदेव्यै महादेव्यै शिवायै सततंनमः । नमःप्रकृत्यैभद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्
रौद्रायैनमोनित्यायैगौर्यै धात्र्यैनमोनमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यैसुखायैसततंनमः
(नमोजगत्प्रतिष्ठायै देव्यैकृत्यैनमोनमः)

सती तत्क्षणादेवभवतां अखिलाः परमापदः नाशयिष्यामीतितयादेव्याऽस्माकं देवानाम्वरोदत्तोऽस्तीतिमतिंकृत्वाचेतसिनिधायदेवाःहिमवन्तंनगेश्वरंजग्मुः ययुः । ततः तत्रविष्णुमायांदेवींप्रतुष्टुवुः प्रकर्षेण भक्तिपूर्वंस्तुतवन्तः । विष्णुमायामहामायेतिपर्यायौ । अथवा, वेवेष्टिविष्णुः मानंमायः विष्णुर्मायोमानम्परिमाणंयस्याः सासर्वव्यापिकेत्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥

शिवायै मङ्गलहेतवेभवान्यैनमः । पुंयोगेतु शिवस्य स्त्रीशिवा । प्रकृतिः जगत्कारणंसत्त्वरजस्तमसांसाम्यावस्था । यद्वा, अङ्गमन्त्रापेक्षयामूलमन्त्रमात्रात्मिकादेवताप्रकृतिः । यद्वा । प्रत्ययात्पूर्वा प्रकृतिः । यदाहुः । 'प्रकृतिः पार्वतीसाक्षात्प्रत्ययस्तुमहेश्वरः । अर्द्धनारीश्वरःशब्दः कामधुग्वः प्रसीदत्विति' तस्यैनमः । भद्रायैनमः । भद्रासर्वमङ्गला भद्ररूपेत्यर्थः । तांप्रसिद्धामस्मद्वरदाम्म्वानियताजितेन्द्रियाः प्रणतानम्रोभवामः । स्मशब्दःपूरणेऽव्ययम् । 'नियत्यैप्रणतात्मनां' इतिपाठे भक्तिप्रह्वस्वभावानां पुंसांनियत्यैदिष्ट्यैनमः भाग्यरूपायं इत्यर्थः । 'दैवंदिष्टं भागधेयं भाग्यंस्त्रीनियतिर्विधिः' ॥ ७ ॥

रुद्रस्येवरौद्रंउग्ररूपमस्त्यस्यारौद्रातस्यैनमः । रौद्रशब्दादर्शआदित्वाच् । नेभ्रुवेत्यप् । नित्यायैकालावस्थितायै । गुरीउद्यमेतुदादिरनुदात्ततः गुरतेगुरः 'इगुपधत्वात्कः' । गुरएवगौरः स्वार्थेऽण् । स्त्रियांङीप् । यद्वावर्णवाचित्वेनरूढत्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्चेति'निपातनात्साधुत्वेङीप् । गौर्य्यैपार्वत्यैनमः ॥ गौरीगौरवर्णयोगात् । यद्वा, गुङ्अव्यक्तेशब्दे अतः गुणादौऋज्रेन्द्राग्रेत्यादि सूत्रेणरणिवृद्धौनिपातितायांगवतेगौरः । 'गौरोऽरुणेसितेपीते' । धात्र्यैधरण्यैनमः । उपमात्र्यंवा । 'धात्रीस्यादुपमातापिक्षितिरप्यामलक्यपि' ॥ ८ ॥

कल्याण्यै प्रणतामृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो (कूर्म्य) नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्मैय शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥ ६ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिणि । ख्यात्यै तथैव कृष्णायैधूम्रायै सततंनमः

'ज्योतिःशास्त्रविशेषेस्यात् ज्योतिरक्षरतेजसोः । ज्योतिर्नाभास्करेऽक्षाव मग्निखद्योतदृष्टिषु' । ज्योतिरस्त्यस्यां तस्यैज्योत्स्नायैनमः । चदिआह्लादने । चन्दतिचन्द्रः । रूपरूपक्रियायां रूपरूपदर्शनेचचुरादिः । चन्द्रंरूपयति तच्छीलाचन्द्ररूपिणीतस्यैनमः । चन्द्रस्यरूपंकरोतिचन्द्ररूपिर्णातिचव्युत्पत्तिः । सुःखदुःखतत्क्रियायांचुरादिः । सुखयतिसुखा 'पचादित्वादच्'तस्यैकलासुसाधुः । कल्याशुभात्मिकावाणी । कल्यामणतिकल्यंनिरुक्तं वा अणतिकथयतिकल्याणा तस्यैनमः । अण्शब्दार्थः 'कर्मण्यण्' । किंचजगद्भिः ऋद्ध्यै सिद्ध्यै च प्रणतां वन्दितांजगज्जननींदेवींप्रतिनमः । नतिकुर्मः कुर्मोइतिपाठे । प्रणमन्तीतिप्रणन्तः तेषांप्रणतामितिषष्ठीवहुवचनान्तंबोध्यम् । तथा च प्रणतां प्रणमतांऋद्ध्यैसिद्ध्यै च नमः । इत्यलवेश्वरभट्टाः । कूर्म्यैइतिपाठेकूर्मसम्बन्धिन्यैशक्त्यैनमः ॥ ६ ॥

निःक्रान्ताऋतेः . सन्मार्गान्निर्ऋतिः अलक्ष्मीअन्यायोपार्जितालक्ष्मीः । 'स्यादलक्ष्मीस्तुतिनिर्ऋतिः' । निर्ऋतेः उपमाकृतिर्नैर्ऋतीतस्यै अलक्ष्मीरूपायै शर्वाण्यैशम्भुपत्न्यैनमोनमः । यद्वा, निश्चिताऋतिः सत्यतायेनसनिर्ऋतिः । निर्ऋतेर्दिक्पालस्येयंनैर्ऋतीतस्यैनिर्ऋत्युपार्जितलक्ष्मीरूपायैनमः । अथ च भुवंबिभ्रतीतिभूभृतः आदिमण्डूकादिनागादिकुलपर्वतादिमनुप्रभृतिराजानः तेषां लक्ष्मीरूपायैनमः । शर्वस्यस्त्रीशर्वाणी । 'इन्द्रवरुणेत्यादिना'पुंयोगेङीषानुकौ । हे सर्वकारिणि देवि! तुभ्यंदुर्गायैसततंनमः । दुःखेनगम्यतेदुर्गा । यद्वा, दुःखेनगच्छत्यस्यांदुर्गा 'सुदुरोरधिकरणे' इतिवक्तव्यंगमेर्डः । तथाहेदेवि! तुभ्यंदुर्गपारायै दुर्गंपारंयस्याः महामायाख्यासिन्धोः सा दुर्गपारा । यद्वा, पिपर्त्तिपारा । पॄपालनपूरणयोः । यद्वा, दुर्गाः पाराःपारयन्तोगणायस्याः

अतिसौम्यातिरौद्रायैनता(म)स्तस्यैनमोनमः । नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेतिशब्दिता । नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

तस्यै । हे देवि! तुभ्यं सारायै संसारसागरेवरायै श्रेष्ठायै सततंनमः । तुभ्यं ख्यात्यै विख्यातिरूपायैसततंनमः । तुभ्यं कृष्णायै कृष्णवर्णायैकालरात्र्यैनमः। हे देवि! तुभ्यं धूम्रायै धूम्रवर्णायै नमः । सर्वं करोतिसर्वकारिणिसम्बुद्धिः ॥ १०

'सोमाट्ट्यण्' । सौम्यंसोमदेवताकंसुन्दरं च रूपं अत्यर्थं सौम्यं यस्याः सातिसौम्या । रौद्रदेवताकं रुद्रसम्बन्धिवा रूपं रौद्रं अत्यर्थं रौद्रं यस्याः साऽतिरौद्रा । ततश्चभजतामभजतां च यथाक्रमं अतिसौम्याचासा-वतिरौद्राचेतिकर्मधारयः । तस्यैवाङ्मोमारूपायैत्रिशक्त्यात्मिकायैनमोनमः । इतिशक्तित्रयापेक्षंनमस्त्रयम् । सोमस्यभावः सौम्यं भावेष्यञ् । रुद्रस्य भावःरौद्रं 'युवादित्वाद्भावेअण्' अतिक्रान्तं सौम्यंययासाऽतिसौम्या । अतिक्रान्तं रौद्रं ययासाऽतिरौद्रा । ततःकर्मधारयेसतितस्यैनमइत्यप्यनुसन्धेयम् । जगतां प्राणभृतां प्रतिष्ठाआस्पदमाधारशक्तिःस्थानंतस्यैजगत्प्रतिष्ठारूपायैनमः । प्राणिनां प्राणधारणार्थं यत्स्थानं मूलाधारसञ्ज्ञं तत्प्रतिष्ठेत्युच्यते । 'आस्पदंप्रतिष्ठा-यामि'त्यास्पदशब्दपर्यायः प्रतिष्ठाशब्दः । 'दिवुक्रीडादौ' । दिव्यतीति देवीतस्यैक्रीडाविजिगीषाद्यर्थक्रियाकारिण्यैनमः । करणंकृतिः प्रयत्नः सर्ग-स्थितिप्रत्यवहारविषयः प्रयत्नोऽत्रविवक्षितः । तस्यैप्रयत्नरूपायैनमः । नम-स्यानां त्रित्वादित्वादिहनमस्त्रित्वंक्त्र्यैं इतिपाठेतृन्नन्तत्वाज्जगदितिकर्मविवक्षि-तम् । जगत्करणशीलायैनमइत्यर्थः ॥ ११ ॥

यादेवीवाङ्मोमात्मिकासर्वकालेषुकालत्रयात्मिकासर्वभूतेषुभूतात्मिका। अनात्मन्यात्मबुद्धिजनयन्तीआत्मनिवाऽनात्मः बुद्धि जनयन्तीममतावशंवदान्लोकान् प्रसूयमानासर्वजननीमहामायाभगवतीविष्णुमायेतिशब्दिताकथितातस्यै त्रिगुण-रूपायैप्रत्येकं कायवाङ्मनोभिः एकस्यैवेवादेव्यै भक्तिश्रद्धातिशयद्योतनायनमः

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते। नमस्तस्यैनमस्तस्यै नमस्तस्यैनमो नमः॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १४॥

यादेवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमोनमः

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

शब्दोनमस्येन च सहाम्रेडितः। 'आम्रेडितंद्विस्त्रिरुक्तम्'। चापलेद्विर्वचनं सम्भ्रमेणवृत्तिश्चापलं इत्थं हिनपौनरुक्त्यंदोषावहम्। यदुक्तम्। 'प्रहर्षहर्षशोकेषु स्वप्नदैन्यभयेषु च। स्तुत्यभ्यासानुवादेषु पौनरुक्त्यं न दुष्यति'। सर्वाणि पृथिव्यादीनिभूतानिदेहानि। इतिप्रथमादेवीविष्णुमाया॥ १२॥

अभिधीयते कथ्यते। चुरादावात्मनेपदम चितसञ्चेतनेसंवेदनेवा। चेतनं चेतनाबुद्धिरेववेतिकथनं पौनरुक्त्यं यद्यपि वैशेषिकादौदर्शने चेतनंचेतनाबुद्धिरेव तथापि साङ्ख्येबुद्धिधर्मश्चित्तवृत्तिविशेषविजृम्भितशक्तिश्चेतना इत्याश्रयणादपौनरुक्त्यम्। अन्येतु चेतनाचित्तवृत्तिविशेषशक्तिः सञ्ज्ञानं वा बुद्धिस्तुस्वप्रकाशज्ञानस्वभावेत्याहुः। अन्येतुनिर्विकल्पज्ञानं चेतना बुद्धिःतद्विशेषावगतिःसविकल्पकज्ञानं इत्यस्तितयोर्भेदइत्याहुः। इति द्वितीयादेवीचेतना॥ १३॥

बुद्धिरित्येवंरूपेणसम्यक्स्थिता। यदभ्यधुः। 'सन्धारणेस्थितौ भृत्यौ' (बुद्धिः) इतितृतीयादेवीबुद्धिः॥ १४॥

निद्रेतिरूपंतस्यैनमः। द्राकुत्सायांनियतंद्रान्त्यस्यांनिद्रा संवेशः। भुक्तान्नादिपरिपाकादिहेतुर्निरिन्द्रियप्रदेशमलकोशेमनसोवस्थानंनिद्रा। सर्वेन्द्रियव्यापारविरतप्राणनं सुखनंनिद्रेत्यन्ये। इतिचतुर्थीदेवीनिद्रा॥ १५॥

क्षुधबुभुक्षायाम्। सम्पदादित्वाद्भावेस्त्रियांक्विप्। क्षुध्प्रातिपदिकम्। भोक्तुमिच्छा क्षुत्। अशना या बुभुक्षा क्षुत्तया क्षुधा। रूपेणेतिपृथक्पदम्। यद्वा, 'वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः। हलन्तादपिटापञ्चयथावाचा

यादेवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यै नमोनमः

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेणसंस्थिता। नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २० ॥

निशादिशा'। ततश्चक्षुधेतिरूपंतेनक्षुधारूपेण क्षुधांविनाप्राणिनां सुखं नास्ति। इतिपञ्चमीदेवीक्षुधा ॥ १६ ॥

छायाप्रतिविम्वरूपासर्वभूतेषु तिष्ठति। 'नष्टच्छायोमध्याह्न'इत्यत्रतुआतपभावाभावोविवक्षितः। 'छायासूर्यप्रियाकान्तिः प्रतिविम्बमनातपः'। प्रतिबिंवेयथासङ्क्रातछायः आदर्शः। छयतिच्छिनत्तिसन्तापंछाया। इतिषष्ठीदेवीछाया ॥ १७ ॥

शक्लृशक्तौशकनंशक्तिः सामर्थ्यं वस्तुगतः स्वभापसिद्धोधर्मः शक्तिरितिरूपंतेन। शक्ति (:) प्रतिवस्तुप्रतिनियतार्थक्रियाकारित्वं वस्तुधर्मइत्येकेवस्तुरूपमेवशक्तिर्नतुवस्तुनोऽन्योधर्मःशक्तिरित्यन्येऽभ्युपजग्मुः। इहतुसर्वभूतेष्विस्याधाराधेयभावानुवाच्याच्छक्तिर्वस्तु धर्मइत्येषपक्षोऽभ्युपगतः। इतिसप्तमीदेवी शक्तिः ॥ १८ ॥

सर्वाणिभूतानिपृथिव्यादीनियेषां देहानामारम्भकत्वेनसन्तितानिसर्वभूतानिदेहाः तेषु। ञितृषः पिपासायाम। 'तृषिशुषिरसिभ्यः कित्इतिनः'। तृष्णाउपभोगनिमित्तकोऽभिलाषः। 'तृष्णाभिलषणंभोगेतृष्णावनपिशाचिका। तृष्णेस्पृहापिपासेद्वेतद्रूपेहाम्बिकास्मृता'। तर्षणंतृष्णास्पृहानिरूढलक्षणत्वात्। इत्यष्टमीदेवीतृष्णा ॥ १६ ॥

क्षमूष्सहने षित्वात्स्त्रियांक्षमा। बाहुलकात्तुक्तिनिक्षान्तिः। 'अनुना-

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

या देवी सर्वभूतेषुशान्तिरूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ २५ ॥

सिकस्य क्विज्झलोः क्ङिती'तिदीर्घः । 'क्षान्तिःक्षमातितिक्षामर्षः सहार्थकाः' । क्षान्तिस्तृष्णाविरोधिनीपरप्रयुक्तापकारं प्रत्युपेक्षा प्रतिकूलवेदनां प्रत्युपेक्षा । इतिनवमीदेवीक्षान्तिः ॥ २० ॥

नित्यैकानुगतप्रत्ययहेतुरनेकसमवायिनीजातिः । इतिदशमी ॥ २१ ॥

'लज्जाव्रीडे स्त्रियां' 'गुरोश्चहल'इत्यप्रत्ययः । 'झलांजशझशी'तिजशृदः श्चुत्वं स्त्रिया'मजाद्यतष्टाप्' । कर्त्तव्याकरणनिमित्तं अकारणनिमित्तमन्यतः स्व तोवाजनितं लज्जनं संकोचनं लज्जेत्येकादशी ॥ २२ ॥

शमउपशमे । स्त्रियांक्तिन् । क्षान्तिवद्दीर्घः । 'शमथुस्तुशमः शान्तिः' कामक्रोधाद्यभावः । विकृतेन्द्रियनिवृत्तिः शान्तिरित्यन्ये । विषयव्यावृत्तात्मतेत्य-परे । इतिद्वादशीशान्तिः ॥ २३ ॥

डुधाञ्धारणपोषणयोः । 'श्रच्छब्दस्योपसङ्ख्यानं' इत्युपसर्गसञ्ज्ञा । 'आतश्चोपसर्गे'इतिकः स्त्रियांटाप् । श्रद्धनं श्रद्धासम्प्रत्ययः स्पृहा । सम्प्रत्ययो भक्त्यतिशयः श्रद्धयापरयोपेत इतिवत् । शास्त्रोक्तार्थाविपरीतबुद्धिः श्रद्धेत्यन्ये । आदरेणानुसरणंभक्तिः श्रद्धात्वास्तिक्यबुद्धिरित्यपरे । इतित्रयोदशी ॥ २४ ॥

कमुकान्तौ । 'कमेर्णिङ्' । 'आयादयआर्धधातुकेवा' । 'स्त्रियांक्तिन्' ।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

[या देवी सर्वभूतेषु धृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै०]

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै० ॥ २८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः

[या देवी सर्वभूतेषु नातिरूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यै०]

यादेवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यैनमस्तस्यै नमस्तस्यैनमोनमः

[या देवी सर्वभूतेषु पुष्टिरूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यै०]

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै० ॥ ३१ ॥

'अनुनासिकस्यक्विझलोः क्ङितीतिइतिदीर्घः । शोभा कान्तिः ज्योतिः स्वरूपोज्ज्वलतेत्याहुः । इतिचतुर्दशी ॥ २५ ॥

लक्षदर्शनाङ्कनयोः चुरादिः । लक्षेमुट्चेतिईः तस्यमुडागमः । 'नेड्वशिकृति' । 'णेरनिटी'तिणिलोपः । लक्ष्मीः स्या विभूतिश्च कायशोभाचेतिपञ्चदशी ॥ २६ ॥

धृञ्धारणेभ्वादिः स्त्रियांक्तिन् । 'धृतिःस्याद्धारणेधैर्यसौख्यसन्तोषयोरपि' । इतिषोडशी ॥ २७ ॥

वृतुवर्त्तनेस्त्रियांक्तिन् । वर्त्तनंवृत्तिः वर्त्ततेऽनयावृत्तिः । 'आजीवोजीविकावार्त्तावृत्तिर्वर्तनजीवने' । वृत्तिर्जीवनोपायः । 'युक्तेक्ष्मादावृतेभृतंप्राण्यतीतसमेत्रिषु' । 'भृतंक्लीबेग्रहेयुक्तेपृथिव्यादावृतेऽपिच' । इति सप्तदशी ॥ २८ ॥

'स्याच्चिन्तास्मृतिराध्यानम्' । अनुभूतस्यभावनाख्यसंस्कारहेतुकोज्ञानविशेषः स्मृतिः । इत्यष्टादशी ॥ २९ ॥

दयरक्षणे । 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' । दयन्तेऽनयादया । परदुःखप्रहाणेच्छा परदुःखसमभावत्वम्वादया । इत्येकोनविंशी ॥ ३० ॥

नातिर्नयः इतिविंशीदेवीनीतिः ॥ ३१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानाञ्चाऽखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्ति(प्त्यै) देव्यै नमो नमः ॥ ३३ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३४ ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ३५ ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्त्तिभिः ॥ ३६ ॥

तुषप्रीतौ। तुष्टिः प्रीतिरानन्दः। विषयभोगमवाप्यतदभिलाषोपरमः तुष्टिरित्यपरे। अन्येतुविषयोपभोगंप्राप्यतदभिलाषन(स्त) दवाप्यप्राप्तंपरमं सुखं इत्याहुः। इत्येकविंशी ॥ ३२ ॥

पुषपुष्टौ। पुष्टिरवयवोपचयः। इतिद्वाविंशी ॥ ३३ ॥

मात्यस्यां 'गर्भइतिमाता। 'जनयित्रीप्रसूर्माता'। यद्वा, मानपूजायाम्। मान्यतेपूज्यतेमाता। उणादौ 'नप्तृनेष्टृत्वष्टृ' इत्यादिंसूत्रेणनिपात्यते। यद्वा, अष्टौमातृनाम्न्यआद्याः शक्तयः याः विनाभूतसृष्टिरेव न घटते। 'ब्राह्मामाहेश्वरीचैन्द्रीवाराहीवैष्णवीतथा। कौमारीचर्ममुण्डा च कालीसंकर्षणीति च'। इतित्रयोविंशी ॥ ३४ ॥

'भ्रांतिर्मिथ्यामतिर्भ्रमः'। अतस्मिंस्तदितिज्ञानंभ्रान्तिः। इतिचतुर्विंशीदेवीभ्रान्तिः ॥ ३५ ॥

इत्थं विष्णुमायादिमूर्त्तयोदेव्याःसर्वभूतेषुवर्त्तमानाभ्रान्त्यन्ताःचतुर्विंशतिः प्रदर्शिताः। यादेवीभूतानांपृथिव्यादीनांपञ्चानां अधिष्ठात्री आधारशक्तिः स्वामिनीश्वरीव्यापिनीया च देवीअपरेष्वखिलेषु भूतेषु विशिष्टेषु प्राणिषु वर्त्त-

ऋषिरुवाच

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती । स्नानुमभ्याययौ तोयेजाह्नव्यानृपनन्दन

साऽब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।

शरीरकोपतश्चास्याः समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा ॥ ३८ ॥

स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः । देवैःसमेतैः समरेनिशुम्भेनपराजितैः ॥

मानानां भूतानां प्राणिनां इन्द्रियाणां मनोनेत्ररसनघ्राणत्वक् कर्मणां वाऽधिष्ठात्री तस्यैव्याप्तिरूपायैसततं नमोनमः एतेनसर्वगतत्वं उक्तं देव्याः ॥ ३६ ॥

चिञ्चयने । चयनंचितिरविकारताकूटरूपतातद्रूपेण । यद्वा, चितिसञ्ज्ञाने । 'स्त्रियामिक्षुष्यादिभ्य' इतिइक् प्रत्ययः । चेतनंचितिःसञ्ज्ञानरूपेण यादेवीएतत् कृत्स्नंअखिलंजगद्व्याप्यस्थिता तस्यैनमोनमः पुनः पुनर्नतेरनेककर्तृ-कत्वादनेकस्तोतृकत्वाच्चनपौनरुक्त्यं आर्थं शाब्दं वाशङ्कनीयम् ॥ ३७ ॥

पूर्वंपुराकल्पेसुरैः स्तुतातथाऽभीष्टसंश्रयादभीष्टस्यवस्तुनः संश्रयात्कारणात् । सुरेन्द्रः शक्रः ईशः शङ्करः दिनेशः सूर्यः तैः सेविता । अतएवभद्रमणतिभद्राणीअस्तु भद्रमितिकथयती । अतएवशुभहेतुः सा ईश्वरीनोऽस्माकंदेवानांशुभानिमङ्गलानिकरोतु । किंच, नः अस्माकंआपदश्चविरोधिजनितदुःखानिचाभिहन्तु । 'सुरेन्द्रेणदिनेषु सेविते'तिपाठेसुरेन्द्रेणशक्रेणदिनेषु प्रत्यहंसेविता । शुभानिभद्राणीतिच्छेदे यानिनः शुभानिजगद्धितानिकर्माणि प्रार्थनीयानितानिभद्राण्यनुकूलानि अबाधानि अविघ्नानिकरोत्वित्यर्थः । 'अभीष्टसंश्रयेतिपाठे' अभीष्टः वाञ्छितः संश्रियमाणःसंश्रयइत्यर्थोयस्याः सकाशाद्भवतिसा ॥ ३८ ॥

सादेवीनःशुभहेतुरित्युक्तं सा केत्याह । यादेवीसाम्प्रतमिदानींउद्धतदैत्यतापितैः निर्मर्यादैर्बलोल्बणैः दैत्यैः शुम्भादिभिः तापितैः सन्तापितैरस्माभिः सुरैः ईशास्वामिनीनमस्यतेसेव्यते । या देवी भक्तिनम्रमूर्तिभिः सुरैः स्मृताचस्मृतैवसतीतत्क्षणएवनोऽस्माकं सर्वाआपदः हन्ति । सर्वापदोयतः स्युः तान्सर्वा-

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ४० ॥
तस्यां विनिर्गतायान्तु कृष्णाऽभूत्साऽपि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ४१ ॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ४२ ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज! भासयन्तीहिमाचलम् ॥ ४३ ॥

पदः शत्रून्वा । 'ईशा पचाद्यच्' 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः'वा । साम्प्रतमव्ययम् । भक्त्याविनम्रामूर्त्तयः कायायेषांतैः । नमस्यतिइति'नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्' । नमसः पूजायांभावकर्मणोः 'सार्वधातुकेयक्''यस्यहलः' 'क्यस्यविभाषेति'यलोपः ॥ ३६ ॥

हेनृपनन्दन!हेसुरथ! एवंइत्थंस्तवाभियुक्तानां स्तुतिपराणांदेवानामग्रतः तत्रहिमाद्रौपार्वतीदेवीजाह्नव्यागङ्गायाः तोयेस्नातुं जलक्रीडांकर्त्तुमभ्याययौ ॥ ४०

सादेवानामग्रतः किंकृतवतीत्याह । सा सुभ्रूः पार्वतीतान देवान पृष्टवती । किं हेसुराः! अत्रहिमवतिपर्वतेभवद्भिः का स्तूयते इति । शोभनेभ्रुवौयस्याः सा ततः तांपार्वतींप्रतितावद्देवैरेवोत्तरदानं उचितं किं तु ततः प्रागेवतस्याः शरीराद्विनिर्गत्यशिवामाद्यादेवीं पार्वतीं प्रत्याह । इयंब्रह्मादिसर्वदैवतैनोमयाशिवानामाद्याशक्तिरवसेया । तथाहि । अस्याः पार्वत्याः शरीरंकं शइवशरीरकोशः ततउद्भूताशिवादेवीपार्वतीप्रत्यब्रवीत् । 'कोशोऽस्त्रीकुड्मलेखड्गेपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

किमब्रवीत्तदाह । शुम्भेनप्रत्यादिष्टैः समस्तैर्देवैः मम एतत्स्तोत्रं क्रियते इत्यब्रवीत् । यद्यस्मात्तस्याः पार्वत्याः शरीरकोशादम्बिकानिःसृतानिर्गता ।

नैव तादृक् कचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् । ज्ञायतां काप्यसौदेवीगृह्यताञ्चासुरेश्वर!

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।

सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र! तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ४५ ॥

यानिरत्नानिमणयोगजाश्वादीनिवै प्रभो !। त्रैलोक्येतुसमस्तानिसाम्प्रतंभान्तितेगृहे

ततः कारणात्समस्तलोकेषु कौशिकीतिगीयतेकथ्यते । कोशेनव्यतिनिर्गमनात्कौशिकी । 'तेनदीव्यती'तिठक् । यद्वा, कोशाद्यानिर्गतासाकोशेनिवृत्तैवेति' निवृत्तेक्षद्यूतादिभ्य'इतिठक् ॥ ४३ ॥

साभगवतीपार्वत्यपिस्वशरीरकोशात्तस्यां सर्वदेवतेजोमय्यांकौशिक्यां विनिर्गतायां सत्यांकृष्णाऽभून् कृष्णवर्णासमजनिष्टततश्चसापार्वतीकालिकेतिसमाख्यातासतीहिमाचलेकृताश्रया कृतनिलयाऽभूत् । कृष्णवर्णार्थात्कालशब्दात्तद्धतिवर्त्तमानात्सञ्ज्ञायां'जानपद'सूत्रेणङीष् । सञ्ज्ञायांकन् । 'केण'इतिह्रस्वः । 'कालीहैमवतीश्वरी' । इहमहामायादेवकार्यार्थं विष्णुयोगनिद्राऽभूत् ततःपार्वत्यभूत्ततः कौशिक्यभूत्सादेवकृतस्तुतिमङ्गीकर्तुंततः कालिकाभूत्सैवाम्बिकानामेत्याह ॥ ४४ ॥

ततोऽनन्तरम् । यद्वा, ततः तत्र हिमाचले आद्यादित्वात्तसिः । शुम्भनिशुम्भयोः भृत्यौसेवकौचण्डोमुण्डश्चतौपरं अतितरांसुमनोहरंरूपंबिभ्राणामम्बिकांकालिकाख्यांपार्वतींददर्श । 'सुमनोहरां'इतिपाठेदेवीविशेषणम् । चडिकोपे चण्डतेचण्डः । मुडिखण्डने मुण्डतिमुण्डयतिमुण्डः ॥ ४५ ॥

सारूपवतीकालिकादेवीताभ्यां चण्डमुण्डाभ्यां शुम्भायआख्याताचशुम्भसमक्षमुक्ता । किं हेमहाराज ! शुम्भदैत्येश्वर!समधिगतसर्वैश्वर्यसावधानोभव । अतीवसुमनोहराकापिस्त्रीआस्ते किं कुर्वती हिमाचलंभासयन्ती स्वयंश्यामाश्यामाभिः शोभाभिरदभ्रशुभ्रशोभाढ्य'हिमाद्रिंपार्वतीआस्ते । आख्याताअतीचेत्यत्रवैभक्षिकंसन्धिकार्यम् । शुम्भायेतिक्रियाग्रहणंकर्त्तव्यमितिसम्प्रदानत्वं

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् । पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवाहयः ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे । रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाऽब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ४६ ॥

पत्येशेतेइतिवत् । सुष्ठुमनोहरतिसुमनोहरा ।' हरतेरनुद्यमनेऽच्' । यद्वा, इःकामः वसुनिधनेयेषां ते इवसवः कामधनाः तेषांमनः हरतिइतिइवसुमनोहरा अत्यर्थं इवसुमनोहरा । इत्यम्बिकां प्रत्यनिष्टोऽर्थः तस्याः पातिव्रत्यभङ्गप्रसङ्गात् । इष्टोऽर्थस्त्वेषः शोभनंमनोयस्यसुमनाः शुम्भुः तंहरति अर्धाङ्गहरत्वात्सुमनोहरा । अतितरांसुमनोहरा । यद्वा, । पैओवैशोषणे । इंकामंवायतिशोषयति-इवः शिवः । यद्वा, इं कामंवातिगच्छतिइवः शिवः । आतोनुपसर्गेकः । इवस्यसुनोहरा अत्यधिकंसुमनोहरा अतीवसुमनोहरा । यद्वा, इश्चकामः ईवलक्ष्मीः वसवश्चाष्टौईवसवः अतिक्रान्तईवसून् अतीवसुःशम्भुः तस्यमनोहरा । 'ध्रुवोधरश्चसोमश्चह्यापश्चैवाऽनिलोनलः । प्रत्यूषश्चप्रभासश्चवसवोऽष्टौध्रुवादयः' ॥ ४६ ॥

हे असुरेश्वर! शुम्भक्वचिदपिभुवनेकेनचिदपिपुंसाताद्वक्ताद्वशंउत्तमंअति-सुन्दरंरूप आकारः नैवदृष्टं नैवालोकि । असौकापिदेवस्त्री । यद्वा, का-पिकृताभिप्रेकाराज्ञी इतित्वयाज्ञायताम् । अथत्वयासौगृह्यतांउपादीयतांचेति-अम्बिमांप्रतिअनिष्टोऽन्वयः । इष्टस्त्वेषः । तादृगुत्तमंक्वचिद्पंज्ञानरूपंकापिकेन-चिद्दृष्टंन । तस्मादसौदेवीकापिपरदेवता इतित्वयाज्ञायताम् । असौकापि-स्त्रीअबलाऽस्तीतिनैवज्ञायताम् । अपित्वसौदेवीगृह्यतांचात्मसंरक्षणार्थंआश्री-यतामितिहितोपदेशः । शुम्भंप्रतितातटस्थ्येन ॥ ४७ ॥

हे दैत्येन्द्र! त्विषादीप्त्यादिशःदशापिककुभःद्योतयन्तीअङ्गकान्त्याभासय-न्ती । अतिचार्वङ्गीअत्यन्तं चारुमनोहरमङ्गंयस्याः सा । स्त्रीरत्नंरत्नंहिमनो-

छत्रन्ते वारुणंगेहे काञ्चनस्रावितिष्ठति । तथाऽयं स्यन्दनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश! त्वया हृता ।

हरत्वेनोत्कृष्टंसापुनरुत्कृष्टातिष्ठतितांभवान् द्रष्टुमर्हतीत्ययमम्बिकांप्रत्यनिष्टोऽन्वयः । इष्टस्त्वेषः । हेदैत्येन्द्रसानूनंस्त्रीरत्नंसानूनं अतिचार्वङ्गीकितयाऽकृतंस्यात् तांभवान्द्रष्टुमर्हति । यःतांदोषबुद्ध्यापश्येन्नश्येत्ससतदैवतस्मात्तांद्रष्टुं भवान्मायततांइतिशुम्भंप्रतिताटस्थ्येनहितोपदेशः । रमन्तेऽस्मिन्नरारत्नंरत्नमितिप्रख्यामणावेवनकेवलम् । 'जातौजातौयदुत्कृष्टंतद्रत्नमभिधीयते' ॥ ४८ ॥

हेप्रभोशुम्भयानित्रैलोक्येगजाश्वादीनितत्तज्जातिप्रधानान्युत्कृष्टानिरत्नानितथापद्मरागादयोमणयः रत्नानितानि समस्तानि सांप्रतमधुनातेतवगृहेवर्त्तन्तेवैप्रसिद्धमेवैतत् । ताटस्थ्येपिप्रायेणैषोऽन्वयः । हेप्रभो! त्वंदूतवचनात्तामानयितुंयतेथाश्चेत्तर्हियानित्रैलोक्येगजाश्वादीनिवैप्रसिद्धानिमणयश्चरत्नानिसम्प्रतितेगृहे सन्तितद्दर्शनोत्तरकालंतुनस्युः । किन्तुत्रैलोक्येएवतानियथास्थानं स्युरितिहितोपदेशः । गजाश्वादिशब्दविवक्षितरत्नजातानिनामतोनिर्दिशति ॥ ४६ ॥

गजोरत्नं इतिपाठः उत्तरत्र रत्नप्रधानान्यसूचनार्थः । गजरत्नंइत्यपि पाठे रत्नानीतिवक्ष्यमाणरत्नोपसंहारवशात्सर्वत्ररत्नोपक्रमोऽप्यवगन्तव्यः । यः पुरन्दरादैरावतोगजः समानीतः तद्गजरत्नं ते गृहेवर्त्तते । निर्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति सर्वनामानिपर्यायेणतल्लिङ्गभाञ्जिभवन्ति । एतिभ्राम्यत्यनयेतीरातद्वान् इरावान् सुरासमुद्रः तत्रजातऐरावतः । पुराण्यरीणांदारयति पुरन्दरः । गजइतिरत्नं गजरत्नम् । अयं च यः पुरन्दरात्पारिजाततरुः समानीतः तत्तरुरत्नं ते गृहे वर्त्तते । पारिणःपारिवतोअब्धेर्जातः पारिजाताख्यः तरुः । तथापुरन्दरादेव यः उच्चैःश्रवाहयः समानीतः तद्धयरत्नं ते गृहे । उच्चैःश्रवसीयस्य स उच्चैःश्रवाः ॥ ५० ॥

हे प्रभो! यत्वेधसः ब्रह्मणः अद्भुतमाश्चर्यकारिविमानमासीत् हंसयुक्तं

पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ५१ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः । वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते । स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते

रत्नंभूतंरत्नत्वं प्राप्तं विमानंइहानीतं तत्ते गृहेतेऽङ्गणे तिष्ठति । विविक्तंमान्ति-वर्त्तन्तेयत्रदेवाःविमानम् । 'व्योमयानंविमानोऽस्त्री' ॥ ५१ ॥

धनेश्वरात्कुवेराद्यएषमहापद्मोनाम निधिःसमानीतः तदेतन्निधिरत्नंतेगृहे वर्त्तते । हे प्रभो! तुभ्यं अब्धिः समुद्रः किञ्जल्किनी अविशीर्णकेसराम् अवयव गतधर्मःकेसरवत्त्वंमालयाअपिपङ्कजारब्धत्वादवयवावयव्यभेदोपचारात् प्राप्नुवन्ती 'कर्णस्थकुण्डलेनकुण्डलीति'वत्किञ्जल्किनीत्युक्तंसर्वदाऽम्लानपङ्कजांअशुष्ककमलां मालां ददौ । उपचारतः किञ्चिज्जलतिजडीभवतिकिञ्जल्कः ॥ ५२ ॥

हे प्रभो! यद्वारुणंवरुणसम्बन्धिकाञ्चनस्रावि छत्रं छत्ररत्नंतवगेहेतिष्ठति नाऽन्यत्र । काञ्चनंसुवर्णंस्रवतिकाञ्चनस्रावीतिव्याख्यानं उत्कर्षाभावादुपेक्षणी-यम् ।यस्यगेहेनिधयःसन्तितस्यस्वर्णस्राविणाछत्रेणकिंस्यात् । वस्तुतो विग्रहःका-न्त्याकाञ्चनंस्वर्णंस्रवतीववर्षतीव । यद्वा, कान्त्याकाञ्चनवर्षीकल्पवृक्षः यद्वा, का-ञ्चनकान्तिमिवकान्तिंस्रवति । यद्वा, काञ्चनस्येवकान्तिंस्रवतिकाञ्चनस्रावि। पृषो-दरादित्वादीप्सितसिद्ध्याकान्तिशब्दलोपः। यद्वा, कचिदीप्तिबन्धनयोः कञ्चनं दीप्तिः प्रभा । 'काञ्चनंदीप्तिःप्रभाकञ्चनमेवकाञ्चनम् । अन्येषामपिदृश्यत'इति दीर्घः पूरुषवत् । काञ्चनंदीप्तिंस्रवतितच्छीलम् । लावण्यस्राविमुखंइति चटुत्प्रेक्षितमेतत् । काञ्चनंनामवैदिकनिघण्टुतःस्वार्णीकमम्भःस्रवतीतितुव्या ख्यानं कुशकाशावलम्बनम । अथद्वितीयोऽन्वयः । हेप्रभो! यद्वारुणं छत्ररत्नंकाञ्चन स्रावितेगृहेऽस्ति । काञ्चनस्रावीतिसप्तम्येकवचनंगृहेइत्यस्यविशेषणम् । रु गतौ 'हेतुमतिचे'तिणिच्ण्यन्तात् क्विप्'ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्र-तिषेधेने'तिअकृत्वा वृद्ध्यावादेशौणिलोपः । ततः 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं'

ऋषिरुवाच

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥ ५४ ॥

शुम्भ उवाच

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥ ५५ ॥

इतिवृद्धिः आवादेशस्तुवर्णाश्रयविधौप्रत्ययलक्षणान्नेष्यते । पुंसिकाञ्चनानां स्नौः काञ्चनानां प्रापयिता । नपुंसकेतु 'ह्रस्वोनपुंसकेप्रातिपदिकस्य' 'एच-इग्घ्रस्वादेशे' काञ्चनस्नुत्रपुशब्दवद्रूपम् 'तृतीयादिषुभाषितपुंस्कंपुंवद्गालवस्ये'ति ङौह्रस्वश्चनुम्चनभवति । आवादेशः । काञ्चनस्नावि । पक्षेकाञ्चनस्नुणि गृहे । हे प्रभो! स्यन्दनवरः अयमितिको नुयः पुराकल्पेप्रजापतेर्ब्रह्मणः आसीत् तदिदंनामरथरत्नं त्वयासमानीतं स्यन्दनेषु वरःश्रेष्ठः । 'यानेचक्रिणियुद्धार्थे शताङ्गःस्यन्दनोरथः' ॥ ५३ ॥

हेईशस्वामिन्मृत्योरन्तकस्ययाशक्तिरुत्क्रान्तिदानामत्वयाहृता । 'भुजि-मृङ्भ्यांयुक्तुकौ' । 'मृत्युः स्त्रीपुंसयोरन्ते' । म्रियन्तेऽस्मिन्नुपस्थितेऽत्तेप्राणिन-इतिमृत्युः । प्राणिनामायुषान्तेयाप्राणाकर्षिणीशक्तिःसाउत्क्रान्तिदोत्क्रान्ति-र्लिङ्गकायविनिर्गतिः । उत्क्रमणं उत्क्रान्तिः तां ददातिउत्क्रान्तिदा । 'कासू-सामर्थ्ययोःशक्तिर्देवतायामृषावपि' । हे शुम्भ ! तव भ्रातुः निशुम्भस्यापिपरिग्रहे परिजनेविषयेसलिलराजस्यवरुणस्यपाशःआयुधं वर्त्तते । 'पत्नीपरिजनादान-मूलशापाःपरिग्रहाः' । 'पाशोवन्धनशस्त्रयोः' ॥ ५४ ॥

किञ्चते तवभ्रातुर्निशुम्भस्यगृहेऽब्धिजातारत्नाकरसमुद्भूताः समस्ता रत्नजातयश्चउत्तमरत्नप्रकाराः तिष्ठन्ति । 'जातिःसामान्यजन्मनोः' । मुक्ताफल-विद्रुमहरिन्मणिवज्रपद्मरागाद्यारत्नजातयः । हे शुम्भ!तुभ्यंवह्निश्चापिदेवः अग्नि-शौचेनामवाससीवसनेददौ । अग्नौनिक्षेपतःशौचंनिर्मलीकरणंययोस्ते । कल्पवृक्षो-

स तत्रगत्वायत्रास्तेशैलोद्देशेऽतिशोभने । तांचदेवीं ततःप्राहश्लक्ष्णं मधुरयागिरा

दूत उवाच

देवि! दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः । दूतोऽहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः

अव्याहताज्ञः सर्वासुयः सदादेवयोनिषु । निर्जिताखिलदैत्यारिःसयदाहश्रृणुष्वतत्

पकल्पितं स्वर्णमयमग्निदेवताकसन्निनिक्षेपेण विमलात्मकं वासोयुग्ममग्निशौचं वासः ॥ ५५ ॥

एवमित्थमुक्तरीत्याऐरावतःसमानीतइत्याद्ययाहेदैत्येन्द्र यद्वा, हेदैत्य! इन्द्ररत्नानिइन्द्रादिदेवानामैरावतादीनिरत्नानितुभ्यंआहृतानि उपढौकितानि उपहारीकृतानि । एषा च कल्याणम्बिकास्त्रीरत्नंवर्त्ततेतत्कस्मात्मारणान्नगृह्यते । अयंत्वम्बिकांप्रत्यनिष्टोऽर्थः । अयं त्विष्टोऽर्थतटस्थोक्तिसमाधिना । हेदैत्येन्द्रयद्यप्येवमैरावतादीनिरत्नानितुभ्यमाहृतानिदेवैः तथाप्येषाम्बिकातवकल्याणीशुभकारिणी न । कुतःयतएषाभगवती । त्वं अन्यंयातीतित्वया । 'आतोनुपसर्गेकः' । अन्यगामिनीतिगृह्यतेज्ञायते त्वशब्दोन्यवाचिसर्वादिषु पठ्यते । त्वं अन्यं महेश्वरंयातित्वयाऽन्ययाऽन्यपत्नीमहेशपत्नीदैत्यसंहारिणीअतःशुम्भस्यशुभकारिणी न । तस्मात्तच्चिन्तां त्यजेतिहितोपदेशः ॥ ५६ ॥

महासुरःशुम्भःतदाचण्डमुण्डयोरितिप्रागुपन्यस्तं वचः निशम्यश्रुत्वा सुग्रीवंनामदूतं सन्देशहरंदेव्याः देवींउद्दिश्यप्रेषयामास । शाम्यतिर्निपूर्वःश्रवणार्थः । इषगतौ प्रपूर्वः आद्गुणः । देव्या इति कर्मणि'ल्यब्लोपे पञ्चमी' । दूयतेऽनेन यथोक्तवादित्वात् परिताप्यते परइतिदूतः ॥ ५७ ॥

हे सुग्रीव! हेदूत!त्वयातत्रगत्वासास्त्रीममवचनादितिचइत्थंचेत्थंचसाग्ना भेदेनचोपायेनवक्तव्या । तथैव सासम्प्रीत्या हर्षेण लघुक्षिप्रंअविलम्बंअभ्येति आभिमुख्येनागच्छति तथाकार्यं त्वयाविधेयम् । अयं त्वम्बिकायामनिष्टोर्थः । इष्टस्त्वयम् । अत्रापरेणमन्त्रभेदबुद्धिसमाधिनाख्यायतेऽर्थः । हे दूत!त्वया

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः । यज्ञभागानहंसर्वानुपाश्नामि पृथक्पृथक् ॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नञ्च हृतंदेवेन्द्रवाहनम् ॥

लघु क्षिप्रं तथा कार्यं मदभिप्रायादन्यत्वेनकर्त्तव्यम् । तत्कथं यथामयिविषये अभिद्यमानंवचनं निन्द्यायेषांते अवचनाअसुराःतानत्ति उपसंहरत्यवचनात् असुरसंहारिणीत्यर्थः । पुनः किंभूताम्बिका एतिगच्छतिविनश्यतिइत्तस्मिन् इति शुम्भे निशुम्भे च विषये । वक्तव्यासावक्तव्यप्रतिक्षेपा । असुक्षेपणेअसनमासः । वक्तव्योवचनीयः आसः प्रतिक्षेपोन्यक्कारोययासा वक्तव्यासा । पुनः किंभूताः । मम ममेत्यव्ययं मम शब्दोत्रमायावचनः निर्ममोयोगीसममः संसारीतिवत् माया रूपेत्यर्थः । पुनः किंभृता । मम्प्रीत्याप्रीङ्प्रीतौदिवादिः प्रीतिः प्रीः स्त्रियां सम्पदादित्वाद्भावेक्विप् । समीचीनाप्रीःप्रीतिर्येषांतेसम्प्रियोवुधाः । ईयतेवश्यं प्राप्यतेतयोरुपासकैरित्यासम्प्राप्या । आदन्तंरूपम् ॥ ५८ ॥

ससुग्रीवोनामदूतः यत्रयस्मिन्नतिशोभनेशैलोद्देशेपर्वतप्रदेशेअसौदेव्यास्तेतिष्ठतितत्रगत्वा ततः तदनन्तरंतांदेवींश्लक्ष्णंसमुचितंसङ्गतंसुकुमारं यथास्यात्तथामधुरयाश्राव्याक्षरपदयागिरावाचाप्राह च । शुम्भोदितसन्देशाभिप्रायगर्भं सन्दर्भमकथयत् । प्राहेतिप्रशव्दउपसर्गप्रतिरूपकोनिपातः । आहेतितिङन्तप्रतिरूपकमव्ययं सामावृत्ति । श्लक्ष्णंइतिश्लिष्आलिङ्गने । 'श्लिषेरच्चोपधायाः'-इतिक्स्नः । कत्वपत्वे ॥ ५९ ॥

हे देवि! सावधाना भव । अस्तिखलुदैत्येश्वरः लोकत्रयेपरमउत्कृष्टईश्वरः स्वामीतेनशुम्भेनत्वत्सकाशंप्रतिप्रेषितः दूतः सन्देशहरोऽहं इहागतोऽस्मि । दैत्यग्रहणंजातिख्यापनाय । त्रैलोक्यग्रहणंदेव्याः प्ररोचनार्थम् । दूतग्रहणंतन्निग्रहपरिहाराय । 'दूतोक्तंसदसद्वापिश्रुत्वाकार्यंहिताहितम् । दूतोननिग्रहीतव्य इतिनीतिविदोविदुः' । आदौदेवीत्युक्तत्वाद्देव्याएवजयःसूच्यतेयतः । दीव्यतिविजिगीषतेदेवी । हे देवि! तेनशुम्भेनदूतः प्रेषितः त्वत्देवीतःसशुम्भः का-

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः । उच्चैःश्रवससञ्ज्ञं तु प्रणिपत्य समर्पितम्
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥

शंतृणंगतः स्यान्नतुजयमित्यपिदेवीपारिषदोक्तिलेशोऽनुसन्धेयः ॥ ६० ॥

हेदेवि! यः सदासर्वदासर्वासुदेवयोनिषु विषयेषुअव्याहताज्ञः अप्रतिहत-शासनः निर्जिताखिलदैत्यारिः निर्जिताअभिभूताअखिलाः दैत्यारयः देवायेन शुम्भो यदाहतद्वचनं शृणुष्वाकर्णय। व्यत्ययोबहुलमित्यात्मनेपदम् । व्येञ्संवरणे । संवरणमाच्छादनंक्विप् । अंविष्णुंव्ययतिसंवृणोतिआच्छादयतिव्याप्नोत्यवि-द्यात्वेनेतिअवीर्विष्णुमायातयाअव्ययादेव्याआहताआज्ञास्यशुम्भस्यसः अव्याहता-ज्ञोभविष्यति । 'निर्निश्चयनिषेधयोः' । निर्जिताअजिताअखिलादेवायेनसतथो-क्तोभविष्यतीत्यपिदेवीपार्षदोक्तिलेशोऽप्यनुसन्धेयः ॥ ६१ ॥

शुम्भआहेदम् । पटैकदेशेदग्धेपटोदग्धइत्यवयवेएकदेशेअप्यवयवीसमु-दायोवर्त्ततेक्वचिदवयवावयविनोरभेदोपचारात्प्रयोगेषु तद्वत्त्रैलोक्यं मम स्ववंवर्त्तते इत्युक्ते किंत्रैलोक्यं एकदेशवृत्त्याविवक्षितमिहेतिकस्यचिच्छङ्कास्यादतस्तामपने-तुमखिलमिति अखिलमित्येवोक्ते एकंकोऽपिलोकोऽखिलोभवत्यखण्डवृत्तित्वाद्गुग-नस्येत्यतस्त्रैलोक्यमित्युक्तम् । इहममेतिविभक्तिप्रतिरूपमव्ययम् मायावाचि-निर्ममोयोगीतिवत् । मम मायादेव्याः त्रैलोक्यं इत्युक्तम् । मायायाअखिलं-स्ववंवर्त्ततेतत्कुतः शुम्भस्येत्यपिदेवीपार्षदोक्तिलेशोऽप्यनुसन्धेयःदेवाः मम शुम्भस्य-वशानुगाः । वशः कान्तिरिच्छा । मदिच्छामनुवर्तन्तेनतुशुम्भस्येत्यपिदेवा पार्षदोक्तिलेशोऽनुसन्धेयः । तत्तद्देवतोद्देशेनपृथक् पृथक् विहितान् तान् सर्वान् यज्ञभागानाहुतिरूपान्यज्ञांशान् अहमेवशुम्भःपृथक्पृथगिन्द्रियादितत्तद्देवताकायव्यू-हमुपाश्रित्यउपाश्नामिउपभुञ्जे । अश्भोजनेक्र्यादिः । अहमितिविभक्तिप्र-तिरूपमव्ययमविद्यावाचि अविद्यावाऽतस्मिंस्तद्बुद्धिःसाचदेव्येवयज्ञभागानुपाश्ना-तातिकुतःशुम्भस्ययज्ञभागोपभोगइत्यपिदेवीपार्षदोक्तिलेशोऽनुसन्धेयः ॥ ६२ ॥

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि! लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ ६३ ॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भजत्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः

त्रिष्वपिलोकेषु वराणिश्रेष्ठानिरत्नानिस्त्रीरत्नानि मम वश्यानिविधेयानि। वशंकान्तिंइच्छांगतानीत्यर्थः। वशंगतइतियत्प्रत्ययः। तथैवतद्वदेववलवत्त्व- तएव। गजरत्नंदेवेन्द्रवाहनम्। 'वाहनमाहितादि'तिणत्वं नात्र भवति। वा- हितत्वस्याविवक्षितत्वात्। अत्रहिदेवेन्द्रस्यवाहनमित्येतस्यस्वस्वामिभाव- सम्बधमात्रं विवक्षितत्वम्। यद्वाहनेआरोपितंयतोखिलं तदाहितमुच्यते। इक्षु- वाहणमित्यत्रइक्षवोवाहने आरोपिताइतिकृत्वाणत्वंभवति ॥ ६३ ॥

क्षीराण्युदकानियस्यसक्षीरोदःक्षीराब्धिःउत्तरपदे'उदकस्योदःसञ्ज्ञायां' इत्यत्र सञ्ज्ञायामुत्तरपदस्योदकशव्दस्योदादेशोवक्तव्यः। क्षीरोदस्यमथनंतत उद्भूतं उच्चैःश्रवससञ्ज्ञम्। श्रुगतौश्रुश्रवणे। उच्चैःशृणोति गच्छतिउच्चैः श्रवाः पचाद्यच्। सहसञ्ज्ञयाचेतनयानाम्ना चवर्तते ससञ्ज्ञः। सहस्यसः सञ्ज्ञा- यां वोपसर्जनस्ये'तिततः कर्मधारयः। उच्चैः श्रवश्चासौससंज्ञश्चउच्चैः श्रवस- सञ्ज्ञः। अश्वविशेषणत्वेपुँल्लिङ्गः। अश्वरत्नविशेषणत्वेतुनपुंसकलिङ्गंउच्चैः- श्रवससञ्ज्ञम्। अथवाप्रशस्तेश्रवसीयस्यसः श्रवसःमत्वर्थेअर्शआदित्वादच्। जवेनमानेन च उत्कृष्टत्वादुच्चैरित्युच्यते। उच्चैश्चासौ श्रवसउच्चैः श्रवस इतिसञ्ज्ञायस्यसः। अश्वरत्नविशेषणत्वे उच्चैः श्रवससञ्ज्ञं तु मद्गीतैरमरैः प्रणि- पत्यमत्पादपद्मेऽर्पितंउपायनीकृतम्। 'उपायनमुपग्राह्यउपहारस्तथोपदा'। अ त्रापिमायावाचिममेत्यव्ययम्। मायादेव्यैअमरैर्भक्तिनम्रैरश्वरत्नंप्रणिपत्यसम- र्पितंतत्त्रैलोक्ये गृहेयस्यायत्रक्वाप्यस्तुअयंतुशुम्भोऽन्यदीयं ममेदमितिमुधाभिमन्य ते। इतिदेवीपार्षदोक्तिः॥ ६४ ॥

हे शोभनेदेविदेवेषु वागन्धर्वेषुदेवगायनेषु वाउरगेषु नागेषु वायानिचान्यर-

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज

ऋषिरुवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ६६ ॥

निरत्नत्वमुत्कृष्टत्वंप्राप्तानिभूतानिशरीरभाञ्जिमनोहराणिस्त्रीरूपाणिसन्ति (तानि) सर्वाणिमय्येवविषयेवर्त्तन्ते । आः सखिशोभनेगर्वस्थोसावित्थमभूतवादीशुम्भः शाम्भवीयं देव्येवभूतमित्थमाचष्टयानिदेवेषुगन्धर्वेषुउरगेषुचारत्नभूतानिरत्नतांप्राप्तानिभूतानि कृतानि सत्यानि तत्स्थानि सन्तितानि मय्येवदेव्यामेववर्त्तमानानिनान्यत्र । अथवाऽइतोऽन्यानि च यानि चरत्नभूतानि पृथिव्यादीनि सन्तितानिसर्वाणिविश्वरूपत्वेन विश्वमातृत्वेन मय्येवदेव्यांवर्त्तन्तेनशुम्भइतिदेवीसखीजनोक्तिलेशोऽप्यनुसन्धेयः ॥ ६५ ॥

हेदेवि! लोकेऽस्मिन्रत्नभूतांभूलोकेहिमालयनिवासिनींमानिनीं त्वांस्त्रीरत्नभूतांस्त्रीरत्नजातांस्त्रीजात्युत्कृष्टां तां प्राप्तवतींवयंशुम्भनामानोमन्यामहे । सा एवं विधात्वमस्मानुपागच्छप्राप्नुहि । कुतइत्यतआह । यतोवयंरत्नभुजोराजानः । यदुक्तं । 'स्वराष्ट्रमन्यतोरक्षत्यन्यदीयंक्षिणोति च । 'वर्द्धतोपायवान्नित्यंरत्नहारी स पार्थिवः' । देवीप्रार्थस्त्वेषः । उपागच्छेत्यत्र उ पाः गच्छेति च्छेदः । तत्र'उसम्बुद्धौरुषोक्ते च शिववाचित्वनव्ययम्' । पानेपिबतिःरक्षायां पातिः पायतिः शोषणेक्विप् । पायतिशत्रून् शोषयतिपाः उरिवरुद्रइवपाउपाः ।

हेदेवि! कालाग्निरुद्रइवपायन्तीशत्रून् शोषयन्तीसती अस्मानितिशुम्भादीन् त्वामाकारयमाणान्शत्रून् शोषयितुंगच्छयाहीतिदेवीपार्षदोक्तिलेशोऽप्यनुसन्धेयः । यद्वा, असुक्षेपणेदिवादिः क्विप् । अस्यत्यरीन् क्षिपत्यधिक्षिपतिन्यक्करोतिअः 'अत्वसंतस्यचे'तिउपधादीर्घःअधातोरितिप्रतिषेधान्नभवति पैओवैशोषणेपायंतिशोषयन्तिलोकानितिपाः तेषांपांशुम्भादीनां दैत्यानां अः आसिकाक्षेपिकाअ-

देव्युवाच

सत्यमुक्तं त्वया नाऽत्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चाऽपि तादृशः ॥ ६७ ॥

धिक्क्षेपिकान्यक्कारिकेतिपाः । पांञःपाः उइतिसंबुद्धावव्ययं उहेदेवि! त्वं अस्मानुपागच्छेतिशुम्भादिभिः रत्नमुड्भिः दैत्यैराकारितासि । सात्वंपाःसतिगच्छपायतोजगन्तिशोषयतःशुम्भादीनस्यन्ती अधिक्षिपन्तीगच्छयाहि । कुतइत्यतआह । यतस्तेरत्नभुजः । भुजोकौटिल्ये तुदादिः क्विप् । भुजन्तिकौटिल्येनवर्त्तन्तेभुजः रत्नेषूत्कृष्टेषु विषयेषु भुजः कौटिल्येनान्यायेनवर्त्तमानाः रत्नभुजः अतः तेषांशुम्भादीनांकुटिलानांन्यक्करणायगमनं युक्तमुत्पश्याम इतीतिदेवीपार्षदोक्तिः ॥ ६६ ॥

'चलाचलःस्यात्तरलश्चञ्चलश्चपलश्चलः' । चञ्चलौनेत्रान्तनिरीक्षणेनतरलौअपांगौनेत्रांतौयस्याःसाचञ्चलापाङ्गी । हे चञ्चलापाङ्गि! हेवरारोहे! त्वंयतोरत्नभूतासिसौन्दर्येणउत्कृष्टतां प्राप्तासिततोवैअनुनीयसे'नरत्नमन्विष्यतिमम्रृष्यते हि तद्दि'तिन्यायतःप्रार्थ्यसेततश्चमांनिशुम्भंवाभजआश्रय । उरुर्विक्रमःशौर्यलक्षणो यस्य तंममअनुजंकनिष्ठंभ्रातरं निशुम्भंवापिभजसंश्रय । त्वंहिरत्नंरत्नभाजश्च राजानइववयश्चराजानः तस्मात्त्वमस्मानेवभजनान्यानितिशुम्भानुकूलोभिप्रायोऽयम् 'वैस्यात्सम्बोधनेपादपूरणेऽनुनयेऽपिच' । देव्यनुकूलार्थस्त्वेषः । 'सप्तम्यांजनेर्डः' 'अन्येष्वपिदृश्यते'इत्यत्रसूत्रेअपिशब्दःसर्वोपाधिव्यभिचारार्थः । तेनधात्वन्तरादपिडोभवतिकारकान्तरेषूपपदेचेतिवचनात्पिष्टृसंचूर्णन इत्यस्मादाङ्पूर्वाच्चञ्चलोप पदात्डः टिलोपः साचञ्चलान्न्यायादपभ्रष्टान्दैत्यानासमन्तादभिव्याप्यपिनष्टि सञ्चूर्णयति इतिचञ्चलापंअङ्गंगात्रंयस्याःसाचञ्चलापाङ्गी । 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यश्चोप सङ्ख्यानाद्वा,ङीष्‌।हेचञ्चलापाङ्गि!हेदुष्टदैत्योपसञ्चूर्णनसन्नद्धगात्रेएवंविधात्वंशुम्भेन आकारितासिकिमितिमांवाअनुजंनिशुम्भंवाभजेत्याहूतासि यतश्चत्वंरत्नभूतासिवै

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ६८ ॥

अनुनीयसेप्रार्थ्यसेचततःत्वं मांवेतिशुम्भंअमगच्छयाहिअनुजंवापीति निशुम्भंअमगच्छयाहिअमइत्येतदमगतावित्यतोम्भार्देलोटिरूपंतच्च मां वा । अममा अनुजं इतिपदच्छेदात्क्रियते किंविशिष्टात्वं मा । 'मः शिवोवारमायांचमानिषेधेऽव्ययं मतम् । मंशिवंशम्भुं असतिगच्छति शम्भुना सह दीव्यतिचेतिविगृह्यअसगति दीप्त्यादानेष्वित्यसतेः पूर्ववदपिशब्दचिहितोडः डितिटेरस्शब्दस्यलोपः स्त्रियां माइतिरूपम् ततश्चताद्दशीशाम्भवीचञ्चलापाङ्गीदुष्टदैत्यसंहारसज्जाङ्गीसतीत्वमुरुविपुलंयथास्यात्तथाशुम्भादिषुविषयेविक्रमंभजशौर्यंसमाश्रयेतिदेवीपार्षदोक्तिलेशोऽप्यनुसन्धेयः । यद्वा, चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वा 'ऐयतःइतिच्छेदः । एकारउच्यतेविष्णुरैकारःस्यान्महेश्वरः' । ममेतिमायावाच्यव्ययम् । यतीप्रयत्ने यतनंयत् स्त्रियांभावेसम्पदादित्वाद्वाक्विप् । ऐमहेश्वरस्येवकालाग्निरुद्रस्येव यतंयत्नंप्राप्यहेममःहेमाये! देविमांहन्तुंनिशुम्भञ्चहन्तुं महान्तंविक्रमम्पादविक्षेपंपराक्रमंवाभजेतिदेवीपार्षदोक्तिः । चञ्चलानन्यायादपभ्रष्टानपकर्त्तुं हिंसितुं अङ्गति प्राप्नोतितच्छीलाचञ्चलापाङ्गी अगिर्गत्यर्थः । रत्नभूतश्चासावसिश्चेतिरत्न भूताऽसि । चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वा (?) । वागतिगन्धनयोः 'आतोऽनुप सर्गेकः' ॥ ६७ ॥

हे देवि त्वं ममशुम्भस्यपरिग्रहात्पत्नीत्वेनस्वीकारादतुलमनुपमम्परंश्रेष्ठं ऐश्वर्यंपरमेषुश्रेष्ठेषुस्वामितांचप्राप्स्यसि । व्यत्ययेनात्मनेपदम् । यद्वा, मया शुम्भेन त्वं परमैश्वर्यंप्राप्स्यसेप्रापयतेः कर्मणि लुटिथासःसेरूपम् । हे देवि ! एतत्सर्वंप्रागुक्तंशुम्भाभिप्रायगर्भंबुद्ध्यासमालोच्यविचार्यमत्परिग्रहतांव्रजप्राप्नुहि । 'परिग्रहःपरिजनेपत्न्यांस्वीकारमूलयोः' । यदाहुः,' पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः, । इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । देव्यनुकूलोऽर्थस्त्वेषः । हेदेवि! त्वंपरमा-

यो मां जयति सङ्ग्रामे योमेदर्पं व्यपोहति । योमेप्रतिबलोलोकेसमेभर्त्ताभविष्यति
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किञ्चिरेणाऽत्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ ७० ॥

सर्वोत्कृष्टा । यद्वा , पराउत्कृष्टामालक्ष्मीःत्वमेवेतिअतुलं ऐश्वर्यंप्राप्स्यसीतियत् सत्यमेवैतत् । किंचित्रं । किंचमत्परिग्रहात् । मदिहर्षेमाद्यतिमद्धकिप् । यःमद्-माद्यन्परिग्रहः मातृमुख्यःपरिवारः तंप्राप्यपरमैश्वर्यंप्राप्स्यसेइत्येतदपिसिद्धमेवैतत् । मत्परिग्रहादिति'कर्मणिल्यबलोपेपञ्चमी' । हेदेवि ! त्वं एतद्बुद्ध्यासमालोच्य माद्यत्परिग्रहोमातृमुख्यःपरिजनोयस्याः सा मत्परिग्रहतातांव्रजप्राप्नुहि । यःख-ल्विमाश्चित्रागावोमेंसन्तीत्यादौबुद्ध्यासमालोचते स एव खलुचित्रगुतांप्राप्नोति तद्वदियमपिदेवीप्रेमतःआत्मनोमन्माद्यन्परिग्रहोऽस्तीतिबुद्ध्यासमालोच्यपश्चान्मा द्यत्परिग्रहताम्व्रजतीतिदेवीपार्षदोक्तिः । 'त्वतलोर्गुणवचनस्यपुंवद्भावोवक्तव्यः' ॥ ६८ ॥

ततः सन्देशश्रवणसमयइत्येवंशुम्भेनदूतद्वाराउक्ताकथिता । देवी गम्भीराअगाधाभिप्रायादैत्यान्हन्तुकामाअतएवान्तःस्मिताः । शुम्भोदुरात्मामां प्रतिदेवतांइत्थमाहेतिसोत्प्रासमन्तम्तम्भितहासातंहन्तुमनाःसतीजगौ । दूतंवाच-मुचितामूचेऽकथयत् । दुर्गादुरवगाहा । भगवतीसमग्रैश्वर्यरूपा । भद्राक्षे-मरूपा ययाइदंजगद्धार्यते गैशब्दे'आनऔणलः' । अयंभावः इतिदूतेन व्यभिचारि-भावेनउक्तापिदेवीनसाअसाताद्दृशानाभूत् अतिपतिव्रताशुम्भादिभि सहरन्तुकामा-नाभूत् । किन्तुअतदाकालान्तरेहन्तुकामैवाभूत् ॥ ६९ ॥

अत्रशुम्भेऽपिविषयेसत्यंउक्तंहेदूत! अत्रत्वयामिथ्यापदंकिञ्चिन्नउदितंनउक्तं । तथाहि । शुम्भस्त्रैलोक्याधिपतिर्भवति निशुम्भोऽपिचताद्दृशःशुम्भसदृशएव । मिथ्येत्यव्ययम् । इदंहिसोल्लुण्ठनवचः । अनितिजीवति 'अनःपचाद्यच्' । अयेन शुभावहविधिनाअनःअयानः हेअयानदूत त्वयाऽत्रास्यांपतिव्रतायांदेव्यांविषयेयद-

दूत उवाच

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः। त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः

सम्भावितेनेकिञ्चिन्मिथ्या उदितं उक्तंशुम्भं निशुम्भं वाभजेतितत्तुसत्यमुक्तंहीनम् । त्रैलो-क्याधिपतिःशुम्भइतियत् । एतत्सत्यंयतःशुम्भःत्रैलोक्यस्याधेर्मानसपीडायाःपतिः उत्पादकत्वेनस्वामीयतश्चसतादृशएवनिशुम्भोऽपि । 'पुंस्याधिर्मानसीव्यथा' । त्रै-लोक्यस्यत्वधिपतिरियंदेव्येवेतिदेवीपार्षदाभिप्रायतः सोत्प्रासताऽवसेया ॥ ७० ॥

'किंवितर्केपरिप्रश्नेक्षेपेनिंदाप्रकारयोः' । 'किमव्ययंवितर्केतुतुस्याद्भे देऽवधारणे'। शुम्भःत्रैलोक्याधिपतिःसत्यं किंत्वत्रास्मिन् शुम्भेपत्यावाश्रयितव्ये विषयेममविचारोऽस्तिपृथक् प्रतिनियतः । मयायत्प्राक् प्रतिज्ञातंतत्किंमिथ्याक्रि-यते । मयादेव्याऽल्पबुद्धित्वादनालोच्यपुराबाल्यकाले या प्रतिज्ञाकृतासात्वया दूतेनश्रूयताम् । कृतामयेतिवापाठः । अतसातत्यगमने । अल्पबुद्धित्वंअत-तिसततंगच्छतिसदाप्नोतीति अल्पबुद्धित्वात् क्विपिरूपम । सम्बुद्धौ हेअल्प बुद्धित्वात् हेस्वल्पधिषण! हेदूतत्वयोक्तःशुम्भंनिशुम्भंवाभजेति । तत्रयाप्रतिज्ञा भर्त्तृविषयेकृतासाश्रूयतां साचेत् घटेत तर्हिमेभर्त्ता । अन्यथायन्मयाप्रतिज्ञातंत-न्नस्यात् । 'मानिनोनिरयंयान्तियावदाभूतसम्प्लवम्' ॥ ७१ ॥

काऽसौप्रतिज्ञा । जिअभिभवेजिजयेइत्ययंत्वकर्मकः । योमेदर्पंगर्वं व्यपोहतिद्रावयतिदूरीकरोति । 'दर्पोहर्षणमोहनयोः' । 'गर्वोभिमानोऽहंकारो-दर्पोऽहंकारसूर्ययोः' । ऊहवितर्केआत्मनेपदी उपसर्गा'दस्यत्यूह्योर्वावचनमिति' परस्मैपदम् । योमेदेव्याः प्रतिबलोलोके अधिबलः सबलः स्यात्प्रतिबलः वि पक्षः प्रतियोगीवास्यात्समेभर्त्ता भविष्यतीतिप्रतिज्ञास्वरूपम् । लोकेजयन्ती अभिभवित्रीशक्तिरियमेवनैतां कोपिनेतुंशक्नोति । लोकेदर्पात्माऽहङ्काररूपा शक्तिरियमेवनैतांकोपिप्रच्यावयितुंशक्नोति । लोकेबलरूपाशक्तिरियमेवनै-तांकोऽपिप्रच्यावयितुंशक्नोति । इत्यभिप्रायेणप्रतिज्ञातमित्थंदेव्या । यःसङ्-

अन्येषामपिदैत्यानांसर्वैर्देवानवैयुधि । तिष्ठन्ति सम्मुखादेवि किंपुनःस्त्रीत्वमेकिका
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।

ग्रामेतुल्येसंसारग्रामेमां लक्ष्मींसंपदंजयतिपरमवैराग्ययोगादभिभवति । योऽमे ऽलक्ष्मीकेदैत्यवर्गेदर्पंहर्षणंगर्वंचव्यपोहति । योलोकेमेदेव्या अप्रतिबलःअप्रतिपक्षः अनुकूलःसमहेश्वरोमेभर्त्ताधारकः पोषकश्चनान्यइतिदेव्याः परमोऽभिप्रायोऽयं देवीपार्षदैःसहृदयैरूहितः ॥ ७२ ॥

पाणिग्रहणंकरोतु । तयोरन्यतरः । अत्रमत्प्रतिज्ञापरिपालनेचिरेण कालेनकिंसाध्यं किं विलम्बेनकृतंस्यात् । 'आदानस्यप्रदानस्यकर्त्तव्यस्य च कर्मणः । क्षिप्रमक्रियमाणस्यकालः पिबतितत्फलम्' । मत्पाणौप्रभुशुत्रुःतत्फलं द्रक्ष्यतिसः इतिदेव्याशयः । तत्तस्मात्प्रतिज्ञानःकारणाच्छुम्भोनिशुम्भोवाआगच्छतु तेनकिंस्यात् तदनादृत्यजित्वाजेतात्रैलोक्यविजयी महानसुरः महासुरः महादेवः मांगृह्णातुअत्रमद्ग्रहणे किं चिरेणेतिदेव्याः परमाभिप्रायं देवीसख्यःस्वस्व चेतः सुऊहन्ते । जिअभिभवे'अन्येभ्योपिदृश्यत'इतिक्वनिपिहस्वस्यपितिकृतितुगागमः । नान्तः । चिरेणातिकालेन अव्ययंचानव्ययंचेदम् ॥ ७३ ॥

लिपउपदेहेउपदेह उपचयः । अवपूर्वस्तुलिपिर्गर्वेवर्त्तते । यदभ्यधुः 'गर्वोभिमानोऽहंकारोमानश्चित्तसमुन्नतिः' । 'दर्पोऽवलेपोऽहन्ताच' । हेदेवि! त्वंअवलिप्तासिमैवंभूः एवंगर्विताभाभूः । त्वंममाग्रेएवंयदवोचः 'योमांजयतिसंग्रामे' इत्यादि 'तदागच्छतुशुम्भोत्रे'त्यादिचेति प्रतिज्ञाव्याजेनखलुत्वंकेवलमहमहमिकाम वोचोमैवंब्रूहि । कुतइत्याह । त्रैलोक्येशुम्भनिशुम्भयोरग्रेयोद्धुकामःकःपुमांस्तिष्ठेत् न कोऽपि । अबलात्वं योत्स्यसेइतिकाकथा । इतिशुम्भानुकूलोऽभिप्रायः अवलिप्तान् सगर्वान्दैत्यानस्यति अधिक्षिपति अवलिप्तासि । असुक्षेपे । कर्मण्यणि'टिड्ढाणञ्'सूत्रेण ङीपिरूपंतत्संबुद्धौहेअवलिप्तासि हेमदोद्धतमर्द्दिनि यतः त्वंमालक्ष्मीःअतोममाग्रहतःसखीजनस्यपुरतःएवंब्रूहि'योमांजयतिसङ्ग्रामे'इत्यादि

शुम्भादीनां कथन्तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥ ७२ ॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।

त्रैलोक्येअग्रेपुरोभाविसङ्ग्रामे शुम्भनिशुम्भयोर्मध्येकःपुमान् त्वयासमंयोद्धुं तिष्ठे-दपितुनकोऽपि । यदानदग्रेशुम्भनिशुम्भयोः सम्बन्धी कःपुमान् योद्धुकामः तिष्ठे-न्नकोऽपिइतिदेव्याः सखीजनाशयोऽनुसन्धेयः ॥ ७४ ॥

हे देवि! हेभव्ये अन्येषामपिशुम्भव्यतिरिक्तानां दैत्यानां धूम्रलोचनप्रभृतीनां युधिसर्वेदेवायोद्धुकामाः सम्मुखानतिष्ठन्ति । किंपुनः त्वंएकिकाअवलादैत्यानांपुरतः योद्धुमक्षमेतिकिं पुनर्वक्तव्यं इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । हेदेवि! अन्येषामपि दैत्यानांसम्मुखायुधिसर्वेदेवानतिष्ठन्तिचेत् मा तिष्ठन्तु । त्वंपुनः त्वंतुस्त्रीसत्यपिसमस्तशक्त्यधिदेवतारूपाएकाकिन्येव असहायशूरायोद्धुमन्येषां दैत्यानांसम्मुखीकिंनतिष्ठसि अपितुयोद्धुं संमुखीतिष्ठस्येवेतिदेवीसखीजनाभिप्रायोऽनुसन्धेयः 'वैस्यात्सम्बोधनेपादपूरणेनुनयेऽपिच' । 'एकाकीत्वेकएकलः' । 'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यातइदाप्यसुपः' ॥ ७१ ॥

हे देवि! येषां संयुगे इन्द्राद्याःसर्वेदेवाः सम्मुखाः नतस्थुःनतस्थिवांसः । तेषांशुम्भादीनां दैत्यानांसम्मुखं त्वं स्त्री अवलायोद्धुं कथंप्रयास्यसिअभिगमिष्यसि । विवाहनिमित्तप्रतिज्ञापालनाय शुम्भादिभिःसहस्त्रियास्तवयुद्धं न वर्तते । अपि तद्युद्धं विनैवशुम्भेनाहूता त्वं तं भजव्रजेतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । देवीसखीजनाभिप्रायोऽन्यएव । यथा हेदेवि! त्वं इन्द्राद्याः आसउपवेशनेकर्त्तारिक्विप्आस्तआःसान्तःइन्द्रादिषुआःआसीनाःइन्द्राद्याःइन्द्रादिभिर्देवैर्ध्यातासतातेष्वासीनासि । त्वंसकलाकलाभिःसहवर्त्तमाना । हेदेवि! त्वंदेवाःसान्तम् । दिवुक्रीडाविजिगायादौ 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' । दीव्यतिदेवाः 'अत्वसन्तस्ये'त्युपधादीर्घः देवाः विजिगीषमाणासि । पुनःकथंभूतात्वं येषांशुम्भादीनांसंयुगे इन्द्राद्याःनतस्थुः तेषां स्त्रीप्रयासीअसिस्त्रीःप्रयासन्तांभर्तृविनाशाजनितदुःखाकुर्वती । यस्तुप्रय-

केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ ७४ ॥

देव्युवाच

एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चाऽतिवीर्य्यवान् । किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा

त्नेणिप् । कर्मण्यण्ङीप् । एवंविधाऽसि । तेषांसंयुगेसम्मुखंकथंन-स्थास्यसिअपितुयोद्धुंप्रयास्यसिइति । 'सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदस्तु नेष्यते । अर्थान्तरेविविक्षायांवाक्यभेदोनदुष्यति' । यद्वा, हे देवि! इन्द्राद्याः सकलादेवाःयेषांशुम्भादीनांसंयुगेसम्मुखंनतस्थुः स्थातुंनशेकुःएतावतातेषांशुम्भादीनां सम्मुखेयोद्धुं विजेतुंत्वं कथनंप्रयास्यसि । इतिदेवीसखीजनाभिप्रायः । यद्वा, तस्थुः या ईषां इतिच्छेदः ईषगति हिंसादर्शनेषुभ्वादिरात्मनेपदीकर्तरिक्विप् । ईषन्ते हिंसन्तिईषःहिंसकाः तेषांईषांहिंसकानांशुम्भादीनां संयुगेइन्द्राद्याः नतस्थुः तेखलुभीरवः । हेदेवि यात्वंस्त्र्यपिसर्वशक्तिरूपावतीर्णासि । सा भगवती त्वं तेषांसम्मुखंकथं न प्रयास्यसियोद्धुं अपितुप्रयास्यस्येवेति ॥ ७६ ॥

हे देवि! सात्वंप्रागुक्तप्रतिज्ञापालनपटीयसीविवोढुमनाः मयादूतेन उक्ता कथितैवसती । यद्वा, त्वद्गौरवाभिवाञ्छिनामयादूतेन उपादिष्टासतीप्रतिज्ञाभङ्गभयंपरित्यज्यानपत्रपासतीशुम्भनिशुम्भयोःपार्श्वं गच्छ । यतःत्वंइत्थंसदुपदेशमाश्रयन्तीकेशाकर्षणनिर्द्धूतागौरवासतीमागमिष्यसि । माइत्यव्ययंनिषेधार्थकं अन्यथा'माङिलुङ्'स्यात् । केशानां शिरोरुहाणामाकर्षणेननिर्द्धूतंकम्पितंअपास्तंअपनीयंगौरवंगुरुत्वंबहुमान्यत्वंयस्याः सा इत्थंभूतासतीनागमिष्यसि । अन्यथात्वंमदुपदेशपराङ्मुखीसतीप्रतिज्ञांपालयितुं सङ्ग्रामंकर्तुंकामापितमलभमानात्रैवासीनाकेशपाशाकर्षणापाकृतबहुमान्यतासती बलादाकृष्यमाणा शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वंगमिष्यसि इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । देवीसखीविवक्षितस्त्वन्य एव यथा हे देवि! सात्वं दुरात्मनादूतेनइत्थंउक्ताऽतएवसञ्जातक्रोधासतीमया सख्यासहशुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वं गच्छ । ततः तयोःकेशाकर्षणनिर्द्धूतगौरवा

स त्वं गच्छ मयोक्तन्ते यदेतत्सर्वमादृतः। तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय सच युक्तं करोतु तत् ॥

शुम्भनिशुम्भयोःकेशानामाकर्षणेननिद्धूतं निरस्तंगौरवंदैत्येश्वरत्वं यया सा। तृतीयार्थेबहुव्रीहिः। एवम्विधा त्वंपुनरपिअमासखीजनस्यसमीपमागमिष्यसीति। 'अमासहसमीपे च'। त्यक्तं हीनंविधुतं समुज्झितं धूतमुत्सृष्टे। गौरवान्नागमिष्यसीतिपाठेतु। हे देवि! मयात्वद्गौरववाञ्छिनादूतेनउपदिष्टा सती मत्पार्श्वेइतिपाठेद्वितीयाद्विवचनान्तम्। मद्वचनाच्चेन्नगच्छेः तर्हिगौरवाद्बहुमानान्नागमिष्यसि किन्तुकेशाकर्षणनिधूताआगमिष्यसि। 'निर्निश्चयनिषेधयोः'। निद्धूताअत्यक्ताकेशाकर्षणेननिद्धूता बद्ध्वागृहीताबन्दीकृतासत्यपमानादागमिष्यसि। गौरवात्तुनागमिष्यसि। इति शुम्भाऽनुकूलोऽर्थः। देव्यनुकूलस्त्वेषः। हे देवि! कृतप्रतिज्ञात्वं तेनदुरात्मनाशुम्भेन मां भजेत्युक्तासती अतः सक्रोधामयासख्यासहशुम्भनिशुम्भयोःपार्श्वं हननाय गच्छ। ततश्चतयोः निद्धूतमत्यक्तंनिगृहीतं कुशाकर्षणं यया सा। आहिताग्न्यादित्वादग्न्याहित इतिवन्निष्ठान्तस्यपरनिपातः। निद्धूतशत्रुकेशाकर्षणासतीअत्यक्तकेशाकर्षणासत्यगौरवान्नागमिष्यसि। गौरवादेवसन्मानादेवनिजस्थानंपुनःआगमिष्यसि इतिदेवीसखीजनाभिप्रायः। गौरवाद्गागमिष्यसीतिवापाठः। यद्वा, कः ब्रह्माअश्च विष्णुः ईशश्चमहेशः केशाः तेषामाकर्षणंध्यानेनवशीकरणंहृद्यवस्थापनंतवधूतंत्यक्तं निर्निषेधेनिद्धूतंअत्यक्तंकेशाकर्षणंयैःऋषिभिःतेषांकेषाकर्षणनिद्धूतानां ऋषीणां आसमन्तादभिव्याप्यवर्त्तमानां गौरवंमान्यत्वं तददन्तिनाशयन्तियेदैत्याःतेकेशाकर्षणगौरवादः। 'पैओवैशोषणे'तान्केशाकर्षणनिद्धूतगौरवादोदैत्यान् वायतिशोषयतिकेशाकर्षणनिद्धूतगौरवाद्वा। 'आतोनुपसर्गेकः'। एवंविधासती आगमिष्यसि अनुस्यूनब्रह्मविष्णुमहेशानां गौरवादोदैत्याः। अदभक्षणेक्विप्। तान्वायन्तीशोषयन्तीसत्यपास्यसिस्वस्थानंइतिसखीजनाभीष्टाभिप्रायः ॥ ६७॥

हे दूत त्वयायदुक्तं शुम्भोबलीवीर्यवान्निशुम्भश्चवीर्यवान् इति एतदेवं

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येदेव्यादूतसम्वाद-
वर्णनंनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥
दुर्गासप्तशत्यांपञ्चमः

नान्यथा । अहं तुकिंकरोमियद्यस्मान्मेममप्रतिज्ञाइयमस्तिपुराप्रागेवमयानालोचिताविचारितानाभूत् । 'सम्भावितंप्रतिज्ञायनिर्वोढव्यंमनीषिभिः । प्रतिज्ञयाप्यसम्भाव्यंनिर्वोढव्यंकथंन तैः । निर्वोढव्यंप्रतिज्ञातंतर्कितंवाप्यतर्कितम् । परिज्ञातपरित्यक्तेःप्राणत्यक्तिर्वरंनृणाम् । वीरकर्मतदेतच्चवीर्यमित्यभिधीयते'।' इवेत्थ-मर्थयोरेवं'। 'यत्तद्यतस्ततोहेतौ' । मयापुराऽनलोचिताप्यविचारितापिमेप्रति-ज्ञाईदृश्येवाभूत् । अतश्चाहंकिंकरोमियुद्धादन्यत किन्तुयुद्धमेवकरोमि । किञ्चवलीशुम्भोनिशुम्भश्चातिवीर्यवानिति दूतेनयोगर्वउक्तःतमनर्वमपिगर्वमवं करोमि । एवमेतत्इदमित्थमेवेतिदेव्याःपरमोऽभिप्रायः ॥ ७८ ॥

हे दूत स त्वं गच्छनिजस्थानंयाहि । मयादेव्यायदेतदुक्तं प्रतिज्ञा-प्रमुखम्वचनंतदेवसर्वमादृतः आकलितवान् सन्नसुरेन्द्रायाचक्ष्वआख्याहि । सचएवशुम्भः यद्युक्तं उचितंयच्चानुचितंतत्करोतु । यदेतत्सर्वमादितः पाठे आदितआरभ्यअसुरेन्द्रायाचक्ष्व । चक्षिङ्लोलोटिरूपम् । सचयद्युत्तंउचितं करोतु ॥ ७९ ॥

इतिश्रीम० तो०श्रीम०शन्तनुचक्रवर्त्तिविरचितायांशान्तनव्यांदेवीमाहात्म्यटीकायां
देवीदूतसम्वादः पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

(षष्ठोऽध्यायः)

धूम्रलोचनवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

इत्याकर्ण्य वचो देव्याःसदूतोऽमर्षपूरितः। समाचष्टसमागम्यदैत्यराजायविस्तरात्
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट्ततः। सक्रोधःप्राहदैत्यानामधिपंधूम्रलोचनम्

हे धूम्रलोचनाऽऽशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ३ ॥

हे सुरथ ! इतिप्रागुक्तंदेव्यावचः आकर्ण्यश्रुत्वा अमर्षेणक्रोधेनपूरितः पूर्णः स दूतः समागम्यदेवीशैलात्सकाशादागत्यदैत्यराजायशुम्भायविस्ताराच्छब्द-प्रपञ्चनात्समाचष्टअकथयत्। चक्षिङोल्ङिरूपम् ॥ १ ॥

असुराणांराट्दैत्यराजःशुम्भःतस्यदूतस्यमुखाद्यद्वाक्यम्। यद्वा, तस्यादेव्या वाक्यंप्रतिकूलमाकर्ण्यश्रुत्वा ततोऽसौ सक्रोधः सन्दैत्यानामधिपंधूम्रलोचनं नाम महाअसुरंप्राह प्रस्थापयामास। प्रइत्युपसर्गप्रतिरूपमाहेतितिङंतप्रतिरूपक-मव्ययम्। हेशुम्भ ! त्वत्पार्श्वंदेवीनायातित्वयासहयोद्धुमिच्छतितांजेतुंउद्युङ्क्ष्व इति दूतवचःश्रुत्वादेव्यानयनायशुम्भोधूम्रलोचनं प्रस्थापयामास ॥ २ ॥

हेधूम्रलोचन! त्वं स्वसैन्यपरिवारितः सन दुष्टांकेशानामाकर्षणेनविह्वलां विवशां तां नितम्बिनीमाशुक्षिप्रंबलादानयप्रापयमांइतिशेषः। नी(णीञ्)प्रापणेद्वि-कर्मकः। इत्थं शुम्भस्याचरणंसन्मन्त्रशक्तिरहितश्चतमिदमनौतिकमालोच्य हितकारीनीतिविशारदोऽमात्यः कश्चिद्धूम्रलोचनंप्रस्थातुमुकमुपदिश्योपदिशति।

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः । सहन्तव्योऽमरो वापियक्षोगन्धर्वएववा

। कथं ?   तामानयबलाद्दुष्टांइत्यत्रतन्त्रेणश्वेतोधावतीतिवदर्थान्तरसृष्टौपदा-न्तरसृष्टिरिष्टैवेतितांअआनयइतिच्छेदःक्रियते । तथाहि ।   अनेकार्थसकृदुच्चरणं तन्त्रमाहुः । तत्रअइतिनिषेधेऽव्ययम् । 'अमानोनाःप्रतिषेधेऽव्ययाख्या' इतिवचनात् । अतश्चधूम्रलोचनत्वंस्वसैन्यपरिवारितः सन् तां देवीं आशुक्षिप्रंबलाद्बलमाश्रित्य अआनय (आत्मा) नय ।   कीदृशींतांपूर्ववत्तन्त्रेण आनयबलाद्दुष्टांइत्येकं पदं अविद्यमानःनयोनीतिर्येषां ते अनयाः शुम्भादयःतेषां इमानिबलानिआनयानि (तानि) च तानिबलानिच आनयबलानि (तानि) अतन्तिसततंगच्छन्तिभजन्ति आनयबलातः ।   अतसातत्यगमनेक्विप् ।   तेषुआनयबलात्सुआनयसम्बन्धि-बलभाक्षुपुरुषेषुदुष्टाविरुद्धाक्रूरातामानयबलाद्दुष्टां इत्येकंपदम् । यद्वा,   केशानां ब्रह्मादीनामात्मशक्तेरात्ममहामायाकेशात्सकाशाज्जगदुत्पत्तितिलयकारिणा। तत्तदव-सरेपूचितेष्वाकर्षणं केशाकर्षणं स्वमायानिलीनब्रह्मादिप्रकटीकरणं आह्वानं तद्विषये विशेषेणह्वलतिचलतिविजृम्भते केशाकर्षणविह्वला ताम् । ह्वलचलनेपचाद्यच् । इति देवीष्टार्थप्रतिपत्तिव्याख्यानतो दैत्यविध्वंसो न भवतीतिनीतिविदमात्याभिप्रायः ॥ ३ ॥

हे धूम्रलोचन! तस्यादेव्याः परित्राणं रक्षणं ददातीतितत्परित्राणदः । 'आतोनुपसर्गेक' ।   यः कश्चिन्मरोमर्त्योवाअमरोदेवोवा यक्षोवापि गन्धर्वोवापि परः शत्रुःपरःतां जिघृक्षुरन्यः ।   चकारान्नागादिर्वाविपक्षत्वेन उत्तिष्ठते उद्युङ्क्तेयदि सहन्तव्यएवनस्थापनीयः ।   'उदोनूर्ध्वकर्मणि' इत्यात्मनेपदम् ।   यक्षः कुबेरादिः । गन्धर्वस्तुम्बुरादिप्रभृतिः ।   पक्षान्तरेयद्ययंशुम्भोनातिरहितोयदाइत्थमादिक्षत्पर त्रियमानयेतितत्रनीतिपरोऽमात्यः प्राह । हेधूम्रलोचन! तस्याःदेव्याः सकाशात्परि-त्राणंयेषांतेतदेकशरणादेवादयः ।   दोअवखण्डने ।   तान्द्यतिखण्डयति इतितत्प-रित्राणदः ।   तद्भक्तहिंसापरः शत्रुर्यः कश्चिन्मरोमर्त्योवा अमरोदेवोयक्षः कुबेरादिः

ऋषिरुवाच

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं सदैत्योधूम्रलोचनः। वृतःषष्ट्या सहस्राणामसुराणांद्रुतंययौ

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ६ ॥

गन्धर्वस्तुम्बुरुप्रभृतिर्वा चकाराद्दैत्योवान्यस्तद्वेषीवाराक्षसोवालङ्कानिवासीनागो वासद्योहन्तव्य एवेतितस्मात्त्वांनानय। आनयसिचेत्तामापदमेवानयसि दैत्यकुल-विध्वंसिनी सेतिनीतिविदमात्योक्त्यादेर्वाष्टार्थसिद्धिः ॥ ४ ॥

ततस्तेन शुम्भेन शीघ्रंगच्छतामानयेत्याज्ञप्त आदिष्टः सधूम्रलोचनः दैत्यः षष्ट्यागुणितानां सहस्राणां सङ्ख्येयानामसुराणां सङ्घट्टेनवृतः द्रुतंक्षिप्रंययौ। सहस्राणां षष्ट्यावृतः असुराणां सम्बन्धीनिसहस्राणि तेषां सम्बधिनीयाषष्टिः तयावृतोद्रुतंययौ। आज्ञप्त इतिज्ञप् 'मारणतोषणनिशामनेषु मिच्चे'तिचुरादिः। कर्मणिक्तः। वादांतसूत्रेज्ञप्त,इतिनिपातनात् वाइट् प्रतिषेधोणिलुप्तोपधायाह्रस्व-ता च। ज्ञानियोजने चुरादिरेव। अतोनिष्ठायामाज्ञप्त इत्येव ॥ ५ ॥

ततः शुम्भनिदेशतः सधूम्रलोचनः तुहिनाचलसंस्थितांहिमाचलस्थांतां देवींदृष्ट्वाउच्चैःजगादअत्युच्चैरुवाच। हेदेवि! त्वं शुम्भनिशुम्भयोर्मूलंसमीपप्रयाहि गच्छेति। 'मूलमाद्येशिफायांस्याद्भेनिकुञ्जेऽन्तिकेऽपिच'। इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः देव्यनुकूलस्त्वेषः। हे देवि! त्वं मूलप्रतिष्ठायांभ्वादिः। मूलनंमूलः। भावे-घञ्। तंमूलंप्रभुतांयाहि प्राप्नुहीतिसदेवीसखीजनः तुहिनाचलसंस्थितां तां दृष्ट्वा उच्चैर्जगाद। कीदृशीदेवीशुम्भनिशुम्भयोः। 'शुम्भभासनहिंसनयोः'। भ्वादिः परस्मैपदीशुम्भति रणेभासति हिनस्तिचेतिशुम्भोदैत्यः। पचाद्यच्। नितरां शुम्भनंहिंसनंनिशुम्भः। भावेघञ्। शुम्भस्यदैत्यस्यनिशुम्भः हिंसनंतस्मिन् विषयेयतमाना। 'सप्तम्यांजनेर्डः' 'अन्येष्वपिदृश्यते' इत्यत्रापिशब्दात्सर्वोपाधिव्य-ऽभिचारः इतिवचनाद्धात्वन्तरेऽपिकारकान्तरेऽपिचडोभवतिडित्यभस्यापिटिलोपः

न चेत्प्रीत्याऽद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यसि । ततोवलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम्

स्त्रियां टाप् । अवतिरक्षतिपापेभ्यः ऊः उवौउवः । शुम्भनिशुम्भयाचासौऊश्चे तिविगृह्यकर्मधारये आद्गुणे च शुम्भनिशुम्भयोः । यद्वा, शुम्भनिशुम्भया देवी । कीदृशी । ऊः इतिपदच्छेदः । अवरक्षणेक्विप् । 'ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुपधा- याश्चे'तिवकारस्य अकारस्य ऊठादेशद्वयेसवर्णदीर्घत्वेऊः रक्षिकेति । संस्थितां सम्यगवस्थिताम् । 'संस्थाधारेस्थितौ मृतौ' ॥ ६ ॥

हे देवि! अद्यास्मिन्नहनिभवतीप्रीत्यास्वरुच्यामद्भर्त्तारं स्वामिनं शुम्भं नोपैष्यसिचेद्यदिनोपगमिष्यतिततः तर्हिएषोऽहंधूम्रलोचनः अधुनैववलात्कारेणके- शानामाकर्षणादाश्रथनाद्विह्वलांविवशां भवतीं ममभर्तारं स्वामिनं शुम्भंनयामिप्राप- यामि । 'वर्त्तमानसामीप्ये'भविष्यतिलट् । उपैष्यतीतिभवच्छब्दप्रयोगे प्रथमपु- रुषएव । 'एत्येधत्यूठ्सु'वृद्धिः । इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । देव्यास्त्वनुकूलस्त्वेषः । अद्यभवतीमन्मां सखीजनं आप्तवर्गंप्राप्य । कर्मणि'ल्यब्लोपेपञ्चमी' । अवलाद- वलात्कारेणततएवप्रीत्याहर्षेण भर्त्तारं शिवंननउपैष्यतिचेत् उपगमिष्यतिचेत् । 'द्वौप्रतिषेधौप्रकृतमर्थंगमयतः' । ततएषोऽहंसखीजनः । तां केशाकर्षणविह्वलां यामिप्राप्नामिजानामि । कः ब्रह्मा, अः विष्णुः तौकौब्रह्मविष्णूतयोरीशः स्वामी शिवः केशः तस्याकर्षणमाह्वानं तस्मिन् विषयेविह्वलां लज्जितत्वात् । यद्वा, उपावष्यतीतिच्छेदः । नचेत्प्रीत्येत्येकपदम् । 'उःसम्बुद्धौरुषोक्तौ च शिववाचि- त्वनव्ययम्' । धूम्रलोचनआह । उहेदेवि!अद्यभवतीमद्भर्त्तारं शुम्भं एष्यतिप्राप्स्य- ति किंभूतासती । पारक्षणे । पान्तिरक्षन्तिनिवारयन्ति पाः । कर्त्तरिक्विपिज- सिरूपम् । अजगतिक्षेपणयोः । पोरक्षकान् शुम्भपरिवारानजतिक्षिपतिदूरीक- रोतिपादेवी । 'सप्तम्यांजनेर्डः' । 'अन्येष्वपिदृश्यते' इत्यत्राऽपिशब्दः सर्वोपाधि- व्यभिचारार्थ इतिवचनादधात्वन्तरादपिकारकांतरेपिचडोभवति । डित्यभस्यापी- तअजशब्दस्यटेर्लोपः । स्त्रिया'मजाद्यतष्टाप्' । हल्ङ्याब्भ्यादिलोपेसतिपा इतिरूपं

देव्युवाच

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः। बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम्

पाशुम्भरक्षकक्षेपिका। देवी शुम्भं हन्तुं पश्यनीत्यर्थः। पुनः किंभूता न चेत्प्रीत्या आकारान्तमेतत्। चितिसञ्ज्ञाने चेतन्ति केचनतानन्ये प्रयुञ्जते इति 'हेतुमति चे'ति णिच् ततः क्विप्। 'णेरनिटि'। 'वेरपृक्तस्यलोपः' प्रत्ययलक्षणेनगुणः। चेतो देवर्ष्यादयः तेषु चेत्सु बोधयितृषु प्रीतिःस्नेहश्चेत्प्रीतिः। नइतिनञोऽन्यएवनिषेधार्थोनिपातः। नविद्यमानाचेत्प्रीतिर्येषां दैत्यानां तेनचेत्प्रीतयः। 'नलोपोनञ' इतिचास्ति नतुनशब्दस्याप्यननुबन्धकस्य। उज्झउत्सर्गे। नचेत्प्रीतीन् अविद्यमानविबुधप्रीतीन् दैत्यान् उज्झतिउत्सृजति हिनस्तीतिपूर्ववद्बहुप्रत्यये डित्यभस्यापिटेर्लोपः सचउज्झेरेवस्त्रियां डान्ताद्दाप्। 'इकोयणचि'। हल्ङ्याद्लोपः। न चेत्प्रीत्यादेवीदैत्यानुपश्यति ततोद्याऽहंधूम्रलोचनः योद्धुमनाः सन् भवतीबलाद् बलंसैन्यं प्राप्यकर्मणि 'ल्यब्लोपेपञ्चमी'। नयामि नगच्छामि मद्भर्त्तारं च न गच्छामीत्यर्थः। किंभूतां भवतीं एषकेशाकर्षणविह्वलां इत्येकंपदम्। इषगतिहिंसादर्शनेषुतंवादिरात्मनेपदी आङ्पूर्वः आसमन्तादीषन्तिर्हिंसन्तिएषः पचाद्यच्। एषाणांहिंसकानां दैत्यानां केशाः मूर्द्धजाः तेषां आकर्षणं तस्मिन्विषये विशेषेणह्वला। ह्वलचलनेपचाद्यच्। एषकेशाकर्षणविह्वलां दैत्यकेशग्रहणसज्जां इत्ययं देवीशब्दार्थः॥ ७॥

हेधूम्रलोचन!त्वं बलवान् सामर्थ्ययुक्तःबलेनसैन्येनसम्वृतःवेष्टितः। अथच दैत्येश्वरशुम्भेनप्रहितः प्रस्थापितः बलात्केशाकर्षणादेः मामबलां नयसिततोऽहंते तवकिंकरोमिस्त्रीत्वाद्युद्धादिकं कर्त्तुमक्षमाऽस्मीतिशुम्भानुकूलोऽर्थःदेव्यनुमतस्त्वेषः। हेधूम्रलोचन!त्वं शुम्भेनप्रस्थापितोऽसिएवं च सतित्वामहंपृच्छामिबलमत्तीतिबलात् अहं मांदेवींतेधूम्रलोचनस्य संबन्धिवस्तुकिंनयसिकिंप्रापयसि। नयेर्द्विकर्मत्वा 'दजांग्रामंनयति' इतिवत्प्रधानमप्रधानं चेतिकर्मद्वयं वक्तव्यं तत्र बलादंमां

ऋषिरुवाच

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचनः। हुङ्कारेणैवतंभस्मसाचकाराम्बिकाततः
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणान्तथाम्बिका।

देवींप्रधानंकर्म द्वितीयंकिं स्यात्तद्वद। अथेहप्रकृतत्वाद्बलादमां देवीं शुम्भंचेन्न-यसितर्हिंबलादमितिकृत्वातस्यबलं सामर्थ्यं अत्स्यामि। अथबलादमांशुम्भसैन्यं प्रतिनयसिबलादहं तद्देवात्स्यामिसंहरिष्यामि। ततस्ते किं करोमिकिमस्तितते यत्करोम्यहं यत्किंचिदस्तितदपिविनष्टं करोमीतिक्रोधावेशोत्थोदेव्यभिप्रायः॥ ८

इत्येवंदेव्योक्तःसधूम्रलोचनःअसुरः तां देवींअभ्यधावत्वेगेनाऽभ्यद्रवत्। सृगतौसर्त्तेर्वेगितायांततौधावादेशोवक्तव्यः। यद्वा, धावुगतिशुद्ध्योः उभय-पदी। ततोऽनन्तरंसाऽम्बिकादेवी तं धूम्रलोचनं क्रोधानलज्वालागर्भेण हुङ्कारेणैव भस्मचकारभस्मीचकार। 'हुम्वितर्केपरिप्रश्नेऽभित्सायांभर्त्सनेभये'। भस्मसाच्च-कारेतिवा पाठः। 'विभाषासातिकार्त्स्न्ये' इति अभूततद्भावे'कृभ्वस्तियोगेसम्पद्य-कर्त्तरिच्विरि'त्यस्मिन्विषयेकृत्स्नतायांगम्यमानायांसातिप्रत्ययः। अभस्मभस्म-चकारकार्त्स्न्येनभस्मसाच्चकारधूम्रलोचनशरीरं कृत्स्नमपि (भस्म) चकारेत्यर्थः। अन्तर्वर्तिविभक्त्याश्रितेनपदत्वेननलोपत्वेनपादान्तयतिश्छान्दसत्वेन॥ ६॥

अथधूम्रलोचनेभस्मीकृतेतथाक्रुद्धं असुराणांमहासैन्यं कर्त्तृ तीक्ष्णैःसाय-कैः शरैस्तथाशक्तिसहितैःपरश्वधैःपरशुभिश्चायुधैःकुठारैरम्बिकांववर्षशरसम्पातेन शक्तिपरशुपातेनचदेवींसञ्छादयामास। शक्तिपरश्वधैरितिमध्यमपदलोपीसमासः। द्वन्द्वेतुसेनाङ्गत्वादेकवद्भावःस्यात्। इहाऽसुरमहासैन्यंकर्तृ अम्बिकामायुधैर्ववर्ष तदासिंहएवयुभुधेनैवाम्बिकेतिकस्यचिदाकाङ्क्षास्यात् किमम्बिकाअसुरशरसम्पा-ततः नजीवतियद्यप्युत्तरत्रसासमानीयतांलब्ध्वतितदमृततोपपत्स्यतेतथापिसाम-हासुरशरसम्पाततःमूर्च्छितासतीपुनरुत्थाययोद्धुमक्षमाभूत्। अन्यथायुध्यतैवर्कि नेतिवीरकर्मण्यपकर्षःस्यात् अतःसोऽपियुयुत्रेतद्यथातत्रैवश्लोके अम्बिकाआमृसव-

ववर्ष शायकैस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधैः ॥ १० ॥

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् । पपाताऽसुरसेनायां सिंहो देव्याः स्तु वाहनः

कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।

आक्रान्त्या (आक्रम्य) चाधरेणा (चरणेना) न्यान् ज (निज) घान महासुरान् ॥

तिपदच्छेदः । अम्बिकाकर्त्रीमहासैन्यंकर्म । 'उप्रश्नेऽङ्गीकृतौरोषआम्स्मृतौचाव-धारणे' । अथधूम्रलोचनःसङ्ग्रामेदेव्याभस्मीकृतइतिआम् इतिमनसास्मृत्वाक्रुद्धं असुराणांमहासैन्यंकर्मअम्बिकापितथातद्वदेवक्रुद्धा सतीसायकादिभिर्ववर्षअसुरसे-नांछादयामास । यद्वा, आमित्यवधारणे । अथतथाक्रुद्धमसुराणांमहासैन्यंकर्म अम्बिकाआम्अम्बिकैववर्षणत्वसुरसैन्यं अम्बिका इतिअम्बिकायाएववीरकर्मण्यु-त्कर्षः ॥ १० ॥

ततःकोपाद्धुतसटःकम्पितस्कन्धकेसरःससिंहोदेव्यावाहनंवाहिनीभूतो-देव्याःसिंहःसुभैरवमतिभयङ्करंनादंगर्जनंकृत्वाऽसुरसेनायांहन्तुं पपातउत्प्लुत्यनि-पपात । स्ववाहनमितिपाठे अनन्यसाधारणंवाहनंदेव्याएवसिंहोवाहनंनान्यस्येति । स इतिपाठेसप्रसिद्धःसिंहः । भीरोरयंत्रासकारीभैरवःत्रिलिङ्गः । 'वाहनमाहिता दि'तिनिर्देशाद्वाहनशब्दोनपुंसकलिङ्गः । असुरसेनायांनिपत्यसिंहःकिमकार्षीत्इति तत्राह ॥ ११ ॥

ससिंहः पञ्चास्यःकरप्रहारेणकांश्चिद्दैत्यान् जघान । आस्येनअपरांश्च दैत्यान्मुखेन जघान । चरणेनाक्रम्यअन्यान्जघानजिहिंस । स सिंहःखलुपञ्चास्यः एकंआस्यंवक्त्रं आस्यवद्घातकत्वात्करद्वयंचरणद्वयंचास्यचतुष्टयंपञ्चास्यानियुद्ध-साधनानियस्यसपञ्चास्यः । आक्रम्यचाधरेणान्यानित्यपिपाठेअधरेणचरणभागेना-ऽऽक्रम्यान्यान्महासुरान्जघानेत्येवार्थः । अन्यथाऽधेरणौष्ठेनमहासुराणामाक्रमणंन सम्भवति अथदेवीप्रभावात्सम्भवेत् । तस्याप्यास्येनचापरान्जघानेत्यास्यग्रहणे-नैवाधरस्यापियुद्धसाधनत्वेनग्रहणस्यसिद्धत्वात्पुनरधेरणेतिकेयंवाचोयुक्तिः रुक्तिम-

केशाञ्चित्पाटयामास नखैःकोष्ठानिकेशरी। तथातलप्रहारेणशिरांसिकृतवान्पृथक्
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे। पपौ च रुधिरंकोष्ठादन्येषां धुतकेशरः
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना। तेन केशरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना

तां। यद्वा, अधरेणओष्ठेनस्फुरितेनप्रकटितःकोपोऽधरइत्युपचर्यते। अधरेण
कोपेनाऽऽक्रम्य। यद्वा, अविद्यमानाधराभूर्यत्रसोधरःआकाशदेशःअन्तरिक्षेणाक्रम्य-
निरुध्य ॥ १२ ॥

सकेसरीसिंहःकेषांचिद्दैत्यानांकोष्ठान् जठराभ्यन्तरान्देशान्नखैर्नखरैरुत्पाट-
यामासविदारयामास। पटभाषार्थश्चुरादिः। धात्वनेकार्थत्वेनप्रयोगतोविदार-
णार्थः। अलाकलयैतुचिच्चन। 'पुंसिकोष्ठोऽन्तर्जठरंकुसूलोऽन्तर्गृहं तथा'। कोष्ठा-
निकेसरीतुपाठेव्यत्ययेनच्छान्दसंनपुंसकत्वम्। यद्वा, कोष्ठान् इकेसरीइतिच्छे
दः। इः कामःइनाकामेनचरतिइचारीअनिवारितप्रसरःकेसरीत्यर्थः। मध्यमपदलो-
पीसमासः तथातलप्रहारेणहस्ततलाघातेनचपेटेन चपेटयाचपेटघातेनकेषांचिद्दैत्या-
नांशरीरेभ्यःशिरांसिपृथग्भूतानि चकार। करनखपञ्जरेणशिरांसिच्छित्वाभुवि
पातयामासेत्यर्थः। 'पाणौचपेटप्रतलप्रहस्ताविस्तृताङ्गुलौ'। केचिदाहुः। तला-
भ्यांप्रतलाभ्यांप्रवर्तितत्वेनप्रहारेणशिरांसिपृथक्कृतवानितियुक्तमेतत्। यदस्यधुः।
'द्वौसंहतौसिंहतलौप्रतलौवामदक्षिणौ। द्वौप्रतलौप्रसृततलौसंहतौ वामदक्षिणौ'
मिलितौ सिंहतलौसिंहतलाख्यौ कथ्येते। सिंहो मिलिताभ्यां चपेटाभ्यां
हन्ति ॥ १३ ॥

तथाशौर्यभाजातेनसिंहेनअपरेशत्रवःविच्छिन्नबाहुशिरसःकृताः। बाहव-
श्चशिरांसिच बाहुशिरःप्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः। विच्छिन्नंबाहुशिरोयेषांते। तथा
धुतकेसरःसकेसरीअन्येषां महासुराणां कोष्ठादन्तर्जठराज्जठरान्तर्द्देशात्कोष्ठंविदार्य
'कर्मणिल्यब्लोपेपञ्चमी'। रुधिरंपपौ। 'पा'पाने। एतेनसिंहस्यापिवीरपानौचिती
कथिता। 'वीरपानंतुयत्पानंवृत्तेभाविनिवारणौ' ॥ १४ ॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलञ्च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेशरिणा ततः ॥ १६ ॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ १७ ॥
हे चण्ड! हे मुण्ड ! बलैर्बहुलैः (बहुभिः) परिवारितौ ।
तत्र गच्छतं (गच्छतं तत्र) गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ १८ ॥

तेनकेसरिणादेव्यावाहनेन अतिकोपिना अतएव क्षणेनैवैतत्प्रसिद्धं बलं–सैन्यं । यद्वा, तस्यधूम्रलोचनस्यबलंसैन्यंक्षयंनाशंनीतंप्रापितम् । 'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोःक्षणः' । 'निलयापचयौक्षयौ' । 'आत्मायत्नोधृतिर्बुद्धिःस्वभावो ब्रह्मवर्ष्मच' ॥ १५ ॥

इहश्रवणाकोपनाज्ञापनाक्रियात्रयापेक्षैककर्तृकत्वेन श्लोकयुग्मस्यैकोऽन्वयः । देव्यातत्प्रसिद्धंधूम्रलोचनमसुरंनिहतंभस्मितंश्रुत्वा ततःदेवीकेसरिणादेव्याः सिंहेनतस्यधूम्रलोचनस्यकृत्स्नंबलंसैन्यंक्षपितंनाशितञ्च । श्रुत्वादैत्याधिपतिः शुम्भःकोपतःप्रस्फुरिताधरःसंरम्भकम्पितोष्ठःसन्चुकोपचुक्रोध । अथ तौ प्रसिद्धौ प्रागद्दृष्टदेवीकौचण्डमुण्डौमहासुरौ कर्मभूतौ आज्ञापयामास निजभृत्यौ नियुयुजे । क्षपितंइतिक्षपप्रेरणेचुरादिः । अदन्तः । क्षयितमितिपाठे । क्षयंसञ्जातोऽस्येतितारकादित्वादितच् । आज्ञापयामास । 'ज्ञा'नियोजनेचुरादिः ॥ १६ ॥ १७ ॥

हेचण्ड!हेमुण्ड!युवांबहुभिःबलैःपरिवारितौगच्छतंकुत्रयत्र सा देवीपर्वते गत्वा च गत्वैवक्षिप्रंलघुसादेवीसमानीयतांयुवाभ्यांइतिशेषः । गच्छतंइतिगमेर्लोण्मध्यमपुरुषस्य द्विवचनस्यथसस्तम्लोटोलङ्वदतिदेशात् । सेत्यभिहितंकर्म । मामितिद्वितीयंकर्मज्ञेयमजाग्रामंनीयतामितिवत् । प्रधानंकर्माभिहितंनाप्रधानम् । इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । देव्यनुकूलस्त्वेषः । तथाहि, गच्छतंतत्रगत्वा तु । साआसं आनीयतांलघु इतिपदच्छेदः । असुक्षेपणेभावेघञ् । असनमासःक्षेपोऽधःकारोन्य–

केशेष्वाकृष्यबद्ध्वा वा यदि वःसंशयोयुधि । तदाशेषायुधैःसर्वरसुरैर्विनिहन्यताम्

क्कारः । 'आस्तुस्यात्कोपपीडयोः' । ततश्चचण्डमुण्डयोरागमनंदृष्ट्वासखीवर्गोदेवी-माचष्ट । हे देवि! त्वं आःकोपेनतत्रगच्छकुत्रयत्रचण्डमुण्डौस्तः । गत्वा तु पुनः तं चण्डं मुण्डं च आह्वयस्व । हेचण्ड हेमुण्ड!योद्धुमागच्छेति । किञ्च, तुपुनःतया देव्यालघुशीघ्रंसाचण्डमुण्डसम्बन्धिनी सेनाआसंक्षेपं विनाशं च नीयतां योज्यतां इति ॥ १८ ॥

हेचण्ड! हेमुण्ड! सैन्यानियुष्माभिः सार्द्धंदेवीकेशेषु आकृष्यबद्ध्वावा र-ज्जुभिः सा समानीयताम् । केशाकर्षणेबन्धनेचवोयुष्माकंयदिपक्षान्तरे संशयः स्यात्तदायुधिसङ्ग्रामेऽशेषायुधैः साधनैःतद्युक्तैर्वासर्वैरसुरैर्युष्माभिः सा देवी नि-हन्यतां निघ्नितानिजाधीनाकर्त्तव्या । यद्वा, विशेषेणनिहन्तव्या । निघ्नावश्या कर्त्तव्येतिशुम्भाऽनुकूलोऽर्थः । देव्यनुकूलस्त्वेषः । देवीस्ववर्गानादिक्षत् । हेम-दीयाः गणाः युष्माभिःचण्डोमुण्डश्चकेशेष्वाकृष्यबद्ध्वा वा विनिहन्यतां यदिवो युष्माकंकेशाकर्षणेबन्धने चवासंशयःस्यात् तदायुधिसंयुगे अशेषायुधैः सर्वैर्युष्मा-भिःतैर्दैत्यगणापहारिभिः । इतिदेव्यभीष्टार्थः । अन्यथादेव्याःपराभिभवचचः श्रवणाद्पकर्षःशक्यते । अथवाकेशेष्वा आकृष्य अवा अयंदिवःसंशयइतिपदच्छेदः कः ब्रह्मा अः विष्णुःईशोरुद्रःतेषां इवइषवोबाणायस्याः सा केशेषुः तया देव्याकेशे-ष्वा । आकृष्यबद्ध्वादैत्यानव रक्ष कान् अयद्दिवः अयेन लब्धाद्यौर्यैस्तेअर्यादिवो-देवाः तानयदिवः सम्भृताः आभरणीकृताः शयवः चक्रमण्डलप्याख्याः सर्पा यया सा संशयुः कालिकादेवीतत्सम्बुद्धौ हेसशयोतस्यायुधोयुद्धस्यसम्बधिन्यआशाः तासु प्रयुक्तानिईषालाङ्गलदण्डादयआयुधानियैःतैस्तदाशेषायुधाः दैत्याः तैरस्यविग्रहान्त-रंत्वग्रेवक्ष्ये इतिकृतपदविवक्षितविग्रहा । अत्रान्वयः । सखीभिर्देवी प्रार्थ्यतेहे संशयोसंभृतशयोहे संभृतचक्रमण्डल्याख्यसर्प्पाभरणे कालिकेदेवि! त्वंअयदिवः । अयेनलब्धस्वर्गान् देवान् अव रक्ष अवरक्षणे । हे देवीकेशेष्वा तृतीयान्तंएतत् ।

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातते ।

ब्रह्मविष्णुरुद्रसद्गशबाणयात्वयांपाशेन दैत्यानाकृष्यआछित्वालब्ध्वा वातदाशेषायुधैर्युद्धदिक्प्रयुक्तैरायुधैः सर्वैरसुरैः सह सचण्डः मुण्डश्च दैत्योविनिहन्यतांहिंस्यताम् ॥ १६ ॥

हेचण्ड!हेमुण्ड! युष्माभिःदुष्टाभिःदैत्यद्वेषिण्यांतस्यांदेव्यांहतायांताडितायांपरासूकृतायांवातदीयेसिंहेभुविनिपातितेव्यसूकृतेवाशीघ्रमागम्यतांनिजस्थानंप्राप्यताम् । अथसाजीवन्तींआनेतुंशक्याचेत्तर्हितामम्बिकांगृहीत्वाबद्ध्वाशीघ्रमागम्यतांतद्दर्शनेममाभिलाषोऽस्तीतिभावः । तस्यांहतायांइत्यतिकोपप्रज्वलितात्मनायुंसाप्रबलशत्रामृधेमत्तोंपद्रष्टुमिष्यते । अथवाक्रोधव्याकुलचेतसातस्यांहतायांसमागम्यतामितिवदुक्तम् । ततः पुनरपिउक्तम् । बद्ध्वातुपटुतांजीवन्तीमेव शीघ्रंगृहीत्वायुष्माभिरागम्यतां इत्युक्तम् । नत्वम्बिकाशब्दोमातृवाचीतिशुम्भः कथंब्रूयात्तामेवाभिगन्तुकामउच्यते । शुम्भादन्येषांसाअम्बिकैवेतितस्यां चण्डमुण्डादीनांरमणाभिलाषोनकर्त्तव्यः इयंहियुष्माकमम्बैवेतिसूचयितुमम्बिकामित्युक्तम् । मातृगमनंहिपशुपक्षीतरेपुस्वतएवगर्हित इतिशुम्भानुकूलोऽर्थः । देव्यनुकूलस्त्वेवः । तस्यांहतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपा आतिते । शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकां इतिपदच्छेदः । हतायां इतिहतेर्गत्यर्थेकर्मणिक्तः विनिपाइति'पं'शोषणेकर्त्तरिक्विप् । विशेणनितरांपायतिशत्रून् शोषयतिविनिपा तयाविनिपाद्देव्यांआतितेइति । अतसातत्यगमने । अतनंआतः भावेघञ् । आतः सञ्जातोऽस्याः आतिताहेआतितेदेवि!अम्बिकाशब्देनदेवीहननंविवक्षितम् । तर्हि । 'अविरविलविअवस्रंसने'इत्यतः कर्त्तरिण्वुलिवोरकादेशेइत्त्वे च अम्बतेशत्रूणांगलेष्विवतिअम्बिकायारज्जुः विवाहकृता । इतिविवक्षितविग्रहाः । अत्रायंदेव्यनुकूलोऽन्वयउच्यते । हेसिंहे च । अन्यत्र च आतिते हेजगद्रक्षणायसंजातसततगते हे देवि! तस्यां दुष्टायां देवविद्वेषिण्यां दैत्यसेनायां हतायां गतायामुपस्थितायां

शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ २० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येशुम्भनिशुम्भसेनानी-

धूम्रलोचनवधवर्णनंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्तशत्यांषष्ठः ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

(सप्तमोऽध्यायः)

चण्डमुण्डवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

आज्ञप्तास्तु (ते) ततोदैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः । चतुरङ्गबलोपेताययुरभ्युद्यतायुधा

सत्यामथानन्तरंविनिपाविशेषेणनितरांपायन्त्याशत्रूञ्शोषयन्त्यात्वयादेव्याअम्बि-
कांशत्रुगृहेषु लम्बिकापाशरज्जुंगृहीत्वातांसेनांबद्ध्वाशीघ्रमागम्यताइतिसखीभिः
देवीनिगदितेतिदेवीष्टार्थसिद्धिः ॥ २० ॥

इति श्रीमतो० श्रीशन्तनु० देवीमाहात्म्ये धूम्रलोचनवधवर्णनंनाम

षडशीतितमोध्यायः ॥ ८६ ॥

ततोधूम्रलोचनवधानन्तरंशुम्भेनाज्ञप्ताआदिष्टाश्चण्डमुण्डपुरोगमाः दैत्याः
चतुरङ्गबलोपेताः हस्त्यश्वरथपादातसमेताः अभ्युद्यतायुधाः सन्नद्धबद्धोन्मुखा-
युधाः सन्तःययुः जग्मुः । आज्ञप्ताइतिवादान्तसूत्रेणनिपातितः पुरोगमः पुरोगामी

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् । सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमञ्चक्रुरुद्यताः । आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः
ततः कोपञ्चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति । कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा

भृकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।

कालीकरालवदना विनि (निः) ष्क्रान्ताऽसिपाशिनी ॥ ५ ॥

पुरः गच्छतः पुरोगमौ चण्डमुण्डौ पुरोगमौ येषान्ते । 'हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्' । चत्वार्यङ्गानि यत्र तत् बलं सैन्यं तेन उपेताः ययुरेव न पुनरायाता इति भावः ॥ १ ॥

ततः आगताः ते चण्डादयो दैत्या महत्युच्चे काञ्चनमये शैले शृङ्गे हिमाद्रिशिखरे स्थितस्या सिंहस्य उपरि व्यवस्थितां विशेषेणावस्थिताः ईषदल्पो हासो यस्याः सातां देवीं ददृशुः । कचदीप्तिबन्धनयोः भावे ल्युट् । कञ्चनस्य पीतदीधितिरूपस्येदमधिकरणत्वेन काञ्चनं शृङ्गं तस्मिन्निति व्युत्पाद्यते रूपम् । विविधवर्णसान्निध्याद्वर्णोत्कर्षो देव्या वर्णितः । शत्रूणान्तु विरुद्धवर्णदर्शनाद्विवर्णमुखता सूच्यते । देवीं ईषद्धासां इति यथा प्राग्धूम्रलोचनः ससैन्यः फलम्प्रापत् चण्डादिरपि प्राप्स्यति इति देव्याः सोत्प्रासो वर्णितः ॥ २ ॥

ततउद्यताउद्युक्ताः तेचण्डादयः तां देवींदृष्ट्वा समादातुंउद्यमञ्चक्रुः । हन्तुंवातत्समीपआसन् । आकृष्टाः आच्छिताः चापायैः तेच असीनांखड्गानांधराः धारकाः असिधराश्चैतिद्वन्द्वः । आच्छिआयामेआच्छिताः ॥ ३ ॥

ततोदैत्यानुपसंहर्तुं अम्बिकादेवीतान् आगतानरीन् दैत्यान् प्रतिउच्चैरतितरांकोपञ्चकारतदाकोपेनचास्यावदनंमुखंमष्याइवकृष्णोवर्णोयस्यतन्मषीवर्णमभूत् ॥ ४ ॥

यदम्बिकामुखंकोपात्कृष्णवर्णमभूल्ललाटात्कालीनामदेवीदैत्यान् विनाशयितुञ्जातेत्याह :। शत्रुषुकुप्यन्त्याः तस्यादेव्याः भृकुटीकुटिलात्भ्रुवौकुटीइवभ्रु-

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा। द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा। निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा

कुटी। 'इकोह्रस्वोङ्योगालवस्ये'तिवा औत्तरपादिकंह्रस्वत्वंवा अस्वश्चभ्रकुट्या
दीनांतेनउभयविकल्पेत्रैरूप्यम्। भ्रूकुटीभ्रुकुटीभृकुटीवेति। भ्रूकुट्याः भ्रूभङ्गात्कु-
टिलंभुग्नन्तस्माल्ललाटफलकात् ललाटंफलकमिवविशालत्वेनतस्मात्सकाशात्द्रुतं
शीघ्रं करालवदनाकरालंभयङ्करंदन्तुरंवदनंयस्याः सा दंष्ट्राकरालवक्त्रा। असिः
खड्गः पाशश्चायुधमाकर्षणसाधनंतद्वती असिपाशिनीखड्गपाशपाणिः सतीकाली
नामशक्तिः कापि अपरादेवीविनिःक्रान्ता॥ ५॥

कीदृशीकालीधरतिविभर्त्तिधराविविधानिचित्राणियस्यतत् विचित्रंख-
ट्वाया अङ्गंतस्यधराविचित्रखट्वाङ्गधरा। यद्वा, विचित्रंखट्वासुरस्याङ्गंशरीरं
मम्वकोऽस्थिपञ्जरः कङ्कालाख्योऽत्रगृह्यतेतस्यधरा। प्रेतनरखट्वाङ्गधरेतिचाहुः।
नराणांप्रेतानांशिरसांमालानरमालास्रक्विभूषणंयस्याः सा। नरमुण्डमालाविभू
षणा। मध्यमपदलोपीसमासःद्विधागताआपोयत्रतद्द्वीपंतदस्त्यस्यविवासत्वेन-
द्वीपीव्याघ्रः तस्यचर्मपरीधानंवासोयस्याःसा। 'अन्येषामपिदृश्यत'इतिदीर्घः।
शुष्कंमांसंयस्याःसानिर्मांसाअस्थिचर्ममात्रशरीरा। अतएवाऽतितरांभैरवातिभय-
ङ्करा। अतिक्रान्ताभैरवान् भयङ्करान् अतिभैरवा वा॥ ६॥

पुनःकीदृशीअतिक्रान्तंविस्तारंअधित्यकोविस्तारोयस्यवातद्वदनंयस्याः
साअतिविस्तारवदना। ललईप्सायाञ्चुरादिराकुस्मीय आत्मनेपदी णिचिभावे
ल्युटिलालनंललनंत्वनित्यण्यन्तत्वपक्षेज्ञेयम्। जिव्हायाललनं अवलेढुमिच्छाते-
नभीषणाभयङ्करा। निमग्नेनितरामन्तर्लीनेअन्तर्गतेआरक्तेनयनेयस्याःसानिमग्ना
रक्तनयना। नादेनसिंहनादेनआसमन्तात्पूरितानिदिशांआशानामपिमुखानिद्वाराण्य
न्तरालानियस्याःसा। 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधाद्वा'ङीप्। दिक्पूर्वपदात्
ङीब्वाटाप्। तेनङीषोऽपवादेनङीपामुक्तेटाबेव। यद्वेहप्रागादिदिक्शब्दपूर्वकत्वम्

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयतत्तद्बलम्

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहि (ह) योधघण्टासमन्वितान् ।

समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ ६ ॥

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह । निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥

भावात् ङीपामुक्तेटावेव ॥ ७ ॥

साकालीदेवीवेगेनाऽभिपपात । महासुरान्घातयन्तीघातंकुर्वन्तीताडयन्ती सतीतत्रसैन्येसुराराणांदेवद्विषांवलंसैन्यंकर्मअभक्षयत् । घातयन्तीतिघातशब्दात्त-त्करोतीतिणिच् ।अन्यथाघ्नतःप्रयुङ्क्तेघातयन्तीत्युक्तेघ्नन्तुमामसुराइतिप्रत्युक्तवती-त्यर्थःस्यात् । यद्वा, हन्तिर्गत्यर्थःघ्नतःगच्छतःपलायमानान् पलायध्वमितिप्रयुञ्जा-नाघातयन्तीत्यूच्यते । यद्वागच्छतःपुरुषान् गच्छतेति प्रयुञ्जानागमयन्तीत्युच्यते । यद्वामहासुरान्घातयन्तीत्यर्थः । स्वार्थेशिष्टप्रयोगतोणिच् । 'निवृत्तप्रेषणाद्धातोः प्रकृतेऽर्थेणिजेष्यतेधात्वर्थानुप्रवेशोऽपिबुद्ध्यारोपात् णिचस्त्विनेति वचनात्' । 'वेगःप्रवाहजवयोः' ॥ ८ ॥

'पुमान्पार्ष्णितयोरधः' । तयोः गुल्फयोरधः पश्चाद्भागः पार्ष्णिरिहो-पमानात्पार्ष्णिमिवपार्ष्णिगृह्णन्तिअवष्टभ्नन्तेपार्ष्णिग्राहाः । 'पार्ष्णिग्राहास्तुपृष्ठतः'। गजानान्तुपार्ष्णिग्राहाःशिक्षकाः पृष्ठगाः 'अङ्कुशोऽस्त्रीसृणिःस्त्रियाम्' । अङ्कुशान् गृह्णन्तीत्यङ्कुशग्राहाः । कर्मण्यण्, युध्यन्तेप्रहरन्तियोधाः पचाद्यच् । घण्टा गजानांपार्श्ववर्तिन्यः निद्रालस्यवारिण्योऽलङ्कारार्थाश्चतत्समन्वितान्वारयन्तीअरी-नितिवारिणाःगजाः । नन्द्यादित्वाल्ल्युः,एकेनहस्तेनसमादायसङ्क्षिप्यगृहीत्वामुखे चिक्षेपकालीदेवीति सम्बधः । पार्ष्णिग्राहादिनिर्घटान्तैः सहितान् गजान् । चखादेत्यर्थः ॥ ९ ॥

किंकुर्वन्तीसाकाली तथैवगजानिव योधं योद्धारंअश्वारोहंजात्यैकवचनम् । तुरगैरश्वैःसमं वक्त्रेनिक्षिप्यदशनैःदन्तैःसाधनैरतिभैरवंअतिभयङ्करंमृत्युञ्चर्वयन्ती-

एकंजग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्यचैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥११
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः । मुखेनजग्राहरुपादशनैर्मथितान्यपि ॥
बलिनां तद्बलंसर्वमसुराणां दुरात्मनाम् । ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा

त्युच्यते । 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थे'तिसूत्रेण अण्यन्तावस्थायां यः कर्त्तासण्यन्ते कर्मभवतिरथंसारथिनेत्यत्रजात्यैकवचनम् । रथान् सारथिभिःसहवक्त्रेनिक्षिप्य दशनैः साधनैः अतिभैरवंमृत्युञ्चर्वयन्तीचर्वन्तचर्वेतिप्रयुञ्जानाभुङ्क्ष्वेति प्रेरयन्तीत्युच्यते । अत्र योधाः तुरगाः रथाः सारथयश्चर्व्याः चर्वकोमृत्युः । पात्रंवक्त्रं परिवेषिकाकालीसैवचर्वयन्तीमातापुत्रमिवेतिसमाधिः । अत्राश्वारोहाःअयोद्धारः, चर्वयन्तीतिशप्श्यनोर्नित्यंनुम् । चर्वयतीतिपाठेऽपिलिङ्विषयेकाले'व्यत्ययोबहुलं इतिलट् ॥ १० ॥

हस्त्यश्वरथविध्वंसनानन्तरं पदातिरूपसैन्यं विध्वंसयितुमाह । सा कालीएकमसुरन्ताडयितुकेशेषुजग्राह । अथअपरञ्चदानवंग्रीवायांशिरोधौजग्राह । साकालीअन्यंदानवंपादेनैवाक्रम्यअपोथयत् हिंसितवती । यद्यपि'युध्यत्युधति हिंसार्थेभासार्थेपोथये'दित्यभिधानात्चुरादौपुथभासार्थइतिदृश्यतेतथापिधातूनामनेकार्थत्वेनपुथहिंसार्थ इत्यपिज्ञेयः । अथवा अपोटयदितिपाठः पुटसंचूर्णने चुरादिः । असूदयदितिपाठेषूदहिंसायांचुरादिः । अन्यंदानवंउरसाक्रम्याऽपोथयत् ॥ ११ ॥

साकालीदेवी तैः चण्डमुण्डादिभिरसुरैर्मुक्तानिप्रयुक्तानिशस्त्राणिखड्गादीनिहस्तस्थानितथामहान्त्यस्त्राणि आग्नेयवायव्यादीनि क्षेप्याणिमुखेन जग्राह । अपिचतानिशस्त्राणि महास्त्राणिच मुखेन गृहीत्वा दशनैः साधनैः तयाकाल्यादेव्यामथितान्यपि । मथविलोडने विलोडितानि चूर्णानिशस्त्रमस्त्रमायुधन्ति अयुधत्वेन एकत्वेपितत्तज्जगत्याकारप्रयोगभेदेन भेदोऽस्त्यैवतयोरित्याहुः । देवीशक्तिर्विचित्रातेनघटतएवायमर्थः ॥ १२ ॥

साकालीदेवी दुरात्मनां दुष्टाशयानां बलिनां चण्डादीनां तत्प्रसिद्धंबलं

असिना निहता केचित् केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तदा (रणे) ॥ १४ ॥
क्षणेन तद्बलं (तन्महासैन्यम) सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १५ ॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः । छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः

सैन्यंममर्द्द । मृदस्तितिक्षायां क्षाक्र्यादिःलिट्चुश्चोदचूर्णीचकार । तथा अन्यान् दैत्यान् भक्षयत् च । तथा अन्यान् दैत्यानताडयत्। तडआघाते चुरादिः ॥ १३ ॥

तयाकाल्यादेव्याकेचिदसुराःअसिनामण्डलाग्रेणनिहताः ताडिताःसन्तः विनाशंजग्मुः । तथा केचिदसुराःदन्ताग्राभिहताः विनाशं जग्मुः । खट्वायाअङ्ग अङ्घ्रिः तेनताडिताः खट्वेहपितृभूमिस्थाः श्मशानसिद्धिलब्धिप्रदादेवतातद्दत्तमङ्ग-मायुधमप्रतिहतशक्तिकम् । अन्तेत्वाहुः खट्वासुरशरीरपञ्जरः खट्वाख्यमङ्गमिति । अन्येतुप्रेतनरशरीरकीकसपञ्जरः कङ्कालः खट्वाङ्गमित्याहुः । दन्तानामग्राः भागाः तेषुवाभागास्तैरभिहताः ॥ १४ ॥

काल्यादेव्याक्षणमात्रेण । यद्वा, क्षणेनरणोत्सवेन । तत्प्रसिद्धंमहद्बहुलं चण्डादीनां सैन्यंनिपातितं दृष्ट्वाप्रचण्डविक्रमः चण्डोदैत्यः तामतिभीषणां अति-भयङ्कररूपविक्रमां कालींदेवींअभिदुद्राव । अभिमुख्येनोपद्रोतुमाडुढौके । क्षणेन तद्बलंसर्वमसुराणामितिपाठेऽपि सएवार्थः । अतिभीषणंइतिपाठेतुक्रियाविशेषण-मेतत् । द्रुगतौलिटि, अतिभीषयते अतिभीषणानन्द्यादित्वाल्ल्युः ॥ १५ ॥

चण्डस्तामभिद्रुत्यकिमकार्षीदित्यत आह । शराणांवर्षाणिसम्पाताः तैःमहान्तिबहुलानिभीमानिघोराणितैःभीमेभयङ्करे अक्षिणीयस्याःसा ताम । 'बहु-व्रीहौसक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्'समासान्तः । महान्सुरःमुण्डामस्तकानिक्षिप्तान्य-पनीतानि यैः तानिमुण्डक्षिप्तानिक्षिप्तमुण्डानि । वाहिताग्न्यादिष्विति परनिपातः ।

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कविम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १७ ॥

सहस्रेणसहस्रशः सङ्ख्यैकवचनाच्चवीप्सायांशस् । कुर्वन्त्यनेनेतिचक्रम् । 'घञर्थे-कविधानम्' 'क्रआदीनांचकेद्वेभवतः इतिवक्तव्यम्' । अथान्वयः, महासुरः चण्डः महाभीमैरतिभयङ्करैः शरवर्षैःभीमाक्षींभयङ्करदृष्टिंकालींदेवींछादयामास । छद-संवरणे चुरादिः । किं च अन्येत्वाहुः, चण्डःशरवर्षैःछादयामास । मुण्डस्तु क्षिप्तैरस्तैः चक्रैरायुधैः छादयामासेति । तत्तुउत्तरेअथमुण्डोभ्यधावत्तामितिप्राधान्येनपृथङ्मुण्डस्य युद्धारम्भेणचिरोत्स्यते । तस्माच्चण्डएवशरवर्षैं चक्रैश्चछाद-यामासेतियुक्तंवक्तुंततश्चात्रसविसर्गोमुण्डशब्दःपाठ्यताम् । किन्तुनिर्विसर्गःकृत-समासश्च ॥ १६ ॥

तानिचण्डेन दैत्येन प्रयुक्तानि अनेकानिचक्राणिकर्तॄणितन्मुखन्तस्याः कालयाः मुखंकर्मविशमानानि प्रवेशनशीलानि बभुः भादीप्तौ शुशुभिरे। कानीव अर्कबिम्बानीव । यथासुबहूनि अर्कस्य विम्बानि मण्डलानि घनस्य मेघस्यउदरं अभ्यन्तरम्प्रविशमानानि भान्ति तथा चक्राणीति । नेर्विशइत्यात्मनेपदविधौ ने-रुपसर्गस्याश्रयणादिहशानच् । कस्तर्हिताच्छील्यवयोवचनशक्तिषुचानश्प्रत्ययो-नादेशोलटः नलोकाव्ययेत्यादौ षष्ठीप्रतिषेधविधौतृन्निितिलटः शतृच् रतितृशब्द-मारभ्यतृनोनकारेण प्रत्याहृत्याश्रवणाच्चानश्योगेषष्ठींबाधित्वा द्वितीया व्यत्ययो बहुलंइत्यात्मनेपदेतुलटः शानचिलादेशयोगेषष्ठीप्रतिषेधाद्द्वितीया । विशप्रवेशने सकर्म्मकः । उपदाविविशुस्तस्यनोत्सेकः कोशलेश्वरमितिवत । उत्पातादौ बहून्यर्कबिम्बानिसम्भवेयुः । अभूतंचौपम्यंद्रष्टव्यम् । 'अर्कस्फटिकसूर्ययोः' । 'चक्रंराष्ट्रे रथाङ्गे च सैन्येशस्त्रेचकीर्तितम्' । 'घनोमेघेमूर्तिगुणे/त्रिपुमूर्त्ते निरन्तरे' ॥ १७ ॥

ततोरणोत्सवोल्लासतःकालीदेवीअतिरुषाक्रुधाभीमं भयङ्करं यथा स्यात्

ततोजहासातिरुषाभीमंभैरवनादिनी । काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥
उत्थायचमहासिंहंदेवीचण्डमधावत । गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत्
[छिन्नेशिरसिदैत्येन्द्रश्चक्रेनादंसुभैरवम् । तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् ॥]

अथमुण्डोऽप्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गा (खट्वाङ्गा) भिहतं रुषा ॥ २० ॥

तथाजहासहसितवती । कीदृशीभैरवंभयङ्करंनदतीभैरवनादिनी । यद्वा, भैरवः कालाग्निरुद्रस्तद्वन्नदतिगर्जतिइतिभैरवनादिनी । भैरवंनादयतिनादोपेतंकरोति दानवपशुबलिभोगोत्सवतःकृतशृङ्गनादंकृतवतीवा । पुनः कीदृशीकरालंववक्त्रंतस्य अन्तःमध्येदुर्दर्शाःदुःखेनदृश्यमानायेदशनाःदन्ताः दंष्ट्राःतैरुज्ज्वला । हासः शुभ्रः तेन कालीकृष्णाऽपिसतीउज्ज्वलेतिवर्णोत्कर्षोक्तिः ॥ १८ ॥

सा कालीविजिगीषुःसतीमहासिमहाखड्गंउत्थाप्यसज्जीकृत्य अन्तर्भावितण्यर्थस्तिष्ठतिः । यद्वा, उत्थायउद्यम्यऊर्ध्वीकृत्यउत्पूर्वस्तिष्ठतिः क्वचित् प्रयोगवशतोगतिवचनःसकर्मकः । यद्वा, उत्ताय्येतिपाठः । तयगतौणिच् । महासिउत्तयमानंप्रयुज्यचण्डमधावत । ततः किंगृहीत्वेत्यादिः । अस्यचण्डस्य केशेषुगृहीत्वाआकृष्यतेनप्रसिद्धेनासिनाशिरोमस्तकंअच्छिनत् । उत्थायचमहासिंहंइतिपाठे । महान्तंसिंहंउत्थायारुह्यदेवी चण्डमधावतेतिसम्बन्धः । अथवा, महासिंहंदेवीतिच्छेदः । 'रुषोकौतुहमव्ययम्' । देवीमहासिंहं उत्थाय्य उत्तोल्य हंइतिरुषाचण्डमधावत अतएव तेनासिनाअच्छिनदित्यन्वयः । उत्थाय च महासिंहादित्येवोचुः । उत्थाय अवरुह्य । उत्थाय्य च महासिंहं इतिपाठे । सुपिस्थःकः । उच्चैस्तिष्ठति उत्था । अयगतौ । आङ्पूर्वः क्त्वोल्यप् । आसमन्तादयित्वाआय्य । देवीउत्थाउत्थितासतीमहासिंहं च आय्यआगत्यप्राप्येत्यन्वयः । अत्रैवपाठेऽर्थान्तरम् । महासिंहं च आय्यप्राप्येति । उत्तरार्धान्वयःपूर्ववत् ॥ १९ ॥

दैत्येन्द्रःचण्डस्तदैवशिरसिदेव्याछिन्ने सतिशिरश्छेदसमयएव पशुवत्सु-

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । मुण्डंचसुमहावीर्य्यंदिशोभेजेभयातुरम्

शिरश्चण्डस्य काली च (स) गृहीत्वा मुण्ड (मौण्ड) मेव च ।

प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २२ ॥

मयातवाऽत्रोपहृतौचण्डमुण्डौ महापशू । युद्धयज्ञे स्वयंशुम्भं निशुम्भञ्चहनिष्यसि

भैरवं सुष्ठुभयङ्करंनादंमुखेनध्वनिंचक्रे । तेनमहतानादेनशब्देन भुवनत्रयं त्रासितम् । त्रसुउद्वेगेणिचिकर्मणिक्तःउद्वेगंप्रापितम् । यद्वात्रासःसञ्जातोऽस्यतारकादिभ्यइतच् । किमसौचण्डःछिन्नशिराअपिमायावित्वात्पुनरुत्थितोयोद्धुं कथमन्यथाऽयं नादोऽस्येतिसञ्जातत्रासमभूद्भुवनत्रयम् ॥ २० ॥

अथचण्डः महासुरःकाल्यादेव्यानिपातितं भ्रंशितंचण्डंदृष्ट्वा तां कालीमभ्यधावत् । अथकालीईर्वारुषातंमुण्डमपिखट्वाङ्गेनाभिहतंताडितंपरासुम्भूमावपातयत् । 'मुण्डकेत्रिषुमण्डिते'। 'दानवेपुंसिमुण्डःस्यान्मस्तकेतुद्वयोरदः। मुण्डितंत्रिषुलिङ्गेषु मुण्डोमुण्डत्वयोगिनि' ॥ २१ ॥

देव्याहतेभ्यःशेषमवशिष्टंसैन्यंकर्तृ सुमहावीर्यंसुमहद्वीर्यं प्रभावोयस्यसः तं चण्डंमुण्डं च देव्या निपातितं दृष्ट्वाभयातुरंसत्ततः युद्धभूमितः सकाशादपगत्य दिशोभेजे अपलायतभयेनातुरं विह्वलम् ॥ २२ ॥

सा कालीदेवीचण्डस्याऽसुरस्यशिरः तथामुण्डस्याऽसुरस्येदंमौण्डंशिरश्चेतिमस्तकद्वयं गृहीत्वा । प्रचण्डः प्रगल्भः अट्टः अत्यधिकः हासः तेनमिश्रं मिलितंप्रचण्डाट्टहासगर्भंयथास्यात्तथाअभ्येत्यैव अन्तिकमागत्यैव चण्डिकां अम्बिकामासाद्यशक्तिप्राह । प्राहेत्यव्ययं कालसामान्यद्योति । यथास्त्रियःकिमप्यद्भुतंकार्यंविधायस्वनायिकायैसहसमाभाषन्ते खलुलोके तथेयमवोचत् । यद्वा, यौ त्वां परदेवतां भुवनेश्वरींप्रागालोक्यगत्वाशुम्भायगृहाणेत्यकथयतां ताविमौचण्ड मुण्डौपुनर्द्रष्टुमागतौतावलोकयलोकमातरितिसोत्प्रासोहासोयुक्तएवेत्यलं विस्तरेण ॥ २३ ॥

ऋषिरुवाच

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ २४ ॥

देव्युवाच

यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि! भविष्यसि ॥ २५ ॥

कालीकिमब्रवीच्चण्डिकामित्याह । काल्युवाच । हेदेवितवमहापशूद्वौचण्डमुण्डौ अत्रयुद्धयज्ञेयुद्धंयज्ञइवतस्मिन्विषयेमयाकाल्याउपाहृतौसमर्पितौ उपहारीकृतौस्तः अतश्चयुद्धंयज्ञोयस्याः साहेयुद्धयज्ञेदेवकार्यकारिणित्वंस्वयमेवशुम्भंनिशुम्भञ्चद्वौ-महापशूदेवगणप्रीत्यैंहनिष्यसि । यद्वा, युद्धयज्ञेविषयेतथादेवगणप्रीत्यैयज्ञेमहापशु-र्नरः । तथामयाऋत्विजेवचण्डमुण्डौनाममहापशूद्वौहतौ । अतःपरं शुम्भनिशुम्भ-ञ्चमहापशू त्वमेवहन्तुमर्हसीतिभावः ॥ २४ ॥

ततोऽनन्तरंकल्याणीकल्यांवाचंशुभांअणन्तीकथयन्तीचण्डिकाभगवतीतौ महासुरौचण्डमुण्डौकाल्या आनीतौदृष्ट्वाकालीं देवींललितंईप्सितंमनोहरंवचःउवा-चउचितमुक्तवती ॥ २५ ॥

हेकालित्वंयस्मात्कारणाच्चण्डंमुण्डञ्चगृहीत्वामामुपागतासिततोलोकेभु वनेचामुण्डेतिख्यातादेवीभविष्यसि । 'हस्ताभ्यांचण्डमुण्डौ तु, किलागृह्णादसौयतः' । मत्वर्थकेऽच्यतश्चण्डमुण्डादेव्यैवकथ्यते । 'ततःपृषोदरादित्वात् शिष्टशब्दप्र-योगतः । चण्डशब्दस्यचात्वेनचामुण्डेतिप्रसिध्यति' । अतश्चाहुः । पृषोदरादि त्वाच्चण्डमुण्डस्थानेचामुण्डासाध्येति । यत्यस्यकरेस्तितत्तस्यास्तीतितद्वान्स भवतिदण्डीतिवत्। यंकरेणयागृह्णात्साचण्डमुण्डवतीकालीतिमत्वर्थेअर्शआदित्वा-दच्चिस्त्रियांटापित्रण्डशब्दस्यपृषोदरादित्वाच्चाइत्यादेशेचण्डमुण्डैवचामुण्डेतिचण्डि काभिप्रायः । यद्यपिशिरसिपवकाल्यागृहीत्वाआनीतेनतुचण्डमुण्डौ। तथापिकापि.

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येचण्डमुण्डवध-
वर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सप्तशत्यां सप्तमः ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

(अष्टमोऽध्यायः)

रक्तबीजवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते । बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः

ग्रामैकदेशे दग्धे ग्रामो दग्ध इतिवत् चण्डमुण्डैकदेशयोः शिरसोश्चण्डमुण्डौ समुदायौ त-
योः प्रयुक्तौ शिष्टप्रयोगतः । कश्चित्त्वाख्यत् । 'चस्तस्कर सनाख्यातश्चन्द्रमाश्च समी-
रितः' । इत्यभिधानतः चान् तस्करान् मुण्डयति खण्डयति चमुण्डा । चमुण्डैव चा-
मुण्डेत्यन्येषामपि दृश्यत इति पूरुषवद्दीर्घत्वमिति । तन्न । यस्माच्चण्डश्च मुण्डं चेति
चण्डिकाभिप्रायतश्चामुण्डेति प्रकृतार्थहानादप्रकृतार्थाभ्यनुज्ञानात्परमर्षिप्रणीतरूढश-
ब्दार्थविग्रहव्याकोपप्रसङ्गाच्च ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे श्रीतो० श्रीमदुद्ध० श्रीशन्तनुचक्रवर्तिविरचितायां देवी-
माहात्म्यटीकायां चण्डमुण्डवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अस्य श्लोकयुग्मस्यैकक्रियाकत्वादेककर्तृकत्वादेकान्वयता च । तया काल्या देव्या च-
ण्डे निहते सति तथा मुण्डे च विनिपातिते सति तयैव च सैन्येषु बहुष्वसङ्ख्यातेषु क्षयिते-

ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् । उद्योगंसर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेशह
अद्यसर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः । कम्बूनाञ्चतुराशीतिर्निर्यान्तुस्वबलैर्वृताः ॥

षुसत्सुततोऽनन्तरंकोपपराधीनचेताः । क्रोधपरवशचित्तःप्रतापवान्व्युग्रोग्रतेजस्क-
श्चभूत्वाअसुरेश्वरःशुम्भःदैत्यानांसर्वसैन्यानांउद्योगन्देवींश्चण्डिकांप्रतिप्रयाणोत्सु-
कतामादिदेश । देवींप्रतिसेनाभिरभियातयूयमभिषेण्यतेत्यादिक्षत् । देवींप्रत्यभि-
षेणयितु उद्योगंकुरुतेत्याज्ञापयामासदैत्यसैन्यानीतिभावः । उद्योगंसर्वसैन्यानामि
त्येवसिद्धेदैत्यानांइतिप्राधान्यख्यापनार्थं यद्वासर्वाणिसैन्यानियेषान्तेसर्वसैन्याः
रक्तबीजप्रभृतयः तेषां उद्योगमादिदेश । क्षयोनाशःसञ्जातोयेषांतानिक्षयितानि ।
यद्वा,क्षपितेषु । क्षपप्रेरणेचुरादिः । प्रेरितेषुद्राचितेषुप्राणेभ्योदूरीकृतेषुनाशिष्विति
यावत् । कोपेपराधीनंअधीनंचेतोयस्यसः । यद्वा, कोपे परं अतिशयितं अधीनं
चेतोयस्यसः । असुराणां ईश्वरः । यद्वा, असून्प्राणान्रातिगृह्णातिअसुरः मृत्युः
ईश्वरोयस्यसः आसन्नमृत्युरित्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥

शुम्भआदिशति । अद्यास्मिन्नहनिइदानींवाममाज्ञयाषडशीतिदैत्याःप्रधान-
भूताः उदायुधाः उद्यतशस्त्राः सन्तः सर्वैः बलैः सैन्यैःचतुरङ्गैः वृताःवेष्टिताः सन्तः
निर्यान्तुदेव्यासमंयोद्धुम्। षड्भिरधिकाशीतिःषडशीतिःशाकपार्थिवादित्वात्समा-
सः । 'विंशत्याद्याःसदैकस्मिन्सङ्ख्याः सङ्ख्येयसङ्ख्ययोः' । किं कम्बूनां
कम्बूनाम्नांदैत्यानां चतुराशीतिः वृन्दभेदाः स्वबलैर्वृताःनिर्यान्तु । चतुर्भिरधिका-
शीतिः चतुरशीतिःपूर्ववदेकवचनम् । यदिचतुराशीतिनिर्विसर्गः पाठः । तदाचत-
स्रःआशीतयःकम्बूनांवक्तव्याःसमाहृताइतिइतिविगृह्यसमाहारद्वन्द्वः । कम्बूनां चतु-
राशीति कर्तृ । स्वबलैर्वृतंसत् । निर्यातुइति एकवचनान्तत्वेनयोज्यम् । एकत्वो-
क्तितः यथावृक्षः फलति लता च फलति इत्येकवचनसङ्गतिः । चतुराशीतिपाठे ।
आन्महतइत्यत्रसूत्रे आदितियोगविभागः शिष्टप्रयोगतः । 'प्रागेकादशभ्योऽछन्द-
सी'तिसूत्रकारव्यवहाराल्लिङ्गाद्योगविभागादिष्टसिद्धिरित्यात्वं लत्वरेफात्परस्तपद

कोटिवीर्याणिपञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतंकुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाऽऽज्ञया ॥ ४ ॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ५ ॥

। पृषोदरादित्वाद्वा । अन्येषामपिदृश्यतइति च । अशीतिशब्दादीकारस्यदीर्घत्वंद्रष्टव्यम् । नैतत्सर्वत्रकर्त्तव्यमिति । चतस्रः आशीतयइत्यत्र'दशान्तैकादिकासङ्ख्यासङ्ख्येयेष्वेवचत्रिषु' । कम्बुः शङ्खः चतुरशीतिशङ्खपरिमितासेनाःताभिः सहिताः दैत्याः ॥ ३ ॥

वैप्रसिद्धानिकोटिवीर्यनामधेयानिकोटिगुणितवीर्याणिअसुराणां पञ्चाशत्कुलानिवृन्दानिनिर्गच्छन्तुममाज्ञयादेव्यसमंयोद्धुम् । कोटिसङ्ख्यानिपञ्चाशदितितुपाठे । असुराणां कुलानिनिर्गच्छन्तु । कति पञ्चाशत् । पुनश्चकतितानि कोटिरितिसङ्ख्यायेषांपञ्चाशतःकुलानांतानिकोटिसङ्ख्यानि । एवंचैकत्रपञ्चाशत्कोटिसङ्ख्यान्यसुराणां कुलानि । धूम्राणां धूम्रनाम्नांअसुराणां शतंकुलानि । धौम्राणामितिपाठे । धूम्रस्यापत्यानिपुमांसःधौम्राः शिवादित्वादण् । अतइञोऽपवादः ॥ ४ ॥

कालकाः कालकनामानोऽसुराः कालंयमरूपमात्मानंशत्रुभ्यः कायतिकथयतिकालकः । कालकस्यापत्यानिकालकाः शिवादित्वादण् । यद्वा, कलं मन्द्रं कायतिकलकः तस्येमे कालकाः कलककुलोत्पन्नाः दैत्या अद्यममाज्ञयात्वरिताञित्वरासम्भ्रमे सम्भ्रमसहिताः सत्वराः सन्तःदेव्यासमंयुद्धाययोद्धुंसज्जाः सायुधाः सन्तः निर्यान्तु । तथातद्वद्दौर्हृदा असुराःदुष्टंहृदयंयस्यसदुर्हृद्दैत्यः । 'सुहृद्दुर्हृदौमित्रामित्रयोरि'तिनिपातः । तस्यापत्यानिदौर्हृदाःदौर्हृदाख्यादैत्याः । तथामौर्याख्याः । मुरस्यापत्यानिगोत्राणिगर्गादित्वाद्यञ् । 'यञञोश्चे'तिलुक्कुतोऽत्रन । छान्दसत्वाच्छन्दोवत्पुराणानिभवन्ति । यद्वा, मुरस्यभावः मोर्यंतद्वन्तः

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भोभैरवशासनः। निर्जगाममहासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ६॥

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ ७ ॥

मौर्याः अर्शआदित्वादच्। यद्वा मुरस्यभावः मौरी। ष्यञ्षित्वातङीष्। मौरी-मर्हन्तिमौर्याः दण्डादिभ्योयः तेऽपि निर्यान्तु। तथाकालकायाअपत्यानिकालकेय-नामानोऽसुराः। स्त्रीभ्योढक्। कालकवंशजाताः। शुभ्रादिभ्यश्चेतिढक् ॥ ५ ॥

इत्येवमसुरानाज्ञाप्यादिश्यभैरवशासनः भैरवं भयङ्करं शासनं यस्य सः। यद्वा, भैरवान्मृत्योः शासनं यस्यसः आसन्नमरणत्वात्। असुरपतिः शुम्भः बहुभिर्दानवैः वृतः सन्निर्जगामदेव्यासमंयोद्धुम्। किम्भूतैः बहुभिः महासैन्यस-हस्रैः महान्ति सैन्यसहस्राणियेषु तैः ॥ ६ ॥

आयान्तंशुम्भम्। यद्वा,'सेनायांसमवेतायेसैन्यास्तेसैनिकाश्चते'। सैन्यः पुंसिसेनायांसमवेतः सेनायावेतिण्यः। यद्वा, आयान्तं शुम्भं अतिस्थाने अपि शब्दश्चाऽर्थे। तथायमन्वयः। अतिभीषणमतिभयङ्करंतत्सैन्यंयस्यशुम्भस्यसत त्सैन्यः। यद्वा, तेसैन्याः सेनायांसमवेताः सम्मिलिताहस्त्यश्वरथपादातादिसमू हायस्यसतत्सैन्यः। तंआयान्तंशुम्भंदृष्ट्वाचण्डिकादेवीज्यास्वनैः धनुष्याकृष्टामौ-र्वीज्या तट्टङ्कारध्वनिभिः। धरणीगगनान्तरंद्यावापृथिव्यन्तरालं पूरयामास। अथ द्वितीयोऽन्वयः। अतितरां भाषणोभयङ्करः तत्सैन्यः तस्यशुम्भस्यसैन्यः सेनायां समवेतोहस्त्यश्वरथपादातसमूहः। तंआयान्तंदृष्ट्वा। अथतृतीयोऽन्वयः। अति-भीषणंशुम्भमायांतंदृष्ट्वाअतिभीषणंतत्सैन्यंतस्यशुम्भस्यसैन्यमपिसेनांआयात् आ-गच्छद्दृष्ट्वाआयान्तंशुम्भंआयात् आगच्छत्तत्सैन्यंशुम्भसैन्यंनपुंसकलिङ्गं पूरीआप्या यनेव्यापयामास। आयान्तमितिशत्रन्तम्। आयातं इतिपाठेकर्त्तरिक्तः तं शुम्भंतत्सै न्यंच ॥ ७ ॥

सचसिंहो महानादमतीवकृतवान्नृप ! । घण्टास्वनेन तान्नादानम्बिकाचाप्यबृंहयत्

धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।

निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ ९ ॥

तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यश्चतुर्दिशम । देवीसिंहस्तथा काली सरोषैःपरिवारिता

सुमेधाऋषिः सुरथंराजानंसम्बोधयति । हेनृप ! दत्तावधानोभव । ततः धनुर्ज्यास्वनानन्तरंससिंहश्चातीवसुतरांमहान्तंनादंकृतवान । अम्बिकापिघण्टायाः स्वनेनतन्नादंसिंहनादंअबृंहयत् अवर्धयत् । बृहिवृद्धौहेतौणिचूलङ् (ङ्) । अडागमः अम्बिकाचोपबृंहयदितिपाठेआगमशासनानित्यत्वादडागमाभावः । ततः सिंहइति वापाठः ॥ ८ ॥

धनुर्ज्यानादेनसिंहनादेनघण्टानादेन च आसमन्तात्पूरितानिदिशांमुखानि यया सा । एवंविधाकालीतैस्त्रिविधैर्भीषणैः निनादैः विस्तारितानना विवृतास्या स्फारितमुखा सती जिग्ये । जिजये जिअभिभवे । 'व्यत्ययोबहुलं'इतिकर्त्तर्यात्मनेपदम् । लोकोत्कर्षेण ववृते । यद्वा, शत्रूनाभिबभूव । यद्वाजिग्येइतिकर्मणिप्रयोगः । तथाहि । एवंभूतायाकालीदेवीतयाभीषणैर्नादैः शत्रुवर्गोजिग्ये अभिबभूवे जज्ञेइतिपाठे । जनीप्रादुर्भावेआत्मनेपदी । कालीभीषणैर्निनादैर्विस्तारिताननाजज्ञे दैत्यानहस्यामीतिविवृतीकृतकरालवदनाजाता । अथवा, जज्ञेइतिज्ञाअवबोधनेकर्मणिलिडात्मनेपदम् । भीषणैर्ननादैर्याविस्तारिताननादैत्यसैन्यानिसर्वाणिअमूनिप्रत्यवस्यतीतिविकृतिकृतकरालवक्त्राद्दृश्यतेसाकालीतिदैत्यैः जज्ञेअज्ञायिसा । सखीसमूहेवर्त्तमानाकावाकालीसखीतितत्सादृश्यतःसंशयानैरथतैर्भीषणैर्निनादैर्विशेषचिह्नैर्विस्तारिताननासर्वसैन्यग्रासायविवृतनाम्नीकालीतिदैत्यैरज्ञायीतिभावः ॥ ९ ॥

चतुर्दिशमित्येनत्पदंशकारान्तंनिनादविशेषणञ्चैनन । अथचेत्परिवारणक्रियाविशेषणंस्यात्तदादिशाशब्देनटाबन्तेनसाधनीयम् । चतस्रःदिशोअधिकरणभूतायस्य

एतस्मिन्नन्तरे भूप! विनाशाय सुरद्विषाम्। भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिः (निष्क्र) म्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ १२ ॥

तन्निनादस्य यस चतुर्दिशं चतुर्दिक्षु व्याप्तम्। तासां धनुर्ज्यासिंहघण्टानां निनादं उपश्रुत्याऽऽकर्ण्य कुपितैः दैत्यसैन्यैः देवी आद्याशक्तिर्भगवती सिंहश्च वाहनीभूतः। काली च देवीललाटोद्भवा। तथा च एताः तिस्रोऽपि शरौघैः शरव्रातैश्चतुर्दिशं यथा स्यात्तथा परिवारिताः परिवेष्टिताः कारिता विद्धा इति यावत्। 'हलन्तादपि टाप् च यथा वाचा निशादिशो' ति दिशाशब्दष्टाबन्तोऽप्यस्ति। चतस्रो दिशा अधिकरणभूता यस्मिन् शरौघपरिवारणे कर्मणि तच्चतुर्दिशं क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकैकत्वञ्च वक्तव्यम् ॥ १०

युग्मं। हे भूप! दत्तावधानो देवीमहिमानमाकर्णय। एतस्मिन् देवीदानवसंग्रामे प्रस्तुने सति अन्तरे अवकाशे समये मध्ये वा सुरद्विषां विनाशाय। अमरसैन्यानां अमरसिंहानां देवश्रेष्ठानां वा भवाय भूत्यै अभिवृद्ध्यै स्थितये च अतिवीर्यबलान्विताः शक्तयः सामर्थ्यलक्षणाः देवताश्च ब्रह्मशगुहविष्णूनान्तथा इन्द्रस्य वापि पञ्चानां तेषां शरीरेभ्यो विनिः क्रम्य निर्गत्य तद्रूपैः ब्रह्मादिरूपैः तदाकारैः तादृशरूपैः चण्डिकां ययुः प्रविष्टवत्यः। ब्रह्मा च ईशश्च रुद्रः गुरुश्च कुमारः विष्णुश्च नारायणः। ब्रह्मणः शरीराद्ब्रह्माणी निर्गता। रुद्रस्य शरीरात् माहेश्वरी। कुमारशरीरात् कौमारी। विष्णुशरीराद्वैष्णवी। इन्द्रशरीरादैन्द्री एताः देवीम्प्रापुरित्यर्थः। 'भवः कल्याणसंसारसत्तावाप्तीशजन्मसु'। अमरसिंहानामिति पाठे। अमराः सिंहा इव श्रेष्ठाः तेषाम्। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' समस्यते। अभ्यधुश्च 'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः'। बृंहति वर्द्धते ब्रह्मा। ईष्टे ईशः। गूहते सेनां संवृणोति गुहः। वेवेष्टि व्याप्नोति विशति वा विश्वं विष्णुः। इन्दति परमैश्वर्येण राजते इन्द्रः। शक्नोति शक्तिः क्तिच्। शक्यते कर्त्तुमनया वा शक्तिः क्तिन्। चडि कोपे कुप्यति चण्डते चण्डिका प्रापणे लिट् ॥ ११ ॥ १२ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् । तद्वदेवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाताब्रह्मणःशक्तिर्ब्रह्माणीसाभिधीयते ॥ १४ ॥
माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी । महाहिवलया प्राप्ता चन्द्रलेखाविभूषणा ॥

तद्रूपैरितियदुक्तंतदेवव्यक्तीकरोति । देवीदानवयुद्धंद्रष्टुमागतानां तेषां ब्रह्मादीनांशरीरेभ्योविनिष्क्रम्यानुभावान्प्रकाश्यकायव्यूहेनप्रव्यक्ताःतयोब्रह्माण्यादयः शक्तयः चण्डिकांशभूताः चण्डिकांयुद्धायउत्साहयितुंययुरितिप्रागुक्तंतदनेन स्पष्टयति । यस्यदेवस्यब्रह्मादेः यद्रूपंयआकारः यथाभूषणवाहनंभूषणवाहनान्यनतिक्रम्ययस्य देवस्ययद्भूषणं यद्वाहनंतद्वद्देवताद्दृशमेववाहनमारूढवतीतच्छक्तिः तस्य देवस्य साशक्तिर्ब्रह्माण्यादिदेवता तद्वद्देवायुधानिबिभ्रतीसतीहिनिश्चयेअसुरान्योद्धुं आययौ । देवीसान्निध्यंसङ्ग्रामरङ्गस्थलीञ्चाजगाम ॥ १३ ॥

हंसः युक्तोयोजितोविमानः तस्मिन् तिष्ठतिहंसयुक्तविमानस्था अक्षाणां स्फटिकमणीनांसूत्रंजपमालाअक्षसूत्रंकमण्डलुश्चताभ्यांसहवर्त्तमाना । एवंविशेषणब्रह्मणःशक्तिरसुरैः सहयोद्धुं आयातासाखलुब्रह्माणीत्यभिधीयते । ब्रह्मणःस्त्री ब्रह्माणी अत्रानुगागमाभावाच्छिवागमप्रसिद्धंनामेदंकथ्यते। अतएवनिरूढतामपेक्षितनियमसिद्धतामि'तिनारदर्षिः । यद्वा, 'वेदस्तत्वंतपोब्रह्मब्रह्माविप्रःप्रजापतिः' । अणशब्दे । ब्रह्मअणतिकथयतिब्रह्माणी । कर्मण्यणिस्त्रियां ङीप् । यद्वा, ब्रह्माणमणतिमदीयोऽयमितिब्रह्माणी । 'हंसोयतिविशेषेचप्राणश्वेतच्छदेषुना' । अतएवहंसैर्यतिविशेषैर्युक्तंविमानं विगतमानंपरंब्रह्मतत्रतिष्ठत्युपनिषद्रूपत्वादितिहंसयुक्तविमानस्थाब्रह्मीवाणी ब्राह्माणीत्यप्यर्थलेशः ॥ १४ ॥

वृषंवृषभंधर्मंवारूढा। त्रीणिशूलानिशृङ्गाणि अग्राणियस्यतत्श्रेष्ठंत्रिशूलंशूलवरन्धरतित्रिशूलवरधारिणी । महान्तः अहयः नागाः वलयायस्याः सा एवंलक्षणाशक्तिः महेश्वरस्येयंमाहेश्वरीप्राप्ता असुरैः समं योद्धुमागता। 'शुक्ले

कौमारीशक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १६ ॥
तथैव वैष्णवीशक्तिर्गरुडोपरिसंस्थिता । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥

मूषिकेश्रेष्ठेसुकृतेवृषभेतुवृषः' । 'अस्त्रीशूलंरुगायुधम्' । 'देवाद्वृतेवरः श्रेष्ठेत्रिषुक्लीवं मनाक्प्रिये' । 'आवापकः पारिहार्यःकटकोवलयोऽस्त्रियाम्' । लेखाकलाप्रकृतौचित्यात्अन्यथालेखाराजिः ॥ १५ ॥

शक्तिरायुधंहस्तेयस्याः साअजाद्यतष्टाप् । 'प्रहरणार्थेभ्यः परेनिष्ठासप्तम्यौभवतः इतिवक्तव्यम्' । मयूरवरः श्रेष्ठमयूरः वाहनंयस्याः सा । 'वाहनमाहितादि'तिणत्वंनाशङ्कनीयम् । आहितत्वाभावात् । नहिमयूरवरःवाहनमारोपितोऽस्ति वाहनेयदारोपितमुह्यतेतदारोपितमाहितमुच्यते । रूपरूपक्रियायां चुरादिः । गुहं कुमारमाकारेणरूपयतिदर्शयतिगुहरूपिणी । यद्वा, गुहस्यरूपमस्यामस्तीतिगुहरूपिणी । अतइनिः । 'ऋन्नेभ्योङीप्' । यद्वा, गुहरूपंकरोत्यात्मनितदाचष्टेवातच्छीला । गुहरूपयतेर्णिनिः । अम्बिकामाता । कुमारस्येयंकुमारी ॥ १६ ॥

गरुडस्योपरि'पूरणगुणे'त्यादिनाषष्ठीसमासप्रतिषेधः कृदन्ताव्ययस्यतेन तदुपरिमदुपरीतिवत्षष्ठीतिसमासः । संस्थितासम्यक्स्थिता । शंखःपाञ्चजन्यः चक्रंसुदर्शनंगदाकौमोदकीशार्ङ्गंधनुः । हस्तिदन्तःशृङ्गं तस्येदंशार्ङ्गं वैष्णवंधनुः । 'अन्यदीयंतुचापीयंशृङ्गंमाहिषमुच्यते' । 'गवयंमाहिषंशृङ्गं शार्ङ्गंचापादियन्मयम्' । खड्गश्चनन्दकस्तेषांसेनांगत्वादेकवद्भावेनपुंसकत्वं तच्छङ्खाद्यंहस्तेयस्याः सा । विष्णोरियंवैष्णवीशक्तिर्देवतानारायणी । तथैवतद्वदेवब्रह्माण्यादिवदेवयोद्धुं अभ्युपाययौ । यद्वा, तथैवविष्णुवदेववैष्णवीशक्तिरपिदैत्यान्प्रहर्तुं क्षमेतिभावः । वैष्णव्याः शक्तेरायुधानिपञ्च बाहवस्तुचत्वारइतिवैषम्यम् । आहुरत्र । शंखशार्ङ्गे एकस्मिन्बाहौ । अङ्गुलिसक्तसूत्रलग्नः शङ्खोवादनार्थः । शार्ङ्गंतुमुष्टौनिविष्टमित्यवैषम्यम् । यद्वा,युद्धेवादनार्थःशङ्खोवादनौचित्याद्बाहुमूलावलम्बीत्यवैषम्यम् ।

जज्ञेवाराहमतुलंरूपंया बिभ्रतीहरेः। शक्तिः साप्यायर्यौ तत्र वाराहीं बिभ्रतीतनुम् ॥
नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशंवपुः। प्राप्ता तत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ १६॥
वज्रहस्तातथैवेन्द्रीगजराजोपरिस्थिता। सहस्रनयना प्राप्ता यथाशक्रस्तथैव सा ॥

शङ्खोनायुधंनस्यवादनार्थत्वादितिकश्चिदाह । तत्र । शङ्खपाणिरित्यत्रपाणेःस प्तम्यन्तस्यपरनिपातत्वाभावप्रसङ्गात् । अस्तिचशङ्खस्यसंग्रामेस्वनिस्वनत्रासाकु लशत्रुत्वादायुधत्वौचित्यमित्यलं विस्तरेण ॥ १७ ॥

पुनर्वैष्णवशक्त्यन्तरमाविर्बभूवेत्याह। हरेर्भगवतोविष्णोः अतुलबलपरा- क्रमाभ्यां अनुपमञ्चवराहस्येदंवाराहंरूपंयाबिभ्रतीसतीभगवतीजज्ञे । जनीप्रादु- र्भावेअनुदात्तेत कर्त्तरिलिट् । यद्वा, ज्ञाअवबोधनेकर्मणिलिट् । ऋषिभिः शास्त्रे- णजज्ञे आज्ञायि । सापिहरेः शक्तिः नारायणीदेवता । वराहस्येयंवाराहीतांतनुं शरीरव्यक्तिं बिभ्रतीआययौ ॥ १८ ॥

पुनर्वैष्णवशक्त्यन्तरंप्रापदित्याह । सटानांस्कन्धकेसराणांआक्षेपेणक- म्पनेनइतस्ततस्ताडनेनक्षिप्ताः प्रेरितादूरीकृतानक्षत्राणां संहतयः समूहाययासा। अतएवनृसिंहस्यभगवतः सदृशम्वपुः बिभ्रती। अतएवनृसिंहस्येयंनारसिंहीवैष्ण- वीशक्तिः योद्धुं तत्रप्राप्ता। नाचासौसिंहश्चनृसिंहः। यद्वा, 'ग्रामैकदेशोदग्धेग्रामो दग्ध'इतिवत्नुरेकदेशेनृशब्दः सिंहैकदेशेसिंहशब्दश्चवर्त्तते । ततश्चनाचसिंहश्च नृसिंहौतौयस्मिन्भगवतोविष्णोरवतारेनृसिंहः। मत्वर्थेऽर्शआदित्वादच् ॥ १९॥

वज्रमायुधंहस्तेयस्याः सा। गजराजोपरिस्थिताऐरावताधिरूढा। स- हस्रंनयनानियस्याः सा। अतएवयथाशक्रइन्द्रः समवास्थितोभूदाकारादिनातथै- वसाप्यैन्द्रीशक्तिः इन्द्रस्येयंऐन्द्री। योद्धुम्प्राप्ता। 'यथासादृश्ये'इत्यसादृश्यइति प्रतिषेधादव्ययीभावाभावेयथेतिपृथक्पदम्। वज्रालङ्कृतहस्तावा।'वज्रोऽस्त्रीहीर- केपवौ'। इन्द्रस्यस्त्रीइन्द्राणीशक्तिस्त्वैन्द्री। तदित्थंब्रह्माण्याद्यादेवशक्तयःसप्ते हकथिताः ॥ २०॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराःशीघ्रं मम प्रात्याह चण्डिकाम् ॥ २१ ॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिःक्रान्ताऽतिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ २२ ॥
साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता । दूतत्वं गच्छभगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः

ततोऽनन्तरंताभिर्ब्रह्माण्यादिभिर्देवशक्तिभिः परिवृतःईशानोमहेशः । चण्डिकामाह । किमिति । ममशम्भोः प्रीत्यास्नेहेनकारणेन असुराहन्यन्तांशीघ्रमिति । केचित्तु । चण्डिकेतिपठन्तितदापरिवृताईशानेतिचस्त्रीलिङ्गत्वेनचण्डिकाविशेषणेद्वततश्चाऽयमन्वयः । ततोदेवशक्त्यागमानन्तरन्ताभिर्देवशक्तिभिः परिवृताईशानाईशानशक्तिसम्पन्नाचण्डिकाभगवतीदेवशक्तीः प्रत्याह । हेदेवशक्तयःभवतीभिः ममचण्डिकायाः प्रीत्यास्नेहेनकारणेनशीघ्रंअसुराः सर्वेहन्यन्तामिति ॥ २१ ॥

ततोऽनन्तरंदेवीशरीरात्तुचण्डिकाशरीरादपिपुनः चण्डिकाशक्तिःविनिष्क्रान्ताप्रादुरभूत् । चण्डिकायाः देव्याः शक्तिःकीदृशी । अतिभीषणाअत्यर्थभयकारिणी । अतिपाशिनीतिपाठेप्रशस्तः पाशोऽस्त्यस्याः पाशिनीअतिक्रूरापाशिन्यतिपाशिनी । पुनःकीदृशीअत्युग्राऽतिरौद्रा । पुनःकीदृशी । शिवानां शृगालानांशतेनकृतोनिनादः सोऽस्त्यस्याः शिवाशतनिनादिनी । यद्वा, शिवेत्यनेनपरमैश्वर्यंकथ्यते शक्तिशक्तिमतोरभेदोपचारात् । तस्याविशेषणम् । शतत्वसंख्ययानिनदतितच्छीलाशिवाशतनिनादिनी । शतमित्युपलक्षणम् । सर्वतःशब्दायमानेत्यर्थः । एतदुक्तंभवति । यस्यदेवस्ययद्रूपमितिवचनाच्चण्डिकाशक्तिर्विनिर्गता चण्डिकाकृतिरेवशिवेतिनाम्नाप्रादुरभूतइति । यद्वाशिवांशतेनसहनिनदतीति । अन्यथाउत्तरत्रतदागच्छततृप्यन्तुमच्छिवाः पिशितेनचइतिशिवागतत्वं कथं स्यात् ॥ २२ ॥

अपराजितापरैः शत्रुभिरजिता । यद्वा, अविद्यमानःपरउत्कृष्टःशत्रुर्वायस्याःसा

ब्रूहि शुम्भनिशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ । ये चान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिताः

अपराजयतिस्मजिताप्राप्तलोकोत्कर्षा । यद्वा, अजः सञ्जातोयस्याः सा अजिता पितामहमाताविष्णुमायेतियावत । साचण्डिकायाः शक्तिर्देवताधूम्रजटिलंईशानं रुद्रंआह । किं हेभगवन् ! दूनत्वं गच्छ दूतभावंभज । शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वे गच्छयाहि । चः समुच्चयार्थोभिन्नक्रमश्च । दूनत्वंगच्छपार्श्वेचेति । योजनान्तरेतु । धूम्रजटिलं इतिच्छेदः । दूतः त्वं इतिच्छेदः । साचण्डिकायाः शक्तीरपराजितानामजटिलंईशानम् जटाः सन्तियस्यसजटिलः तं । 'तुन्दादिभ्यइलच्च' । आह किमिति । असुरेषुक्रोधाग्निपूर्णत्वात् धूम्रः कृष्णलोहितः । हे धूम्र हेभगवन् त्वं दूत ! लोण्मध्यमपुरुषैकवचनान्तमेतत् । दूतइवाचरतिदूनति । लोटस्तु 'सेर्ह्यपिच्च' । 'अतोहेर्लुक्' । दूत दूतइवाचर । 'सर्वप्रादिपदिकेभ्यः क्विब्वाचारेवक्तव्यः' । यदिदूतवदाचरदून इतिउपमानादाचारेक्विवंततामनाश्रित्यमुख्यार्थ दूतशब्दात् त्वप्रत्ययः क्रियते यः येषां हेभगवन्निति सर्वैश्वर्याद्युपेतपूजितसम्बोधनंदूत त्वेतिनीचत्वे प्रयुक्तमितिकेयंवाचोयुक्तिपटुत्वौचितीस्यात । धूम्रश्चासौजटिलश्चेत्येकपदत्वम्वा । ततोविशेषसमासः । धूम्राः जटाः यस्येतितुविगृह्य'नकर्मधारयात् मत्वर्थ' इतिप्रतिषेधादिलजभावाद्बहुव्रीहौधूम्रजटइत्येवस्यात् ॥ २३ ॥

तत्रगत्वाकिंब्रवाणीत्यतआह । हेभगवन् !हेरुद्र! त्रिभुवनंविजित्यैवाऽतिगर्वितौ अस्मत्समः कोऽपिनास्तीतिसञ्जाताहङ्कारौ शुम्भं निशुम्भं च दानवौहितं वक्ष्यमाणंब्रूहिउपदिश । अथयेचान्येदानवाः तयोः पक्षेसंग्रामशूरम्मन्यतयागर्विताः युद्धाययुद्धंकर्त्तुं समुपस्थिताः सङ्गताः स्युः तानपिहितं वक्ष्यमाणंब्रूहि । ब्रुविर्द्विकर्मकः । 'अकथितंचे'त्यत्रब्रूञ्शस्विवतिद्विकर्मकेषुपरिगणितत्वादस्य ॥ २४ ॥

अनेनहितमाहचण्डिकायाः शक्तिः । हेशुम्भादयोदैत्याः यूयं सर्वेऽपियदि जीवितुंइच्छथतर्हिपातालंप्रयात । ततश्चइन्द्रः त्रैलोक्यंलभतां प्राप्नोतु । इन्द्रादयोदेवाःहविर्भुजः यज्ञेषुहवींषियथाभागं भुञ्जानाः सन्तु हवींपिभुञ्जन्ताम् । अग्नि-

त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतां देवाःसन्तुहविर्भुजः। यूयंप्रयातपातालं यदिजीवितुमिच्छथ बलावलेपादथचेद्भवन्तोयुद्धकाङ्क्षिणः। तदागच्छततृप्यन्तुमच्छिवाः पिशितेनवः

यतो नियुक्तो दू (दौ) त्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीतिलोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ २७ ॥

मुखेनदेवतोद्देशेनहूयमानं होतव्यद्रव्यं घृतादिकं हविराहुः। अन्येतुहूयतेहविः सान्नाय्यमित्याहुः। 'घृतमाज्यंहविः सर्पिर्हविष्यं च तदुच्यते'। इच्छथलटोमध्यस्थः 'इषुगमियमांछः' शिति ॥ २५ ॥

अथचेद्भवन्तोदानवाः बलावलेपाद्बलगर्वात्कारणाद्युद्धकांक्षिणःस्युःतदा तर्हिमयासमंयोद्धुंआगच्छतयूयंतत्फलं चावाप्स्यथ। मच्छिवाश्चवः पिशितेन तृप्यन्तु। ममशक्तिः परिवाराः शृगालाश्चवः युष्माकं युधिखण्डितानां पिशितेन मांसेनतृप्तिमाप्नुवन्ति। 'कुक्कुराश्चशृगालाश्चहरिणाश्चतथाऽवयः। प्रियाभवन्ति शक्तीनांभैरवाणांचवैतथा'। 'गर्वोभिमानोऽहंकारोमानश्चित्तसमुन्नतिः। दर्पोवलेपोऽहन्ताऽपिस्यादहंयुत्वमेवच'। काङ्क्षिइच्छायांयुद्धंकाङ्क्षन्तियुद्धकाङ्क्षिणः। तृपतृप्तौदिवादिः तृप्यन्तु। पिशितंतरसंमांसम् ॥ २६ ॥

यतः कारणात्तयाशक्तयास्वयं देव्याशिवः शम्भुः दूत्येनदूतभावेनदूतकर्मणा चानियुक्तः प्रेरितोऽभूत्ततः कारणात्साचण्डिकायाःशक्तिः अस्मिन्मर्त्यानांलोकेशिवदूतीतिख्यातिकीर्तिप्रसिद्धिंचागताप्राप्ता। सख्युर्यः 'दूतवणिग्भ्यांचेतिवक्तव्यम्' दूतस्यभावः कर्मवेतियः। दूतशब्दात्ष्यञ्तुनचेत्समुच्चायीतोयतः। 'वाणिज्या वाणिज्यमित्युक्तम्। अयंतुब्राह्मणादिषुवणिज्शब्दस्यपाठात्सेत्स्यति। दूतशब्दस्तुनदृढादौनापिब्राह्मणादौपठितः। यदभ्यधुः। दूत्यन्तद्भावकर्मणीति। कश्चिदाह। दूत्यंदौत्यमुभयमपिभवति। वणिज्यावाणिज्यमितिवत्। 'दूतवणिग्भ्यांचे'तिचकारात्ष्यञपिभवतीतितन्न। 'सख्युर्यः''दूतवणिग्भ्यां च'। नकेवलं सख्युरेवयः अपितुदूतवणिग्भ्यां च योभवतीतिचकारेणयएवसमुच्चीयतेन तुष्यञ-

तेपिश्रुत्वावचोदेव्याःशर्वाख्यातंमहासुराः। अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्रकात्यायनीस्थिता
ततःप्रथममेवाग्रेशरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः। ववर्षुरुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारयः ॥ २९ ॥

सा च तत्प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३० ॥

पियदिष्यञपिचेत्समुच्चीयतेतदाब्राह्मणादौवणिक् शब्दपाठोनिरर्थकः स्यात्। चकारेणैवष्यञ्सिद्धत्वात्। दौत्येनेतिपाठेदूत्यमेवदौत्यं प्रज्ञादित्वादण्। शिवदूतीति 'दुतनिभ्यांदीर्घश्चे'तिक्तः। टुदुउपतापे 'दुतनिभ्यांदीर्घश्चे'त्यौणादिकः क्तः। शिवेनदूतयतीतिशिवदूती। यद्वा, शिवंदूतंप्रेष्यंकरोतिशिवदूती। कर्मण्यणित्रियांङीप्। शिवेकर्मणिदूतयतेर्ण्यंतादपि रूपं शिवं दूतयतिदूतं करोतितदाचष्टइति णिजन्तात्कर्मण्यण्। शिवदूतेत्यपिसभ्यः पाठः ॥ २७ ॥

तेशुम्भादयः महासुराः शर्वाख्यातं शृणोतिहिनस्तिशर्वः तेनकथितंदेव्याः शिवदूत्याःवचःसन्देशं श्रुत्वाऽमर्षेणक्रोधेनापूरिताः जग्मुःक्वयत्रकात्यायनीस्थिता। शर्वोक्तदेवीसन्दिष्टसामवादोद्दीपितामर्षा पूरिताः क्रियाकेवलमुत्तरमितिमन्वानाः सन्तस्तत्रययुः यत्र। कतोनामर्षिः तस्यगोत्रंस्त्रीकात्यायनी कात्यशब्दाद्गर्गादियञन्ता'त्सर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्य'इतिस्त्रियांष्फःफस्यायनादेशःषित्वात्ङीष्।'उमा कात्यायनीगौरी'। यतः कात्यायनीस्थितेतिपाठेआद्यादित्वात्सप्तम्यर्थैतसिः यत्रेत्येवार्थः ॥ २८ ॥

ततोऽनन्तरंअमरारयःशुम्भादयः उद्धतामर्षाःप्रवृद्धरोषाः सन्तः प्रथममेव। "कालाध्वनोरि'तिद्वितीया। अस्यादेव्याअग्रभागेउरसिशरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः शरसम्पातैः शक्तिसंपातैः ऋष्टिपातैः खड्गाघातैश्चसाधनैः तां देवींववर्षुः छादयामासुः। वृषुसेचने। असंयोगाल्लिडपित्कित्। 'छन्दोवत्पुराणानि'। अन्यथाववृषुरित्येवस्यात्। 'कासूसामर्थ्ययोः शक्तिः'। कासूस्तोमराख्यमायुधंऋष्टिः खड्गः ॥ २९॥

सा चण्डिकाच तत्प्रहितान्तैरसुरैःप्रयुक्तान् शरान् शूलान्शक्तीःपरश्वधान्

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३१ ॥

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः । ब्रह्माणीचाकरोच्छत्रून् येन येन स्मधावति
माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रेणवैष्णवी । दैत्यान् जघानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपिना
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशोदैत्यदानवाः । पेतुर्विदारिताःपृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥

परशून् कुठारान् अन्यान्यप्यायुधानिलीलयाऽनायासेनध्मातं मौर्वीटङ्कारेणशब्दितं धनुः ततोमुक्तैः प्रेरितैः महेषुभिःमहद्भिः प्रशस्तैः इषुभिःशरैः चिच्छेदखण्डयामास । शूलचक्रपरश्वधानीति वा पाठः ॥ ३० ॥

तदासङ्ग्रामकालेतस्यादेव्याःचण्डिकाया अग्रतः पुरस्ताद्दृष्टिपथेकाली चण्डमुण्डमर्द्दनीतद्वत्तथाचण्डिकेवयुध्यमानानरीन् शूलेनकृताः पाताःप्रहाराः तैर्विदारितान् खट्वाङ्गपोथितांश्च कुर्वतीअसुरशरीरकंकालपञ्जरमया (न्) युद्धेनपोथितान् प्रहतान् कुर्वतीसतीव्यचरत् ॥ ३१ ॥

ब्रह्माणीशक्तिः ब्राह्मीयेनयेनयथाधावतिस्मयोद्धुं गच्छतिस्मतत्रतत्रपथिशत्रून् कमण्डलौजलंतस्याक्षेपादाकर्षणात् । यद्वा, कमण्डलोः सकाशादुद्धृतस्यजलस्याक्षेपात्प्रोक्षणाद्धेतोः हतवीर्यान् हतौजसश्चहतदीप्तिबलान् अकरोत् । 'ओजो दीप्तिबलेऽपिस्यात्'। कमण्डलुजलाक्षेपादितिवापाठः । अथवाधावतीत्यत्रव्यत्ययेन बहुवचनम् । येनयेन अन्यायेनधावन्तिस्मलोकानुपद्रवन्तिस्मतान्दैत्यान् ॥ ३२ ॥

देव्याअग्रेमहेश्वरस्येयंशक्तिर्माहेश्वरीत्रिशूलेनदैत्यान् जघान । अतिकोपनेतिप्रत्येकंविशेषणंविष्णोरियंवैष्णवीचक्रेणदैत्यान् जघान । तथाकुमारस्येयंकौमारीगुहशक्तिः शक्त्याआयुधेन इतिमाहेश्वर्यादिशक्तित्रयपराक्रमोवर्णितः । अतिकोपना । कुपक्रोधे 'क्रुधमण्डार्थेभ्यश्चे'तियक् ॥ ३३ ॥

इन्द्रस्येयंऐन्द्रीशक्तिः तस्याः कुलिशंवज्रंतस्यपातेन । शतंशतंशतशः । 'सङ्ख्यैकवचनाच्चवीप्सायां'शस्। दैत्यादानवाश्चविदारिताःअतएवरुधिरौघप्रवर्षिणः

तुण्डप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः । वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः

नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयन्तीमहासुरान् ।

नारसिंही चचाराऽऽजौ नादापूर्णदिग (न्तरा) म्बरा ॥ ३६ ॥

सन्तः पृथ्व्यांपेतुः पतिताः विदारिताइति दृविदारणेक्र्यादिःहेतुमतिकर्मणिक्तः । अन्यथाविदीर्णाः स्युः चुरादौचापि । 'दारितेभिन्नभेदितौ' । यद्वा, विदारणंविदारः ससञ्जातएषांविदारिताः । रुधिराणांओघाः तेषां प्रवर्षाणितद्वन्तः । 'ओघो वृन्देम्भसांरये' यद्यप्यसुरादैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवा' इत्यभेदेनाभ्यधुःतथापिमातृभेदतोभेदोनास्ति । अत एवसमानार्थत्वविवक्षणामपिसमानार्थानामेकशेषो नकृतः ॥ ३४ ॥

वराहस्यभगवतोविष्णोरियंवाराही मूर्तिःकायोयस्याःसातस्याः । यद्वा, वराहस्याऽयं वाराहोविष्णोरवतारः तस्येवमूर्त्तिः यस्याः सातस्याः वराहमूर्त्याः तुण्डंमुखम् । तुडितोडने तुण्डत्यनेनखण्डयतीतितुण्डंतेनकृतःप्रहारःतेनविध्वस्ताः व्यसूकृताःअसुराः तस्याः सम्बधिन्यौयेद्वेदंष्ट्रे तयोरग्रभागौताभ्यां क्षतानि वक्षांसि येषांतेदंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः । तस्या एवचक्रेणवैष्णवायुधेनविदारिताः सन्तो न्यपतन् रणभुविपतिताः ॥ ३५ ॥

नादेनसिंहनादेनासमन्तादभिव्याप्यपूर्णानिपूरितानिदिशामन्तराण्यन्तरालानिययासा। नादापूरितदिङ्मुखेतिवापाठः । 'वादान्तशान्तपूर्ण'इतिपूरितेनिपात्यते । नरसिंहस्यभगवतोविष्णोरवतारस्येयंशक्तिर्नारसिंही आजौयुद्धेचचारविजहार । किंकुर्वतीनखैरायुधैर्विदारितान्स्फुटितगात्रानन्यान्महासुरान्भक्षयन्ती । अथवा । च अ आन्यानितिच्छेदः । अइतिप्रतिषेधार्थमव्ययम् । आन्यानिति । अणप्राणने णिच्यचोयत् आननीयाः आन्याःजीवयितुमर्हाः । अ आन्याः दुष्टत्वान्मारणीयाः । तान्महतोसुरान्भक्षयन्तीनारसिंहीखलुमारयतिखादतिच ।'समित्याजिसमिद्युधः' । 'समेक्ष्मांशेरणेऽप्याजिः' । 'युद्धभागक्षणेष्वाजिः' । अनेननारसिंहीपराक्रमः कथि-

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः । पेतुःपृथिव्यांपतितांस्तांश्चखादाथसातदा
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् । दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥
पलायनपरान् दृष्ट्वादैत्यान्मातृगणार्दितान् । योद्धुमभ्याययौक्रुद्धोरक्तबीजोमहासुरः
रक्तबिन्दुर्यदाभूमौपतत्यस्यशरीरतः । समुत्पततिमेदिन्यांस्तत्प्रमाणोमहासुरः ॥

तः ॥ ३६ ॥

शिवदूत्याचण्डिकोत्पन्नशक्त्या । चण्डाट्टहासैः भयङ्करैः अभिदूषिताः प्रापितवैक्लव्याःप्रापितमूर्च्छाः असुराः पृथिव्यांपेतुः । अथतदापतितान्नरान्संवशिवदूतीचखादभक्षयामास । चण्डिकाशरीराद्विनिर्गतायाशिवंदूतमकरोत्साशिवदूती तत्पराक्रमउक्तः ॥ ३७ ॥

इत्युक्तरीत्या मातृणांब्रह्माण्यादीनां गणं समूहंक्रुद्धंक्रोधाविष्टं अतएव विविधैरभ्युपायैःसङ्ग्रामसाधनैरमोघैः महासुरान्मर्दयन्तंदृष्ट्वा देवानां अरयोदैत्याः तेषांसैनिकाः सेनासमवेताः नेशुः णश् अदर्शने । अदर्शनमगुः, पलाय्य ययुरिति यावत् । 'ब्रह्माणी वैष्णवी रौद्रीकौमारीशिवदूतिका । ऐन्द्री चनारसिंहीचवाराही चाष्टमातरः' । अणिमेत्यन्यामातरोऽष्टौ 'ब्राह्मीमाहेश्वरीचैन्द्रीवाराहीवैष्णवीतथा । कौमारीचर्ममुण्डाचकालीसङ्कर्षणीतथे'ति । 'ब्राह्मीमाहेश्वरीचैवकौमारीवैष्णवीतथा। वाराहीचतथेन्द्राणी चामुण्डाःसप्तमातर'इत्यनेन । अन्येत्वाहुः, 'ब्राह्मीमाहेश्वरीचैव कौमारीवैष्णवीतथा । वाराहीचैवमाहेन्द्री चामुण्डासप्तमातरः' ॥ ३८ ॥

रक्तबीजंयस्य स रक्तबीजोमहासुरः । दैत्यान्मातृगणेन ब्रह्माण्यादिमातृसमूहेनार्दितान् अतएव पलायनपरान्दृष्ट्वा क्रुद्धःसन्कर्त्तरिक्तः । देव्यासहयोद्धुं अभ्याययौ । रक्तंबीजयति बीजङ्करोतिरक्तबीजः । कर्मण्यण्, अर्द्दहिंसायां ॥ ३९ ॥

अस्यरक्तबीजासुरस्य शरीरात्रक्तबिन्दुःरक्तः पृषत् यदाभूमौपततितदा तत्प्रमाणः रक्तबीजासुरशरीरपरिमाणःमहासुरःमेदिन्याःसकाशात्समुत्पततिसमुत्-

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः। ततश्चैन्द्रीस्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत्

कुलिशेनाहतस्याऽऽशु बहु सुस्राव शोणितम्।

समुत्तस्थुस्ततोयोधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः॥ ४२॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।

तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः॥ ४३॥

ते चापियुयुधुस्तत्रपुरुशरक्तसम्भवाः। समं मातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम्

पयते। अतश्च रक्तबीजोरक्त बिन्दुबीजोरक्तबिन्दुश्चेतिविख्यातोऽभूत्। रक्तबिन्दुरित्येकवचनमुपलक्षणम्। तेनयावन्तःतद्रक्तबिन्दवःभूमौपतन्तितावन्तएवतादृशाएव रक्तबीजासुरसमाएव महासुरा भूमितः समुत्पद्यन्ते। मेदिन्यामितिपाठे अधिकरणंविवक्षितम्॥ ४०॥

स महासुरो रक्तबीजो गदापाणिः सन् इन्द्रशक्त्याऐन्द्र्यासहयुयुधे। ततः ऐन्द्री स्ववज्रेण निजायुधेन कुलिशेन रक्तबीजंअताडयत्। 'बन्धुजीवप्रसूनेनसदृशा रक्तबिन्दवः। रक्तबिन्दुःक्षितिस्पृक्सञ्जायतेतत्समोऽसुरः'॥ ४१॥

ऐन्द्र्याकुलिशेनवज्रेणाहतस्यरक्तबीजशरीरतः बहुलंशोणितंआशुसुस्राव भूमौपपात। ततः शोणितात्तस्येवरक्तबीजस्येवरूपमाकृतिर्येषांतेतद्रूपाः तस्यरक्तबीजस्येवपराक्रमोयेषां ते तत्पराक्रमाश्च योधायोद्धारः। रक्तबीजरक्तजासुररक्तात्तुनोत्पद्यन्तइत्यतउक्तंतद्रूपाइति। स्रुगतौदन्त्यादिः, कुलिशेनाहतइतिप्रथमान्त पाठे। घटःस्रवतीतिवदकर्मकत्वेनशोणितंसुस्राव जगामप्राप्तवानित्यर्थं विवक्षायां सकर्मकताऽस्त्येव। अहतस्यरक्तबिन्दोः शरीरतः शोणितंकर्तृ सुस्रावेत्यत्राकर्मकत्वंतुघटात्पयः स्रवतीतिवत्कर्मनिरपेक्षत्वादवसेयम्॥ ४२॥

तस्य रक्तबीजस्यशरीरात् यावन्तःयत्परिमाणाः यावत्सङ्ख्याका रक्त बिन्दवः पृथिव्यांपतिताः तावन्त एवतत्परिमाणाएवतत्सङ्ख्याकाएवपुरुषाःदैत्याः तस्यरक्तबीजस्यतुल्यबलाश्चतुल्यविक्रमाश्चजाताः समजनिषतेत्यर्थः। 'वीर्यंवीर-

पुनश्चवज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा । ववाहरक्तंपुरुषास्ततोजाताः सहस्रशः ॥४५
वैष्णवीसमरेचैनंचक्रेणाभिजघान ह । गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४६

स्यकर्मचबलंप्राणसामर्थ्यम् ।'विक्रमस्तुपदाक्रान्तौशौर्येचापिप्रकीर्तितः' । 'विक्रम स्त्वतिशक्तिता'॥ ४३ ॥

तत्र सङ्ग्रामे ते रक्तबीजासुररक्तसम्भवाः पुरुषाः दैत्याः मातृभिः ब्रह्माण्यादिभिः समंसार्द्धंअत्युग्रंअतिदारुणं यथास्यात्तथाशस्त्राणांपातैरतिभीषण-मतिभयङ्करंचयथास्यात्तथायुयुधुः । 'व्यत्ययोवहुलमि'ति परस्मैपदम् ॥ ४४ ॥

पुनश्चपुनरपिऐन्द्र्याशक्त्याकृतेन वज्रपातेनतस्यरक्तवीजस्यशिरोमस्तकं यदाक्षतं दलितंभग्नमभूत्तदाततः वज्रताडिताच्छिरसः सकाशान्निर्गलितंरक्तंकर्तृ उवाहप्रवहतिस्मप्रवाहीवभूवेतियावत् । ततःतस्माच्च रक्तप्रवाहात् सहस्रंसहस्रं सहस्रशः पुरुषाः दैत्याः जाताः । ववाहेति,वहप्रापणे'लिट्यभ्यासस्योभयेषामि'ति सम्प्रसारणन्तु'सञ्ज्ञापूर्वकोविधिरनित्य'इतिनेत्याहुः। वहिरसम्प्रसारणप्रकृत्यतरत या दन्त्योष्ठ्यादिरस्तीत्यपरेवा प्रह्वयत्ने इत्यस्यात्मनेपदानित्यत्वाद्ववाहेत्यपरे । चक्षिङोङित्करणमनुदात्तेल्लक्षणात्मने पदानित्यत्वेज्ञापकमाहुः । ववेत्यव्ययं वव इतिप्रथमरक्तनिःसरणजनितध्वनिमाहेत्यन्ये । ववइत्येवशव्दमाह रक्तंकर्तृ प्रथम-तइत्यर्थः । उवाहेत्यर्थेववइतिशब्दानुकरणम् । तेन अनुकार्यानुकरणयोर्भेदस्या विवक्षितत्वादसत्यर्थंवत्त्वेगवित्ययमाहेतिवद्विभक्त्युत्पत्यभावः अन्यथाववमाहे-तिस्यात् । केचित्तुकृतसम्प्रसारणं उवाहेत्येवपेठु । वयंतु ब्रूमः,सम्प्रसारणमत्रकर्त्त व्यंकृतेतस्मिन्'सम्प्रसारणाच्चे'त्यत्रपूर्वरूपत्वेनित्येप्राप्ते'वाञ्छदसी'त्यनुवृत्तौ पूर्व-रूपत्वाभावपक्षेमित्रावरुणौयज्यमानावितिवत्पुनः प्रसङ्गविज्ञाना'दिकोयणचीति'य-णादेशएवश्रूयते । छन्दोवत्पुराणानिचभवन्तीति । तदित्थं,'पाठव्याख्याचधातूनां दृश्यन्तेस्वैरिणःक्वचित् । प्रयोगएवभगवांस्तानवस्थापयत्यपि' ॥ ४५ ॥

समरेसङ्ग्रामेविष्णोरियंवैष्णवीशक्तिरेनं रक्तबीजं चक्रेण अभिजघान

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः । सहस्रशोजगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथाऽसिना ।

माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ ४८ ॥

स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत्पृथक् । मातृःकोपसमाविष्टोरक्तबीजोमहासुरः

अथवाचसाऐन्द्री एनंरक्तबीजंअसुरेश्वरंगदयाताडयामास । यद्वा, ऐन्द्रीतमित्येकं पदंप्राक् । एन्द्र्याशक्त्याइतःयोद्धुंप्राप्तः । तं रक्तबीजं सावैष्णवीशक्तिः चक्रेण उरसिजघान । नकेवलंचक्रेण गदयां ताडयामास ॥ ४६ ॥

वैष्णव्याः चक्रेणभिन्नस्य विदारितस्य रक्तबीजस्यरुधिरस्रावसम्भवैः रक्तप्रवाहसमुद्भवैः तत्प्रमाणैः रक्तबीजशरीरपरिमितैः सहस्रं सहस्रंतेनसहस्रशः। यद्वासहस्रेणसहस्रशः 'सङ्ख्यैकवचनाच्चवीप्सायां'शस् । महासुरैः जगद्भुवनंव्याप्तं व्याकीर्णम् । अवर्णनीयै सङ्ख्याकैस्त्रैलोक्यमव्याप्तमितिभावः ॥ ४७ ॥

कुमारस्येयं कौमारीशक्तिर्देवता शक्त्याआयुधेनरक्तबीजंमहासुरञ्जघान । तथा वाराहीअसिनाखड्गेन तंरक्तबीजंजघान । तथा माहेश्वरीत्रिशूलेन तं जघान । क्वचित्तुपाठः' । 'माहेश्वरीत्रिशूलेन रक्तबीजंमहासुरम् । ताडयामासहृदये नचचाल तथापिस' इतिदृश्यते । यद्यपि हृदयेसाताडयामासतं तथापिसः रक्तबीजः सङ्ग्रामान्नचचालनापजगामेत्यर्थः ॥ ४८ ॥

स चापिरक्तबीजो महासुरः कोपसमाविष्टः कोपानलज्वालाकुलः सन् गदयासर्वाएवमातृःब्रह्माण्यादीः शक्तीःपृथक्प्रत्येकं अहनत् अताडयत् । दैत्यः महासुरइत्युक्ते कुतोनपौनरुक्त्यंस्यात् । सामान्यतोदैत्योऽसावित्युक्त्वा सामर्थ्यतो महांश्चासावसुरश्चेत्यतिशयप्रदर्शनादपौनरुक्त्यम् । यद्वा, दितेरपत्यंदैत्यः असून् रातिगृह्णातिअसुरः । 'आतोनुपसर्गेकः' महांश्चासावसुरश्चेति । यद्वा, महान्तःअसुराः यस्य सः । यद्वा, मंमहादेवं जहातिमहः महश्चासावसुरश्च । 'मःशिवश्चन्द्रमाश्च स्यात्' । ओहाक्त्यागे 'आतोनुपसर्गेकः' । अहनदितिहनर्हिंसागत्योःलङस्तिप् ।

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥
तान्विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच काली चामुण्डे! विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ५२ ॥

'अदिप्रभृतिभ्यः' शपो लुक् 'सञ्ज्ञापूर्वको विधिरनित्य' इति नेत्याहुः। यद्वा, हन्तीति हनः पचाद्यच्। हन इवाचरत्। 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वाचारे वक्तव्यः'। सनाद्यन्तत्वाद्धातुत्वात् हनशब्दाल्लङ्स्तिप्। अडागमः ॥ ४९ ॥

शक्तिशूलादिभिरायुधैर्बहुभिः प्रकारैराहतस्य रक्तबीजस्य वै प्रसिद्धो यो रक्तौघः। वेगद्रुधिरप्रवाहः पपात बभ्रंश। तेन रक्तौघेन शतशः शतं शतं असुरा आसन् शतंशतम् इत्युपलक्षणम्। सहस्रशः लक्षशः कोटिशः बहुशः असुराः रक्तबीजसमाना आसन्। शक्तानां देवीनां शूलादीन्यायुधानीत्यपि यथायोग्यं व्याख्या। ब्रह्माण्या आयुधं शत्रुघ्नो मन्त्रः वैष्णव्याश्चक्रं माहेश्वर्या शूलं पिनाकाख्यं धनुश्च। काल्या शूलं चक्रं च ॥ ५० ॥

असुरस्य रक्तबीजस्य यदसृक् रक्तं तस्माद्भूमिष्ठात्सकाशात्सम्भूतैरपि उद्दिष्टनामधेयैरसुरैः रक्तबीजसदृशैर्घातुकैः सकलं जगत्त्रैलोक्यं व्याप्तमासीत्। ततो देवा उत्तममत्यधिकं भयमाजग्मुः। अहो किमेतदासीदहो खल्वसौ शान्तिकर्मणि वेतालोदयः। यज्जगद्रक्षणार्थो दैत्यक्षयार्थः सङ्ग्रामः प्रारब्धो भगवत्यास तावन्नाभूत् प्रत्युत रक्तबीजरक्तजैरसङ्ख्यातैर्घातुकैर्दैत्यैर्जगदापूर्णं पीड्यते हन्तैतदिति देवाः साध्वसमापुरतितमामिति भावः। पटैकदेशे दग्धे पटो दग्ध इतिवज्जगदेकदेशोऽपि जगदेवेति साकल्येन जगद्व्याप्तमित्युक्तम्। सकलमित्येवोक्ते किं तदिति साकाङ्क्षं स्यात्तत उभयमप्युक्तं ॥ ५१ ॥

चण्डिका देवी सुरान् देवान्विषण्णान् विषादसहितान् दृष्ट्वा सत्वरा सम्भ्रमोपेता सती तान् प्राह। मा यूयं विषीदत सुस्था भवतेत्यब्रवीत्। अधुनैव वः शत्रून्

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबीजात्प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणाऽनेन वेगिना ॥ ५३ ॥
भक्षयन्तीचररणेतदुत्पन्नान्महासुरान् । एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥

छिनद्मीत्याश्वासयन्तीदेवानुक्तवतीत्यर्थः । अथदेवानित्थमाश्वास्य चण्डिकादेवी कालीमुवाच । हे चामुण्डे ! त्वदीयंवदनंविस्तीर्णं विशालंकुरुरचयेतिकालीमादिक्षत् । इत्थंभिन्नकर्मत्वात्प्राहोवाचेत्यपौनरुक्त्यंद्रष्टव्यम् । यद्वा, अप्रा अहसत् त्वरेतिच्छेदःप्रापूरणेअदादिः । अंविष्णुम्प्राप्तैश्वर्येणपूरयत्यसौ । 'आतोऽनुपर्गेकः' विष्णुमायेत्यर्थः । त्वरा, ञित्वरासम्भ्रमे त्वरतेत्वरा पचाद्यच् त्वरमाणासती अहसत् । एतावतैव रक्तबीजरक्तजन्तुदर्शनेनैवैते भीताइतिदेवानहसत् हसेहसने लङिरूपम् । प्राहसत त्वरेत्यपिच्छेदेसएवार्थः । त्वरतेइतित्वरा, अतएव प्राहसतदेत्यपिपाठे तदादेवानांभयोदयकालेइतिसएवार्थोऽवशिष्टः । यद्वा, प्राहसत्वरेत्येकम्पदम् । प्राहस्तुरणमूर्द्धनि'प्राहेयुद्धमूर्द्धनि' सत्वरा । यल्लक्ष्यंदेवीपुराणे । 'प्रययौ प्राहकाम्ययेति ॥ ५२ ॥

देवी पुनः प्राह हे चामुण्डाअनेन विस्तीर्णीकृतेनवेगिनावेगयुक्तेन त्वदीयेन वक्त्रेण महासुरान् रक्तबीजातसकाशान्ममशस्त्रपातेभ्यः सम्भूतान् समुत्पन्नान् रक्तानांरुधिराणां बिन्दून्प्रतीच्छ गृहाणपिवेत्यर्थः । इषुइच्छायाम्प्रतिपूर्वोग्रहणार्थः रक्तबीजादित्यपादानं यावत्तद्रक्तबिन्दवः क्षितिंनस्पृशन्तितावदेवान्तरिक्षेतान्मुखेन गृहाणेतिसूचनार्थम् । अन्यथा रक्तबिन्दवः क्षितिंस्पृशन्तस्ततत्समानान्महासुरानुपजनयेयुरितिभावः ॥ ५३ ॥

हेचामुण्डे ! त्वं तस्माद्रक्तबीजरक्तादुत्पन्नान् महासुरान् भक्षयन्ती रणे सङ्ग्रामेचरविहर । ततःकिंफलिष्यतीत्याह । एवमनेनप्रकारेण एषरक्तबीजः क्षीणरक्तः सन् क्षयंनाशं परासुतांगमिष्यति प्राप्स्यति । रक्तबीजरक्तजादैत्याः किंकरिष्यन्तीत्यतआह । हेचामुण्डे!अपरे चयेरक्तबीजरक्तजामहासुरा उग्रा अतिरौ-

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा नैवो चो (न) त्पत्स्यन्ति चापरे ।

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ ५५ ॥

मुखेनकालीजगृहे रक्तबीजस्यशोणितम् । ततोऽसावाजघानाथगदयातत्रचण्डिकाम्

न चास्या वेदनाञ्चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।

तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम ॥ ५७ ॥

द्राः सन्तितेपि च त्वयाभक्ष्यमाणाः सन्तः पुन नैवोत्पत्स्यन्ति । पद्गतौअनुदात्तेत्वादात्मनेपदी । चक्षिङोङित्करणादनुदात्तेत्वनिमित्तात्मनेपदस्यानित्यत्वमवसीयत इतिपरस्मैपदं भवति । अन्यथोत्पत्स्यन्ते इत्येव स्यात् ॥ ५४ ॥

इत्युक्तप्रकारेण चण्डिकादेवीविजिगीषुः सतीतां कालींइत्थं कुर्विति उक्त्वातंरक्तबीजं शूलेन एकाग्रलोहदण्डेन त्रिशूलेन वाभिमुख्येनउरसि जघान । कालीचमुखेनरक्तबीजस्यशोणितंजगृहेअभूमिष्ठमंतरिक्षेजग्राह अपिबत् ॥ ५५ ॥

तत्ररणेदेव्याशूलेप्रयुक्तेसतिततोऽनन्तरंअसौरक्तबीजःगदयाचण्डिकादेवीमाजघान अथगदापातानन्तरं असौगदापातः अस्याः देव्याःअल्पिकामपिस्वल्पामपिवेदनांनचक्रेनैवचकारदेव्याःपरमानन्दब्रह्मत्वाद्दुःखलेशोऽपिकुत इतिभावः । 'आङोयमहन'इत्यात्मनेपदमकर्मकादेवभवति । अन्यथा आजघ्नइतिस्यात् । 'वेदना पीडनंबाधाव्यथनंदुःखनंव्यथा' ॥ ५६ ॥

चण्डिकादेव्याशस्त्रैराहतस्य तस्य रक्तबीजस्य देहात् यतोयतः यच्चयच्च बहुशोणितंसुस्रावतःतच्चतच्च शोणितंकर्मचामुण्डाकालीविस्तीर्णीकृतेनवदनेनसम्प्रतीच्छति जगृहेपपाविति भावः । यतस्ततइत्याद्यादित्वात्तसिर्यथायोगम् । यद्वा । तस्यदेहात्सकाशाद्यतोयतोद्वारात्सुस्राव ततस्ततोद्वारात्सकाशात्स्ववक्त्रेणप्रतीच्छतिस्मचामुण्डेत्यर्थः । तद्वक्त्रेणेतिपाठे तेनविस्तारितेनवक्त्रेणेत्यर्थः । यतस्ततइत्यर्थं प्रतिकेचिद्व्याचख्युः । इतस्ततइतिक्वचित्पाठः ॥ ५७ ॥

अस्याः काल्यामुखेरक्तपाताद्रक्तबीजरुधिरपतनात्समुद्गताः समुत्पन्नाये

यतस्ततस्त(ःस्व)द्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥ ५८ ॥
तांश्चखादाऽथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवीशूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥ ५९ ॥
जघानरक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् । स पपात महापृष्ठे शस्त्रसङ्घतितोहतः

महासुराःतान् चामुण्डाकालीचखाद । अथतस्यरक्तबीजस्यशोणितं च पपौ ॥ ५८॥

देवीचण्डिका। शूलेन चक्रेण क्वचिद्वज्रेणेतिपाठः बाणैः असिभिः खड्गैःरिष्टिभिःखड्गभदैःतंरक्तबीजञ्जघान । कीदृशम् । चामुण्डयापीतंशोणितंयस्य तम् । ननुबाणबाहुल्यंयुक्तमेवग्राहअसिबाहुल्यं किमर्थमुच्यते । असिकृतप्रहारा असयइत्युच्यन्ते । एवंरिष्टयोऽपि, असिभिरिष्टिभिरित्यत्रसलोपेछान्दसत्वम् । यद्वा, रोरिति रेफलोपे' ढ्लोपूर्वस्यदीर्घोऽण'इतिदीर्घाभावश्छान्दसः । ऋष्टिभिरितिपाठेऽपिसलोपसमाधानं छान्दसञ्ज्ञेयम् । यद्वा, यष्टिभिरितिविवक्षायां सम्प्रसारणपूर्वरूपत्वे इष्टिभिःयष्टिभिरित्यर्थः तथा च सन्धिर्युक्तएव ॥ ५९ ॥

हे महीपालसुरथ! देव्याः शस्त्रसंहतितः शस्त्रसमूहाद्धेतोः हतः ताडितः । यद्वा, आद्यादित्वात्तसिः । शस्त्रसंहत्याहतः । यद्वा, शस्त्रसंहतिंएत्यहतः । कर्मणिल्यब्लोपेपञ्चमी । चामुण्डया निःशेषपीतत्वात् नीरक्तश्चसन् रक्तबीजः मर्तुंमहीपृष्ठेभूमेरुपरिपपात । शस्त्रसङ्घसमाहतइतिपाठे 'सप्तम्यां जनेर्डः''अन्येष्वपि दृश्यत'इत्यपिशब्दःसर्वोपाधिव्यभिचारार्थः । तेनधात्वन्तरादपिडोभवतिकारकान्तरेऽपिचेतिवचनात् । शस्त्राणिसंहतिसमाहरतिराशी करोतिशस्त्रसंहतिः युद्धंतेन समाहतः । शस्त्रसंघसमाहतइत्यन्वयपाठः । 'संघसार्थौतुजन्तुभिरित्यभि'धानात् प्राण्यारब्धः समूहः सङ्घः । यद्वा, मेघसङ्घवदुपचारात्संइचसङ्घः शस्त्राणांसङ्घः समूहः । शस्त्राणिजन्तुवच्चेष्टन्ते ॥ ६० ॥

हेनृप सुरथ!दत्तावधानः शृणु । ततोरक्तबीजवधानन्तरंतेप्राग्विषण्णाः

नीरक्तश्च महीपाल! रक्तबीजो महासुरः। ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप !॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ६१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवध-
वर्णनंनामाऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

सप्तशत्यामष्टमः ॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

(नवमोऽध्यायः)

निशुम्भवधवर्णनम्

राजोवाच

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्! भवता मम ।

त्रिदशाः देवाः सम्प्रतिअनुलंअमद्रशंअपरिमितंहर्षंअवापुः। अथ च तेषांरक्तबीजादिदैत्यानांअसृङ्मदोद्धतः रुधिरपानमदोत्कटः। अतएवमत्तः मदघूर्णतः मातृणां ब्रह्माण्यादीनांगणः समूहः आनन्दतः ननर्त्त नृत्यतिस्म। एतेनयुद्धावसानेवीरपानं सूचितम्। 'वीरपानंतु यत्पानंवृत्ते भाविनिवारणे'। 'रुधिरासृग्लोहितास्त्ररक्तक्षतजशोणितम्' ॥ ६१ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीमत्तोमर० श्रीम०शन्तनुचक्रवर्त्तिविरचितायांदेवीमाहात्म्यशान्तनव्यांरक्तबीजवधः अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

हेभगवन्सुमेधोमहर्षे!हेअमम!ममतारहितभवतात्वयाममसुरथस्यशृण्वतःरक्तबीजवधाश्रितंतद्वधविषयं विचित्रमद्भुतंइदं देव्याश्चरितम्यमाहात्म्यं महात्मताआख्यातं कथितं रक्तबीजवधस्तेनवाश्रितम। यद्वा, रक्तबीजवधेनएनविष्णुनाश्रितं

देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ १ ॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चाऽतिकोपनः ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते । शुम्भासुरोनिशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥
हन्यमानं महासैन्यंविलोक्यामर्षमुद्वहन् । अभ्यधावन्निशुम्भोऽथमुख्ययाऽसुरसेनया

आश्रितं रक्तबीजवधेनदुष्करेण संतुष्टेनविष्णुना अहोइदमद्भुतं इतिश्लाघितमित्यर्थः यद्वा, 'आकारस्तुपितामहः' । आब्रह्मणाश्रितम् । आदृतंस्तुतमित्यर्थः । रक्तबीजवधोश्रितमितिपाठे । आब्रह्माअः विष्णुः उकारस्तुमहेश्वरः एषांसमाहारद्वन्द्वैकवद्भावौ । द्वयोराद्ययोः सन्धौसवर्णदीर्घः । ततउनासहाऽऽद्गुणः ओइतिप्रातिपदिकम् । 'ह्रस्वोनपुंसकेप्रातिपदिकस्य' । उनाश्रितंउश्रितम् । रक्तबीजवधेनाऽतिदुःसाध्येनलीलयादेव्याकृतेनसन्तुष्यताउनाब्रह्मविष्णुरुद्रेणश्रितंआदृतम् ॥१

हेसुमेधः ऋषे! देव्यारक्तबीजेनिपातेसत्यतिकोपनः शुम्भश्चभूयः अत्यधिकश्च । भूयःपुनःयत्कर्मसङ्ग्रामलक्षणंकार्यंचकारतदहंसुरथोभूयोधिकंयथास्यात्तथा श्रोतुमिच्छामि । 'पुरुहंपुरुभूयिष्ठंस्फिरंभूयश्चभूरिच' ॥ २ ॥

हेराजन् ! देव्यारक्तबीजेनिपातितेसतिततोऽन्येषुचदानवेषुदेव्याहतेषुसत्सु शुम्भासुरोनिशुम्भश्चासुरः अतुलमनुपमं अमर्यादंकोपंक्रोधञ्चकार । 'अभ्यामर्द्दसमाघातसंग्रामाभ्यागमाहवाः' । आह्वयन्तेऽत्रस्पर्द्धयेत्याहवः । देव्याहन्यमानंहतं महासैन्यंविलोक्याऽथ अमर्षंक्रोधंउद्वहन् उद्गिरन्क्रोधाविष्टः सन् । उद्वहन्नितिपाठेधारयन्सन्निशुम्भःमुख्ययानिजयाअसुरसेनयाआसुर्या सेनातयासहाऽभ्यधावत् । हन्यमानं 'वर्त्तमानसामीप्येवर्त्तमानवद्वे'तिलटः कर्मणिशानच् । यद्यप्युद्वहनंपाणिपीडनन्तथापिधात्वनेकार्थतयाधारणमर्थः । 'अन्यथासदृशीमुद्वहेत्कन्या'मितिवदुद्वहनंपाणिपीडनंस्यात् ॥ ४ ॥

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः। सन्दष्टौष्ठपुटाःक्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः

आजगाम महावीर्य्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात् कृत्वा युद्धन्तु मातृभिः॥ ६॥

ततोयुद्धमतीवासीद्देव्याः शुम्भनिशुम्भयोः। शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः॥

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ॥ ८॥

तस्यनिशुम्भाग्रतः पुरस्तात्तथापृष्ठेपश्चाद्भागेतथापार्श्वयोर्वामदक्षिणभागयोः वर्त्तमानाः महासुराः सन्दष्टौष्ठपुटाःरोषदष्टाधरौष्ठाः सन्तः देवींहन्तुंउपाययुः उपसमीपमाजग्मुः। उत्तरौष्ठापेक्षयात्ररोषप्रकरणादोष्ठोऽधरोविवक्षितः। अन्यथाऽभिधानेओष्ठशब्दोऽधरपर्यायएव। अधरशब्दोऽप्योष्ठपर्यायएव। यदाहुः। 'ओष्ठाधरौतुदशनच्छदौदशनवाससी'इति। 'ओष्ठमात्रे'धरः स्मृत'इतिच। ओष्ठशब्देनपरस्यसंसक्तपिधानंवस्तुउच्यते। ओष्ठःपुटइवओष्ठपुटः सन्दष्टओष्ठपुटोयैस्ते। पुटसंश्लेषणे। पुट्यतेसंश्लेष्यतेपुटः॥ ५॥

स्वबलैर्वृतः स्वैरात्मीयैः सैन्यैर्वेष्टितः महावीर्यःमहाप्रभावःशूरः शुम्भोपि प्रथमंमातृभिर्ब्रह्माण्यादिभिः समंयुद्धंकृत्वा अथकोपात्क्रोधावेशाच्चण्डिकांदेवीं निहन्तुमाजगाम। शुम्भोनजानातिचण्डिकाभगवतीहन्तुनशक्येतिभावमावेदयितुंकोपादित्युक्तम्॥ ६॥

ततोऽनन्तरंतयोःअतीवात्यर्थंउग्रंरौद्रंशराणांवर्षं वृष्टिंवर्षतोः शुम्भनिशुम्भयोः। द्वयासहयुद्धमासीत् कयोरिववर्षतोः मेघयोरिव। यथामेघौपृथग्भूतौ वर्षतः वृष्टिधाराः तथा॥ ७॥

ताभ्यांशुम्भनिशुम्भाभ्यामस्तान्क्षिप्तान्प्रेरितान्शरान्बाणान्चण्डिकादेवी स्वैः शराणां उत्करैः पुञ्जे। यद्वा, स्वेषामात्मीयानां शराणांउत्करैः। स्वस्याः आत्मनः शराणांउत्करैर्वा। 'सर्वनाम्नोवृत्तिमात्रेपुंवद्भावः'। 'स्यान्निकायः पुञ्जरा-

निशुम्भोनिशितं खड्गं चर्मचादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्निसिंहं देव्यावाहनमुत्तमम्
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचन्द्रकम्

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ ११ ॥

कोपाध्मातोनिशुम्भोऽथशूलंजग्राह दानवः । आयान्तंमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत्

शीतूत्करः कूटमस्त्रियाम्' । कृविक्षेपेउत्कीर्यन्तेउत्कराः ।कर्मणि'ऋदोरप्' । स्तोमैः
श्चिच्छेदखण्डयामास । अथचसातावसुरौ शुम्भनिशुम्भावपिकर्मभूतौ अङ्गेषुतदी
येषुप्रत्यङ्गंप्रतिरोमकूपं शस्त्रौघैर्बाणाद्यायुधव्यूहैस्ताडयामास ॥ ८ ॥

निशुम्भः निशितन्तीक्ष्णंखड्गंमण्डलाग्रंसुप्रभं प्रभामण्डलभास्वरञ्चर्मच
फलकं आदायगृहीत्वादेव्याः उत्तमंश्रेष्ठंवाहनंसिंहंमूर्ध्निमस्तकेअताडयत् । तडआ-
घातेचुरादिः निशितंक्ष्णुतन्तेजितमितियावत् । सुप्रभमितिखड्गस्यविशेषणंच
र्मणश्च । 'सम्भवेव्यभिचारेचस्याद्विशेषणमर्थवत्' ॥ ६ ॥

निशुम्भेनवाहनेसिंहेताडितेसतिदेवीचण्डिकाक्षुरप्रेणक्षुरंप्रत्याकारेणपूर-
यतिमुखेनानुकरोतिक्षुरप्रोबाणविशेषः । तेननिशुम्भस्य उत्तमंश्रेष्ठं असिखड्गश्चि
च्छेद । आश्वविलंबेनाष्टचन्द्रकं तेनैवक्षुरप्रेणचिच्छेदैकप्रयत्नेन असिञ्चर्मचविदार
यामासेत्यर्थः । अष्टौचन्द्रायस्मिंस्तदष्टचन्द्रकंलिखिताष्टचन्द्रकमित्यर्थः। यद्वा,
अष्टःव्याप्तः चन्द्रः कर्पूरोयस्मिन्विलिप्तोऽस्तितदष्टचन्द्रकं । अशूव्याप्तकर्त्तरिक्तः
यद्वाअष्टौचन्द्रांश्चित्रितान्कायतिअष्टचन्द्रकम् । अष्टानांचन्द्राणांसमाहारोष्टचन्द्रंत-
त्कायत्यात्मलक्ष्यत्वेनलिखितंकथयत्यष्टचन्द्रकम् 'कर्पूरश्चन्द्रसञ्ज्ञकः' ॥ १० ॥

देव्याचर्मणिद्विधाकृतेखड्गेचच्छिन्नेद्विधाकृतेसतिनिशुम्भोसुरःदेवींप्रति
शक्तिमायुधविशेषंचिक्षेपप्रयुयुजे देवीअभिमुखागतांतामप्यस्यनिशुम्भस्यशक्तिञ्चक्रे-
णद्विधाचक्रेचिच्छेद । नकेवलन्तद्द्वयमेवअपितुतदीयांशक्तिमपिचिच्छेद ॥ ११ ॥

अथानन्तरंकोपेनाध्मातः कोपाविष्टः कोपाध्मातःकोपाग्नियुक्तःनिशुम्भः

आविध्याऽथ (अथादाय) गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्यास्त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ १३ ॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्यदेवीबाणौघैरपातयत भूतले ॥ १४॥

दानवः देवीमुद्दिश्यशूलञ्जग्राहप्रयुयुजेइत्यर्थः । अथदेवीमुखमायान्तंतच्चापिशूलंमुष्टिपातेनमुष्टेः प्रहारेणअचूर्णयत् । 'सत्यापपाश'सूत्रेणअवध्वंसनेचूर्णप्रातिपदिकाण्णिच् । अवध्वंसितवतीत्यर्थः । अथवाचूर्णप्रेरणसंप्रेरणयोः चुरादिः । शूलम्पुंस्यपि । ध्माशब्दाग्निसंयोगयोः कोपेनाध्मातःअग्निदीपितः । कर्मणिक्तः । 'स्त्रीपुंसयोः स्मृतोमुष्टिः' ॥ १२ ॥

अथसोऽपिनिशुम्भोपिगदामादायगृहीत्वाचण्डिकांप्रतिचिक्षेप । सापिनिशुम्भप्रेरितागदादेव्याकर्तृभूतयात्रिशूलेनाग्निवीजगर्भेणकरणेनभिन्ना विदारितासतीभस्मत्वमागताभस्मीबभूवेत्यर्थः । आविध्याथगदांसोऽपीतिपाठेसोऽपिनिशुम्भोपिचण्डिकांप्रति गदाञ्चिक्षेपआविव्याध ततश्चयदिगदयादेवींविव्याधनिशुम्भः तर्हिदेवीप्रयुक्तत्रिशूलेनभस्मीकरणवर्णनंनिशुम्भप्रयुक्तगदायाः विफलंस्यात् । देव्याउत्कर्षाभावात् । देवीविपर्यव्यधनंगदायामेवेति । त्रिशूलेनयागदाभस्मतास्तुमावाभूत्क्रितयाकृतंस्यात् । पाटच्चरलुण्टितवेश्मनियामिकजागरणसन्तत्यापिवार्किकृतंस्यादिति । क्वचिदाविध्याथगदांसोपीतिपाठः । आविध्यभ्रामयित्वेत्यर्थः । अत्रापिपाठेगदांभ्रामयामासेत्यर्थाश्रयेणकिंचिद्दुष्यतिवैदुष्यंइष्यमाणार्थसिद्धेरितिचेन्मतमायुष्मतः । मैवंमंस्थाः शब्दशक्तिस्वाभाव्यादाविद्धोमणिरित्यादौविध्यतिराङ्पूर्वोऽपि ताडनार्थएव प्रसिद्धोनतुजातुपरिभ्रमणवृत्तिरित्यलं विस्तरेण प्रकृतमनुसरामः ॥ १३ ॥

ततः गदायांभस्मीकृतायांतदनन्तरं परशुहस्तंपरश्वधपाणिमभिमुखमायान्तन्तंनिशुम्भंदेवीचण्डिकाबाणौघैः शरव्यूहैः आहत्यताडयित्वाभूतलेऽवनितलेऽपातयत प्रभ्रंशयामास । निशुम्भोमूर्च्छांप्रापितोननावन्मारितोस्तीदानीं अग्रे त-

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।
भ्रातर्य्यतीव सङ्क्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ १५ ॥
सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः। भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः॥
समायान्तं समालोक्य देवीशङ्खमवादयत्। ज्याशब्दश्चापिधनुषश्चकारातीवदुःसहम्

तोनिशुम्भः संप्राप्यचेतनामात्तकार्मुकइतिश्रवणात् ॥ १४ ॥

तस्मिन्भीमविक्रमेघोरपराक्रमेनिशुम्भेभ्रातरिभूमौ निपतितेमूर्च्छितेसति भ्राताशुम्भः अतीवसङ्क्रुद्धः अतितरांक्रोधाविष्टःसन्नम्बिकां देवीं हन्तुं प्रययौ ॥१५

तथा तेनप्रकारेणतदातस्मिन्कालेअत्युच्चैः रथस्थः रथारूढःसःशुम्भःअत्युच्चैः गृहीतपरमायुधैःअतुलैरनुपमैःअष्टाभिर्भुजैर्बाहुभिः अशेषंकृत्स्नंनभः आकाशमण्डलंव्याप्याक्रम्यबभौशुशुभे ॥ १६ ॥

देवीचण्डिकातंशुम्भंसंमुखमायान्तमागच्छन्तविलोक्यशङ्खमवादयत्पूरयामास। किञ्च। अतीवातितरांदुःसहंसोढुमशक्यंधनुषःज्यायाधनुरारोपेमौर्व्याः शब्दंटङ्कारस्वनञ्चकार। शङ्खस्वनश्चापस्वनोयुद्धोत्साहञ्जनयति। 'मौर्वीज्या सिञ्जिनीगुणः'। अरोपितज्यास्वनार्थंधनुर्ग्रहणम्। धनुः शब्दोर्द्धर्चादित्वात्पुन्नपुंसकलिङ्गः। 'धनुर्वंशविशुद्धोऽपिनिर्गुणः किंकरिष्यति'। दुःखनसह्योदुःसहस्तं 'स्वत्यतीवचनिर्भरं' ॥ १७ ॥

समस्तदैत्यसैन्यानांसकलासुरसेनानांनेजसांवधंविनाशंविदधातिकरोति तेन। यद्वा तेजसांवधस्यविधायः भावेघञ्सोस्त्यस्यसतथोक्तः। तेननिजघण्टास्वनेनचककुभोदशापिदिशःपूरयामाससंवर्द्धयामास। पूरीआप्यायनेदिवादिः आप्यायनंवृद्धिः 'हेतुमतिचे'तिणिच्। 'कास्प्रत्ययादाममन्त्रेलिटि'। स्वनेनचेति चकारेणशङ्खज्यानिजघण्टास्वनैः दिशः पूरयामासेत्येतदुक्तंस्वनत्रयंसमुच्चीयते। 'तेजः प्रभावेदीप्तौचबलेशुक्रेऽपि'संसृतौ'। 'अधिक्षेपावमानादेःप्रयुक्तस्यपरेण यत्। प्राणात्ययेऽप्यसहनंतत्तेजः समुदाहृतम्' ॥ १८ ॥

पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च। समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः। पूरयामास गगनं गां तथोप (थैव) दिशो दश
ततः कालीसमुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ २० ॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूतीचकार ह। तैः शब्दैरसुरास्त्रेशुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥

ततः शङ्खादिस्वनानन्तरं सिंहः केसरीत्याजिताः वर्जिता इभानां गजानां महान्तो मदाद्यैः तैस्तैः दूरीकृतमत्तेभमदप्रवाहैः सिंहगर्जनश्रवणाद्गजाः खलु निर्मदाः स्युः महानादैः महद्भिः कण्ठोरवस्यास्यनादैः कण्ठगर्जनैः गगनमाकाशं पूरयामास। तथैवतैर्महानादैः गरे पृथ्वीम्पूरयामास। तथैवदशदिशः पूरयामास। क्वचित्तु गां तथोपदिशोदशेतिपाठः। उपशब्दआधिक्ये पूरितशङ्खज्याघण्टानां नादापेक्षया सिंहनादोऽधिकः यतोऽसौ गगनादिकं सर्वं पूरयामास ॥ १६ ॥

ततः सिंहनादानन्तरं काली चामुण्डा गगनं आकाशं समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्। कराभ्यां पाणिभ्यामाहतवती। यद्वा समुत्पत्योड्डीय गगनं क्ष्मां द्यावापृथिव्यौ द्वे अपि कराभ्यामताडयत्। ततः तन्निनादेन द्यावापृथिव्याघातजनितध्वनिना ते प्राक् उक्ताः शङ्खज्याघण्टासिंहस्वनाः तिरोहिताः आच्छादिता आसन्। अल्पोध्वनिरधिकध्वनिना हि तिरोधीयते ॥ २० ॥

चण्डिकाशरीरोत्पन्नाशिवदूती दैत्यानां, अशिवं कर्णकटु यथास्यात्तथा अट्टाट्टहासं चकार। ह प्रसिद्धम्। तैरट्टाट्टहासजनितैः शब्दैर्ध्वनिभिः सुराः त्रेसुः। त्रसु उद्वेगे। उद्वेगमापुः। एत्वाभ्यासलोपौ। शुम्भस्तु परमधिककोपं ययौ प्राप। अट्ट अतिक्रमहिंसनयोः। अट्टनमट्टः अतिक्रम उल्लङ्घनम्। शत्रूनुल्लङ्घ्य हसनमट्टाट्टहासः। यद्वा, अट्टेन नादेनातिक्रमेण हासः अट्टाट्टहासः। 'नित्यवीप्सयोरि'ति वीप्सायां द्विर्वचनम्। कर्मधारयवदुत्तरेष्विति सुपोलोपः। अट्टाट्टहासमितिपाठे अट्टट्टहासः शकन्ध्वादित्वात्पररूपत्वं तम्। यद्वा, अट्टेष्वट्टे षु हिंसकेषु हासः।

दुरात्मंस्तिष्ठतिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २२ ॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालाऽतिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ २३ ॥

सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तं लोकत्रयान्तरम् । निर्घातनिस्वनोघोरोजितवानवनीपते

यद्वा, अट्टेष्वट्टेषु अतिक्रामत्स्वतिक्रामत्सुहासः । इहकश्चित्त्वाह । अट्टः शकटध्वनिरितितन्नप्रमाणाभावात् । सएवाहअट्टोऽतिशयइतितच्चन । वीप्सातोऽन्यत्राट्टशब्दस्य केवलस्यातिशयार्थतायांप्रयोगाभावात् । यच्चोक्तंतेनैव अट्टः शकटातिशयार्थेष्विति तच्चपापात्पापीयः प्रमाणानुपन्यासात् ॥ २१ ॥

रे शुम्भदुरात्मन् त्वंखलुदूतंप्रत्यक्षिपः तिष्ठतिष्ठमाप्रयासीः तत्फलमद्य पश्य । किमतोनिष्ठुरालापेनप्रयत्नोदिता (?) (प्रथमोचित) क्रियाकेवलमुत्तरमत्रेतियदाम्बिकादेवीव्याजहारतदातस्मिन्काले आकाशसंस्थितैर्देवैराकाशस्थैः जयेत्यभिहितंजयशत्रूनभिभवेत्युक्तम् । अथवा । आजियुद्धंकुरुआजयेत्यर्थलेशोज्ञेयः । तिष्ठतिष्ठेतिकोपेसंभ्रमे वाद्विरुक्तिः ॥ २२ ॥

शुम्भेनागत्यढौकित्वाज्वालयातेजसाऽतिभीषणायाशक्तिः मुक्ताप्रेरिता साआयांतीसतीचण्डिकयाकर्तृभूतयामहोल्कयासाघनीभूतयाशक्त्या निरस्ता निवारिताभूत् । वह्निकूटाभाअग्निपुञ्जकान्तिः । महोल्कयावृहदङ्गारकाष्ठज्वालयेत्यपिकश्चिद्व्याख्यत् । ज्वलदीप्तौ । 'ज्वलितिकसंतेभ्योणः'कर्त्तरि । ज्वलतिज्वालःज्वालाच । 'वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखास्त्रियाम्' । 'माया निश्चलयंत्रेषु कैतवानृतराशिषु । अयोघनेशैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम्' । महत्युल्काज्वालायस्याः सामहोल्कानामशक्तिःचण्डिकाया आयुधम् । 'निरस्तः प्रहितोमुक्तःप्रेरितःक्षिप्तउज्झितः । विसृष्टोदवितोदूरीकृतोबाणादिमोक्षणे' ॥ २३ ॥

हेअवनीपतेसुरथ! यद्यपिशुम्भस्यसिंहनादेनकण्ठगर्जनेनलोकत्रयान्तरं

शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।

व्याप्तमजनिष्टतथापि स जितवान् शुम्भकृतसिंहनादमतिमहत्तरमपि तत्सैनिक-निर्घातनिस्वनएवततोऽप्यधिकतमत्वात्तमभिभूतवानितिभावः । निर्हणनंनि-श्चितोघातः मारणंनिर्घातः तस्यनिस्वनः शब्दः यः खलुदेवींप्रतिशुम्भसैनिकैः समरेरसावेशतः कण्ठतः कथितः । तां निर्जहिनिर्जहिमारयमारयेतिशब्दः सम-भूत्सनिर्घातनिस्वनोऽत्रविवक्षितः । अथवा,निश्चयेनघ्नन्तिशत्रूनेभिरितिनिर्घा-ताः खड्गाद्यायुधसमूहाः तेषांनिस्वनः परस्पराहतिजनितोध्वनिः । अथवा । आकस्मिकएवगगनादत्यायतः ज्योतिःपातो यः स निर्घातः सनिर्घोषः तस्ययः स्यान्निस्वनोघोरः भयङ्करः निर्घातनिस्वनइवशुम्भस्यपातइवोत्पातः । अतएव तमसुरंजितवान्जिगाय । शुम्भोनजितवान्प्रकाशप्रकर्षमप्राप्यननाशेत्यर्थः । महाध्वनिर्घावापृथिवीव्यापीनिर्वनगगनतः पततियउत्पातोऽनर्थकरःसनिर्घातः । पृषोदरादित्वात्साधुः । अथवायस्यप्रथमतः सिंहनादेनलोकत्रयं व्याप्तं सशुम्भः पश्चान्निर्घातस्यदानवनाशकारिण उत्पातरूपस्येवनिर्गतोस्वनोयस्य स निर्घात-निस्वनः । अघेनपापेनव्याप्तं उरःप्रधानमङ्गं तेनउपलक्षितः सन्अजितवान् न अ-भिभूतवान् । देवीमितिशेषः । यद्वा, येनसिंहस्यदेवीवाहनस्यनादेनकण्ठगर्जनेन लोकत्रयंव्याप्तम् । स एवजितवान् सन्लोकेषूत्कृष्टः सन्शुम्भस्यघोरः निर्घात निस्वनः बभूव । महोत्पातः पापात्मनामनभ्युदयकारीत्याहुः ॥ २४ ॥

अथदेवीउग्रैःस्वशरैःआत्मबाणैःशतशःशतंशतं सहस्रशःसहस्रंसहस्रंशुम्भ-मुक्तान् शिरान्चिच्छेद । शरान्स्वशरैरिति च उभयविशेषणंयथायोगंद्रष्टव्यम् । अथशुम्भश्चउग्रैः स्वशरैः तत्प्रहितान् तयादेव्याप्रहितान् प्रेरितानुग्रान् शतशः शतं शतंशरान् चिच्छेदचिच्छेदवेतिसमत्वमनयोस्ताचदित्यर्थः ॥ २५ ॥

स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २६ ॥
ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः । आजघानशरैर्देवींकालींकेशरिणंतथा
पुनश्चकृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः । चक्रायुधेनदितिजश्छादयामास चण्डिकाम्

सा चण्डिकादेवीततः शुम्भेनसमरसाम्यतः तदसहमानाअतएव क्रुद्धा सतीतंशुम्भंदैत्यंशूलेनायुधेनाभिजघान । शुम्भः तदातस्मिन्कालेनिहतः । यद्वा, तदानिहतः तयादेव्याआनिहतआसमन्तान्नितआहतः अतएवमूर्छितःसन्भूमौनिपपात । मूर्छासञ्जातायस्यमूर्च्छितः स तदा अनिहतइतितुच्छेदेदेव्याशूलेननिहतः सशुम्भः अनिहतः नानिहतः नमारितःनपरासूकृतः । किंतर्हिमूर्च्छितःसन्भूमौनिपपातेत्यर्थः ॥ २६ ॥

ततः परशुहस्तं इत्यत्रप्राक्निशुम्भंदेवीभूतलेऽपातयदित्युक्तंततः तस्य पुनरुज्जीवनपूर्वकंसंग्रामंप्रस्तोतुमाहर्षिः । ततःभूतलेपतनादनन्तरम् । यद्वा,ततः शुम्भेमूर्च्छितेसतिनिशुम्भःप्राङ्मूर्च्छितःपश्चाच्चेतनांसंज्ञांप्राप्यआत्तकार्मुकःगृहीतशरासनः सन्शरैर्देवींचण्डिकां तथाकालींचामुण्डां तथाकेसरिणंसिंहं च आजघान । 'आङोयमहन'इत्यात्मनेपदविधावकर्मकाधिकारात्सकर्मकत्वेतुनात्मनेपदम् । 'आजघ्नेविषमविलोचनस्यवक्ष'इत्यत्रतुस्वाङ्गकर्मकाच्चेतिवक्तव्यादात्मनेपदं वक्षसेत्यध्याहृत्यविषमविलोचनस्यवक्षसासहसङ्गत्याऽर्जुनः स्वंवक्षः जघ्नेइत्यर्थः । यद्वा, विषमविलोचनस्यसमीपोभूत्वाऽर्जुनःस्वंवक्षः आजघ्नेआस्फोटितवानित्यर्थः ॥ २७ ॥

दितेर्जातोदितिजः असुरः दनोर्जातादनुजाःतेषांईश्वरः सनिशुम्भोमायावीपुनश्चबाहूनां अयुतंदशसहस्रंकृत्वा अयुतबाहुर्भूत्वाचक्राणामायुधानामयुतेन दशसहस्र्याचण्डिकांछादयामासछदसम्वरणेताडयामासेत्यर्थः । 'रथाङ्गायुधसैन्येषु चक्रंराष्ट्रसमूहयोः' । 'अमुचच्चाशुगानस्यामत्युग्राग्राञ्जवायतान्'। 'निशुम्भः सिंहनादञ्च चकारामरभीकरम्' ॥ २८ ॥

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गादुर्गार्त्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥ २९ ॥
ततो निशुम्भो वेगेनगदामादायचण्डिकाम् । अभ्यधावतवैहन्तुं दैत्यसेनासमावृतः
तस्यापतत एवाशु गदाञ्चिच्छेद चण्डिका । खड्गेनशितधारेण सच शूलं समाददे
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् । हृदिविव्याध शूलेनवेगाविद्धेनचण्डिका

ततो नंतरंदुर्गार्तिनाशिनीदुरुत्तरदुःखदावनी(दालिनी)म् । भगवतीदुर्गाच-ण्डिकादेवीक्रुद्धासतीस्ववाणैः तानि शुम्भेन प्रेरितानिचक्राणिचिच्छेद । किं-च । निशुम्भप्रहितान् सायकानाशुगांश्चचिच्छेद । दुर्गागहनाक्रुतिरार्तिः पीडा-नांनाशयंती'सुदुरोरधिकरणेचे'तिगमेर्डः । 'आर्तिः पीडाधनुः कोट्योः' । 'शरे-खड्गेचसायकः' षोऽन्तकर्मणिस्यतिअन्तंकरोतिसायक ॥ २९ ॥

ततः चक्राशुगभञ्जनतः निशुम्भः वेगेनगदामादायगृहीत्वादैत्यानांसैन्यैः समावृतः परिवृतः सन् चण्डिकांहन्तुं ताडयितुमभ्यधावत । धावुगतिशुद्ध्योः स्वरितेत्वाल्लङआत्मनेपदम् । 'जलप्रहरयोर्वेगः ॥ ३० ॥

आपततआद्रवत एवआगच्छतएवआपतनसमसमयएव तस्यनिशुम्भस्य गदां चण्डिक'देवी शितधारेणतीक्ष्णधारेण खड्गेनमण्डलाग्रेणआशुशीघ्रं चिच्छे-द । ततश्चसशुम्भः भग्नगदायुधःशूलमायुधंसमाददेजग्राह । शूलंगृहीत्वाचण्डि-कांहन्तुमाडुढौकेइतिभावः । शितेनिशितेद्वेधारेयस्यसशितधारःसमाददे । 'आ-ङोदोनास्यविहरणे' आत्मनेपदम् । यद्वा, ङित्वादात्मनेपदम् ॥ ३१ ॥

चण्डिकादेवीअमरार्द्दनम् । अर्द्द हिंसायांचुरादिः । अर्द्दयतेहिनस्ति अर्द्दनः नन्यादित्वाल्ल्युः । युवोरनोणिलोपश्च । अमराणामर्द्दनःतंशूलहस्तंनि-शुम्भंआयांतमागच्छंतंवीक्ष्यवेगेनसंभ्रमेणस्वेनयथास्यात्तथा आविद्धेनउत्क्षिप्तेना-गृहीतेनवाशूलेनायुधेनहृदिवक्षसिविव्याधताडयामास । व्यधताडने । 'लिट्यभ्यासस्योभयेषां'सम्प्रसारणं आविध्येत्युक्तेऽपिग्रहिज्यादिनासंप्रसारणम् । हृ-

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्य्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥ ३३ ॥
तस्यनिष्क्रामतो देवीप्रहस्य स्वनवत्तदा । शिरश्चिच्छेदखड्गेनततोऽसाचपतद्भुवि ।
ततः सिंहश्चखादोग्र दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥ ३५ ॥

दीतिप्रकरणान्निशुम्भस्येतिगम्यते । 'क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकोऽत्रार्थःप्रदर्शितः । प्रयोगऽतोनु (स) वर्त्तव्याअनेकार्थाहिधातवः । तेनआविध्येतिविवक्षितार्थसिद्धिः ॥ ३२ ॥

देव्या शूलेनभिन्नस्यविद्धस्यतस्यनिशुम्भस्यहृदयाद्वक्षसः सकाशान्महाबलः महाप्राणसमर्थः महावीर्यः महत्तरवीरकर्मादेवीं प्रतितिष्ठेतिवदन् अतः कयास्यसिमदग्रतोऽद्येतिभाषमाणः अपरः शूलिनः निशुम्भादन्यः पुरुषः पुमान्निःसृतः निरगात् । 'स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषु बलं नाकाकसीसिरिणोः' अपरइतिदेहेभेदनं तुनिशुम्भरूपक्षेत्रज्ञत्वेन । अतएवनपरः अपर इत्यर्थोऽनुसंधेयः । 'क्षेत्रज्ञआत्मा पुरुषः' । 'पुरुषावात्ममानवौ' ॥ ३३ ॥

ततइतिच्छेदः खड्गेनततः असौआपतदितिच्छेदः । ततोऽनंतरंदेवी स्वनवदुच्चैस्तरां सशब्दंयथास्यात्तथाप्रहस्यरेरेतिष्ठतिष्ठमायाशर्वाणीमन्मयींमायामुपेत्यमामेवहन्तु पुनरुदेष्यसिउदेहिपुनस्तर्हि प्रहरिष्यामीतिहसित्वातस्यनिष्क्रामतः पुरुषस्य प्राक्तननिशुम्भशरीरान्निर्गच्छतः निशुम्भदैत्यावतारस्यशिरः मस्तकंखड्गेनचिच्छेद । ततोऽसौतुनिशुम्भोभुविरणक्षितौअपतत् ॥ ३४ ॥

निशुम्भेमृतेतदन्यांस्तदीयानसुरान् किं चकारदेव्यतःपरमित्यतआहर्षिः। ततःनिशुम्भपतनादनन्तरम् । यद्वा,ततःनिशुम्भादपरान्कानप्यसुरान्सिंहःदेवीवाहनंपञ्चास्यः चखादभक्षयामास । कथम्भूतान्उग्रान्रौद्रान् । यद्वा,उग्रदंष्ट्राभिःक्षुण्णाः संपिष्टाः शिरोधराग्रीवायेषान्तेतान् शिरोधरः शिरोधिः । धरतीतिधरः

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणी मन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥ ३६ ॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे । वाराहीतुण्डघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि
खण्डखण्डञ्चचक्रेण वैष्णव्यादानवाःकृताः । वज्रेणचैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे

पचाद्यच् शिरसाधरः । शिरोधरतीतिविग्रहेकर्मण्यण् । ततःसिंहभक्षितेभ्योऽपरां-स्तानसुरान्कालीचामुण्डाचखाद । तथापिसिंहकालीखादितशेषाःयेऽपरेऽसुराः दैत्याः तान्शिवदूतीचखाद । चण्डिकाशरीरतो निःक्रान्ताशक्तिः शिवदूतीत्युच्यते । उग्रंइतिपाठे । रौद्रंभयंकरंयथास्यात्तथादंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरानसुरान् सिंहः कालीशिवदूतीचखादेत्यर्थः ॥ ३५ ॥

केचिन्महासुराःकौमार्याः शक्त्याआयुधेननिर्भिन्नाः ताडिताःसन्तःनेशुः णश्अदर्शने । अत्यन्तादर्शनमत्रादर्शनंनपश्यन्तिस्मप्राणानित्याहुः । अन्येमहासुराः ब्रह्माण्याः शक्तेः मन्त्रः गुह्यभाषणीयोवर्णमयोनिगमागमाद्योपदेशगम्यः प्रणवादिः । तेनपवित्रीकृतेनतोयेनवारिणानिराकृताः प्रमथादयस्ताः ॥ ३६ ॥

माहेश्वरस्येयंमाहेश्वरीतस्याः शूलेनभिन्नाविदारिताः सन्तःअपरेदैत्याः रणभूमौपेतुः पतन्तिस्मवराहस्यभगवतोविष्णोः शक्तिर्वाराहीतस्याःतुण्डंवक्त्रंपोत्रंवक्त्राग्रंतेनकृतोघातः ताडनंप्रहारः । तेनकेचिदसुराःचूर्णिताःभुविपेतुः ॥ ३७ ॥

विष्णोरियंवैष्णवीशक्तिर्देवतातयाचक्रेणवैष्णवायुधेनकेचिद्दानवाः खण्डंखण्डंकृताः खण्डत्वप्रकारंप्रापिताः खण्डीकृताः शकलीकृताइतियावत् । 'प्रकारेगुणवचनस्ये'तिद्विर्वचनम् । खण्डखण्डंइतिपाठे'कर्मधारयवदुत्तरेष्वि'तिकर्मधारयत्वातिदेशात्सुपोलुक् । खण्डसदृशाः कृताइत्यर्थः । प्रकारोभेदःसादृश्यञ्च । तदिहसादृश्यंगृह्यते । नन्वत्रदानवइत्येकवचनेभवितव्यंकर्मधारयवदित्यतिदेशोऽपिखण्डाःकृताःइतिभवितव्यंपुंलिङ्गेनच । अत्राहुःखण्डशब्दस्यगुणवचनत्वाद्गुणमुक्त्वागुणिनियोवर्त्ततेसगुणवचनइतिगुणवचनस्यलक्षणम् । तस्माद्गुणवच-

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् । भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिकेमन्वन्चन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधवर्णनंनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नः विशेषणश्चभवतिइतिक्रियाविशेषणानांकर्मत्वंनपुंसकैकत्वंभवतीतिवक्तव्यमि तिनबहुवचनंनापिपुंल्लिङ्गमिति । अन्येत्वाहुः । खण्डखण्डंइतिचयोगोऽयश्चतुरक्षरइति । इन्द्रस्यइयंशक्तिरैन्द्रीतस्याहस्ताग्रन्तेनविमुक्तंप्रेरितंवज्रन्तेनअपरेदानवाः विनेशुः विनष्टाः ॥ ३८ ॥

केचिदसुराःमहाहवंयुद्धंप्राप्यकर्मणिल्यब्लोपेपञ्चमी । केचित्त्वसुराःमहतः आहवात्सकाशान्नष्टाः पलाय्यगताः । अपरेनिशुम्भसैन्येऽवशिष्टाअसुराःसर्वेऽपिकाल्या चामुण्डयाचण्डिकादेहनिःक्रान्ताशिवदूतीतयामृगाधिपः देवीवाहनंसिंहः तेनच भक्षिताः खादिताःकर्मणिक्तः । कालीचशिवदूतीमृगाधिपश्च चार्थेद्वन्द्वः । 'परवल्लिङ्गंद्वन्द्वतत्पुरुषयोः' । एवंनिशुम्भोनिशुम्भसैन्यश्चदेव्यासङ्ग्रामे न्यपाति ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमार्कण्डयेराजाधिराजतोमरान्वयश्रीमदुद्धरणात्मजशन्तनुचक्रवर्त्तिविरचितायांदेवीमाहात्म्यटीकायांनिशुम्भवधोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

(दशमोऽध्यायः)

शुम्भवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

निशुम्भंनिहतंदृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् । हन्यमानं बलञ्चैवशुम्भःक्रुद्धोऽब्रवीद्वचः
बलावलेपाद्दुष्टेत्वंमादुर्गे!गर्वमावह ।अन्यासांबलमाश्रित्ययुध्द्यसेयातिमानिनी

अथशुम्भोदैत्येश्वरः प्राणसम्मितंप्राणतुल्यंभ्रातरंनिशुम्भंदृष्ट्वादेव्यानिहतं बलञ्चसैन्यंहन्यमानं'वर्त्तमानसामीप्येवर्त्तमानवद्वे'तिकर्मणिलटः शानच् । हतं दृष्ट्वाक्रुद्धः सन्देवींवचनमब्रवीत् । ब्रुविर्द्विकर्मकः देव्यानिशुम्भोनिपातितइतिव्यपदेशमात्रमेतत्सखलुमेप्राणभूतःसचनिहतोहन्तमेप्राणाएवहताःकिमतः परमवशिष्टमिष्टमितिसूचयितुंप्राणसम्मितमित्युक्तम् ॥ १ ॥

शुम्भोदेवीमाह । हेदुर्गेदुष्टेसर्वदानवनाशिनि । सात्वंगर्वमहङ्कारंमावहमाआश्रय । कस्माद्गर्वंमाआवह । बलावलेपात् । अवलेपोऽत्रलेपनंलेपःसम्बन्धःअवकृष्टआश्रितःसम्बन्धःअवलेपःबलस्यसामर्थ्यस्याऽवलेपात् । 'अवलेपस्तु गर्वेस्याल्लेपनेभूषणेऽपिच' । अत्रसम्बन्धार्थः । गर्वार्थेगृह्यमाणेबलावलेपाद्बल गर्वाद्गर्वंमाआवहेत्यनेनान्वयेनविद्यागर्वाद्गर्वंकरोतीतिवेदाधिक्यंदोषः स्यात् । बलाद्गर्वंमावहेत्येतावतैवनिराकाङ्क्षत्वस्यसिद्धत्वादवलेपादित्यस्याधिकत्वेनवैयर्थ्यंस्यात् । सात्वमित्युक्तंसाकेत्याह । या त्वं अन्यासांब्रह्माण्यादीनांबलमाश्रित्यातिमानिनीसतीनितरामहङ्कारवतीसतीयुध्यसे तदित्थंकथयसित्वमतिमानिनीयदन्यबलेनयुध्यसेनतुस्वबलेनेतिशुम्भाभिप्रायः । युध्यसेचेतिपाठेचशब्दः स्वव्याघातकतांसमुच्चिनोतिदेव्याः । तथाहि त्वंबलस्यदर्पादौद्धत्याद्गर्वंमाआव-

ह अथचरैवलमेवनास्ति। कुतस्तेबलावलेपःसङ्गतः वलंतुतदन्यदीयं सैषातेव्याहतिः। अन्यासांवलमाश्रित्ययुध्यसेचअतिमानिनीचेतियद्यन्यवलेनयुध्यसेकुतस्ते तह्यतिमानिनीत्वं यद्यपिमानिनीत्वंकुतस्तेतर्हियोद्धुमन्यवलाश्रयणंयुज्यतेकर्तुम् तस्मादस्माद्व्याघाताच्चतत्समुच्चयप्रसङ्गोमाभूदिति शुम्भाभिप्रायान्तरम्अतिमानिनिइतिसम्बुद्ध्यन्तत्वपाठेतुसोल्लुण्ठमेतत्। त्वंखल्वखिलैरपिशूरमानिभिर्मुख्या क्रियसे। अथतर्हिकथंत्वमन्यासांवलमाश्रित्ययुध्यसे। अतस्तेकुतोमानःकुतस्तरांत्वंमानिनीकुतस्तमाञ्चत्वमतिमानिनीत्याहूयसे। ततस्तरांततस्तमाञ्चमा गर्वमावहेतिशुम्भाभिप्रायान्तरमेतत्। अथवा,त्वमसत्यसन्धाप्यसियतस्ततोदुष्टाऽसि। हेदुष्टेयदुक्तंत्वया योमाञ्जयतिसङ्ग्रामेयोमेइतित्वयासंग्रामेकिंकृतंकिञ्चत्व न्यासांवलमासाद्ययुध्यसे। काल्याचण्डमुण्डौनिहतौतद्वलंत्वत्सिंहेनसंवृतंरक्तबीजरक्तपानंकालीकिलकलयामास। निशुम्भोऽपिब्रह्माण्यादीनांवलमाश्रित्यनिपातितः। अस्मद्वलान्यपिताभिरेवनिहतानीतितस्मात्सङ्ग्रामप्रतिज्ञापिकदर्थितात्वयेतिसाधूक्तम्हेदुष्टेइतिशुम्भाभिप्रायान्तरम्। देवीपार्षदाभिप्रायस्त्वन्यः। वलावलेपदुष्टेइत्येकंपदंसम्बुद्ध्यन्तंचैतत् हे वलावलेपदुष्टेहेदुर्गे। सात्वंगर्वंदर्पंआवहआश्रय। अवलेपोऽहङ्कारःअतसातत्यगमने। आङ्पूर्वःक्विप्। आसमन्तादततिआत्। बलेसैन्येसामर्थ्येचविषयेअवलेपोगर्वः तेनआत्सततमुपद्रोतुमागतामुपद्रोतायःसबलावलेपाद्दैत्यःउपद्रवकारीतस्मिन्विषयेदुष्टासा संहर्त्रीवलावलेपदुष्टाएकंपदम्। तस्याः संबोधनम्। । किंभूतात्वं मा लक्ष्मीर्लोकमाता। किंविशिष्टंगर्वं अन्यासांद्वितीयान्तमेतदाकारान्तं प्राणिहितमुत्पाद्यहिंसकम्। श्वसप्राणने अनचेत्यतइत्ययंधातुः। अनिति (अनःपचाद्यच् अनाय) प्राणिनेहितः अन्यः प्राणिहितं (मु) न्यादि। 'षोऽन्तकर्मणि'। अदन्तत्वाछांदसोविच् प्रयोगतोभाषायाञ्चस्यात्। तंअन्यंप्राणिहितं मुन्यादिनस्यतिनअन्तं नयतिअन्यासाः। अन्यस्यअसाः अन्यासाःतंअन्यासाम्। आकारान्तपुंल्लिगद्वितीयैकवचनान्तंपदं सोमपामितिवत्। प्राणिहितंमुनिजनरक्षणमित्यर्थः। येन

देव्युवाच

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीयाकाममापरा। पश्यैता दुष्टमय्येव विशन्त्योमद्विभूतयः

ऋषिरुवाच

गर्वेणसात्विकरक्षणंभवतितंगर्वंकुर्वित्यर्थः। यात्वंबलमाश्रित्ययुध्यसे। किं-विशिष्टा त्वं अतिमानिनी। मानःपूजायांमाननंमानः भावेघञ्। सोऽस्त्यस्या मानिनी अतितरांमानिनीअतिमानिनी अत्यर्थंपूजायुक्तेत्यर्थः इत्थमयंदेवीष्टा-भिप्रायोदेवीपार्षदैरूहितोऽवधारणीयः। बलावलेपादुष्टेत्वमितिपाठे। बलेवि-षयेअवलेपेनगर्वेण आसमन्तात् दुष्टाविकृताविरुद्धा। इतिशुम्भानुकूलोऽप्यर्थः देव्यनुकूलोऽर्थस्त्वेवः। बलावलेपेनअदुष्टा अविकृतेत्युभयत्राप्यर्थभेदोऽव-गन्तव्यः॥ २॥

हेदुष्टहेअसूयकहेशुम्भ। अत्रास्मिञ्जगतिभुवनत्रयेऽपिअहमेकैव। 'एक-मेवाद्वितीयमि'तिश्रुतेःपरमात्मरूपाहमेकैवास्मि। यद्वाअहंअहङ्काररूपामायाकृतिः चण्डिकाख्याएकाऽहमस्मि। ममदेव्याःद्वितीयाऽपरानास्ति। अस्तिचेत्कथञ्च-नसामदन्यानैव। हेशुम्भ इतःपश्य। एताः ब्रह्माद्याः मद्विभूतयःमय्येवदेव्यामेव विशन्त्यः सन्ति। ममदेव्याः विभूतयः कायव्यूहसृष्टिसम्पदःपश्य। मृगोधाव-तिइतिवद्वाक्यार्थरूपं कर्मेहद्रष्टव्यम्। एताःशक्तयःमत्कायव्यूहसिद्धिसंसिद्धसृष्टि-सम्पदः मद्विभूतयःमदवताराःमय्येवविशन्त्यःइतियत्तत्पश्येत्यर्थः। यद्वा,जगदेवज-गतीएकैवाहञ्जगती एकैवजगतीअहं। अत्रऐक्येसतिअत्रत्यामेकस्यांमयिजगत्या ऐक्येनस्थितायांसत्यांमत्तोजगतीतः सकाशाज्जगतीतोमत्तः सकाशाच्चापराद्विती याव्यक्तिःका ममस्यात्। नकाऽपि। तस्मान्मज्जगत्योरैक्यात्। हेदुष्टहेअसूय-कइतःपश्य'जगतोनाहमन्यास्यांस्यान्मदन्यज्जगच्चन। जगतोममचाप्यैक्याव्यक्ति रन्याततोऽस्तुका। अहंचजगतीचैकाजगतीमन्मयीयतः। दुग्धवद्दध्विचाप्येकंद-धिदुग्धमयंयतः'। 'दुष्टेतिपरस्त्रीलोलपत्वेनस्वस्त्रीत्यक्ताधवैर्यतः। हन्तिवैधस्व

ततः समस्तास्तादेव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्याः स्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ४ ॥

देव्युवाच

अहंविभूत्या बहुभिरिहरूपैर्यदास्थिता । तत्संहृतंमयैकैवतिष्ठाम्याजौ स्थिरोभव

ऋषिरुवाच

ततःप्रववृते युद्धं देव्याःशुम्भस्य चोभयोः । पश्यतांसर्वदेवानामसुराणाञ्चदारुणम्

तोराजानृणामायुःशतञ्चत(त)त् मद्वाक्यंहिशिवेनोक्तं त्वयात्यक्तं दुरात्मना । अत-स्त्वांशुम्भहन्म्याजौहतदैवंहतप्रभम् । इत्यभिप्रायतोदेव्याहेदैष्टेत्यभिभाषितः । अथवैतन्नवोध्यंचेत् फलेव्यक्तिर्भविष्यति' ॥ ३ ॥

हेसुरथततःमय्येवविशन्त्यः सन्तिशक्तयःइत्युक्तेरनन्तरंताः समस्ताःअष्टौब्रह्माणीप्रमुखाः शक्तयः देव्यदेवताः तस्याआद्यायाः देव्याः चण्डिकायाः एव तनौशरीरेलयं ऐक्यंजग्मुः तदाअम्बिकादेवीएकैवासीत् अद्वितीयाम्बिकैवातिष्ठतएकैवजाता ॥ ४ ॥

हेशुम्भइहरणक्षितौअहञ्चण्डिकादेवीबहुभिरनेकैःरूपैःकृत्वाविभूत्याविभवेनविभुत्वेनव्यापकत्वेनैश्वर्येणवायद्बहु त्वंआस्थिताअङ्गीकृतवत्यस्मितद्बहुत्वंमयासंहृतम् । तस्मादहमेकैवतिष्ठामित्वंआजौयुद्धेस्थिरोभव । यत्तदितिबहुत्वसामान्यमपेक्ष्यैकवचनम् । आस्थितेतिगत्यर्थाकर्मकसूत्रे तिष्ठतेःकर्त्तरिक्तः । आजौइतिपदंकाकाक्षिगोलकन्यायेनोभयत्रापिसम्बध्यम् अह [illegible]वतिष्ठाम्याजौआजौ त्वंस्थिरोभवेतिउभयत्राऽपिसम्बन्धसम्भवात् ॥ ५

ततोऽनन्तरन्देव्याःशुम्भस्यचउभयोः युद्धंप्रववृतेप्रावर्तिष्ट । कीदृशंसर्वेषांदेवानामसुराणाञ्चपश्यतामालोकयतामुभयेषांदारुणंभयङ्करम् । यदिशुम्भोजेष्यतितदादेवानांशुम्भतोभयंस्यात् । यदिचदेवीजेष्यतितदाऽसुराणान्देवीतःभयंस्यात् । तस्मादुभयेषान्दारुणम् । यद्वा, पश्यतांइत्युक्तत्वात्तद्द्रष्टृणांभयहेतुस्तद्यु-

शरवर्षैः शितैःशस्त्रैस्तथाचास्त्रैःसुदारुणैः । ततोयुद्धमभूद्भूयःसर्वलोकभयङ्करम्

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।

बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ ८ ॥

मुक्तानि तेनचास्त्राणिदिव्यानिपरमेश्वरी । बभञ्जलीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः

द्धमित्यर्थः । उभयशब्दः सङ्ख्यावाचित्वात्सर्वतोमत्वावाच्यालिङ्गताऽव-गन्तव्या ॥ ६ ॥

भूयःबहुतरं इत्यर्थः । भूपेतिपाठेसुरथस्यसम्बोधनम् । हेभूपसुदारुणैः बाणवृष्टिभिःतयोर्देव्याः शुम्भस्यच युद्धमभूत् । ततश्चउभयोः देव्याः शुम्भस्यच यल्लिङ्गं तदिहस्यादितिहोमशब्दस्यस्त्रीपुंलिङ्गम् । तथातद्वत्शितैःतेजितैःतीक्ष्णैः शस्त्रैः सुदारुणैः सुष्ठुभयङ्करैः खड्गादिभिः हस्ताग्रग्राह्यैरायुधैःसर्वलोकभयङ्करं युद्धमभूत् । तथा शितैःसुदारुणैःघोरतरैः अस्त्रैश्चमन्त्रवद्भिः सायकैः क्षेप्तव्यैः । आयुधभेदादेयुद्धभेदः, आयुधसाम्याद्युद्धसाम्यं । तथास्त्रैश्चैवेतिपाठे स एवार्थः । तुल्यजातीयैरायुधैः तौयुयुधातेइत्यर्थः ॥ ७ ॥

अथ अम्बिकादेवीदैत्येन्द्रविजयेयानिशतंशतंशतशः दिव्यानिदिविभवा-निदिव्यानि दिव्यमन्त्राणि सदैवतानिअस्त्राणिमुमुचे । प्रयुक्तवती तानिदैत्येन्द्रः शुम्भः तत्प्रतीघातककर्तृभिः । तत्तदस्त्रविध्वंसिभिरस्त्रैः बभञ्ज । भञ्जो आ-मर्द्दने । योगेनखण्डयामास । आग्नेयास्त्राणिवारुणास्त्रैर्विघ्नितानिवारुणा-स्त्राणिवायव्यास्त्रैर्विघ्नितानिवायव्यास्त्राणि पवनाशनपन्नगास्त्रैर्विघ्नितानिपन्न-गास्त्राणिगरुडास्त्रैः इत्थमन्यान्यपिप्रत्यस्त्राण्यस्त्रशास्त्रसिद्धान्यवगन्तव्यानि । दिव्येति'द्युप्रागपागुदक्प्रतीचोयत्' शैषिकः । मुमुचेमुच्लृमोक्षणे । तेषामम्बिका-प्रयुक्तास्त्राणांप्रतिघातःविघातः । 'उपसर्गस्यघञ्यमनुष्येबहुलम्'दीर्घः । तस्यक-र्तृणि प्रत्यस्त्राणितैः जनिकर्त्तुः प्रकृतिलिङ्गात्समासः ॥ ८ ॥

परमेश्वरीचण्डिकादेवीतेनमुक्तानि प्रेरितानिदिव्यानिदिविभवानि उग्र

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयततसोऽसुरः । साचततत्कुपितादेवीधनुश्चिच्छेदचेषुभिः
छिन्नेधनुषिदैत्येन्द्रस्तथाशक्तिमथाददे ।चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम्
ततःखड्गमुपादाय शतचन्द्रञ्च भानुमत् । अभ्यधावततांहन्तुं दैत्यानामधिपेश्वरः
तस्यापतत एवाशुखड्गश्चिच्छेदचण्डिका । धनुर्मुक्तैःशितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम्

हुङ्कारोच्चारणादिभिर्लीलयैवाप्रयत्नेनैववभञ्जभनक्तिस्म । आदिशब्दादस्त्रैश्च । उग्रःरौद्रः । स एव'हुम्'इतिरोषेणोच्चारणशब्दः तदादिभिरस्त्रैः । परमाईश्वरी परमेश्वरी 'अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् चेच्चोपधायाः' ॥ ९ ॥

ततःदिव्यास्त्रभञ्जनानतरंसःअसुरः शुम्भः देवींचण्डिकां शराणां शतैरसङ्ख्यातैः शरसहस्रैश्चाच्छादयत । छदसम्वरणेचुरादिःआङ्पूर्वः लङ् 'णिचश्चे'त्यात्मनेपदम् । साचदेव्यपितत्कुपितातदितिहेतोपृथक्पदम् । तस्माच्छरशतैराच्छादनाद्धेतोः कुपितासती । इषुभिर्बाणैःधनुश्चापं शुम्भस्यशरासनं चिच्छेद । इषुभिरितिवहुवचनम् । पुनःपुनर्धनुश्छेदं पुनःपुनर्द्धनुर्ग्रहणसूचयितुमाश्रितं अन्यथैकस्यधनुषश्छेदेकर्त्तव्येधनुश्छेदं चेषुणेत्येव ब्रूयादनन्तामोघशक्तित्वाद्देवीषोः ॥ १० ॥

अथ दैत्येन्द्रःशुम्भःधनुषिशरासनेदेव्याछिन्नेसति तथाप्रकारेण । शक्तिमायुधंआददेजग्राह । अथ देवी अस्यशुम्भस्यकरेस्थितांप्रेषयितुं गृहीतां तां शक्तिमपिचक्रेणायुधेनचिच्छेद । करोत्थितामितिपाठे । करादुत्थिताउदयं यान्तीम् । अपिशब्दउक्तसमुच्चये । प्राक्धनुःचिच्छेदतदनुशक्तिमपि समाददेइत्यपि पाठे स एवार्थः ॥ ११ ॥

ततः शक्तिच्छेदनाजन्तरंदैत्यानामधिपाः धूम्रलोचनादयः तेषां ईश्वरः शुम्भः खड्गं चन्द्रहासं उपादायभानुमत्किरणयुक्तं शतचन्द्रं शतलिखिताःचन्द्राः यस्मिन् फलकेतत्फलकञ्च गृहीत्वा तां देवीं हन्तुं अभ्यधावत् ॥ १२ ॥

चण्डिकादेवी तस्य आपततः एव शुम्भस्य आशुतत्क्षणएवधनुर्मुक्तैः

अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह ॥ १३ ॥

हताश्वः सतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः । जग्राहमुद्गरंघोरमम्बिकानिधनोद्यतः

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैःशरैः ।

तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १५ ॥

स मुष्टिं पातयामास हृदयेदैत्यपुङ्गवः । देव्यास्तञ्चापिसादेवी तलेनोरस्यताडयत्

चापात्सकाशान्निर्गमितैः शितैः तीक्ष्णैः वाणैः अर्ककरामलं अर्ककरैःसङ्गतैरालिप्तत्वात् । प्रतिफलितार्ककिरणत्वादमलंखड्गं चिच्छेद । अथचबाणैरर्ककरामलम्प्रतिफलितैरर्कस्यकरैःसहसम्पर्कलाभादमलंफलकं च चिच्छेद । वाणैरिति बहुवचनात् खड्गं चूर्णयाञ्चकारेतिसूच्यते ॥ १३ ॥

न केवलंखड्गंचर्मचचिच्छेद । अपितुअश्वांश्चच्छित्वाशरैःपातयामास । सारथिनासहरथंचपातयामासव्यस्तावयवञ्चकार । तदा सदैत्यःघोरंभयकरं मुद्गरंघनंजग्राहः । कीदृशः हताश्वः निहतरथवाहनः छिन्नधन्वा छिन्नंधनुर्यस्य बहुव्रीहौ 'धनुषश्चे'त्यनङ्समासान्तः । विसारथिःसारथिरहितः । अम्बिकाया निधनेउद्यतःकृतोद्यमः ॥ १४ ॥

सा देवीनिशितैः तीक्ष्णैःशरैः आपततः प्रहर्तुं इच्छतः शुम्भस्यमुद्गरमायुधविशेषं चिच्छेद । तथापि छिन्नमुद्गरोऽपिवेगवान् वेगधारीमुष्टिंउद्यम्यऊर्ध्वीकृत्य तां देवीमभ्यधावत्सत्वरितायांगतौधावादेशः 'लक्षद्रुघण्यांस्त्रियांपुंसि मुष्टिशब्दःप्रकीर्तितः' ॥ १५ ॥

स दैत्यपुङ्गवः शुम्भःदेव्या हृदयेवक्षसिमुष्टिंरत्निबद्धाङ्गुलिसन्निवेशंपातयामास प्रयुक्तवान् । 'अक्लीवेमुष्टिरत्नी द्वौ' । पुमान्गौःपुङ्गवः 'गोरतद्धितलुकी'तिटच्समासान्तः दैत्यः पुङ्गवइवबलवान् । 'स्युरुत्तरपदेव्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसिश्रेष्ठार्थगोचराः' । उपमितंव्याघ्रादिभिःसामान्याप्रयोगेसमस्यते सातदादेवीतलेनकरतलेन तं शुम्भमपिउरसिवक्षस्यताडयत् । 'अस्त्रीतलमधो-

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले। स दैत्यराजः सहसा पुनरेवतथोत्थितः ॥

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवींगगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ १८ ॥

नियुद्धंखे तदादैत्यश्चण्डिका च परस्परम्। चक्रतुःप्रथमंसिद्धमुनिविस्मयकारकम्

देशेस्वरूपेपृष्ठतस्तलम्। वितस्तौ च चपेटेच तलो ज्यारक्षणेतलम् '॥ १६ ॥

स दैत्यानां राजा शुम्भः 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'। देवीकृततलप्रहारेण चपेटाघातेनअभिहतःवक्षसिताडितः महीतलेनिपपात। अथ स दैत्यराजः सहसा वेगेन अतर्क्येण बलेन च पुनःतथैवनिपतनात् प्रागिवउत्थितः उदस्थादुच्चैः स्थितिमाप ॥ १७ ॥

महीतलादुत्पत्यउड्डीयदेवीं प्रगृह्यगृहीत्वा उच्चैर्गगनमाकाशमास्थितःआरूढवान्आश्रितः। आङ्पूर्वात्तिष्ठतेःसकर्मका'द्गत्यर्थाकर्मक'सूत्रेणकर्त्तरिक्तः। आस्थितवान् आङःस्थः प्रतिज्ञानमर्थः गगनंस्थानत्वेनप्रतिज्ञातवान्। तत्रापि गगनेऽपि सा चण्डिका निराधारा निरधिकरणासत्येवतेनसहयुयुधे। यद्वा 'निर्निश्चयनिषेधयोः'। निश्चयश्चावाध्याध्यवसायः निराधाराअहमेवसर्वशक्तिसमन्विता शत्रुमुपसंहरिष्यामीतिनिश्चयज्ञानाधारा। यद्वा, चण्डिकाशब्दब्रह्मरूपतयाआकाशस्थितयासाधारत्वादनिराधारा ॥ १८ ॥

तदागगनारोहणकालेप्रथमं खेआकाशेदैत्यः शुम्भः चण्डिकाचदुर्गापरस्परंनियुद्धंबाहुयुद्धंनाम प्रधनंचक्रतुः चक्राते। कीदृशंनियुद्धंसिद्धाश्चमुनयश्चसिद्धमुनयः। ननुचद्वन्द्वेघिपूर्वंस्यात् नैतत् प्राप्तस्यच बाधोऽस्त्येवेति। यद्वा, सिद्धैः सहिता मुनयः तेषांविश्वावसुप्रभृतीनां मुनीनां नारदादीनां पश्यतांविस्मयस्याश्चर्यस्यकारकंजनकम्। इहकेचित्सिद्धमपनीययुद्धंपेठुः। नियुद्धंनामयुद्धं प्रथमंचक्रतुरित्यर्थः। केचित्तु प्रथममपनीयप्रधनंपेठुः। 'कर्मण्यतिहारेसर्वनाम्नोद्वेभवतः' 'समासवच्चबहुलं' इतिसुडमौ। परस्यक्रियायांपरः करोतिपरस्यापि

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पाद्य (उत्पात्य) भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥ २० ॥
सक्षिप्तोधरणींप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगितः । अभ्यधावतदुष्टात्माचण्डिकानिधनेच्छया
तमायान्तं ततोदेवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यांपातयामास भित्त्वाशूलेन वक्षसि ॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।

परः परस्परम् ॥ १९ ॥

अम्बिकादेवीतेनशुम्भेनसहसुचिरंचिरतरंकालंनियुद्धंकृत्वाततोऽनन्तरंतं शुम्भंउत्पात्यउत्क्षिप्यचरणंउद्धृत्यभ्रामयामास ततोभ्रामयित्वातंशुम्भंवलयाकारेणोर्ध्वतःभ्रामयित्वाधरणीतलेचिक्षेपपातयामास । इहभ्रमेणवसन्तत्वान्मित्वा 'मितांह्रस्व' इतिह्रस्वत्वम् भ्रमयामासेतिसभ्यः पाठः । यद्वा, वेत्यनुवर्त्य मितांह्रस्वः साचव्यवस्थितविभाषा । तेनक्वचित्प्रयोगेनपुराणादौसङ्क्रामयतीतिवद्भ्रामयामासेत्यपिसभ्यएव । इह उत्पाद्य उत्पात्य उत्क्षिप्येतिपाठत्रयम् । भ्रमुअनवस्थानेणेरयादेशः । क्षिपप्रेरणेलिट् ॥ २० ॥

देव्याक्षिप्तः सदुरात्माशुम्भः धरणींप्राप्यवेगितः सञ्जातवेगः सन् । वेग तइतिपाठे वेगात् । वेगवानितिवापाठः । चण्डिकानिधनेच्छयामुष्टिंउद्यम्योत्क्षिप्यउद्यतंकृत्वाउभ्यधावत । देवीत्यर्थउच्यते । चण्डिकायाः सकाशात्प्राप्तव्यंयत् निधनंमरणंतत्रेच्छयायतः अभ्यागछत् । अन्यथापलाय्यचेद्गच्छेदसौ नम्रियेतैवेति । दुष्टआत्मास्वभावोयस्यसः 'आत्मायत्नोधृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च ॥ २१ ॥

सर्वेषांदैत्यानांजनेश्वरं राजानं शुम्भंततोदेवीवक्षसि उरसिशूलेनभित्वा विदार्यजगत्यां भूमौ पातयामास । 'जगतीजगतीच्छन्दोविशेषेऽपिक्षितावपि' ॥ २२ ॥

देव्याःशूलमायुधंतस्याग्रंतेनविक्षतःहतः । क्षिणुक्षणुहिंसायाम् । द्वावपि

चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्व्वताम् ॥ २३ ॥

ततः प्रसन्नमखिलंहतेतस्मिन् दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलंचाभवन्नभः

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।

णान्तौ तनादी तेन विक्षित विक्षतः इति पाठद्वयम् । कर्मणिक्तः 'अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलिक्ङिति'। स शुम्भः गतासुःनिर्गतप्राणः सन् ऊर्व्यां भूमौ पपात । किंकुर्वन्सकलांदेवींपृथ्वीं चालयन् स्थानान्तरंप्रापयन् कथम्भूतां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वतां समुद्रद्वीपपर्वतैःसह वर्तमानां तां चालयन् इति । चलकम्पने णिचिकम्पने चलिर्मित् । वायुश्चलयति वल्लीं ईषत्कम्पयति । अन्यत्र न मित् । वायुश्चालयति वारिदश्रेणीं देशान्तरम् प्रापयतीत्यर्थः । अत्रतुस्थानान्तरप्रापणं प्रधानात्वर्थः । तेनात्र मित्त्वाभावाद्ध्रस्वत्वाभावः । कश्चित्त्वाह । चलनं चालः तंकोति णिच । चलः शतृप्रत्ययः । प्रयोजकव्यापाराभाण्णिचोऽत्रासम्भवात् । मृतस्याप्युपचारात् स्वाभाव्याद्वा प्रयोजकव्यापारसम्भवात् मृतः पुत्रो मातरं रोदयति धनमानन्दयतीतिवत् । मृताचेतनयोरप्यस्त्येव प्रयोजकव्यापारः इतिप्रागुक्त एवमित्त्वभावाभावोपाय आश्रयितव्यः॥ २३ ॥

देव्या तस्मिन् दुरात्मनि शुम्भे हते सति ततो हेतुतः अखिलं विश्वं प्रसन्नमभवत् । तथाहिजगल्लोकः स्वास्थ्यं अनाकुलत्वमतीव अतितरां आप । नभः आकाशश्च निर्मलः निःपांसु अभवत् । 'विश्वमशेषं कृत्स्नं' समस्तनिखिलानि निः शेषम्' 'विष्टपं भुवनं जगत्' ॥ २४ ॥

प्राक् शुम्भमरणात्पूर्वं सोल्काः उल्कासहिताये उत्पातमेघा देवलोकशुभायचागताः शान्तिमगमन्निितिभावः । उल्काज्वाला । यदाहुः । 'लङ्काशेफालिकाटीकाधातकीपञ्जिकाढकी । सिध्मकाशारिकाहिक्काप्राचिकोल्कापिपीलिकाः' । देव्याशुम्भेनिपातितेसतितथा अनाकुलाः सरितः

सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते (शुम्भे निपातिते) ॥ २५ ॥
ततोदेवगणाःसर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्निहतेतस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः
अवादयंस्तथैवाऽन्ये ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ २७ ॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥ २८ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधवर्णनंनाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥
सप्तशत्यांदशमः

नद्यः मार्गवाहिन्यः मार्गाददूरगा आसन् । पूर्वमाकुलत्वादुत्पथगामिन्यःअधुना तुतद्वैपरीत्यमितास्ता इतिभावः ॥ २५ ॥

देव्यातस्मिञ्शुम्भेनिहतेसतिततोहेतुतः सर्वदेवगणाः इन्द्रादयः हर्षनिर्भरमानसाः निःशेषेण भरः पोषः पूर्णतायत्रतानिनिर्भराणिहर्षेणनिर्भराणिमानसानि येषां ते बभूवुः । अथचगन्धर्वाः हाहाहूहूप्रभृतयः ललितंमनोमनोहरंयथास्यात्तथादेव्याः पराक्रमं जगुः गायन्तिस्म ॥ २६ ॥

गीतमुक्त्वावाद्यंनृत्यंचाह । देवगणविशेषाःअवादयन्तथाऽन्येएवाप्सरोगणाः ननृतुः नृत्यन्तिस्म । वाताः पुण्याः शैत्यमान्द्यसौरभ्ययुक्ताः ववुः वान्तिस्म । पुण्याः रजःशून्याश्च । तथादिवाकरःसूर्यःसुप्रभःसुतेजस्कःअभूत् ॥ २७ ॥

अग्नयःआहवनीगार्हपत्यदक्षिणाग्न्यादयःशान्तिःनिर्मलाःसन्तः जज्वलुः ज्वलंतिम । ज्वलदीप्तौ । लिट्उस् । शुम्भेनिहतेयज्ञाः प्रवृत्ताइत्यर्थः । दिग्जनितस्वनाउत्पातशब्दाः शान्ताः उपशान्तिमगुः । यद्वा, दैत्यार्द्दितदेवादिहाहाकारस्वनाःशान्ताइत्यर्थः ॥ २८ ॥

इतिमार्कण्डेयेपुराणेराजाधिराजतोमरान्वयश्रीशन्तनुविरचितायांदेवीमाहात्म्यटीकायांशुम्भवधविध्युपलक्षितः नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

एकादशोऽध्यायः

नारायणीस्तुतिवर्णनम्

ऋषिरुवाच

देव्या हते तत्रमहासुरेन्द्रे सेन्द्राःसुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥ १ ॥

देवा ऊचुः

देवि! प्रपन्नार्त्तिहरे! प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि! पाहिविश्वं त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य ॥ २ ॥

देव्याचण्डिकयातत्रसङ्ग्रामेमहासुरेन्द्रेशुम्भेहतेसतिसेन्द्राइन्द्रसहितावह्निपुरोगमाः अग्न्यादयः सुरादेवाइष्टलाभात् शुम्भनिहतलक्षणात्संतुष्टाः अतएव विकाशिवक्त्राः दीप्तवदनाः प्रसन्नमुखाः सुष्ठुविकाशिताआशादिशोयेषां तेषां शुम्भमर्द्दिनींकात्यायनींचण्डिकांतुष्टुवुः । ष्टुञ्स्तुतौ । विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाइतिपाठे । चकाशृदीप्तौ तालव्यान्तः । काशनंकाशः काशोयेषांतानिकाशीनि विकाशीनिवक्त्राण्येव अब्जानिकमलानियासान्ताःविकाशिवक्त्राब्जाः काशः सञ्जातोयासान्ताः काशिताः विशेषेणकाशिताश्चआशाश्चविकाशिताशाः । विकासिवक्त्राजविकाशितांसाइतिपाठेसुराइष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जाःविकाशिताशाश्चभवन्ति । अंसोभुजशिरः ततः कर्मधारयः । महान्तोऽसुराःतेषुइन्द्रेश्रेष्ठेकतोमहर्षिःतस्यापत्यं स्त्रीगर्गादिपाठात्कात्यशब्दाद्गर्गादियञन्तात् 'सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्य'इतिष्फःषित्वात् ङीष् । फस्यायनादेशः कात्यायनी ॥ १ ॥

देवाऊचुः देवींस्तोतुंस्तवोपयोगीनिवाक्यानिउक्तवन्तः । प्रपन्नाअनन्य-

आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थिताऽसि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्याय्यते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ३ ॥
त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया ।
सम्मोहितं देवि! समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ४ ॥

शरणाः शरणार्थिनः भक्तिनम्राः तेषांआर्त्तिपीडांहरतीतिप्रपन्नार्त्तिहरा । हरतेर-नुद्यमनेऽच्स्त्रियांटाप् । हेप्रपन्नार्त्तिहरेदेवि! त्वं प्रसीदप्रसन्नाभव । पाघ्रादिना-सदेः सीदभावः । हेअखिलस्यजगतः मातः जननिःत्वं प्रसीद । हेविश्वस्यईश्वरि व्यापिकेत्वंप्रसीद । हेदेवि! त्वंविश्वंपाहिलक्ष्मीरूपेणसर्वंजगद्रक्ष । हे देवि! त्वंचराचरस्यजगतः ईश्वरीविष्णुमायात्मतयाव्यापिकाऽसि । चरांश्चाचरांश्चच-राचरम् । 'सर्वोद्वन्द्वोविभाषैकवद्भवति' । अन्यथाचरगतौपचाद्यच् । 'चरिचलि-पतिवदीनामच्याक्चाभ्यासस्ये'त्यनेनचराचरं जङ्गमात्मकमेवस्यान्नाजङ्गममपि । यदाहुः । 'चरिष्णुजङ्गमचरंत्रसमिङ्ग'चराचरम्' ॥ २ ॥

हेदेवि! त्वंयतः हेतोः पृथिवीस्वरूपेणस्थिताऽसि । अतः जगतःविश्व-स्यत्वंआधारभूताएकैवनान्या । हे अलङ्घ्यवीर्येलङ्घितुमशक्यबले । अपांस्व-रूपस्थितयात्वयैवएकयाएतत्कृत्स्नंजगदाप्यायतेसर्वमाप्यायते प्यायीवृद्धौ णिच् कर्मणिलट् अपांजलानांस्वरूपेणस्थितयात्वया ॥ ३ ॥

हेदेवि! त्वंअनंतवीर्याअक्षयबला । वैष्णवीविष्णुसम्बन्धिनीशक्तिरसि-यथाशक्त्याविष्णुर्भगवानशेषलोकान् पालयतिसा विष्णुसामर्थ्यलक्षणात्वमेवेति-भावः । विश्वस्यबीजंकारणंयल्लोकवेदप्रसिद्धंसापरमाव्यापिनीमहामायात्व-मेवाऽसि । परमाउत्कृष्टाउत्तराशक्तिर्नत्वदन्यासेतिभावः । हे देवि!त्वयामायया एतत्समस्तंविश्वंसञ्जातमोहं कृतं मोहितं ममतायत्तं कृतम् । देवित्वंवैप्रसिद्धा ज्ञानवैराग्यरूपाउपनिषत्परमात्मतत्त्वावगमस्वभावाप्रसन्नासतीभवनंभूः पुनः पुन-रुद्भवः भुविरुत्पत्तिभूतप्रादुर्भावइतियावत् । भूसत्तायांस्त्रियामिक् । 'कृष्यादिभ्य इतिइक्प्रत्ययः । उवङ्ङादेशः । भुवेरुत्पत्तितोमोचनंमुक्तिः मुक्तेः हेतुः कारण-

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु (सकलंजगच्च)
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥ ५ ॥
सर्वभूता यदा देवीभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । त्वंस्तुतास्तुतयेकावाभवन्तिपरमोक्तयः

मसीत्यर्थः । भुविभूमौइत्युक्तेर्थपुष्ट्यभावस्तिष्ठतु ब्रह्मलोकादौ मुक्तिहेतुता न स्यादित्यव्याप्तिपरिजिहीर्षार्थोपलक्षणताश्रयेणजनितप्रतिपत्तिगौरवादौर्गुण्या । भुविमुक्तिहेतुरित्येकं पदम् ॥ ४ ॥

हे देवि ! समस्ताःश्रुत्यादयोविद्यास्तथैवभेदास्त्वत्प्रकारात्वदंशाएव । तस्मात्तवविद्यानां परस्परम्पार्थक्याभावात्त्कोस्तुतिःप्रवर्त्ततम् । न काऽपि, कीदृशीस्तुतिः । स्तवमर्हतिस्तव्यम् । 'दण्डादिभ्योयः' अन्यथाअचोयतस्वाधित्वा'एतिस्तु'सूत्रेणक्यपिसतिस्तुत्यं इत्येवस्यात् । स्तव्येस्तोत्रार्हेवस्तुनिविषये पराचापराचेतिपृथग्भूतोक्तिर्यस्यांसास्तव्यपरापरोक्तिः । स्तुतिःस्तुत्ययोः पृथक्त्वेखलुस्तुतिःप्रवर्तते एकत्वेकातेस्तुतिरस्त्वितिभावः । तर्हित्वंब्राह्मी त्वंलक्ष्मीरित्याद्यास्तुतिरपिदेव्या एकत्वेन न घटत इत्याह । समस्ताः सकलाः कलासहिताः चतुःषष्टिकलोपेताः पातिव्रत्यादिधर्मोपेताः सृष्ट्यादिप्रतिनियतनैपुण्योपेताश्चब्रह्माण्याद्याः स्त्रियश्चतवैवांशा इतिकातेस्तुतिः एकस्वरूपत्वात् । हेदेवि! त्वयाएकयैव अम्बया मात्रा एतज्जगत्पूरितंपूर्णंआप्यायितम् । त्वमेवजगत् जगदेवत्वमितिकातेस्तुतिःनकापि । अन्यदीयगुणानामन्यत्रारोपणवर्णनंस्तुतिः । अत्रतुसैवविद्येतिसैवब्राह्म्यादिस्त्रीतिभेदाभावात्स्तव्यपरापरोक्तिःपरमोक्तिरित्यर्थःदेवीन्यूनानभवतीतिस्वभावतःश्रेष्ठोक्तिरित्येवतस्यामितिकातेस्तुतिरित्युक्तम् । न्यूनमधिकीकृत्योक्तिःस्तुतिरित्यविलक्षणम् । न्यूनाभवतियतस्ततोऽधिकानैवेत्युक्तंकातेस्तुतिरिति ॥ ५ ॥

पुनरपिदेव्यांस्तुतिर्नघटतइत्याह । परमोक्तिः स्तुतिरितिस्तुतिलक्षणं तत्रदेवीसर्वभूताइतीदंस्तुतिपदम् । एवञ्चसतिब्रूमःहेदेविभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी त्वं

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे! देवि! नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥

यदासर्वभूतासिसर्वात्माऽसिविश्वरूपाऽसिइतिस्तुताभूः । तदास्तुतयेस्तुल्यैस्तु-त्यर्थाः कावा नामपरमाःश्रेष्ठाः उक्तयः वर्णनास्तुतयः भवन्तिनकापिपरमाश्रेष्ठा उक्तिःवर्णनेस्तुतिरितिलक्षणन्ततश्च यच्चकिञ्चित्पदार्थरूपम्भावाभावात्मकंसम्भवे-त्तन्नामसर्वमित्युच्यते । सर्वभूतादेवीतियदास्तुता तदासर्वस्यचदेव्याश्चैक्या-त्किस्तुत्यंकावास्तुतिःस्यादितिभवत्यर्थादाह । काभवन्तिपरमोक्तयइति । काः परमोक्तयः याभिस्तूयेतदेवी । नकापि 'युक्तेस्यादावृतेभूतंप्राण्यतीतेसमेत्रिषु' । सर्वभूता सर्वेणविश्वेनसमेत्यर्थः । कीदृशीदेवी, अयदाशुभावहविधिदा, भुज्यते भोगःस्वर्गादिःमुक्तिर्मोक्षःतौप्रददातिभुक्तिमुक्तिप्रदा । यद्वा, भुक्तेर्मुक्तिर्वैराग्यं तां प्रददातिप्रेदाङ्गः कः अयतेगच्छतिव्याप्नोत्ययती । 'कृत्यल्युटोवहुलमि'तिकर्त्तरि-ल्युट् । यद्वा,दयदानेभुक्तिमुक्ती प्रदयते भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । णिनिः । यद्वा, प्रापूरणेभुक्तिमुक्तीप्रातिपूरयतिभुक्तिमुक्तिप्रा । 'आतोऽनुपसर्गेकः' दयिष्यतेरक्षि-ष्यतिदायिनी । भविष्यदाधमर्ण्ययोर्णिनि । भुक्तिमुक्तिप्राचासौदायिनीरक्षित्री-चेतिकर्मधारयःपुम्वद्भावः । भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ६ ॥

हेदेवि!सर्वस्यजनस्यजन्तोःहृदिचेतसि । बुद्धिरूपेणसंस्थिते । हेस्वर्गा-पवर्गदे देविनारायणिनमोऽस्तुते । हेदेवि!संस्थितेसम्यगवस्थिते । 'संस्थाधारे स्थितौमृतौ' । स्वर्गश्चापवर्गश्च ददातिस्वर्गापवर्गदा । 'आतोऽनुपसर्गेकः'नरःक-श्चिदृषिः नरस्यापत्यंनारायणः । नडादिभ्यःफक्फस्यायनः । नारायणस्यस्त्री स्त्रीमायोपचारात् । नारायणीविष्णुमायेत्यर्थः । यद्वा,'आपोनाराइतिप्रोक्ताः'। नारमम्मयमयनमस्यनारायणः । सञ्ज्ञायांणत्वम् । यद्वा,नराणांसमूहोनारमय-नमस्यनारायणःतस्यस्त्रीनारायणीलक्ष्मीः । हे नारायणि कात्यायनींतुष्टुवुरि-तिकात्यायनीस्तुतौ प्रकृतायां नारायणीनमस्कृतिः स्त्रियःसमस्ताः तदंशाएवेति

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवेसर्वार्थसाधिके । शरण्येत्र्यम्बकेगौरि नारायणिनमोऽस्तुते

प्रागुक्तेःकार्यभेदमात्रत्वेऽपिवस्तुतस्तयोरैक्यादविरुद्धा ॥ ७ ॥

'अष्टादशनिमेषास्तुकाष्ठात्रिंशत्तुताःकला'इत्यभिधानात् काष्ठाकलातो न्यूनेतिकाष्ठाकलादिरूपेणेतिपाठःसम्यः । विश्वस्यखलुकाष्ठाकलान्यूनेतेतिकाष्ठा-कला । क्षणमुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसम्वत्सरादिकालरूपेणपरिणामप्रदायि-नी । वाल्यादिवयोवस्थाविशेषेणवातथाविश्वस्यउपरतौअवसाने विषयेयाशक्तिः तत्सम्बुद्धौ हेशक्तेरुद्ररूपत्वात् हेसमर्थे । नारायणीति अयगतौ इण्गतौ इगतो अय्यते इयते वा अयनः परमात्माकर्मणिल्युट् । पुँल्लिङ्गतानुप्रयोगतः'लिङ्गमशि ष्यंलोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्ये'तिवचनात् । नारायणामयनःनारायणः'पूर्वपदात्स-ञ्ज्ञायामगः' इतिणत्वम् । नारायणस्यपरमात्मनइयंमायानारायणी । अन्यथा नारायणस्येयं नारायणीयेतिवृद्धाच्छःस्यात् । तस्मात्सम्बन्धेऽणेव । परि-णामःप्राणिकायावयवोपचयलक्षणावृद्धिः । तां प्रददातिपरिणामप्रदायिनी । सुप्यजातौणिनिः । 'आतोयुक्चिण्कृतोः' । ज्ञापकसिद्धमनित्यं इतिकश्चित् सोपसर्गादपिणिनिः । दुग्धंदधिरूपेणपरिणामतेइत्यादौ तु परिणामोरूपान्तरा-वाप्तिदुग्धादिस्वरूपाद्विवर्त्तः । परिणामप्रदायिनीतिपाठे , परितोमानंयत्ना-परिच्छेदः । प्राणिकायादेःकालकृताशरीरावस्थायौवनादिवयः । तस्यपरि-च्छेदः परिमाणंएतावत्कालपरिमितमिदंबाल्यमिदं यौवनमित्यादितत्प्रददात हेपरिणामप्रदायिनि ॥ ८ ॥

सर्वाणिमङ्गलानियतः स्युः सासर्वमङ्गला । मङ्गलेभ्योहितामङ्गल्या 'उगवादिभ्योयत्' । सर्वमङ्गलाचासौमङ्गल्याच । सर्वमङ्गलमाङ्गल्यइतिवृद्धिपा ठपक्षेतु । मगिगतौ मङ्ग्यन्तेमङ्गलानिमङ्गलेभ्योहितामङ्गल्यामङ्गल्यैवमाङ्गल्या ।

सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि। गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोऽस्तुते
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरेदेवि नारायणिनमोऽस्तुते॥

'अन्येषामपिदृश्यत'इतिदीर्घःपूरुषवत्। कश्चित्त्वाह। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणिचे'तिकर्मणिष्यञिति। तत्र तस्यार्थसङ्गत्यभावस्तावदास्तां स्त्रियांरूपं बाधित्वाषित्वात्ङीषिमाङ्गलीत्येवस्यात्तत्तुमाङ्गल्येतिरूपसिद्धिरितितदुपेक्षणीयं प्रेक्षावद्भिः। 'शिवाभवानीरुद्राणी'। हेशिवे। यद्वाशिवामङ्गलोपेतेतिस्माऽपि शिवाभवति। हेशिवे!हेरमे!सर्वेषामर्थानांसाधयित्रीउमारमाच। हेसर्वार्थसाधिके 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु'। 'शरणंगृहरक्षित्रोः'। शरणेषुसाधुः शरण्या'तत्रसाधु'रितियत्। हेशरण्ये! सोमसूर्याग्निरूपाणित्रीण्यम्बकानिनेत्राण्यस्याः त्र्यम्बका। यद्वा,त्रयोऽम्बकाः। उमारमाच। हेत्र्यम्बके! त्रयाणांलोकानामम्बकः पितेत्यागमः। गौरीउमा। यद्वा, गुङ्अव्यक्तेशब्दे गूयतेअव्यक्तंगुप्तंशब्द्यायतेमनसागृह्यतेधार्यतेगौरीउमारमाच। 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रादि'सूत्रेणरनिं प्रत्ययेगुङोवृद्धिर्निपात्यते। 'गौरोऽरुणेसितेपीते'। गौरादित्वात्ङीष्। 'अयःशुभावहोविधि'रत्रपरमात्मनिसः अयनः पामादित्वान्मत्वर्थीयोनः। नृनयेनयोनीतिः। भावेऋदोरप्। नरणनरः नरेणनयेनअयनः नरायणः परमात्मातस्येयंमायाजारायणी। हेनारायणि!नमस्तेऽस्तु 'नमः स्वस्ती'तिचतुर्थी॥ ६॥

जगतांसृष्टेःसर्गस्यस्थितेर्वर्त्तनस्यनाशनस्यप्रलयस्य। हेशक्तिभूतेशक्तिरित्येवम्भूताजाता। हेशक्तिरूपे। यद्वा,ब्राह्मीशक्तिः सृष्टौ। वैष्णवीशक्तिःस्थितौ। रौद्रीशक्तिर्विनाशे तद्भूतात्रिशक्तिभूतायाशक्तिःतत्सामान्येनशक्तिभूता हेशक्तिभूते। यद्वा, शक्तीनांभुवापरमात्मनाउतासङ्गता। वेञ्तन्तुसन्ताने। यद्वा, शक्तीनांभूतिरवतारूपाशक्तिभूतिः। हेशक्तिभूते। यद्वा शक्तीनांभुवः भूमयः ब्रह्मादयः तेषांऊतिः सङ्घटना। तन्तुनेवगुम्फनंसन्तननंशक्तिभूतिः। वेञःस्त्रियांक्तिन्। हेसनातनि! 'सायंचिरमित्या'दिसूत्रेणल्युस्तुट्चस्त्रियांटित्वात्ङीप् हे शाश्वति! हेगुणाश्रये! गुणाःसत्त्वादयः आश्रयोयस्याःसा। यद्वागुणानां

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भः क्षरिके देवि ! नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

आश्रयोयत्रसागुणाश्रया । यद्वा,सत्त्वादिगुणयुक्तागुणाःयथायोगंब्रह्मादयःतेआ-श्रयायस्याःसा । हेगुणमये ! मयगतौ । मयतेगच्छतिलोकान्मया । पचा द्यच्स्त्रियांटाप् । गुणैर्मयागुणमया । गुणैर्गतिमतीत्यर्थः । यद्वा,हेऽगुणमये अगुणंब्रह्ममयते । अगुणेनब्रह्मणामयागमनपराअगुणमया । ब्रह्मतत्त्वेनमयमाने-त्यर्थः । गुणमयीतिपाठे । गुणानांविकारःगुणमयी । यद्वाऽगुणमयी । 'मयड्वैतयोर्भाषायामि'त्यादिनामयट्ङीप् । यद्वा गुणेभ्योहेतुभ्यआगतागुणमयी । हेतुमनुष्येभ्यइत्यधिकृत्यमयड्वेति । यद्वा, गुणाःप्राकृताउच्यन्तेऽस्यांगुणमयी । 'तत्प्रकृतवचनेमयट्' । अयतेईयतेगम्यतेअयनामुक्तिःऋशब्दःअदितिवाची । उर-पत्यानिआराःदेवाः । नशब्दोनञ्समानार्थोऽननुबन्धकः । नसन्त्ययद्याप्यारादेवाः साधकत्वेनयत्रसानारानाराचासौ अयनीचेतिनारायणीमुक्तिर्देवैरद्यापिदुष्प्राप्ये-त्यर्थः । तत्सम्बुद्धौ हेनारायणि! ॥ १० ॥

शरणंरक्षितारं आगताः रक्षरक्षेतिप्रपन्नाः शरणागताः तएवदीनाआर्त्ता श्चदुःखितालोकाः तेषामापद्भ्योदुःखेभ्यःपरित्राणंतदेवपरंमुख्यंउद्देश्यमयनंवर्त्मय स्याःसातत्सम्बुद्धिः । सर्वलोकस्यार्त्तिहरे । हरतेरनुद्यमनेऽच् । हेदुःखनाशिनि! । हेदेविभगवति! । न आरायणिनमः अस्तुतेइतिच्छेदः । पूर्वंअग्रेअः'एङःपदान्ताद-ती'त्यकारलोपः । प्रथमैकवचनस्यअकारस्यश्रवणमेवतथाचसतिमो(:)इतिभव-ति । अग्रेचस्तुते । ऋइतिदेवमाता । मःशिवः अःविष्णुः'द्वौप्रतिषेधौप्रकृतम-प्रतिषिद्धमर्थंगमयतः' । उर्देवमातुरपत्यानिआराःऋभवःदेवाः । अय्यतेईयते(वा) अयनी आराणामयनी आराधनीयाध्यातव्यादेवता । आरायणी । 'पूर्वपदा त्संज्ञायामग'इतिणत्वं हेआरायणि! । त्वांमःशिवः अश्चविष्णुःननस्तुतेअपितुस्तु-तेनौत्येव । ष्टुञ्स्तुतौलडात्मनेपदम् ॥ ११ ॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनी । माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तुते
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे । कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते

हंसैयु क्तंविमानन्तत्रतिष्ठतिहेहंसयुक्तविमानस्थे । यद्वा,हंसैःयतिविशेषैः सूर्यैःरूपैश्चयुक्तमाश्रितंविमानंविगताहङ्कारंपरब्रह्मतत्रतिष्ठति । 'हंसःश्वेतगरुत्सूर्ययतिप्राणात्मसुस्मृतः' । हेब्रह्माणीरूपधारिणि ! कुशोदर्भःतस्येदंकौशंकौशंचतदम्भश्चकौशाम्भः । क्षरसञ्चलने । क्षरणंक्षरः घञि'संज्ञापूर्वकोविधिरनित्य'इत्यतउपधावृद्ध्यभावः'घञर्थेकविधानं'वा । कौशांभसःक्षरःसेचनन्तंकरोति इतिणिचिण्वुल् । वोरकः स्त्रियांटाप्'प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यातइदाप्यसुप'इतिइत्वम् । हेकौशाम्भःक्षरिके ! शत्रुषुकुशोदकक्षेपणंकुर्वित्यर्थः । यदुक्तम् । 'कमण्डलुजलाक्षेपे'इत्यादियद्वा, क्षरंकरोतिक्षरयतिक्षरिकाआसेक्त्रीकौशांभसःक्षरिका । अणिजन्तस्येतिभावः । क्षरतेस्तुण्वुलिक्षारिका । यद्वा, कौशांभःक्षरतिसिञ्चतिकौशांभःक्षरी । कर्मण्यण् । ङीप् स्वार्थेकः । 'कण'इतिह्रस्वः यद्वा, कुशसंबन्धी अम्भसःक्षरःआयुधत्वेनयस्याः साकौशाम्भःक्षरका । 'शेषाद्विभाषाकप्' । अत्रपक्षेऽप् । सुपःपरइत्वंनभवति । ना अ आ ऋ आ अयनिनमाउः स्तुतइति च्छेदः । नापुरुषः । 'अकारोवासुदेवः स्यादाकारस्तुपितामहः '। ऋइतिदेवमाता । ऋभुशब्दप्रयोगदर्शनात् । आइतिआङुपसर्गः । आयनिइतिसंबुद्ध्यन्तम् । न मा इतिद्वौप्रतिषेधौ । उकारस्तुमहेश्वरः । स्तुतेइतिष्टुञ्स्तुतौआत्मनेपदम् । अयगतौ । कृत्यल्युटोवहुलंइतिकर्मणिल्युट् । आसमन्तादय्यतेईयतेवाआयनीउपासनी इष्टदेवता । उःदेवमातुः आयनी । 'इकोयणचि' रायनी'पूर्वपदात्संज्ञायामग'इतिणत्वम् । हेरायणि । हेदेवमातुरदितेरभीष्टदैवतेत्वम् । आश्चब्रह्माअः विष्णुःउःरुद्रःइतित्रिमूर्त्तिलक्षणःनापुरुषः । मान स्तुते नस्तुतेइतिमाअपितुस्तौत्येव ॥ १२ ॥

धृञ्धारणेभ्वादिः । धरतीतिधरापचाद्यच । त्रिशूलचन्द्राहीनांधरा ।

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे । प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते

अन्यथाकर्मण्यण्यात्स्यात् । त्रिशूलादिधरतीतिविग्रहश्रवणात् । त्रिशूलमायुधं चन्द्रोऽत्रैककलात्मकः किरीटभूषणौचित्यात् । अहयःफणिनः । 'द्वन्द्वे घिःबहुष्वनियमः' । हेत्रिशूलचन्द्राहिधरे ! महान्वृषभःतेनवाहिनीवाहवती । 'ऋन्नेभ्यो ङीप् ' यद्वा महावृषभेणवाहयतीस्वंमहावृषभवाहिनी । बहुव्रीहौमहावृषभवाहनेतिस्यात् । हेमहावृषभवाहिनि ! महेश्वरस्येयंशक्तिर्माहेश्वरी । तस्याः स्वरूपमाकारस्तेन ध्येयतया सम्भाविते अनधातुप्राणनार्थः । अननंअनिः'इक् कृष्यादिभ्यःस्त्रियाम्' । 'कृदिकारादक्तिन'इतिङीष् । अनी । इःकामःएःकामस्यतद्दैवतबीजस्यवाअनीप्राणरूपायनी । अम्विष्णुं रातिरक्षकत्वेनगृह्णातिअरात्रिलोकी । अरायाः यनीअरायणी । हेअरायणि ! त्वांउःशिवः ना पुरुषः । न मा स्तुतेअपितुस्तौति ॥ १३ ॥

हेअनघेकौमारीरूपसंस्थाने । अतएवहेमहाशक्तिधरे । अतएवमयूरकुक्कुटवृतेनमोस्तुते । नारायणस्यभगवतोविश्वरूपस्येयंआकृतिःनारायणीमूर्त्तिः । छान्दसत्वाद्वृद्धाच्छमनाश्रित्यसामान्यतोऽणेव ।यद्वा,नराणामयनंनरायणंधर्मार्थकाममोक्षलक्षणन्तस्येयंसाद्विधातत्रजातातत्साधयितुञ्च । शैषिकोऽण् । नारायणी । नविद्यतेअघंयतः हेअनघे । यद्वा,नविद्यतेअःविष्णुःपूज्योयेषान्तेअनादैत्याःतान्हन्तीत्यनघा । सप्तम्याञ्जनेर्डः । 'अन्येष्वपिदृश्य ते'इत्यत्रापिशब्दःसर्वोपाधिव्यभिचारार्थः तेनधात्वंतरादपिकारकान्तरेपिडोभवति । डित्यभस्यापिटेर्लोपः । पृषोदरादित्वात् हस्यघः । संस्थितिः सम्यगवस्थानंसंनिवेशःसंस्थानम् । कुमारस्य शक्तिधरस्येयं शक्तिर्देवताकौमारीः कौमार्याःसकाशाद्रूपसंस्थानं यस्याःसा । यद्वा'कौमारीषण्मुखीरूपसंस्थानशरीरावयवसन्निवेशविशेषो यस्याःसा । तत्सम्बुद्धौ । महतीशक्तिरायुधंमहाशक्तिःतस्यधरामहाशक्तिधरा । अन्यथातुविग्रहेकर्मण्यस्यात् । -यद्वा,महाशक्तिरतिसामर्थ्यम् । मीञ्हिंसायां

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे। वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे।

क्र्यादिः मीनात्यहीन्मयूरः। मीनातेरूरन्। कुक्कुटश्चरणायुधः। कुगुचारणे नकुटतिकुक्कुटः। कुटकौटिल्ये। पचाद्यच्, मयूराःवाहनीभूताःक्रीडार्थाश्च। कुक्कुटाश्चयुद्धचातुर्यदिदृक्षौ चित्योपार्जिताः। तैर्वृतावेष्टितायतइयंकौमारीतेनवाल्योचिताकुक्कुटक्रीडोक्ता। यद्वा, मयूरैःकक्कुटैश्चवृतिरावरणंयस्याःसा। यद्वा, क्रौञ्चवाराहचक्रादिव्यूहवत् मयूरकुकुटव्यूहौचसंग्रामोचितसैन्यसंनिवेशौज्ञेयौ। 'यदाहुःव्यूहस्तुबलविन्यासोभेदादण्डादयोयुधि। दण्डोमङ्गलभागौचाप्युत्सन्नश्चावलोद्गढः। व्यूहस्तेषांविशेषाः स्युश्चक्रव्यूहादयोऽपिचे'ति। ततश्चमयूरव्यूहकुक्कुटव्यूहास्यांवृता। यद्वा, वाहनीभूतत्वान्मयूरैःकौमारीवृता। अथचेयंकुक्कुटाख्यालङ्कारोपेतत्वात्कुक्कुटवृता। यदाहुः'कुक्कुटस्ताम्रचूडेस्वभूषायामपिदृश्यते'। यद्वा, मयूराःकुक्कुटाइवचित्रपुच्छवर्जितामयूरकुक्कुटाःतैर्वृते। यदभ्यधुः। 'आरक्तनेत्रपिच्छाग्रोमयूरः कुक्कुटःस्मृतः। वर्हणवर्जितोवर्हीं यः स मयूरकुक्कुट'इतियादवप्रकाशः। कुमारोमयूरमारोहतिकौमारीतुमयूरीम्। यद्वा, मालक्ष्मीः, अःपितामहः,इःकामः,उःशिवः,उस्त्राताऽरक्षकोविष्णुःरोऽग्निःतैर्वृतामयूरवृता। अथचसाकुक्कुटवृता। कुकवृकआदाने। भ्वादिरात्मनेपदी। ततः कर्त्तरिक्विप्। कोकन्तेकौमार्याः आज्ञामाददतेदैत्यैः सहसंग्रामयितुकुङ्क्वि देवसैन्यानि तान्येवकुटम्विदैत्यैःसहविरुद्धबुद्धीनिकुटानिचकुक्कुटानिदेवसैन्यानिचतैर्वृता॥ १४॥

हेवैष्णवीरूपे हेशङ्खादिगृहीतपरमायुधे। हेदेवि प्रसीद। हेनारायणि नमस्तेऽस्तु। शङ्खश्चचक्रश्चगदाचशार्ङ्गं चसेनाङ्कत्वादेकवद्भावः। तानिगृहीतानि परमाण्यायुधानियया सा। विष्णोरियंशक्तिर्वैष्णवीतस्याइवरूपंयस्याः तत्सम्बुद्धिः॥ १५॥

त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणिनमोऽस्तुते ॥ १६ ॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले । वृत्रप्राणहरे चैन्द्रिनारायणिनमोऽस्तुते
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्येमहाबले । घोररूपे महारावे नारायणिनमोऽस्तु ते ॥१८
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे । चामुण्डेमुण्डमथने नारायणिनमोऽस्तु ते

गृहीतंउग्रंरौद्रञ्चमहच्चक्रंययातत्सम्बुद्धिः । दंष्ट्रयाउ-द्धृतावसुन्धराभूमि-र्ययातत्सम्बुद्धिःवराहस्यभगवतोविष्णोः रूपन्तद्वतीवराहरूपिणी । वराहसदृ-शरूपनात्मानंदर्शयन्तीत्यर्थः । यद्वा,सत्यापपाश'सूत्रेण रूपाद्दर्शने । णिच्,वरा हमेवात्मनोरूपंपश्यतिवराहरूपिणीतत्सम्बुद्धिः ॥ हेशिवेसर्वमङ्गलेनारायणि । दशन्तियथादंष्ट्रा । 'दाम्नीशसे'त्यादिनादशतेः करणेष्ट्रन् । षिद्गौरादिभ्यश्चेतिङीष्प्राप्तः अनि त्यः ततः स्त्रियांटाप् ॥ १६ ॥

उग्रेण नृसिंहरूपेणदैत्यान् हन्तुंहेकृतोद्यमे । त्रैलोक्यस्यत्राणेनरक्षणेनस-हितेपूजिते । त्रैलोक्यत्राणसहिते इतिवापाठः । अयगतौ, अयते इत्ययनंचतुर्भद्रं नराणामयनंप्राप्तव्यं नरायणन्तस्य प्रापयित्रीनारायणी । चतुर्णाम्भद्राणां समाहारश्चतुर्भद्रम् । 'आहुश्चत्वारिभद्राणिबलंधर्मः सुखंधनम्'॥ १७ ॥

किरीटं मुकुटंतद्वती हेकिरीटिनि । महद्वज्रमायुधंयस्याः सामहावज्रा महाहीरा तत्सम्बुद्धिः । सहस्रंनयनानिसमाहृतानि सहस्रनयनम् । पात्रादित्वात् ङीप् न भवति । तेनउज्ज्वलतिप्रकाशते सहस्रनयनोज्ज्वला । यद्वा, सहस्रनयने-ज्ज्वले इतिपाठः । सहस्रंनयनानियस्याः सासहस्रनयानज्वलितिज्वला । पचा-द्यच्, हेज्वले!'अनुपसर्गाद्वेज्वलितिकसन्तेभ्योणस्तुवा' । तेनमुक्तेसोपसर्गादनुपो संर्गाच्चज्वलतेः पचाद्यच्भवत्येव । वृत्रोनामदैत्यः कश्चित्तस्यप्राणान्हरति हेवृत्र-प्राणहरे! चकारःउक्तमनुक्तश्चसमुच्चिनोति । इन्द्रस्येयंऐन्द्रीहेऐन्द्रि! ॥ १८ ॥

चण्डिकाशरीरोत्था शिवदूतीतस्याः स्वरूपेणहतादैत्यायया हेहतदैत्ये 'महद्बलंसामर्थ्यंसैन्यञ्चयस्याः'हे महाबले ! यद्वा, महान्बलिरुपहारःपूजोपकरणं

लक्ष्मिलज्जे महाविद्ये श्रद्धेपुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि (रात्रे) महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २० ॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥
सर्वतःपाणिपादान्तेसर्वतोऽक्षिशिरोमुखे । सर्वतःश्रवणघ्राणेनारायणिनमोऽस्तुते

यस्याः महाबलिः हेमहाबले । 'करोपकारयोः पुंसिबलिःप्राण्यङ्गजेस्त्रियाम्' । घोरंभयानकंरूपंयस्याः हेघोररूपे! महानारावः शब्दोयस्याः शृगालपरिवारत्वात् हे महारावे ॥ १९ ॥

दंष्ट्राभिः करालंभयङ्करंवदनंयस्याः हेदंष्ट्राकरालवदने । 'करालोदन्तुरे-तुङ्गे' शिरसांमालाविभूषणंयस्याः हे शिरोमालाविभूषणे । मुण्डंदैत्यंमथ्नाति मुण्डमथना । मडविलोडने नन्द्यादित्वाल्ल्युः । यद्वा, कर्त्तरिबहुलंल्युट् । बाहुल कात्ङीषभावः । हे मुण्डमथने हे चामुण्डेकालि! ॥ २० ॥

हे लक्ष्मिलज्जे, हे महाविद्येमहतिविद्ये परमात्मगोचरज्ञानरूपे । यद्वा, महाविद्ये हे महत्यविद्येमहात्मामेतरप्रपञ्चगोचरनानाज्ञानरूपे । हे श्रद्धेआस्तिक्य-बुद्धिस्वभावे । हे पुष्टेशरीरावयवोपचयरूपे । हे स्वधेपितृतृप्तिस्वरूपे । हेध्रुवे-शाश्वतिब्रह्मरूपे । हे महारात्रे हिरण्यगर्भावसानकालरूपे । यद्वा, महारात्रे हे अनन्यतमोऽधिकरणकालरूपे । यद्वा, महारात्रिः सर्वप्राणिमोहकरीदेव्येवोच्यते । अतएव हे महामाये सर्वजगत्कारणभूते । यद्वा,हेमहत्यमायेहेमहारात्रि इतिपाठे 'रात्रेश्चाजसावितिसञ्ज्ञायांङीप्छन्दस्येव'। तिमिरपटलैरवगुण्ठितारात्र्यइतितुज सन्तःप्रयोगः'बह्वादौकृदिकारादक्तिनोवाङीष्वक्तव्यः'। उणादावदेस्त्रिन् । अत्रिर्मु-निःबाहुलकात्रातेरपित्रिन् । रात्रिःरात्रीच रातिसुखंरात्रिः ॥ २१ ॥

हे नारायणि हेमेधेनमोस्तुते । 'धीर्धारणावतीमेधा' । अण्यतेकथ्यते अणिः मेधादिः 'इक्कृष्यादिभ्यः' 'कृदिकारादक्तिनो'वाङीष् । अणीमेधादिः

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते। भयेभ्यस्त्राहिनो देवि!दुर्गे देविनमोऽस्तुते
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्। पातुनःसर्वभीतिभ्यःकात्यायनिनमोऽस्तुते

ईइत्यस्याःलक्ष्म्या अणीमेधादिःयणी नराणांसमूहोनारंनारेणासमन्तात्श्रिता-यणीनारायणी। हे वरेश्रेष्ठे! हे भूतेअतीते!। यद्वा, 'भूतिर्भस्मनिसम्पदि'। 'भूतिर्जन्मच'। हे सम्पद्रूपे! ऐश्वर्यादिरूपे। हे बाभ्रवि बिभर्तिबभ्रुर्विष्णुःतस्येयं भगिनीवैष्णवी हे बाभ्रवि! 'विपुलेनकुलेविष्णौबभ्रुर्नाकपिलेत्रिषु'। हे तामसि तमोगुणसम्बन्धिनि जगत्संहारकर्त्रिनियतायत् हिनियते। यद्वा, 'दैवंदिष्टंभागधेयं भाग्यंस्त्रीनियतिर्विधिः'। हे ईशेस्वामिनि ईष्टेईशा पचाद्यच् ॥ २२ ॥

'अन्तोनाशे स्वरूपेच निश्चयेऽवयवेऽवधौ। समीपेवसितेवन्धेयमेमृत्यावनेहसि'। सर्वतःसर्वत्रपाणिपादंअंतोऽवयवोयस्याः हे सर्वतःपाणिपादान्ते। पाणयश्चपादाश्चपाणिपादम्। प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः। पादान्तेइतिपाठेसर्वतः प्राणयश्चपादाश्च अन्त्राणिचपुरीतत्सञ्ज्ञानिप्राणसूत्राणियस्याः सातथोक्ताअय-न्तेयन्तेयन्तिवाअनयाज्ञानविशेषंइतिअयनीपाणिपादाद्युपचितिः। नराणामयनीनरायणी नरायण्याइयमधिदेवतानारायणी। सर्वतोऽक्षीणिचशिरांसिचमुखानियस्याः सा हेतथोक्ते ॥ २३ ॥

सर्वं जगत्त्रयं स्वरूपं यस्याः सा हे सर्वस्वरूपे। यद्वा, सर्वं स्वंरूपं यस्याः सा। हे सर्वस्यईशेसर्वेशे!। सर्वाःशक्तयःसामर्थ्यलक्षणाब्रह्मादिलक्षणाश्चताभिः समन्विता हे सर्वशक्तिसमन्विते। हे देवि! त्वं भयेभ्यः नः देवान् त्राहिछान्दसंपरस्मैपदम्। यथा, त्रायतेत्राः क्विपिरूपम्। ताइवाचरत्राहि-रक्षिकेवाचर। 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वावारेवा'। त्राहीत्यव्ययम्वा। हे दुर्गेदेवि नमस्तेतुभ्यमस्तु भिन्नवाक्यस्थत्वाद्देवीतिपदद्वयं पौनरुक्त्येन न दुष्यति ॥ २४ ॥

हे देवि! एतत्प्रत्यक्षसिद्धंते तववदनंसौम्यं सुन्दरंलोचनत्रयेण सोम-

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् । त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।

सा घण्टा पातु नो देवि! पापेभ्यो नः सुतानिव ॥ २६ ॥

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।

शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके! त्वां नता वयम् ॥ २७ ॥

सूर्याग्निमयेनालङ्कृतं नः अस्मान्सर्वभीतिभ्यः समस्तभयेभ्यः । यद्वा, सर्वाभियोयाभ्यः ताः सर्वभियः सर्वभियश्चताईतयश्चताभ्यः पातुरक्षतु । हे कात्यायनि! नमस्तेतुभ्यमस्तु । ईतितोऽप्योघ्यभावादन्नाभावाद्यज्ञाभागाभावाद्यज्ञभागभुजांभयाभावः प्रार्थनीयः । कतःकश्चिद्दृषिःतस्यापत्यंस्त्रीतिगर्गादियञन्तात् यञश्च'प्राचांष्फतद्धित इत्यधिकृतसर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्यइतिस्त्रियांष्फःफस्यायनादेशःषित्वात्ङीष्कात्यायनी । यद्वा, कश्चब्रह्माअश्चविष्णुः तौअततःसततं यथाक्रमंगच्छतः इतिकात्यौसरस्वतीच रमा च कर्मण्यण् । अणन्तात्ङीप् । वाणीरमयोरासमन्तादयनीपरमागतिःकात्यायनी । 'सौम्यंस्यात्सुन्दरेसोमदेवताकेबुधेग्रहे" ॥ २५ ॥

भद्राच सा कालीच हे भद्रकालि । ज्वालाभिः करालंतुङ्गं अत्युग्रं अतिरौद्रं अशेषाणामसुराणां सूदनंहिंसकम् । ते तवत्रिशूलंनोस्मान्भीतेर्भयात्पातुनमस्तेस्तुभ्यमस्तु । षूदलक्षणेहिंसायां अनुदात्तेत् सूदते सूदनं नन्यादित्वाल्ल्युः । अन्य'थाऽनुदात्तेतश्चहलादे'रितिप्राप्तस्ययुचः'सूददीपदीक्षश्चेति'प्रतिषेधात्सूदकं इतिस्यात् ॥ २६ ॥

याताचकी घण्टास्वनेनादेन जगदापूर्यपूरयित्वादैत्यतेजांसि हिनस्ति सानोऽस्मान्पापेभ्यः दैत्येभ्यश्चपातु । कंकेभ्यः कानिव । जगत्कर्तृलोकःअनोभ्यः सुतानिव । अत्र छान्दसत्वेन अनस् शब्दात्पञ्चम्याभ्यस् तस्य 'सुपांसुलुगि'त्यादिनालुक् । यथालोकः शकटेभ्यःसुतान्पातितथा । यद्वा,'जनन्यांशकटेऽप्यनः'

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ २६ ॥
एतत् कृतं यत् कदनं त्वयाऽद्य धर्मद्विषां देवि! महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके! तत् प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ ३१ ॥

'जनकेशकटेऽप्यनः' । यथाअनः मातापिताच पापेभ्यविघ्नेभ्यः पाति ॥ २७ ॥
हे चण्डिके असुराणां असृगरुधिरंवसामेदः तद्रूपः पङ्कः तेनचर्चितः व्याप्तः ते तव करे हस्ते उज्ज्वलः । यद्वा, करैः किरणैः उज्ज्वलः खड्गः नोऽस्माकञ्जगतां वा शुभायभवतु । हे देवि त्वां वयं नताः प्रणतामहे । 'वलिहस्तांशवः करः' ॥ २८ ॥

नृनये, नृणन्तिन्यायेनव्यवहरन्तीति नराः । हे देवित्वदाराधनेनतुष्टा सतीत्वमाश्रितानां नराणांअशेषान् रोगानपहंसितेषांचकाम्यकामान्कामानर्थान् ददासि । रजकस्यवस्त्रंददातीतिवत्सम्प्रदानाभावात्षष्ठ्येव । हे देवित्वामाश्रितानांनराणां न विपत् आपन्नंविद्यते । 'हि हेताववधारणे'त्वामाश्रितानराः ह्याश्रयतांआश्रीयमाणतां प्रयान्ति आश्रीयन्ते आश्रयाः कर्मण्येरच् । अन्यैराश्रीयमाणतां सेव्यमानतां भजन्तीत्यर्थः । राजत्वं देवत्वं वाऽऽप्नुवन्तीतिभावः ॥ २९ ॥

हेअम्बिकेदेविअद्येदानींत्वयाआत्मतनुं निजतनुं बहुधाबहुप्रकारैःअनेकैः ब्रह्माण्यादिशक्तिरूपैः कृत्वाधर्मद्विषां यज्ञादिकर्मद्रोहिणां महासुराणां शुम्भादीनां यत्कदनं विशसनंकृतंतदेवतदन्यास्त्रीत्वत्तोपराकादेवता प्रकरोतिकाकर्त्तुं शक्ताऽस्ति नकाऽपि त्वमेकाकर्तुंशक्नोषिनान्येतिभावः । धर्मोऽत्रवैदिकः, परमर्षेः सूत्रं, 'अथातोधर्मजिज्ञासा' । 'चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मइति' ॥ ३० ॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ ३२ ॥
विश्वेश्वरि ! त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥

हे देविविवेकाः युक्तायुक्तविचाराः दीपाइचमहातमः पटलपाटनपटवः तेषु । विद्यासुचतुर्द्दशसुदीपायमानासुआन्वीक्षिक्यादिषु । यद्वा, विद्यासुज्ञानप्रदमन्त्ररूपासु । शास्त्रेषुमनुस्मृत्यादिषुतथाद्येषुवाक्येषु वैदिकेषु पुराणेषु विद्यमानेषु । अनादरेसप्तमी तान्यनादृत्यतज्जन्यविवेकमपनीय । अतिमहान्धकारे ममत्वगर्ते एतद्विश्वं अतीवविभ्रामयसि । सात्वदन्याका त्वमेव विष्णुमाया विश्वंमोहयसिममत्वे योजयसि नान्या । विभ्रामयसीत्यनित्यो'मितांह्रस्वः' । यद्वा, हेदेवि! आद्येषु वाक्येषु शास्त्रेषु शोभनेषुआर्थेषु शास्त्रेषु या चित्संविद्विदुषीवा । त्वद्देवीतः अन्याका कापि । त्वमेवविज्ञान्येतिभावः । अथच हेदेवि ! एतद्विश्वंकर्मअति महान्धकारेतमोगुणरूपे । ममेत्यव्ययं, ममत्वंगर्त्तइव, तस्मिन् ममत्वगर्त्तेमोहकूपे अतीवविभ्रामयसिव्यालोडयति । यासात्वदन्या नास्ति । विभ्रामयतीति अन्यशब्दस्यशेषत्वात् प्रथमपुरुषः त्वदन्यः कोभुङ्क्ते मदन्यः कोभुङ्क्ते मदन्योऽन्योभुङ्क्ते त्वदन्योऽन्योभुङ्क्ते इतिवत् ॥ ३१ ॥

हे देवि! त्वंतत्रचतत्रस्थितासती विश्वंपरिपासि क्वचक्वचेति, यत्र च रक्षांसि दैत्याः उग्रविषाःनागाःतक्षकादयः यत्रचअरयः शत्रवः यत्रचदस्युबलानि चौरसमूहाः । यत्रच दावानलः तथायत्रचाब्धिमध्यन्तत्रसर्वत्र उपद्रवप्रसङ्गे स्मृतासती पतितान् रक्षसीत्यर्थः । 'दवदावौवनारण्यवह्नी' ॥ ३२ ॥

हेदेवि! त्वंविश्वेश्वरि इतियदतः त्वं विश्वंपरिपासि । यद्वा, विश्वेश्वरी विश्वव्यापिनी असि अतः विश्वंपरितोरक्षसि । यद्वा, हेविश्वेश्वरि इतिपाठः । हेदेवि!त्वंविश्वात्मिकाऽसि इतिहेतोः विश्वंधारयसि । भवतीविश्वस्यईशः स्रष्टा

देवि! प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते र्नित्यं यथा सुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगताञ्च (म्प्र) शमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि! विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ ३५ ॥

देव्युवाच

वरदाहं सुरगणा वरं यं मनसेच्छथ । तंवृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥

देवा ऊचुः

सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि !। एवमेव त्वयाकार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्

रक्षितासंहर्ताच ब्रह्मादिः तस्यवन्द्या अभिवादनीयास्तुत्याचवर्त्तते । हेदेवित्वत् त्वयित्वयिविषयेभक्तिनम्राः स्युः तेविश्वस्याश्रया आधारभूताः जगतांधारयिता रोभवन्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

हेदेवि त्वं नोऽस्माकं प्रसीद । यथैवाधुनाइदानीं शुम्भाद्यसुरवधाद्धेतोःपर्यलीलः तथैवाग्रेऽपिसम्भावितया अरिभीतेः नित्यम्परिपालय हेदेवि त्वं सर्वजगतां पापानिप्रशमंक्षयंआशुक्षिप्रंनय । नयतिर्द्विकर्मकः अथचलोकानां अत्रह्यधर्मउत्पातशब्देनविवक्षितः । नाशहेतुत्वात्तस्यपाकः परिणामः तेनजनितानुपसर्गानुपद्रवान्वधपातादीनाशु प्रशान्तिं प्रापयेतिवयंदेवाः त्वदेकशरणाःप्रार्थयामहेततः प्रसीदेत्यर्थः । आशुउत्पातेत्यत्रसन्धिरविवक्षितः । आशुह्युत्पातेति वापाठः ॥ ३४ ॥

विश्वस्यार्तिंहरतिहेविश्वार्त्तिहारिणि!त्वंप्रणतानाम्भक्तिनम्राणांप्रसीद। त्रयोलोकाः त्रैलोक्यं चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थेष्यञ् । तत्र वसन्तियेतेषांतैर्वाहे ईड्येस्तुत्ये । कृत्यानांकर्त्तरिवाषष्ठी । लोकानाम्वरदाऽभीष्टदाभव ॥ ३५ ॥

हे सुरगणाः अहंयुष्माकंवरदाऽस्मिप्रीतास्मियंवरंमनसाइच्छथ । तं जगतां उपकारकंवरं वृणुध्वंअहंप्रयच्छामि । दाणो यच्छः । वृञ्वरणे आत्म-

देव्युवाच

वैवस्वतेऽन्तरेप्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे । शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येतेमहासुरौ

नन्दगोपगृहे (कुले) जाता यशोदागर्भसम्भवा ।

ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ३९ ॥

नेपदंध्वम् । 'सवाभ्यावामौ' । 'स्वादिभ्यःश्नुः' । वृणीध्वमितिपाठेक्र्यादिः लोटोध्वम् । 'ईहल्यघोः' 'प्वादीनांह्रस्वः' यं तं इतिपुंसि । 'देवाद्वृतेवरंश्रेष्ठे त्रिषुक्लीवंमनाक्प्रिये' । वृणुध्वंप्रार्थयध्वमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

हे अखिलस्यविश्वेश्वरिव्यापिकेहेत्रैलोक्यस्वामिनि! त्वयात्रैलोक्यस्य सर्वबाधाप्रशमनं सर्वदुःखोपशमनम् । सर्वाबाधेतिपाठे । आङभिव्याप्तौ, आसमन्ताद्बाधाआबाधा । अस्माकंवैरिणोदैत्या तेषांविनाशनंएवंविधंजगदुपकारकं कार्यंकर्त्तव्यंइतिवरप्रार्थनम् । यद्वा हेदेविअखिलेश्वरि । त्वयात्रैलोक्यस्यउपकारकंकर्मएतत्कार्यंकर्त्तव्यम् । कीदृशं तत् । सर्वबाधानांप्रशमनंअस्मद्वैरिणांविनाशनम् ॥ ३७ ॥

हेदेवाः शृणुतपूर्वंजगदुपकृत्यैएतेपराक्रमामयाकृताः । अतःपरंएष्यतोऽपिमत्कर्त्तव्याञ्जगदुपकारान् भवतामपितोषायकथयामि । वैवस्वतमन्वन्तरे भविष्यत्यष्टाविंशतिमेयुगेप्राप्तेसतिशुम्भोनिशुम्भश्चान्यावेवनत्विदानीं निहतौयौ । ततोऽन्यावेवशुम्भनिशुम्भनामानौदैत्यौउत्पत्स्येतेउद्भविष्यतः । अष्टभिरधिका विंशतिःअष्टाविंशतिः 'द्व्यष्टनःसंख्यायामि'त्यात्वंअष्टाविंशतेयुगानांकृतादीनांपूरणंयद्युगंविष्णोरष्टमावतारोपलक्षितन्तदष्टाविंशतितमं 'तस्यपूरणेडडि'तिडट्प्रत्ययस्यविंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्'इतितमडागमः । तत्रपृषोदरादित्वात्तशब्दलोपः । यत्तुकश्चिदाह । माङ्मानेस्त्रियांभावेसम्पदादित्वात्क्विप् । मानंमाअष्टाविंशतिमानंमायस्ययुगस्येतिवाष्टाविंशतेरिवमानंयस्ययुगस्येतिवाविगृह्यबहुव्रीहौनपुंसकेह्रस्वत्वेअष्टाविंशतिमंयुगन्ततःसप्तम्येकवचनेअष्टाविंशतिमेइति । ता-

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४० ॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४१ ॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४२ ॥

वन्मानेःक्विपि'घुमास्थादिना'इत्वप्रसङ्गो दुर्निवारस्तिष्ठतुयुगमन्यपदार्थाः । कथं-स्यात्यावतायुगानां अष्टाविंशतिःतत्परिमितापियुगरूपाअष्टाविंशतिसङ्ख्याका एवान्यपदार्थाइतिअष्टाविंशतितममेवयुगंद्वापरंतद्रूपंकलियुगादिरूपंनसेत्स्यतीति। यथापञ्चसुपाण्डवेषुपञ्चमः सहदेवः तत्रमागमः पञ्चमाः मानंयस्यसइत्युक्तेपञ्चानां पूरणःसहदेवोन्यपदार्थत्वेननगृह्यते । किन्तुपञ्चाऽपितेमिलिताः पञ्चत्वसंख्यापरि-मिताः इतिपञ्चपरिमिताः पञ्चमाइतियुधिष्ठिरादयः पञ्चाप्यन्येपदार्थतयागृह्यन्ते। नतुसहदेवएवतस्मात्प्रागुक्तएवअष्टाविंशतिमेवाव्युत्पत्तिः । पृषोदरादित्वेनसैव सम्याअष्टाविंशतिमेयुगेद्वापारान्तेकलियुगादौप्राप्ते । 'यानाद्यङ्गे युगः पुंसि युगं युग्मेकृतादिषु' ॥ ३८ ॥

ततोऽहं नन्दगोपस्यकुलेगृहे । 'कुलंवंशेगृहेऽपितत्' । जाताउत्पन्ना । य-शोदायानन्दगोपस्त्रियाः गर्भात्सम्भवोजन्मयस्याः सा । विन्ध्याचलनिवासिना सतीतौशुम्भनिशुम्भाख्यावसुरौनाशयिष्यामि ॥ ३९ ॥

अहंपुनरपिवैवस्वतमन्वंतरएवाष्टाविंशतिमेयुगेद्वापरेऽतीतेकलौयुगेप्राप्ते विरुद्धाप्रजासुचित्तिर्ज्ञानंयस्यविप्रचित्तिर्नामकश्चिद्दानवःतस्यापत्यानिवैप्रचित्ताः तानतिरौद्रेणरूपेणपृथ्वीतलेअवतीर्यप्रादुर्भावंउपेत्यहनिष्यामि । 'तुस्याद्भेदेच धारणे' ॥ ४० ॥

तान्वैप्रचित्तान्महासुरानुग्रान्रौद्रानभक्षयन्त्याः ममदन्ताः रक्ताआर-

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ ४३ ॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्त्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४४ ॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४५ ॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ ४६ ॥

क्ताएवभविष्यन्ति अतएवदाडिमीपुष्पवदरुणवर्णाः भविष्यन्ति ॥ ४१ ॥

ततोहेतोः मांस्तुवन्त्यःदेवताःस्वर्गेसततंशश्वत्रक्तदन्तिकासञ्ज्ञयाव्याहरिष्यन्तिकथयिष्यन्ति । देवाएवदेवताः । स्वार्थेतल् । तथामानवाश्चमर्त्यलोकेभुविमांसततंस्तुवन्तः रक्ताः दन्तायस्यासारक्तदन्तिकातांस्तोष्यन्ति ॥ ४२

भूयश्चपुनरपिशतं वर्षाणिपरिमाणंयस्याः शतवार्षिकी । 'तदस्यपरिणाममिति'वुञ् । तद्धितार्थेसमासः । वर्षस्याभविष्यतीत्युत्तरपदवृद्धिः । वर्षाल्लुक्चेतिपाक्षिकोलुक् । स्त्रियां ङीप् । तस्यांअनावृष्टौसत्यांअनम्भसिनदीतडागादावपिजलशून्यायाम्भूमौमुनिभिः संस्तुता । अयोनिजासम्भविष्यामिस्वयमेवाविर्भविष्यामि ।नआसमन्ताद्वृष्टिरनावृष्टिः । यद्वा,नास्त्येवासमन्ताद्वृष्टिर्यस्यांईतौसाऽनावृष्टिः तस्याम् । संस्तुतासंस्मृतेतिपाठद्वयम् ॥ ४३ ॥

ततः प्रादुर्भावानन्तरंनेत्राणांशतेनस्तोतॄन्मुनीन् निरीक्षिष्यामीतियत् ततो हेतोर्मान्मनुजाः शतमक्षीणियस्याः शताक्षीतांइतीत्थमन्वर्थसञ्ज्ञयाकीर्त्तयिष्यन्तिईक्षदर्शने अनुदात्तेत् छान्दसंपरस्मैपदम् । निरीक्षिष्ये यतोमुनीनितिवा पाठः ॥ ४४ ॥

हेसुराः!ततःशताक्षीतिसङ्कीर्त्तनादनन्तरंअहंआत्मदेहसमुद्भवैः ममशरीरा

पुनश्चाऽहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले।
रक्षांसि क्षय (भक्ष) यिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ॥ ४७ ॥
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ ४८ ॥

दुत्पद्यमानैः शाकैः प्राणधारकैः हरीतकैः पत्राद्यैः साधनैः आवृष्टेः आभविष्यन्तीं वृष्टिमवधिंकृत्वायावद्वृष्टिर्भवतितावन्तंकालंअखिलंसमस्तंलोकंभरिष्यामिपोषयिष्यामिडुभृञ्धारणपोषणयोः 'ऋद्धनोःस्ये'इतीडागमः । 'अस्त्रीशाकंहरितकम्' । शाकाख्यपत्रपुष्पादि। यदाहुः'पत्रमूलकरीराग्रफलकाण्डास्थिरूढकाः। त्वक्पुष्पं कवकश्चेतिशाकंदशविधंस्मृतम्' ॥ ४५ ॥

तदाभुविशाकम्भरीतिविख्यातिसंज्ञाश्चयास्यामिप्राप्स्यामि। तत्रैवतदैवचदुर्गमाख्यंमहासुरंदुर्गमंनाममहान्तमसुरंचधिष्यामि। 'जनिवध्योश्चे'तिनिर्देशाद्वधिः प्रकृत्यन्तरमस्तीतिविज्ञेयम्। वधहिंसायांभ्वादिः परस्मैपदी। हनिष्यामीतिवापाठः। शाकमितिमान्तमव्ययञ्चास्ति। विभर्त्तिइतिभरिः 'सर्वधातुभ्यइः'। 'कृदिकारादक्तिनोवाङीष्वक्तव्यः' सुप्सुपेतिसमासः। शाकम्भरिः ॥ यद्वा,फलेग्रहिरात्मम्भरिश्चेतिचकारोनुक्तसमुच्चयार्थः। तेनलोकभरणार्थंस्वशरीरोद्भवानिशाकानिविभर्त्तिशाकम्भरिः। इप्रत्ययः। उपपदस्यनुमागमश्च। 'पाठ्याख्याश्चधातूनांदृश्यन्तेस्वैरिणःक्वचित्'। तस्माद्दुर्गासुरवधाद्धेतोः विख्यातंप्रसिद्धंमेदुर्गादेवीतिविख्यातंनामधेयम्भविष्यति। दुर्गासुरोहन्तव्यत्वेनयस्याः सादुर्गा। अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्स्त्रियांटाप् ॥ ४६ ॥

हेदेवाः पुनश्चयदाहिमाचलेभीमंघोररूपंकृत्वारक्षोभ्यः त्रस्तानांमुनीनां त्राणकारणाद्धेतोः रक्षांसिराक्षसानभक्षयिष्यामि। क्षययिष्यामिपाठेक्षयंप्रापयिष्यामीति'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थेबहुलमिष्ठवच्चे'तिणिच्अथवाक्षयप्रेरणेचुरादिः। प्रेरयिष्यामीत्यर्थः॥ ४७ ॥

यदारुणाख्यस्त्रैलोक्येमहाबाधांकरिष्यति । तदाहंभ्रामरंरूपंकृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ॥ ५० ॥
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुति-
वर्णनंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥
सप्तशत्यामेकादशः ॥

तदामांदेवींआनम्रमूर्त्तयः भक्तिप्रह्वकायाःसन्तः सर्वेऽपिमुनयश्चवसिष्ठाद-
यः स्तोष्यन्ति । तत्ततः भीमरूपेणरक्षोभक्षणाद्धेतुतः विख्यातंप्रसिद्धंभीमादेवी-
तिविश्रुतंनामभविष्यति । बिभ्यत्यस्मादितिभीमम्भीमादयोऽपादाने निपाति
ताः ॥ ४८ ॥

हेदेवाः! यदात्रैलोक्येअरुणोनाममहासुरःमहाबाधांमहतींपीडां करिष्य-
ति । लोकान्बाधिष्यतेअतितरां तदाअहंअसंख्येयषट्पदम्भ्रामरंरूपंभ्रमरसम्बन्धि-
नींमूर्त्तिंकृत्वात्रैलोक्यस्यहितार्थायअरुणंमहासुरंवधिष्यामितदालोकाः सर्वत्रमां
भ्रामरीत्येवस्तोष्यन्तिभ्रमरस्येयंआकृत्याभ्राभरीदेवी । असङ्ख्येयाःसङ्ख्यातुम-
शक्याः षट्पदाः भ्रमरमूर्त्तिर्भूत्वाअरुणासुरंहनिष्यतिततःसाभ्रामरीतिनाम्नालोकैः
सङ्कीर्त्तयिष्यतेसर्वत्रेत्यर्थः । अरुणस्यापत्यंपुमानारुणइतिच्छेदेअतइञंबाधित्वा
शिवादित्वादण्वा ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इदानींदेव्यावताराणांतत्कार्याणांचानंत्यात्साकल्येनवक्तुमशक्यत्वात्सं-
क्षिप्यतत्कथामुपसंहरति । हेदेवाः इत्थमुक्तानुसारेणप्रकारेणयदायदादानवेभ्य

द्विनवतितमोऽध्यायः

(द्वादशोऽध्यायः)

श्रीमद्देवीचरित्रपठनमाहात्म्यवर्णनम्

देव्युवाच

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां शम (नाश) यिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥

उत्तिष्ठतिउत्थास्यतिवादानवोत्थादानवेभ्यः समुद्भवाबाधापीडालोकानांभविष्यतिउत्पत्स्यते। तदातदाअहंतत्तत्कार्यानुरूपमवतीर्यप्रादुर्भावमवाप्यअरिसंक्षयंशत्रुविनाशंककरिष्यामि। दानवोत्थेतिसुपिस्थः कः कर्तरि ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीमदु० शन्तनु० देवीमा०टीकायांनारायणीस्तुतिर्नामैकनवतितमोध्यायः ॥ ९१ ॥

देव्युवाच। यद्यपि प्रागपिदेवान् देव्येवोवाचतथाप्यध्यायादौ देवीवचनस्य प्राधान्यंध्वनयितुंदेवीमाहात्म्याध्ययनश्रवणादिफलप्राप्तिप्रामाण्यं च दर्शयितुंदेव्येवोचितांवाचं देवानुक्तवती। यः पुरुषः समाहितः।भक्तिश्रद्धान्वितो भूत्वा एभिःप्रागुक्तैः स्तवैः स्तोत्रैः पुनःपुनः नित्यंअविकल्पितं यथा भवति तथा शश्वद्वामांदेवींस्तोष्यते तस्यपुंसःसकलांबाधांशमयिष्यामिअसंशयंसंशयाभावः। अर्थाभावेऽव्ययीभावः। यद्वा, असंशयंयथास्यात्तथास्तोष्यते क्रियाफलेकर्तृगतेञित्वादात्मनेपदम्। एभिरितिब्रह्मकृतैरिन्द्रादिदेवकृतैश्च। हंसःसूर्यः परमात्मा।

मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनम् । कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ।

'असावादित्योब्रह्मे'तिश्रुतेः । हंसस्यकलाहंसकला । बाध्यन्तेप्राणिनोऽनयाबाधा संसृतिः अविद्यमानाह सकला ब्रह्मविद्यायस्यांसा अहंसकलाबाधा मोहरूपा ममतासंसृतिः । तां बाधां असंशयंशमयिष्यामीत्यपिमुक्तिकामैरवगन्तव्यम् । 'रविश्वेतच्छदौहंसौ' । यद्वा, एभिःस्तवैःमांयःस्तोष्यतेतस्याऽहङ्कारकृतांसकलां बाधांसंसृतिंशमयिष्यामि ॥ १ ॥

त्रयाणामन्वयैक्यं, ये पुरुषाएकचेतसः संतः सावधानाः सन्तः अष्टम्यां नवम्यां चतुर्द्दश्यांच पक्षद्वयेऽपिविशेषानुक्तितः यथाक्रममनपेक्ष्य मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनंच तद्वच्छुम्भनिशुम्भयोर्वधंचभक्त्या कीर्त्तयिष्यन्ति पठिष्यन्ति तद्वदेवयेश्रोष्यन्तिभक्त्या मममाहात्म्यं उत्तमं पुण्यतमं सर्वकामदुघं तेषांदुःकृतं दुरितं सर्वसञ्चितंनकिञ्चिदपिभविष्यतिदुःकृतोत्थाआपदश्चनभविष्यन्तिविनश्यन्तीत्यर्थः । न तेषां दारिद्र्यं भविष्यति आढ्यतैवभविष्यतीत्यर्थः । न च तेषां इष्टैःसहचेतनैरचेतनैश्चपुत्रादिभिर्द्धनादिभिश्चवियोजनं वियोगो भविष्यति । मधुकैटभयोर्नाशं यस्मिन्ग्रन्थेसतथोक्तः । हतनंघातः तस्यकरणंघातनंण्यन्तात् ल्युट् । महिषासुरस्यघातनम् । सूदनं वा इतिपाठः । षूदक्षरणेहिंसायां च । वधोयस्मिन्ग्रन्थेप्रतिपाद्यतेसवधः । अर्शआदित्वादच्तं । शुम्भनिशुम्भयोरिति द्विवचनेनवधद्वयंसूच्यते । तेनवधानांवैषम्यादष्टम्यादिदिनत्रयेणयथाक्रमकीर्त्तनशङ्कापिदूरीकृता । एकमनन्यवृत्तिचेतोयेषांते । भजनंभक्तिरनन्यशरणतयाश्रयणम् । महान्तआत्मनः अवतारायस्याःसामहात्मादेवी तस्या भावः माहात्म्यम् ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥
शत्रुतो न भयं तेषां (तस्य) दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित् सम्भविष्यति ॥ ५ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यञ्च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् (हि तत्) ॥ ६ ॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातंमाहात्म्यंशमयेन्मम

ये मम माहात्म्यंकीर्त्तयिष्यन्ति स्तोष्यन्ति च तेषां कदाचिदपिशत्रुतो-भयंनसम्भविष्यति । दस्युतः तस्करतोऽपिवा न । राजतोऽपिनृपान्न नशस्त्रतः आयुधतः न अनलतोऽग्नितः । न तोयौघात् जलप्रवाहात् न सम्भविष्यतीत्यनेन सर्वत्र सम्बध्नाति ॥ ५ ॥

तस्माद्वाञ्छितार्थसाधनत्वाद्धेतोः समाहितैः सावधानैः कृतप्रयत्नैः पुंभिःपरं प्रकृष्टंमहत्पूजनीयम् । स्वस्त्ययनंक्षेमकरं अयनंवर्त्ममदेव्याएतन्माहा-त्म्यंग्रन्थसन्दर्भरूपंपक्त्या पठितव्यंश्रोतव्यं च । एतन्माहात्म्यमिति बहुव्रीहिः । ग्रन्थसन्दर्भरूपोऽन्यपदार्थः । शब्दस्यैव : पठनश्रवणयोग्यत्वेनविषयभावात् । एतदितितुपृथक्पदत्वे माहात्म्यम्प्रतिपाद्यन्तद्यत्रास्तिग्रन्थबन्धेसोऽप्युपचारान् मत्वर्थीयेनअर्शआद्यचावामाहात्म्यशब्देनोच्यतइतिपठनश्रवणयोग्यंद्रष्टव्यम् । 'स्व-स्त्याशीःक्षेमपुण्येषु मङ्गलेचाव्ययंस्मृतम्' ॥ ६ ॥

ममदेव्याः माहात्म्यंकर्त्तृ भक्तितः पठतां भक्तितःश्रृण्वतां च पुंसांमहामारी समुद्भवान् सर्वानुपसर्गान् उपद्रवान् शमयेद्दूरीकुर्यात् । तथातेषां पुंसांत्रिविधं उत्पातं आध्यात्मिकं आधिदैविकमाधिभौतिकं । आध्यात्मिकं शरीरोत्पन्नंराग द्वेषादिकंव्याध्यादिकं च । आधिभौतिकं भूतप्रेतादिकजनितं भयभ्रमादिकम् । आधिदैविकंदेवकृतंवज्रपातादिकं दारिद्र्यादिकं च । यद्वा, भूर्भुवःस्वःसम्भव-मुत्पातत्रयंशमयेत् । भौमंभूकम्पादिकं आन्तरिक्षं अनभ्रगर्जनादि । स्वर्लोक-

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ् नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ८ ॥
बलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे । सर्वंममैतच्चरितमुच्चार्यंश्राव्यमेव च ॥ ६ ॥

जनितमसकृदनेकोडुपतनम् । महामारीतिमृङ्प्राणत्यागेस्त्रियामिक् कृष्यादिभ्यः छान्दसोगुणः । यद्वा, औणादिकः सर्वधातुभ्यइन् । स्त्रियांकृदिकारादक्तिनो वाङीप् । महतीमरीमहामारी । 'अन्येषोमपिदृश्यत' इतिपूरुषवद्दीर्घः । महामार्याःसमुद्भवाः । यद्वा, मरणंमरःऋदोरप् मरस्येयंप्रवृत्तिर्मारी । यद्वा, मारयतिमारः कालःमारस्यभावः मार्यं भावेष्यञ् । मार्यमेवमारीस्त्रियांषित्वात् ङीष् ॥ ७ ॥

यत्र ममायतनेगृहेप्रतिमादिमन्दिरे एतत्प्रागुक्तचरितत्रयोपेतं माहात्म्यं नित्यम्प्रतिदिनंसम्यगर्थतः पदतश्चशुद्धंपठ्यते भक्तितः पुम्भिः । तदायतनंसदा न विमोक्ष्यामिनत्यक्ष्यामि । तत्रगृहेखलुमेदेव्याः सांनिध्यं संनिधानं समवस्थानं स्थितंस्थितिमदभूत् ॥ ८ ॥

बलिप्रदानेपूजाया मग्निकार्येमहोत्सवेच सर्वंएतन्ममचरितं उच्चार्यं अवश्यम्पठनीयम् । 'ऋहलोर्ण्यत्' श्राव्यं अवश्यंश्रोतव्यं च 'ओरावश्यकेण्यत्' । यद्वा, ण्यन्तादच्चोयत् । श्राव्यंश्रावयितव्यंसर्वंजपनीयम् । एकदेशजपेतुछिद्रतास्यात् । महानवम्यादौ छागमेषमहापशुभिर्बलिदानं देवतोद्देशेन पशुसमर्पणम् । ददातेर्ल्युट् । पूजापुष्पोपहारदीपादिसमर्पणम् । यद्वा, अलङ्कारवस्त्रस्रक्चन्दनवाहनच्छत्रचामरादिभिः कुमारीसुवासिनीसमर्चनम्पूजा । अग्निकार्यंफाल्गुने मासि अग्निज्वालार्चनंदेवीमाहात्म्यरूपमालामन्त्रपुरश्चरणान्ते विहितहोमोऽग्निकार्यम् । एतत्त्रयलक्षणोमहोत्सवः । यद्वा, चैत्रेवसन्तोत्सवः । वैशाखेवारणपुष्पप्रचायिकोत्सवः । ज्येष्ठे जलक्रीडोत्सवः । आषाढे इन्द्रध्वजोत्थानोत्सवः श्रावणेदोलोत्सवः । भाद्रपदेइन्द्रपाणिधनुरर्चनोत्सवः । आश्वयुजिशारदोत्सवः ।

जानताऽजानता वापि वलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीच्छि (क्षि) ष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ १० ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥
सर्वांवाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसुता(सम)न्वितः।मनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंशयः

कार्त्तिकेदीपोत्सवः ।मार्गशीर्षेमनूदयोत्सवः। पौषेनिधिपूजोत्सवः। माघेमेरूत्सवः। फाल्गुनेगन्धर्वोत्सवः। एतेषुसम्पूर्णदेवीचरितंपठनीयंइतिभावः। यद्वा, महोत्सवः सर्वश्रुतिपारायणम्। यद्वा, वदतेः कर्त्तरिक्विप्। वदतीष्टदेवतां इतिउत्देवी प्रणवः। महानुउत् मन्त्रो यत्र समहोत्सचासौसवश्चेतिमहोत्सवः। मन्त्र-दीक्षाख्योयज्ञः तस्मिन्। यद्वा, उन्दीक्लेदने, उन्दनंउत्। स्त्रियाम्भावेसम्पदा-दिभ्यः क्विव्वावक्तव्यः उदः सवोदीक्षायज्ञः उत्सवः सुधोत्सवः सुधोत्सवोयत्र मन्त्रग्रहेमहोत्सवः तस्मिन्॥ ६ ॥

तथातेनप्रकारेण ,इतिकर्त्तव्यतां गुरूपदिष्टेष्टदेवताराधनसामग्रीभावनी-योपक्रमोपसंहृतिक्रियाक्रमज्ञानताअजानतावापिभक्तिमतापुंसाकृतं बलिंवलिप्रदानं तथा तेन कृतांपूजांच। तथातेनकृतंवह्नौहोमंतिलमध्वादिहोमद्रव्यप्रक्षेपंचप्रीत्याऽ-हम्प्रतीच्छिष्यामिस्वीकरिष्यामि। 'पतच्छ्रितंप्रतीच्छंस्यात्'। पतच्छ्रयणम्प्र-तीच्छा। प्रतीच्छास्त्यस्यप्रतीच्छः कश्चित्। अर्शआदित्वादच्। ततःतद्वदा-चरतीत्याचारेक्विप्। सनाद्यन्तत्वाद्धातुत्वात्प्रतीच्छधातोर्भविष्यतिकालेलृट् स्यप्रत्ययः सिप् इडागमः। 'अतोलोपः'। इण्कोः। 'आदेशप्रत्यययोः षत्वम्'। प्रतीक्षिष्यामीतिपाठे ईक्षदर्शने अनुदात्तेत्त्वनिबन्धनमात्मनेपदविधानमनित्यमि-तिचक्षिङोङित्करणं ज्ञापकमित्युक्तत्वात्परस्मैपदम्। वलिपूजां इत्येकपदत्वे तु वलिनापशुविशसनेन सहकृतापूजा वलिपूजा। वलिरूपावा पूजासत्का-रः तम्। ॥ १० ॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यंतथाचोत्पत्तयःशुभाः । पराक्रमञ्चयुद्धेषुजायतेनिर्भयःपुमान्
रिपवः संक्षयंयान्तिकल्याणञ्चोपपद्यते । नन्दतेचकुलंपुंसांमाहात्म्यंममशृण्वताम्
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथादुःस्वप्नदर्शने । ग्रहपीडासुचोग्रासुमाहात्म्यंशृणुयान्मम

युग्मम् । याचप्रसिद्धावार्षिकी महापूजा शरत्कालेक्रियतेतस्यांविषये मम एतन्माहात्म्यं चरित्रत्रयलक्षणं भक्तिसमन्वितः मनुष्यः पठित्वा श्रुत्वा च यथायोगं मत्प्रसादेन सर्वबाधाविनिर्मुक्तः धनधान्यसमन्वितः भविष्यति संशयोनाऽत्रकर्तव्यः । वर्षेणनिर्वृत्तावार्षिकी साम्वत्सरिकी 'तेननिर्वृत्तमि'तिठक् । स्त्रियांङीप् । सर्वाबाधेतिपाठे आसमन्ताद्बाधा आबाधा ॥ ११ ॥ १२ ॥

एतच्चरित्रत्रयलक्षणं मम माहात्म्यं भक्तितः श्रुत्वागुरुतोगृहीत्वार्थावबोधपर्यंतमधीत्यचपुमान् युद्धेनिर्भयोजायते । तथाममशुभाः जगदभ्युदयकरीः पृथगुत्पत्तीः ब्रह्माण्यादि महाशक्तिरूपप्रादुर्भूतीः श्रुत्वाह्यकलव्ययुद्धेनिर्भयोजायतेतथा मम पराक्रमांश्चवीरकर्माणिचश्रुत्वा । यद्वा, । युद्धे षुममपराक्रमांश्चश्रुत्वानिर्भयोजायतेपुमान् । तथाचोत्पत्तयः शुभाइतिपाठे'व्यत्ययोबहुलं' इतिशसः प्रसङ्गे जसः प्रयोगः छान्दसः । युद्धेष्वितिबहुवचनमन्येष्वपिभयकारणेषुनिर्भयत्वार्थम् । युमिश्रणेअदादिः । सम्पदादित्वाद्भावेस्त्रियांक्विप् । ययनं युत् मिश्रणंपापसम्पर्कःतस्यांयुति । यद्वा, युज्बन्धनेक्र्यादिः ययनं युद्धं धनं तस्यांयुति । ओहाङ् । गतौसम्पदादित्वात् क्विप् । हीनंहाः निरयादिगतिःतस्याम् । इःकामःतत्रविषये । युच्चहाश्चइश्चयुद्धयः । तेषुयुद्धेषु ॥ १३ ॥

भक्तितः मम माहात्म्यं शृण्वतांपुंसांरिपवःशत्रवः संक्षयंयान्तिकल्याणं च मङ्गलं उपपद्यते । पदगतौदिवादिः । उपसमीपंगच्छति । उपजायते इतिवापाठः । कुलंगोत्रं च नन्दते टुनदिसमृद्धौपरस्मैपदी । कर्त्तरिकर्मव्यतिहारेइत्यात्मनेपदम् । यद्वा, ण्यन्तात्कर्मकर्त्तरियगात्मनेपदं च । 'संततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ । कुलंगृहेचतालांकेभूमिग्राहिणितुत्रिषु' ॥ १४ ॥

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नश्च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥
वालग्रहाभिभूतानां वालानां शान्तिकारकम् ।
सङ्घातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १७ ॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां वलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥

उत्पातादिसूचितोपद्रवाणां सर्वत्रसर्वस्मिन् शान्तिकर्मणितथादुःस्वप्नदर्शनेदुष्टफलस्वप्नदर्शने । उग्रासुअत्यनिष्टफलासुग्रहकृतासुपीडासु मम माहात्म्यंशृणुयात्पुरुषःततःसववाधोपशान्तिर्भवतिसर्वेष्टार्थसिद्धिश्चेतिभावः ॥ १५॥

पूर्वोक्तंपुनर्व्यनक्ति । मम माहात्म्यश्रवणादुपसर्गाः वाधाः अतिवृष्ट्यादयः शमं यान्ति । यद्वा, उपसर्गाउत्पाताः प्रकृतिविरुद्धेतयः । 'अजन्यंक्लीवउत्पात उपसर्गः समंत्रयम्' । तथाततएवदारुणाः भयानकाः ग्रहपीडाः शन्यादिकृतावाधाशमंशान्तिंयान्ति । नृभिः दृष्टंदुःस्वप्नंसुस्वप्नमुपजायते । दुःस्वप्नसूचितं यद्दुष्टं फलं तत्सुस्वप्नसूचितमिवफलं,संपद्यतइतिभावः । अतर्कितप्राप्यफलोहिमणिमन्त्रौषधदेवताप्रभावः । दुःस्वप्नसुस्वप्नयोर्नियतेपुँल्लिङ्गत्वेऽपिवहुव्रीहौफलेऽन्यपदार्थेविवक्षितेनपुंसकतोपपत्तिः । अर्द्धर्चादौस्वप्नशव्दो नास्त्येव । अन्यथाऽस्यपुंनपुंसकतोपपद्येत । दुःस्वप्नश्चेतिपाठोवा ॥ १६ ॥

वालानांशिशूनांग्रहाः पीडकाः पूतनादयः श्मशानादिवासिनोदृष्टिवंधिगलवन्ध्यंत्रवन्धिनाभिवन्धिशुक्रवन्ध्युपस्थवन्धिरुधिरशोषिपिशितशोषिमूत्रशोषिलालाशोषिप्रभृतयश्चतैरभिभूतानामाक्रान्तानां शान्तिकारकं उपशमनकारणं मम माहात्म्यश्रवणाद्युतममाश्रयणीयम् । किं च नृणांएककार्यकारिणां कथंचित्परकृतोच्चाटनप्रयोगतः सङ्घातभेदेप्रसक्तेसतिमन्माहात्म्यश्रवणमेवोत्तमं मैत्रीकरणं मित्रत्वकरणसाधनम् ॥ १७ ॥

दुष्टं वृत्तं चरितं येषां तेदुर्वृत्ताः तेषामशेषाणांपरं श्रेष्ठंवलहानिकरंवल-

सर्वंममैतन्माहात्म्यं ममसन्निधिकारकम् । सर्वंकृत्स्नमेतदादिमध्यावसानलक्षणम्
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ १६ ॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् । अन्यैश्चविविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेणया
प्रीतिर्मेक्रियतेसाऽस्मिन्सकृदुच्चरितेश्रुते । श्रुतंहरतिपापानितथाऽऽरोग्यंप्रयच्छति

नाशहेतुः मन्माहात्म्यं । कृत्रोहेतौष्टः । किंच रक्षसां मायोपजीविनां भूतानां बालग्रहादीनां पिशाचानां पिशिताशनानां तामसानां च पीडकानामदृश्यरूपाणां मम माहात्म्यस्यपठनादेवनाशनं दूरीकरणं भवति ॥ १८ ॥

ममसान्निध्यकारकं नैकट्यकारकम् । सन्निधिकारकं इतिपाठेऽपिसंनिधिः संनिधानं इतिव्याख्याश्रयणात्सएवार्थः । यद्वा, सन्निधिः महानिधिः महापद्मादिः तस्यकारकंप्रापकंपठ्यमानंसदितिभावः ॥ १६ ॥

युग्मं पुम्भिरेभिः प्रकारैर्वत्सरेणयाक्रियतेमेमह्यंप्रीतिःसाऽस्मिन्सन्माहात्म्ये सकृदेकवारमेव उच्चरिते पठिते श्रुतेवाभक्तिमद्भिः सर्वकामदुघोपार्जितेवस्यात् । पशुभिः चतुष्पद्भिः छागमेषमहिषमातङ्गादिभिः द्विपाद्भिर्महापशुभिश्च नरैः पुष्पैः सुरभिसम्भृतैः अर्घैः पूजांगैर्मधुघृतादिभिः धूपैः कर्पूरागरुमृगमदादिगर्भितैर्बहुरूपादिभिर्नानाकृतिगन्धादिभिः चशब्दात् श्रीवासादिधूपागृह्यन्ते । तैर्गन्धैः गन्धसारघनसाररक्तचन्दनमृगमदकंकोलकालागरुकुङ्कुमादिभिः दीपैः कर्पूरघृतादिप्रवर्त्तितैर्माणिक्यमहोभिरुपकल्पितैः सूर्यमहोभिश्चन्द्रमहोभिरुडुमहोभिः परमात्मपरज्योतिर्भिश्चोपकल्पितैः । अतएवैवम्विधैरुत्तमैः श्रेष्ठतमैः । तथाउत्तमैर्विविधैर्विप्राणां कर्त्तव्यैर्भोजनैः षड्रसोपेतैर्भोज्यैरन्नादिभिरुचितैः । तथाविविधैर्होमैः । तथाऽहर्निशंदिवानिशंविविधैः प्रेक्षणीयैर्दर्शनीयैर्नृत्यगीतवाद्यैः । तथान्यैश्चविविधैः भोगैः तथादानैर्मत्प्रीत्यर्थैर्विविधैः । च शब्दाद्वस्त्रालंकारपूजादिभिः साधनैः वत्सरेणयामेप्रीतिः सकलकामदुघाभक्तैः क्रियते साऽस्मिन्प्राक् प्रपञ्चितेममाहात्म्येसकृदेकवारंभक्त्या उच्चरितेपठितेश्रुतेवासा-

रक्षाङ्करोति भूतेभ्यो जन्मनांकीर्तनं मम। । युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥
अस्मिन् (तस्मिन्) श्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युस्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २३ ॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु (यास्ता) प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् (गतिम्)।
अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि दावाग्निपरिवारितः ॥ २४ ॥

धयितुंसुगमेत्यर्थः। यद्वा, सकृत्सहद्विन्नैः पुंभिः पञ्चषैः सप्ताष्टैरेकद्वित्रिचतुरैरेकतयोच्चरितेश्रुतेवेत्यर्थः। 'सहार्थेमैकवारेचसहार्थेवाव्ययंसकृत्'। 'सकृत्सुचरितेश्रुते' इतिपाटे श्रुतशब्दतः श्रवणप्राधान्यंसुचरितेशोभनेचरिते प्रोक्षणीयैरहर्निशं इतिपाटेतुकश्चिदाह। मन्त्रपूतजलोक्षणसंस्कृतहतच्छागादिपशुबलिरितितन्न। पशुपुष्पार्घधूपैरितिपशुग्रहणेनपौनरुक्त्यप्रसङ्गात्। ततइत्थंत्वर्थोऽत्रवक्तव्यः। उक्षसेचने। प्रत्यहंपंचामृताभिषेकैरविच्छिन्नपीयूषधाराभिषेकैर्वेति ॥ २० ॥ २१ ॥

ममदेव्या माहात्म्यस्यश्रुतं श्रवणं कर्तृ पापानि हरति अपनयति नपुंसकेभावेक्तः'। तद्योगेषष्ठ्येव। यद्वा, মममाहात्म्यं श्रुतं सत् पापानिहरति। तथाभजतां आरोग्यं प्रयच्छतिदानप्रतिग्रहाभावात् षष्ठ्येव। मम जन्मनां उत्पत्तीनां ब्रह्माण्यादिरूपतयाप्रादुर्भावानां कीर्त्तनं कथनंभूतेभ्यः हिंस्रेभ्यः भूतप्रेतपिशाचसिंहव्याघ्रग्रहादिभ्यः भक्तानां रक्षांकरोति ॥ २२ ॥

युद्धेषुयद्दुष्टदैत्यवर्हणं मे देव्याःचरितं शस्त्रप्रयोगलक्षणंसङ्ग्रामकौशलमभूत्तस्मिञ्छ्रुतेसतिश्रुतवतां पुंसां युद्धेषुततोऽन्यत्र च वैरिकृतं भयं न जायते। निबर्हयति निवर्हणम्। नन्दादित्वाल्ल्युः। दुष्टानां दैत्यानां निवर्हणंचरित्रम्। ॥ २३ ॥

सुमेधसा मार्कण्डयेन च ततः पूर्वैश्चब्रह्मर्षिभिः याः स्तुतयः कृताः 'तथापिममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः महामायाप्रभावेणे'त्यादयः ताश्च शुभां

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वाऽपि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ २५ ॥
राज्ञा क्रुद्धेन वा (चा) ज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपिवा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ २६ ॥
पतत्सुचापिशस्त्रेषु संग्रामेभृशदारुणे । सर्वाबाधासु घोरासुवेदनाभ्यर्दितोऽपिवा स्मरन्ममैतच्चरितंनरो मुच्येतसङ्कटात् । ममप्रभावात्सिंहाद्यादस्यवोवैरिणस्तथा
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ २८ ॥

गतिम् प्रयच्छन्ति पठ्यमानाः पठ्यद्भ्यःपुंभ्यः याश्चब्रह्मणामधुकै[illegible]मभीतेनकृताः स्तुतयः विश्वेश्वरींजगद्धात्रीमित्यादयः । अथ च युष्माभिरेवकृताः स्तुतयः 'देव्यायया ततमिदंजगदात्मशक्त्ये'त्यादयः । 'नमोदेव्यै'इत्यादयश्च । 'देवीप्रपन्नार्त्तिहरेप्रसीदे'त्यादयश्च । तास्त्रिविधाःस्तुतयः ॥ २४ ॥

एकान्वयमिदंश्लोकचतुष्टयम् । अरण्येविपिनेवावर्त्तमानःममदेव्याएतच्चरियंस्मरन्नरः सङ्कटाद्दुःखघटनान्मुच्येत स्वयमेव । सङ्कटनातुसम्बाधः कर्मकर्त्तरिमुचेर्लिङ् । तथा प्रान्तरेवापि दूरेजनशून्यमार्गे । 'प्रान्तरं दूरशून्योऽध्वा' तथा दावाग्निपरिवारितः सन्नपि वा । तथादस्युभिः तस्करैर्वृतः वेष्टितोवा । तथाशून्येनिर्जनप्रदेशे शत्रुभिर्गृहीतोवा । तथा सिंहेन व्याघ्रेणवाऽनुयातोऽनुद्रुतः। तथावनहस्तिभिर्वृतोवाहन्तुं अनुयातः । तथा क्रुद्धेन राज्ञावध्योऽयंवधार्होऽयमित्याज्ञप्तः । हंतुमाज्ञापितोवा । तथा बन्धगतोऽपिवा । तथा वातेनघूर्णितः व्याकुलितः बाधितोऽपास्तोवा । महार्णवेसमुद्रेपोतेनौकाविशेषे सांयात्रिकाः पोतवणिजः कथ्यन्ते;तत्रस्थितोवा 'पानपात्रेशिशौपोतः' । तथा भृशदारुणेत्यर्थं भीषणेसङ्ग्रामेशस्त्रेष्वायुधेषुपतत्सु । सर्वाबाधासु, सर्वाआसमन्ताद्बाधाः महाबाधाःतासु । सर्वबाधास्वितिपाठे स एवार्थोभवत्यदूरविकर्षात् । घोरासुव्रणपीडासुवर्त्तमानोवा । तथा वेदनासुतत्तद्दुःखानुभवेषु अभ्यर्द्दितः वर्त-

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वासाभगवती चण्डिकाचण्डविक्रमा । पश्यतामेवदेवानांतत्रैवान्तरधीयत
तेऽपिदेव्यानिरातङ्काःस्वाधिकारान्यथापुरा । यज्ञभागभुजःसर्वेचक्रुर्विनिहतारयः
दैत्याश्चदेव्यानिहते शुम्भेदेवरिपौयुधि । जगद्विध्वंसिनितस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे
निशुम्भे च महावीर्य्ये शेषाःपातालमाययुः । एवंभगवतीदेवीसानित्यापिपुनःपुनः

मानः यद्वा, तीव्रवेदनयाऽभ्यर्दितः हिंसितोऽपिवा सर्वत्रैतन्ममचरितंस्मरन्नरः सङ्कटान्मुच्येत स्वयमेवेतियोजनीयम् । इहारण्ये प्रान्तरेवापीत्यतः श्लोकात्पूर्वं सिंहव्याघ्रानुयातोवेतिपठन्तिकेचित् । अतश्चममप्रभावात्सिंहाद्याइत्युपपन्नम्भवति ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

ममप्रभावात्सामार्थ्यात्सिंहाद्याः तथा दस्यवः तस्कराः तथावैरिणश्चशत्रवः चरितंस्मरतः पुरुषात्सकाशाद्दूरादेव पलायन्ते ॥ २९ ॥

इत्थं उक्त्वा सा भगवती चण्डविक्रमा प्रगल्भवीर्या चण्डिकादेवी पश्यतामेवदेवानां तत्रैवपुरोभाग एवान्तरधीयत । अन्तर्धानमगात् । अदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिर्व्याख्येयाः । अन्तःपूर्वाद्धधातेः कर्मकर्त्तरिलिङ् । यद्वा, तान् देवान्त्रायते इतितत्त्रापालयन्ती सत्येवस्वयमन्तरधीयत । 'आतोऽनुपसर्गेकः' । यद्वा, तत्रैवदेवशरीरेष्वेवान्तरधीयत । स्वयमेवशरीरेष्वेवान्तर्न्यलीयतेत्यर्थः । पश्यतां इत्यनादरेषष्ठीतिपक्षेयथा जननी सुतान्व्याजतोऽनादृत्यालोकनान्तर्धत्ते- तथेयमपिसर्वजननीदेवदर्शनतोऽन्तरधीयतस्वयमेवेतिभावः ॥ ३० ॥

अथ तेदेवा अपिदेव्यापिनिहतारयःनाशितशत्रवः अतएव यथापुरापूर्वकालइवनिरातङ्काः कृच्छ्रजीवनतोनिर्भयाः यज्ञभागभुजःयज्ञांशान् भुञ्जानाः सन्तः स्वाधिकारान्स्वव्यापाराञ्चक्रुःकृतवन्तः ॥ ३१ ॥

युधिसङ्ग्रामेदेव्यातस्मिञ्जगद्विध्वंसिनि त्रैलोक्यभञ्जिनिमहोग्रे अतुलविक्रमे अनुपमशक्तौ देवरिपौ ससैन्ये शुम्भेमहावीर्ये निशुम्भे च निहते सतिशेषाः

सम्भूय कुरुते भूप! जगतः परिपालनम्। तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते॥
सायाचिताचविज्ञानंतुष्टा ऋद्धिंप्रयच्छति। व्याप्तंतयैतत् सकलंब्रह्माण्डंमनुजेश्वर!

दैत्याः पातालमाययुःबलिसद्मप्राविशन्। चशब्देन ससैन्ये इतिविशेषेणंलभ्यते पतन्त्यस्मिन्नितिपातालम् ॥ ३२ ॥

हे भूप! एवं उक्तरीत्या सा भगवती नित्याऽपिध्रुवा अविनश्वरा अविकारापिसती पुनः पुनः सम्भूयप्रादुर्भावमवाप्यजगतःपरिपालनं कुरुते। उक्तञ्च प्रागपि 'नित्यैवसाजगन्मूर्तिरि'ति। 'देवानांकार्यसिद्धयर्थमि'ति च ॥ ३३ ॥

सैवदेवी विश्वम्प्रसूयतेजनयति। षूङ्प्राणिप्रसवेदिवादिः। तथैव हेतुभूतया एतद्विश्वंमोह्यते। मुहवैचित्येदिवादिः। अविवेकेनयोज्यते। ममतासहितं क्रियते। सादेवीभक्तैः याचितासती विज्ञानं च प्रयच्छति। सैवदेवी तुष्टासती तपसाजनितसन्तोषासती वृद्धिं च सम्पदं च महतींप्रयच्छति ददाति। तुष्टाऋद्धिं इतितुपाठे असंहिताया निर्देशःकृतः। 'ऋत्यक'इतितुप्रकृतिभावेतस्या कः स्थानेह्रस्वत्वेचसती तुष्टऋद्धिंइतिस्यात्। 'स्वट्वऋश्य'इतिवत्। 'सायाचितार्थविज्ञानं'इतिपाठे। अर्थेषु विज्ञानमितिविग्रहः। एतत्प्रागप्युक्तं, 'तन्नात्र विस्मयःकार्यो योगनिद्राजगत्पतेः। महामायाहरेश्चैतयेति' ॥ ३४ ॥

हेमनुजेश्वरसुरथ! महामारीस्वरूपया तयामहाकाल्या महातामस्या महादेव्या एतत्सकलं ब्रह्माण्डं त्रैलोक्यगर्भकंस्थानंव्याप्तम्। महाकालेप्रलयसमये, महांश्चासावकालश्चेति महाकालः अनिष्टकालः। यद्वा, महांश्चासौकालश्चमहाकालः कालाग्निरुद्रः तस्मिन्नुपस्थिते महाकाले महतिप्रलयसमये। महांश्चासौकालः कालाग्निरुद्रः तस्येयंस्त्रीमहाकालीतया। मारयतिसंहरतिमारः महांश्चासौमारश्चमहामारःरुद्रःतस्यस्त्रीमहामारीसा स्वरूपंयस्याः सादेवी महामारीस्वरूपातया। यद्वा, 'महउद्धवउत्सवः'। महान् उत्सवानासमन्तान् मारयतिनाशयति महामारी महाप्रलयानलज्वाला तस्याइवरूपंयस्याःसातया।

महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया । सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा
स्थितिं करोति भूतानांसैवकालेसनातनी । भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदागृहे
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ।
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा (गतिं) शुभाम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येदेवीचरित्र-
माहात्म्यवर्णनंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सप्तशत्यांद्वादशः ॥

'मृत्युजिह्वामहामारी जगत्संहारकारिणी । महारात्रिर्महानिद्रा महाकाल्याति-तामसी । सैवकालानलज्वाला सैवाविद्यातमःप्रसूः । सैवमोहप्रसूर्मृत्युःसैव-सर्वाधिदेवता' ॥ ३५ ॥

अजाजन्मरहितासनातनी नित्यादेवीकाले भूतानांप्रलयसमयेतमोगुण-मयीसतीमहामारीतिकथ्यते । तथाकालेउत्पत्तिसमये सैवभूतानांसर्गसमयेरजः प्रधानास्थितिंकरोति ॥ ३६ ॥

भवकालेदेवीसांनिध्य भवकालेनृणां गृहेसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा । सम्प-द्धव५दामवति । प्रेदाङ्गःकः तथासैवदेवी अभावेदेवीसांनिध्याभावेऽलक्ष्मीः सम्पदःविनाशायाभवायउपजायते । यत्रलक्ष्मीःतत्रदेव्याःसान्निध्यम् । यत्रदेव्याः सान्निध्यं न तत्र सम्पदपिनेत्यन्वयव्यतिरेकौवेदितव्यौ ॥ ३७ ॥

नित्यन्देवीसान्निध्यकारणंतत्फलंचोपदिशति सुमेधाऋषिः । हेनृप! सादेवी स्तुतास्तावकैः पदैः संकीर्तिताच तथा पुष्पैः सम्पूजिता च तथा गन्धैः कर्पूरचन्दनमृगमदादिभिर्विलिप्ता तथाधूपैर्बहुविधैर्धूपिता । तथा आदिग्रहणा-

त्रिनवतितमोऽध्यायः

(सप्तशत्यां त्रयोदशोऽध्यायः)

सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानवर्णनम्

ऋषिरुवाच

एतत्ते कथितंभूप! देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । एवम्प्रभावासादेवीययेदंधार्य्यते जगत्

द्वस्त्रालङ्कारताम्बूलादिभिरानन्दिताभक्तैः प्रणता चसती अप्रार्थितैवभक्तेभ्यःवित्तं धनं पुत्रांश्च आयुरारोग्यमैश्वर्यं च शब्दसूचितं धर्मेमतिं च शुभांगतिञ्च ददाति । यदुक्तं प्राक् । 'सा विद्यापरमामुक्तेर्हेतुभूनासनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव-सर्वेश्वरेश्वरी' ॥ ३८ ॥

इति मार्कण्डेयेराजाधिराजतोमरान्वय श्रीमदुद्धरणात्मज शन्तनुचक्रवर्ति-विरचितायां देवीमाहात्म्यटीकायां देवीचरित्रवमाहात्म्यर्णनंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

———

ऋषिरुवाच । सुमेधाभगवानृषिः सुरथं राजानमुचितां वाचमूचे हे सुरथ एतदुत्तमंश्रेष्ठतमंसर्वार्थसाधनं ते तुभ्यं कथितम् । साच देवी एवं प्रभा-वाईदृग्विधसामर्थ्यावर्त्तते । सा का ययादेव्यासर्वजनन्यासर्वपोषिण्यासर्वसं-हारिण्याइदंजगविश्वंधार्यते सृज्यते पाल्यते । प्रत्यवसीयतेच यथाकालम् । धृङ्अवस्थानेणिच् । कर्मणियक् । आत्मनेपदंचलटः । 'क्रियावाचित्वमा-माख्यातुमेकोत्रार्थः प्रदर्शितः । प्रयोगतोऽनुसर्त्तव्या अनेकार्थाहिधातवः' । म-हात्मनोमहामूर्त्तेर्देव्याभावेकर्मणि ब्राह्मणादित्वात्ष्यञिनस्तद्धितेतिटिलोपेमा-हात्म्यंइतिसिद्धम् ॥ १ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया। तयात्वमेषवैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्तिचापरे। तामुपैहि महाराज!शरणं परमेश्वरीम्॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ३ ॥

भगवद्विष्णुमाययातथैवचण्डिकयैवविद्याज्ञानं क्रियते उत्पाद्यते। परमात्मज्ञानसाधनं देव्येवोपनिषद्रूपेतिभावः। विष्णोर्माया विष्णुमाया भगवतीविष्णुमाया भगवद्विष्णुमायातया। यद्वा, भगवान् विष्णुः भगवद्विष्णुः तस्यमाययायदुक्तं 'साविद्यापरमामुक्तेर्हेतुभूता'इति। 'ऐश्वर्यस्यसमग्रस्यधर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैवषण्णांभगइतीरणा'। हे राजन् तयामोहरूपयादेव्या त्वं विवेकीसन्नपिसम्प्रतिमोह्यसेप्राक् मोहितोभूः भविष्यतिचकाले मोहमेष्यसिच। तथातथैवएषवैश्यश्च समाधिर्नाममोह्यतेमोहितश्च मोहमेष्यति च। तथैवतथैवयुवाभ्यामन्येऽपिविवेकिनः पुमांसः अधिगतशास्त्राः सन्तोऽप्यपरे च तेभ्यश्चान्येचसर्वेतथैव देव्यामोह्यन्तेमोहिताश्च मोहमेष्यन्तिच। यदुक्तंप्राक् 'तथापिममतावर्त्तेमोहगर्त्तेनिपातिता'इत्यादि ॥ २ ॥

प्राक् राज्ञा'भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्वतदि'तियद्रहस्यं पृष्टं हेमहाराजसुरथ त्वं तां परमेश्वरीं देवीं शरणंउपेहि। उपइहिआद्गुणः उपगच्छ शरणंव्रज। सैवदेवीभगवत्येवाराधितातपसातोषितासतीनृणां पुंसां भोगस्वर्गापवर्गदाभुविभोगदा। जन्मान्तरेस्वर्गदा। ततः अपवर्गदामोक्षदाभवतियतोज्ञानदा। ततएवमोक्षदा। 'ज्ञानादेवतुकैवल्यमि'तिसिद्धान्ततः। सम्प्रदानाभावाद्रजकस्यवस्त्रं ददातीतिवत्सम्बन्धेषष्ठ्येव नृणामिति। उपपूर्वइण् गतौ। 'सेह्यपिच्च'। उपइहिइतिस्थिते। 'एत्येधत्यूठ्सु' इतिवृद्धिर्नतद्विधावेचीत्यनुवर्त्तते। ततआद्गुण एवंबाधकाभावात्। आङ्पूर्वत्वेपि आइहि इतिस्थिते। वृद्धिंबाधित्वा 'ओमाङोश्चे'तिपररूपत्वेसतिउपेहीत्येवरूपम्। उपैहीतिवृद्धिकृतः पाठः छान्दसः क्वाचित्कः 'सर्वेविधयश्छंदसिविकल्पन्ते'इतिवच-

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वासुरथः स नराधिपः। प्रणिपत्यमहाभागंतमृषिंशंसितव्रतम्
निर्विण्णोऽतिममत्वेनराज्यापहरणेन च। जगाम सद्यस्तपसेसच वैश्यो महामुने!
सन्दर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः। सचवैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन्

नात्। यद्वा, एहीत्येतद्विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययं पृषोदरादित्वात्साधुः। उपएहिउपैहि। महाराज। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'। नपूजनात् पूजायांस्वतिग्रहणम्। 'अश्नोतेराशुकर्मणिवरट्चेच्चोधायाः' परमांईश्वरीम् ॥ ३ ॥

युग्मं। ऋषिरुवाच। मार्कण्डेयोभगवान्मुनिः स्वशिष्यंक्रौष्टुकिंमुनिवाचमुचितामूचेहेक्रौष्टुकिमुनेआकर्णय। इतिप्रागुक्तप्रकारेणतस्यसुमेधसोब्रह्मर्षेःवचःश्रुत्वा देवीमाराधयेतिउपदेशवाक्यमाकर्ण्यसुरथोनामनराधिपःतं सुमेधसं महाभागंसंशितव्रतंऋषिंप्रणिपत्यप्रणामैराराध्य। पुत्रमित्रकलत्रादावतिममत्वेनअतिमोहेनशत्रुभिःराज्यापहरणेनचहेतुना निर्विण्णःदुःखितमानसः 'सन्सद्यः सपदितपसेजगाम। तथासमाधिर्नामवैश्यश्चतपसेजगाम। भगस्यऐश्वर्यादेरिदं भागंमहद्भागंयस्यमहाभागः तं। संशितंयत्नेनप्रतिपादितंव्रतंयस्ययेनससंशितव्रतः तं। शोतनूकरणे। कर्मणिक्तः।शाछोरन्यतरस्याम्। 'शातेरित्वंव्रतेनित्यमितिवक्तव्यम्'। शंसितव्रतं इतिपाठेशंसतेः कर्मणिक्तः। शंसावासज्ञातायस्यशंसितंव्रतंशास्त्रोक्तंउपवासादियस्यतं शंसुस्तुतौ। निर्विणस्योपसंख्यानमिति णत्वं। विद्लृलाभेविदविचारणेवाक्तः जिष्ठानत्वम् ॥ ४ ॥ ५ ॥

अम्बायाः जगज्जनन्यादेव्याः संदर्शनार्थंप्रत्यक्षीकरणाय। नद्याःपुलिनेद्वीपेतटविशेषेवासंस्थितः सैकतेदेशेसम्यगवस्थितः सराजाचसुरथःसवैश्यश्चसमाधिर्नामपरंश्रेष्ठंसर्वार्थप्रदंकेवलंदेवीसूक्तंवैदिकमृग्विशेषमंत्रन्देव्यधिदैवतंदेव्यांसुष्ठुशोभनमुक्तंप्रणीतं देव्यां वाविषयेसूक्तमुपदिष्टमाचार्यैरागमीयंदेवीप्रणवमन्त्रिगर्भं वाएतदेवचाचरित्रत्रयञ्जपन्तपः तेपे। केचित्त्वाग्रहणादम्बामातामातृकेतिमातृ-

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्त्ति महीमयीम् ।
अर्हणाञ्चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥ ७ ॥
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।
ददतुस्तौ वलिञ्चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ८ ॥

कामंत्ररूपंदेवीसूक्तमाहुः । अपरेतुदेवीसूक्तंपृथगस्तिरहस्येतज्जपमित्याहुः । अन्येत्वाहुश्श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तानिदेवीसूक्तानीति । 'संस्थाधारेस्थितौमृतौ'तपस्तपः कर्मस्यैवेतितपः कर्त्ताकर्मवद्भवति । उपवासादीनितपांसितापसन्तपन्ति दुःखयन्तिसतापसःत्वगस्थिभूतः स्ववांछितस्वर्गाद्यर्थंतपः तप्यते । तपसंतापेलिट्तिपःतेपेतपोऽर्जितवानित्यर्थः । अन्यकर्मकत्वेतुउत्तपतिस्वर्णंसुवर्णकारः ॥ ६ ॥

तौद्वौराजासुरथः वैश्यश्चसमाधिः तस्मिन्नद्याः पुलिनेतटविशेषे'तोयोत्थितन्तत्पुलिनम्' । तत्रदेव्याःमूर्त्तिआकृतिंमहीमयींमृण्मयींप्रतिमांविधाय'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोरि'तिविकारावयवायाः मह्याः मयट् । तस्याःदेव्याः अम्बिकायाः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः पुष्पैः धूपैः अग्निकार्यैर्होमैः तर्पणैश्चविहितैः तैरुचितैः अर्हणांपूजां आराधनंचक्राते । पृथक्पृथक्विदधाते 'मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः' 'पूजानमस्यापचितिःसपर्याचार्हणाःसमाः'पुष्पाणिधूपाःअग्नयःतर्पणानिचतैः ॥ ७ ॥

'निर्निश्चयनिषेधयोः'निराहारौहविष्यादिनातावन्निश्चिताशनौ । ततः क्रमशोमूलाशनौ । यतात्मानौविषयेभ्योऽव्यावर्त्तितमनोनेत्रादिज्ञानेन्द्रियौनिर्जितेन्द्रियग्रामौ । 'तावज्जितेन्द्रियोनस्यात् विजितान्येन्द्रियः पुमान् । नजयेद्रसनं यावज्जितंसर्वंजितेरसे' । तन्मनस्कौ । तस्यामेवाध्यातुंमनोययोस्तौ तथोक्तौदेवीध्यानपरौ समाहितौ गुरुपदिष्टार्थसावधानौ । निरस्तसंशयौबहुविघ्नपरिहारपरौ । तौसुरथवैश्यौ । निजगात्रासृगुक्षितम् । तपश्चरणकारणकालेपरहिंसापराङ्मुखौईषच्छरीरोद्भवरक्तसिक्तमेवान्नमयंबलिश्चददतुः । 'तुण्डजम्वाहुजंवा-

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः। परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षं प्राह चण्डिका

देव्युवाच

यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूप!त्वयाचकुलनन्दन! । मत्तस्तत्प्राप्यतांसर्वंपरितुष्टाददामि तत्

मार्कण्डेय उवाच

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि। अत्रैवच निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्

पिरक्तमांसमयम्बलिम्। भक्त्यावेशान्महाशूरोमहामायार्थमुत्सृजेत्'चशब्दान्निज-शरीरजरुधिरचन्दनविलेपनञ्चदेव्यैददाते। 'एतेनशरीरंवापातयामिमन्त्रंवासाध-यामी'तिहठयोगः सूचितः॥ ८॥

एवंउक्तप्रकारेणसमाराधयतोः त्रिभिर्वर्षैः यतात्मनोः देव्यामवहितचेत-सोः तयोः क्षत्रियवैश्ययोः परितुष्टा। तत्कृतेनतपसाऽतिप्रीता। जगतांधात्री चण्डिकादेवीप्रत्यक्षंभूयः प्राहकथयामासप्राहेतिविभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। यतः चण्डिकाजगद्धात्रीततः तयोः तापसयोः प्रत्यक्षीबभूव। अन्यथातत्कृतेनघोरेण तपसाग्निनेवजगन्तिदह्येरन्नेवेतिभावः। जगन्तिदधातिजगद्धा,आतोनुपसर्गेकः अदभक्षणेतृन् तृज्वाअत्त्री संहर्त्री। यद्वा, ओहाक्त्यागेअतोऽपिकेजगन्तिजहातिज गद्धाततोत्त्रीभोक्त्री॥ ९॥

देव्युवाच। देवीचण्डिकाराजानंसुरथंवैश्यञ्चसमाधिनामानंवाचमूचे यत्प्रार्थ्यतइति हेभूप त्वयायत्प्रार्थ्यतेहेकुलनन्दनकुलवर्द्धनवैश्यत्वयायत्प्रार्थ्यतेया-च्यते। तत्वस्तुसर्वंमत्तः देवीतः सकाशात्प्राप्यतांलभतां अहंपरितुष्टाऽस्मि। तच्च तच्चतेचतेचददामिच। कुलस्यनन्दनः वैश्यः यतोऽसौकुलात्सकाशाल्लक्ष्मींनगृह्ण ष्यतिमोक्षकामत्वाद्वैराग्यभाक्त्वादितिभावः। द्वितीयार्द्धेप्रार्थ्यतामितितुकचि त्पाठः सपुनरुक्तः। प्राप्यतामितितुपठ्यताम्। यद्वा, वैश्यापेक्षयानपौनरुक्त्यम्। त्वयाचप्रार्थ्यतामिति वदामितत्ददामितेचइतिपाठद्वयं क्वापिदृश्यते॥ १०॥

मार्कण्डेयमुनिः स्वशिष्यं वाचमूचे ततः देवीतः ततः देव्युक्त्यनन्तरंवा

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १२ ॥

देव्युवाच

स्वल्पैरहोभिर्नृपते! स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ।
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ १३ ॥

नृपः सुरथः अन्यजन्मनि एतज्जन्मापेक्षया अन्यदग्रिमम्भावियज्जन्म तस्मिन् । अविभ्रंशिअचलं राज्यं राज्ञोभावः कर्म वा राज्यं वव्रेप्रार्थयामास । मन्वन्तरत्वरूपम् । अथच, अत्रअस्मिन्नपिजन्मन्यविभ्रंशि । भ्रंशुअधःपतनेणिनिः । नविभ्रंशः अविभ्रंशः तद्युक्तस्वा । अत्रैवनिजेनगरेहतशत्रुवलंनिजंआत्मीयं आत्मीयं राज्यमेववव्रे प्रार्थयामास । हतंशत्रुवलंयत्रतथोक्तम् । वृञ्वरणेकर्त्तरिलिडात्मनेपदम्वव्रे । 'स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषुवलंनाकाकसीरिणोः' ॥ ११ ॥

ततोऽनन्तरम् । प्राज्ञःमोक्षकाङ्क्षित्वादतिरांवुद्धिमान् निर्विण्णमानसः संसारदुःखोद्विग्नचेतस्कः । स समाधिर्नामवैश्योऽप्यतिविरक्तःसन् ज्ञानंमोक्षवुद्धिं वव्रे । कीदृशं, ममेत्यहमित्येवं सङ्गविच्युतिकारकम् । ममायंपुत्रोऽहंपिता ममेदंकुलमहंभर्त्ता । ममेदंधनमहंस्वामीतस्येत्याद्यध्यासजनितः यःसङ्गःतस्यविच्युतिः विलयः तस्याः कारकं करणम् । ममत्वंनाममोहः संसृतिः अहंता च संसृतिः तद्विलयकारकं ज्ञानमितिभावः । अतस्मिंस्तद्बुद्धिरध्यासः । तेननिःसंगस्यैवात्मनोममत्वमहं त्वं सर्वदुःखावहः संगः सर्वात्मनाभाव्यते । तस्य सङ्गस्यपरमात्मरूपब्रह्मज्ञानंविच्युतिकारकंभवति । ममताचाहंताचसङ्गः संसर्गोऽपेक्षावुद्धिःद्वैतज्ञानंभेदनिवन्धनं तस्य विच्युतिकारकं विच्छेदजनकं मोक्षोपयोगिज्ञानम् ॥ १२ ॥

हे नृपते हे सुरथ! भवान् स्वल्पैरहोभिः दिवसैः कतिपयैर्वासरैः रिपून् हत्वास्थितवतः अस्खलितं अचलितं तव राज्यम्भविष्यति । तवराज्यं तच्च

मृतश्चभूयःसम्प्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः। सावर्णिकोनाममनुर्भवान् भुविभविष्यति

वैश्यवर्य्य! त्वयांयश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः।

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाऽभिलषितं वरम्।

तत्रेतिपाठद्वयम्' तत्रान्तरेराज्यान्तरे च॥ १३ ॥

देव्युवाच। हेभूप भवान् मृतः सन्नपिएतच्छरीरं परित्यक्तवानपिभूयः पुनरपिविवस्वतः सूर्याद्देवात्सवर्णायाश्चतत्पत्न्या जन्मउत्पत्तिंसम्प्राप्य सावर्णि-कोनाममनुःराजाभुविभविष्यति। सावर्णिरेवसावर्णिकः संज्ञायांकन्। वर्णेन सहितः सवर्णः ततः स्त्रीभ्योढकंबाधित्वा बाह्वादिपाठादिञिसावर्णिः सूर्यतनयो योमनुःकथ्यतेऽष्टमः ॥ १४ ॥

हेवैश्य हेवर्य !। यद्वा, हे वैश्येषुवर्यश्रेष्ठ त्वयाअस्मत्तः देवीतः यः वरः अभिवाञ्छितः अस्तितंवरं संसिद्ध्यै परमात्मरूपसङ्गत्यै प्रयच्छामि। ततश्च वरदानतः तवज्ञानम्भविष्यति। 'मोक्षधीर्ज्ञानमुच्यते'। अस्मत्तइति पञ्चमी बहुवचनं तस्मिन्। अतश्चैकत्वाभावात् 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति मादेशाभावः। ननुवअस्मत्त इतिबहुवचनोपक्रमात्प्रयच्छाम इतिबहुवचनेनभाव्यम्। तत्कथं प्रयच्छामीत्येकवचनंस्यात्। एवं तर्हिअस् मत्तः इतिच्छेदः। असुक्षेपणे। अस्यतिक्षिपति संसारंनिराकरोति। अस्, क्विपिरूपं वरस्यविशेषणम्। एक-त्वात् मादेशः। अयस्मयादित्वात् भत्वापदत्वाभावाद्रुत्वाद्यभावः। क्वचित्तु वैश्यवर्यत्वयामत्तो वरोयश्चाभिवांञ्छित इतिवापाठः। यद्वा, 'व्यत्ययो बहुलं' इतिएकवचनस्यबहुवचनम्। ततश्चास्मत्तइत्येवपाठः। वरणार्होवर्यः। 'क्लीबेप्रधानं प्रमुखप्रवेकानुत्तमोत्तमाः। मुख्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्होनवरार्द्ध्यवत्' ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयः मुनिः स्वशिष्यंवाचमूचिवान्। हेक्रोष्टुकिमहर्षे। इति

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥ १६ ॥

एवंदेव्यावरंलब्ध्वा सुरथःक्षत्रियर्षभः। सूर्याज्जन्मसमासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये

सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानवर्णनंनाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

समाप्तैषासप्तशती ॥

उक्तप्रकारेणतयोः क्षत्रियवैश्ययोः सुरथस्यचसमाधेश्च। तथाभिलषितं अभिवाञ्छितं अनतिक्रम्यअभीष्टंवरंदत्त्वा । भक्त्याताभ्यां लब्धवराभ्यां अभिष्टुता त्वं जगतां स्रष्ट्रीरक्षित्रीसंहर्त्रीं जननीत्यभिष्टुता संस्तुतासतीसद्यः सादेवी भगवती चण्डिकासपद्यन्तर्हिताबभूव। अदृश्याऽभूत् ॥ १६ ॥

हे क्रोष्टुकिमहर्षे! एवं प्रागुक्तप्रकारेण सुरथः क्षत्रियर्षभः श्रेष्ठःक्षत्रियः देव्याः भगवत्याः सकाशाद्वरंलब्ध्वाप्राप्य। इहराज्यमनुभूय ततःतनुं त्यक्त्वा सवर्णायां सूर्याद्देवाज्जन्मसमासाद्य सम्प्राप्यसावर्णिर्नाममनूराजाभुविभविता। कर्त्तरिभविष्यदनद्यतनेलुट्। भविष्यतीत्यर्थः। मनुरित्ययंसप्तशतिकास्वरूपो-महामालामन्त्रः सर्वेषामधीयतां सर्वकामधुगिति सूचियितुमवसाने प्रायोजि भगवता श्रीमार्कण्डेयेनेतिसिद्धम् ॥ १७ ॥

समाप्तिश्लोकाः

सन्तः सन्तुपरप्रयोजनकृतः कल्पद्रुमाभाः सदा स्वस्मिन्नेवपथिप्रवर्त्तनःपराः सत्कीर्त्तयश्चापरे। अन्येनिस्पृहणाश्रितश्रुतिपथा दीव्यन्तु भव्याशयाः-कोकन्तः कलहप्रियाः खलजना जायन्तु जीवन्तु ते ॥ १ ॥

सत्कृतिबालदिवाकरबिम्बं सज्जनमानसराजसरोजम्। सम्विकसेद-

भिपश्यदवश्यं नश्यति दुर्जनवत्कुमुदं तत् ॥ २ ॥

यावद्भूमिमुदित्वरद्युतिमणिश्रेणिस्फुरन्मूर्द्धसु (यत्)फूत्कारपयोधिकानन गिरिव्रातोल्लसत्फलम् ।धत्तेशेषमिवाहिमद्भुतवचास्वस्थीकृताशेषगीस्ताव'च्छा-न्तनवी' तदा जयतु च श्रीचण्डिकादीपिका ॥ ३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीराजाधिराजतोमरान्वय श्रीमदुद्धरणात्मज-
शन्तनुचक्रवर्त्तिविरचितायां देवीमाहात्म्यटीकायां देवीमाहात्म्यं
नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

———

समाप्तेयं शान्तनवीटीका'सप्तशतिकायाः ।

अपरं पुस्तकम्वीक्ष्य शोधनीयं सदाबुधैः । हीनाधिकैःस्वरैर्वर्णैरस्माकं दूषणंसदा

—:०:—

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

रौच्यमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदंसम्यक् प्रोक्तंमन्वन्तरं तव । तथैवदेवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम्
उत्पत्तयश्चया देव्यामातृणाञ्च महाहवे । तथैवसम्भवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभवः
शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधःशुम्भनिशुम्भयोः । रक्तवीजवधश्चैव सर्वमेतत्तवोदितम्
श्रूयतां मुनिशार्दूल! सावर्णिकमथापरम् । दक्षपुत्रश्चसावर्णो भावीयोनवमोमनुः

कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः ।
पारामरीचिभर्गाश्च सुधर्माणस्तथा सुराः ॥ ५ ॥
एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्वे द्वादशका गणाः ।
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥ ६ ॥
साम्प्रतं कार्त्तिकेयो यो वह्निपुत्रः षडाननः ।
अद्भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥ ७ ॥
मेधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान् द्युतिमांस्तथा ।
सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्यो हव्यवाहनः ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुर्वर्हकेतुः पञ्चहस्तो निरामयः । पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान् भूयरिम्नो वृहद्भयः
एते नृपसुतास्तस्यदक्षपुत्रस्यवैनृपाः । मनोस्तुदशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज!
मन्वन्तरेचदशमेब्रह्मपुत्रस्यधीमतः । सुखासीनानिरुद्धाश्चत्रिःप्रकाराःसुराःस्मृताः

शतसङ्ख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः ।
यत् प्राणिनां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥ १२ ॥
शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ।
सप्तर्षींस्तान् निबोध त्वं ये भविष्यन्ति वै तदा ॥ १३ ॥

आपोमूर्तिर्हविष्मांश्च सुकृतीसत्यएवच । नाभागोऽप्रतिमश्चैव वाशिष्ठश्चैव सप्तमः
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूमिसेनश्चवीर्यवान् । शतानीकोऽथवृषभोह्यनमित्रो जयद्रथः
भूरिद्युम्नः सुपर्वा च तस्यैते तनयामनोः । भविष्याधर्मपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरंशृणु

विहङ्गकाः कामगाश्च निर्माणरतयस्तथा ।
त्रिःप्रकारा भविष्यन्ति एकैकस्त्रिंशतो गणाः ॥ १७ ॥

मासर्तुर्दिवसा येतु निर्माणपतयस्तुते । विहङ्गमारात्रयोऽथमौहूर्त्ताःकामगागणाः

इन्द्रोवृषाख्यो भविता तेषां प्रख्यातविक्रमः ।
हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणिः ॥ १६ ॥

निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्यो महामुनिः । सप्तर्षयोऽन्तरेतस्मिन्नग्निदेवश्च सप्तमः
सर्वत्रगः सुशर्म्माच देवानीकः पुरूद्वहः । हेमधन्वादृढायुश्च भाविनस्तत्सुतान्नृपाः
द्वादशे रुद्रपुत्रस्य प्राप्ते मन्वन्तरे मनोः । सावर्णाख्यस्ययेदेवामुनयश्चशृणुष्व तान्
सुधर्माणः सुमनसो हरितारोहितस्तथा । सुवर्णाश्चसुरास्तत्र पञ्चैतेदशकागणाः
तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महाबलः । सर्वैन्द्रियगुणैर्युक्तः सप्तर्षीनपिमे शृणु

द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्त्तिस्तपोनिधिः ।
तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तुतपोधृतिः ॥ २१ ॥

देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठोविदूरथः । मित्रवान् मित्रविन्दश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः
त्रयोदशस्यपर्य्यायेरौच्याख्यस्यमनोःसुतान् । सप्तर्षींश्चनृपांश्चैवगदतोमे निशामय
सुधर्माणः सुरास्तत्र सुकर्माणस्तथापरे । सुशर्माणःसुराह्येते समस्तामुनिसत्तम!

महाबलो महावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ।
भविष्यानथ सप्तर्षीन् गदतो मे निशामय ॥ २६ ॥

धृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः । निर्मोहः सुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तमः
चित्रसेनो विचित्रश्च नयतिर्निर्भयोदृढः । सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्च सुव्रतश्चैव तत्सुताः ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाविरौच्यमन्वन्तरे भविष्यदिन्द्रादीनांवर्णनंनाम
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

रुचिसमुपाख्यानेरुचिनापितॄणांसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

रुचिःप्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहङ्कृतः।

अत्रस्तो मितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥

अनग्निमनिकेतंतमेकाहारमनाश्रमम्। विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरोमुनिम्

पितर ऊचुः

वत्स ! कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसङ्ग्रहः।

स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद् बन्धस्तेनाऽनिशं विना ॥ ३ ॥

गृही समस्तदेवानां पितॄणाञ्च तथार्हणाम्।

ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्व्वन् लोकानुपाश्नुते ॥ ४ ॥

स्वाहोच्चारणतो देवान् स्वधोच्चारणतः पितॄन्।

विभजत्यन्नदानेन भूयाद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥

सत्वंदैवादृणाद्बन्धं बन्धमस्मदृणादपि। अवाप्नोषि मनुष्येभ्योभूतेभ्यश्चदिनेदिने

अनुत्पाद्य सुतान् देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा।

अकृत्वा च कथं मौढ्यात् सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥ ७ ॥

क्लेशमेकैककं पुत्र ! मन्यामोऽत्र भवेत्तव। मृतस्यनरकं तद्वत् क्लेशमेवान्यजन्मनि

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतिस्तथा। भवत्यतोमयापूर्वं नकृतोदारसङ्ग्रहः

आत्मनः सङ्गमो योऽयं क्रियते मुनियन्त्रणात्।

स मुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥ १० ॥

प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः।

ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्व्वरं हि तत् ॥ ११ ॥
अनेकभवसम्भूत कर्मपङ्काङ्कितोबुधैः ।
आत्मासद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ॥ १२ ॥

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्तुमात्मनो नियतेन्द्रियैः ।
किन्तु मोक्षाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र ! वर्तसे ॥ १३ ॥

परन्तु दानैरशुभं नुद्यतेऽभिसन्धितैः । फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥१४॥
एवं न बन्धोभवतिकुर्वतःकरुणात्मकम् । न च बन्धायतत्कर्मभवत्यनभिसन्धितम्
पूर्वकर्मकृतंभोगैः क्षीयतेऽहर्निशंतथा । सुखदुःखात्मकैर्वत्स!पुण्यपुण्यात्मकंनृणाम्
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मावन्धैश्च रक्ष्यते । न त्वेवमविवेकेन पापपङ्केन गृह्यते ॥

रुचिरुवाच

अविद्यापठ्यतेवेदेकर्ममार्गःपितामहाः । तत्कथंकर्मणोमार्गं भवन्तोयोजयन्तिमाम्

पितर ऊचुः

अविद्या सत्येमेवैत्कर्म नैतन्मृषा वचः । किन्तु विद्यापरिप्राप्तौहेतुः कर्म न संशयः

विहिताकरणात् पुम्भिरसद्भिः क्रियते तु यः ।
संयमो मुक्तये सोऽन्ते प्रत्युताऽधोगतिप्रदः ॥ २० ॥
प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानन्तु मन्यते ।
विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वं तु विदह्यसे ॥ २१ ॥
अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ।
अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यापि नो हि सा ॥ २२ ॥
तस्माद्वत्स ! कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसङ्ग्रहम् ।
मा जन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम् ॥ २३ ॥

रुचिरुवाच

वृद्धोऽहंसाम्प्रतंकोमेपितरःसम्प्रदास्यति । भार्यां तथादरिद्रस्यदुष्करोदारसंग्रहः

पितर ऊचुः

अस्माकंपतनंवत्स! भवतश्चाप्यधोगतिः। नूनंभाविभवित्रीचन्नाभिनन्दसिनोवचः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम !।
बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वाताहता इव ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्यानवर्णनंनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मरुचिसम्वादेपितृस्तोत्रवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सतेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः। कन्याभिलाषीविप्रर्षिःपरिबभ्राम मेदिनीम्

कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः।
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥ २ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसङ्ग्रहः।
क्षिप्रं भवेत् मत्पितृणां स चाभ्युदयकारकः ॥ ३ ॥

इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जाता महात्मनः। तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणंकमलोद्भवम्

ततोवर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसः। आराधनाय,स तदा,परं नियममास्थितः

ततःस्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम्।
पितृणां वचनात् तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥
ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान् विप्र ! समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥ ८ ॥
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ।
स त्वं तथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥ ९ ॥
कामञ्चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् ।
त एव तुष्टाः पितरःप्रदास्यन्ति तवेप्सितान् ।
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किन्न दद्युः पितामहाः ॥ १० ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । नद्याविविक्ते पुलिने चकारपितृतर्पणम्
तुष्टावचपितॄन्विप्र ! स्तवैरेभिस्तथादृतः । एकाग्रःप्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ॥ १३ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥ १४ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् ।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥ १५ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम् ॥ १६ ॥
नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्तेभुवि येसदा । श्राद्धेषुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः
नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥ १८ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।

वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥ १९ ॥
नमस्ये ऽहं पितॄन् विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥ २० ॥
नमस्ये ऽहं पितॄन् श्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥ २१ ॥
नमस्ये ऽहं पितॄन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥ २२ ॥
नमस्ये ऽहं पितॄन् श्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः ।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥ २३ ॥
नमस्ये ऽहं पितॄन् श्राद्धैः पाताले ये महासुरैः ।
सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥ २४ ॥
नमस्येऽहंपितॄन्श्राद्धैरर्च्यन्तेयेरसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैःकामानभीप्सुभिः
नमस्ये ऽहं पितॄन् श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा ।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥ २६ ॥
पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षात् ये देवलोके च तथान्तरीक्षे ।
महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥ २७ ॥
पितॄन्नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥ २८ ॥
पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥ २९ ॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
सुतत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान् पशून् स्वानि बलं गृहाणि ॥ ३० ॥
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥ ३१ ॥

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः ॥ ३२ ॥
ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥ ३३ ॥
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्चितानाम् ।
तेषान्तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ॥ ३४ ॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ॥ ३५ ॥
पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणाञ्च नवार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥ ३६ ॥
तेऽस्मिन् समस्ता मम पुष्पगन्धधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३७ ॥
ये देवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३८ ॥
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान् निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३९ ॥

अग्निष्वात्ता वर्हिषद आज्यपाः सोपमास्तथा ।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया ॥ ४० ॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ।
तथा वर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ॥ ४१ ॥

प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः । रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः
सर्वतश्चाधिपस्तेषांयमोरक्षांकरोतुमे । विश्वोविश्वभुगाराध्योधर्म्मोधन्यःशुभाननः

भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव ।
कल्याणः कल्यता कर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ॥ ४४ ॥

कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः। वरोवरेण्योवरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा
विश्वपातातथाधातासप्तैवैतेतथागणाः।महान्महात्मा महितोमहिमावान्महाबलः
गणाः पञ्चतथैवैतेपितॄणां पापनाशनाः। सुखदोधनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्चभूतिदः
पितॄणां कथ्यते चैतत्तथा गणचतुष्टयम्। एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलंजगत्
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम्॥ ४८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्याने ब्रह्मोपदेशात्पितृस्तोत्रवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

रुचयेपितृवरप्रदानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसोराशिरुच्छ्रितः। प्रादुर्बभूव सहसागगनव्याप्तिकारकः
तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ॥ २॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥ ३॥
इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान्॥ ४॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।
तान्नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्सूदधावपि॥ ५॥
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा।

द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

देवर्षीणांजनितृंश्चसर्वलोकनमस्कृतान् । अक्षय्यस्यसदादातॄन्नमस्येऽहंकृताञ्जलिः

प्रजापतेः कश्यपाय सोमायवरुणायच । योगेश्वरेभ्यश्च सदानमस्यामि कृताञ्जलिः

नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषुसप्तसु । स्वयम्भुवे नमस्यामिब्रह्मणे योगचक्षुषे

सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्त्तिधरांस्तथा ।

नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥ १० ॥

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् । अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः

ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः

तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।

नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसामुनिसत्तम! । निश्चक्रमुस्तेपितरो भासयन्तोदिशोदश

निवेदितश्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथसतान् ददृशे पुरतःस्थितान्

प्रणिपत्य पुनर्भक्त्यापुनरेव कृताञ्जलिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः

ततः प्रसन्नाःपितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् । वरंवृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ॥

रुचिरुवाच

साम्प्रतं सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ।

सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥ १८ ॥

पितर ऊचुः

अत्रैव सद्यः पत्नीते भवत्वतिमनोरमा । तस्याञ्चपुत्रो भविता भवतोमनुरुत्तमः ॥

मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ।

रुचे ! रौच्य इति ख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये ॥ २० ॥

तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।

भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥ २१ ॥

त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः।

क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ! ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥

स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः।

तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तथोत्तमम् ॥ २३ ॥

शरीरारोग्यमर्थञ्च पुत्रपौत्रादिकं तथा।

वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥ २४ ॥

श्राद्धे च य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम्।

पठिष्यति द्विजाग्रा (ग्र्या) णां भुञ्जतां पुरतः स्थितः ॥ २५ ॥

स्तोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधानेपरे कृते। अस्माकमक्षयंश्राद्धंतद्भविष्यत्यसंशयम्

यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत्।

अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥ २७ ॥

अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम्। अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापिवा

अश्रद्धया वापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम्। अस्माकंतृप्तयेश्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात्

यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम्।

अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥ ३० ॥

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत् प्रयच्छति।

शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिस्तोत्रमिदं शुभम् ॥ ३१ ॥

वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि । ग्रीष्मे चषोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम्

विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेनसाधिते। वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे!

शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति।

अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ॥ ३४ ॥

यस्मिन् गृहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा।

सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥ ३५ ॥

तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः।

श्रावणीयंमहाभाग!अस्माकंपुष्टिहेतुकम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्ये मन्वन्तरे पितृवरप्रदानंनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

रुचिनामालिनीपरिणयवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः ॥ १ ॥

साचोवाचमहात्मानंरुचिंसुमधुराक्षरम् । प्रश्रयावनतासुभ्रू:प्रम्लोचावैवराप्सराः
अतीवरूपिणी कन्यामत्सुतातपतांवर! । जातावरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥

तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेति तेन साऽप्युक्ता!तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उज्जहार ततः कन्यां मालिनीं नाम नामतः ॥ ५ ॥

नद्याश्च पुलिने तस्मिन् स रुचिर्मुनिसत्तमः ।
जग्राह पाणिं!विधिवत् समानाय्य महामुनीन् ॥ ६ ॥

तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महामतिः ।
रौच्योऽभवत् पितुर्नाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधातले ॥ ७ ॥

तस्य मन्वन्तरे देवास्तथा सप्तर्षयश्च ये । तनयाश्चनृपाश्चैवते सम्यक्कथितास्तव
धर्मवृद्धिस्तथारोग्यंधनधान्यसुतोद्भवः । नृणां भवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरेश्रुते

पितृस्तवं तथा श्रुत्वा पितॄणाञ्च तथा गणान्।
सर्वान् कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने !॥ १० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मालिनीपरिणयपूर्वकरौच्यमन्वन्तरसमाप्ति-
वर्णनंनामाऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

भौत्यमनुसमुत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः परं तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय।
देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान्॥ १ ॥
बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥ २ ॥
तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववावतिनिष्ठुरम्।
नातितापं रविश्चक्रे पर्ज्जन्यो नातिकर्दमम् ॥ ३ ॥
नातिशीतश्च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः।
चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ॥ ४ ॥

ऋतवश्च क्रमंत्यक्त्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु। तस्यपुष्पफलश्चक्रुराज्ञयासार्वकालिकम् ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः। कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः नातिक्लेशसहोविप्रसोऽभवत्कोपनोभृशम्। अपुत्रश्चमहाभागःसतपस्यकरोन्मनः पुत्रकामो यताहारःशीतवातानलाहतः। तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे तस्येन्दुनातिशीतायनातितापायभास्करः। अभवन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने आपीड्यमानो द्वन्द्वैश्च सभूतिर्मुनिसत्तमः। अनवाप्याभिलाषन्तंतपसः सन्यवर्त्तत

तस्य भ्राता सुवर्चाऽभूद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रितः ।

यियासुः शान्तिनामानं शिष्यमाह महामतिम् ॥ ११ ॥

प्रशान्तमक्षप्रतिमं विनीतं गुरुकर्मणि । सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥

भूतिरुवाच

अहं यज्ञंगमिष्यामिभ्रातुःशान्तेसुवर्चसः । तेनाहूतस्त्वयाचेहयत्कर्त्तव्यंशृणुष्वतत्

प्रति जागरणं वह्नेस्त्वया कार्यंममाश्रमे । तथातथाप्रयत्नेन यथाग्निर्न शमंव्रजेत्

मार्कण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथेत्युक्तोगुरुःशिष्येणशान्तिना । जगामयज्ञं तंभ्रातुराहूतःसयवीयसा

स च शान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ।

उपानयति भूत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

अन्यच्च कुरुते कर्म गुरुभक्तिवशानुगः । प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ भूतिपरिग्रहः

तं दृष्ट्वा सोऽनलं शान्तं शान्तिरत्यन्तदुःखितः ।

भीतश्च भूतेर्बहुधा चिन्तामाप महामतिः ॥ १८ ॥

किं करोमि कथं वात्रभवितागमनं गुरोः । मयाद्यप्रतिपत्तव्यं किं कृते सुकृतंभवेत्

प्रशान्ताग्निमिमंधिष्ण्यंयदि पश्यतिमेगुरुः । ततोमांविषमेह्यद्यव्यसनेसन्नियोक्ष्यति

यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितत् । सर्वंप्रत्यक्षदृग्भस्मसोऽवश्यंमांकरिष्यति

सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्तं कोपशापयोः ।

तथात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरोः ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा प्रशान्तमनलंनूनं शप्स्यतिमांगुरुः । अथवापावकःक्रुद्धस्तथावीर्योहिसद्द्विजः

यस्य प्रभावादुद्विभ्यन्तो देवास्तिष्ठन्ति शासने ।

कृतागसं स मां युक्त्या कया नाधर्षयिष्यति ॥ २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

बहुधैवं विचिन्त्याऽसौ भीतस्तस्य सदा गुरोः ।

ययौ मतिमतां श्रेष्ठः शरणं जातवेदसम् ॥ २५ ॥

सचकारतदास्तोत्रंसप्तार्चर्यतमानसः । सचैकचित्तोमेदिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः

शान्तिरुवाच

ओँ नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूये,षडात्मने
नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः

त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयात्तुं भगवान् हविः ।
प्रीणयत्यखिलान्देवान् त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ॥ २९ ॥

हुतं हविस्त्वय्यमलमेघत्वमुपगच्छति । ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियत् ॥ ३०
तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे !। ओषधीभिरशेषाभिःसुखंजीवन्तिजन्तवः

वितन्वते नरा यज्ञान् त्वत्सृष्टास्वोषधीषु च ।
यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक !॥ ३२ ॥
आप्यायन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन ! ।
अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने ! सर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥

देवता दानवा यज्ञा दैत्यागन्धर्वराक्षसाः । मानुषाःपशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः

आप्याय्यन्ते त्वया सर्वे सम्वर्ध्यन्ते च पावक !।
त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम् ॥ ३५ ॥
अपः सृजसि देव ! त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ।
पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥

देवेषु तेजोरूणेण कान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः । विषरूपेण नागेषु वायुरूपःपतत्त्रिषु

मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ।
अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥ ३८ ॥
जले द्रवः त्वं भगवान् जवरूपी तथाऽनिले ।
व्यापित्वेन तथैवाग्ने !नभस्यात्मा व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥

त्वमग्ने!सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् । त्वमेकबाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिविधंपुनः
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन् । त्वयासृष्टमिदंविश्वं वदन्ति परमर्षयः

त्वामृते हि जगत् सर्वं सद्यो नश्येद्हुताशन! ।
तुभ्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्मविहितां गतिम् ॥ ४२ ॥
प्रयाति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहाभ्युदीरणात् ।
परिणामात्मवीर्य्या हि प्राणिनाममरार्चित ! ॥ ४३ ॥

दहन्तिसर्वभूतानि ततो निष्क्रम्यहेतयः । जातवेदस्तवैवेयं विश्वसृष्टिर्महाद्युते ! ॥
त्वैव वैदिकंकर्म सर्वभूतात्मकं जगत् । नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष!नमस्तेऽस्तुहुताशन!
पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्तेहव्यवाहन । त्वमेवभुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपाचकः

शस्यानां पाककर्त्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा ।
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वं बीजं शस्यहेतुकम् ॥ ४७ ॥

पोषायसर्वभूतानां भूतभव्यभवोह्यसि । त्वंज्योतिःसर्वभूतेषुत्वमादित्योविभावसुः

त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान् ।
हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने! हिरण्योद्भवकारणम् ॥ ४९ ॥

हिरण्यगर्भश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभः । त्वंमुहूर्त्तंक्षणश्चत्वंत्वंत्रुटिस्त्वं तथालवः

कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणाऽसि जगत्प्रभो ! ।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान् ॥ ५१ ॥
या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो! ।
भयान्नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५२ ॥

करालीनामया जिह्वामहाप्रलयकारणम् । तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात्
मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा । तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात्

करोति कामं भूतेभ्यो या तेजिह्वासुलोहिता ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५५ ॥
सधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५६ ॥
स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गला ।

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५७

या ते विश्वा सदा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी ।

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५८ ॥

पिङ्गाक्ष!लोहितग्रीव! कृष्णवर्णहुताशन । त्राहिमांसर्वदोषेभ्यःसंसारादुद्धरेहमाम्

प्रसीद वह्ने!सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन! । अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरितः

अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुद्भूतविभावसो! । प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय

त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमान् दुष्प्रहसोऽतितीव्रः ।

त्वमव्ययं भीममशेषलोकं समूर्तको हन्त्यथवातिवीर्य्यः ॥ ६२ ॥

त्वमुत्तमं सत्त्वमशेषसत्त्व हृत्पुण्डरीकस्त्वमनन्तमीड्यम् ।

त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥ ६३ ॥

त्वमक्षयः सगिरिवना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।

महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो भवान् विभूत्या परया करे स्थितः ॥ ६४ ॥

हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्म्महर्षिभिः ।

अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥ ६५॥

त्वंविप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थः वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् ।

त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले ॥ ६६ ॥

त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशःसुरपतिरर्य्यमा जलेशः ।

सूर्य्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥६७॥

अर्चिर्भिः परममहोपघातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम् ।

स्नानानां परममतीव भस्मना सत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीवसेव्यसे तत् ॥

प्रसीद वह्ने !शुचिनामधेय प्रसीद वायो!विमलातिदीप्ते !।

प्रसीद मे पावक! वैद्युताद्य प्रसीद हव्याशन! पाहि मां त्वम् ॥ ६८ ॥

यत्तेवह्ने! शिवरूपंये चतेसप्तहेतयः । तैःपाहिनः स्तुतो देव! पिता पुत्रमिवात्मजम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽग्निस्तोत्रं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः

भौत्यमन्वन्तरकथावर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान् हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृतस्तत्र तस्यासीदग्रतो मुने! ॥ १ ॥
देवोविभावसुः प्रीतःस्तोत्रेणानेनवैद्विज !। तं शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरवागथ

अग्निरुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते विप्र! भक्त्या या ते स्तुतिः कृता ।
वरं ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत्तवेप्सितम् ॥ ३ ॥

शान्तिरुवाच

भगवन् ! कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वां पश्यामि रूपिणम् ।
तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयतां मम ॥ ४ ॥
भ्रातृयज्ञं गतो देव ममाचार्यो निजाश्रमात् ।
आगतश्चाश्रमं धिष्ण्यं त्वत्सनाथं स पश्यतु ॥ ५ ॥
ममापराधात् सन्त्यक्तं धिष्ण्यं यत्ते विभावसो !।
तत्त्वयाधिष्ठितं सोऽद्य पूर्ववत् पश्यतां द्विजः ॥ ६ ॥
तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि । पुत्रो विशिष्टो भवतु तत्पुत्रस्त्र मे गुरोः
यथा च मैत्रीं तनये स करिष्यतिमे गुरुः । तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्यमनोमृदु
पश्यतां स्तोष्यते येन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय !
स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रसादितः ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् ।

स्तोत्रेणाऽऽराधितो भूयो गुरुभक्त्या च पावकः ॥ १० ॥

अग्निरुवाच

गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन् याचितंतेवरद्वयम् । नात्मार्थंतेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने
भविष्यत्येतदखिलंगुरोर्यत् प्रार्थितं त्वया । मैत्रीसमस्तभूतेषु पुत्रश्चास्यभविष्यति

मन्वन्तराधिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति ।
महाबलो महावीर्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तव ॥ १३ ॥
अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः ।
तस्याभिलषितं सर्वं पुण्यश्चास्य भविष्यति ॥ १४ ॥

यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्मसु । धर्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५॥
अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत् सकृद् द्विज । नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम्
अहोमकालदोषादीन्नयोग्यैरपितत्कृतैः । ये दोषास्तानिदंसद्यः शमयिष्यतिसंश्रुतम्

पौर्णमास्याममावस्यां पर्वस्वन्येषु प्रस्तवः ।
ममैव संश्रुतो मर्त्यैर्भविता पापनाशनः ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने !।
बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्थो निर्वृतो तथा ॥ १९ ॥

स च शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा । हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः

जाज्वल्यमानं तत्राऽसौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम् ।
ददर्श पूर्ववत् प्राप ततः स परमां मुदम् ॥ २१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः ।
भ्रातुर्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥

तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रेपादाभिवन्दनम् । गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः
वत्साऽतिहार्दं त्वयिमेतथान्येषुचजन्तुषु । न वेद्मिकिमिदंत्वश्च द्वत्सैतत्कथयाशुमे

ततः स शान्तिस्तत्सर्वमाचार्याय महामुने !।

अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ॥ २५ ॥

तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः ।

शिष्याय प्रददौ वेदान् साङ्गोपाङ्गान् महामुने !॥ २६ ॥

भौत्यो नाम मनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत । तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन् भूपांश्चमेशृणु

भविष्यस्य भविष्यांस्तु गदतो मम विस्तरात् ।

देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्मणः ॥ २८ ॥

चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा ।

धारावृकाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ २९ ॥

शुचिरिन्द्रस्तदा तेषांत्रिदशानांभविष्यति । महाबलोमहावीर्यःसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मुक्तोऽथमाधवः । शुक्रोऽजितश्चसप्तैतेतदासप्तर्षयःस्मृताः

गुरुर्गभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा । स्त्रीमानीचप्रतीरश्च विष्णुःसङ्क्रन्दनस्तथा

तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः । चतुर्दश मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृतम्

श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम !।

पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथा क्षीणाञ्च सन्ततिम् ॥ ३४ ॥

श्रुत्वामन्वन्तरंपूर्वंधर्ममाप्नोतिमानवः । स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते

औत्तमेर्धनमाप्नोति ज्ञानञ्चाप्नोतितामसे । रैवते च श्रुते बुद्धिंसुरूपांविन्दतेस्त्रियम्

आरोग्यञ्चाक्षुषे पुंसां श्रुते वैवस्वते बलम् । गुणवत्पुत्रपौत्रन्तु सूर्यसावर्णिके श्रुते

माहात्म्यं ब्रह्मसावर्णेधर्मसावर्णिकेशुभम् । मतिमाप्नोतिमनुजोरुद्रसावर्णिकेजयम्

ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते । निशातयत्यरिबलं रौच्यंश्रुत्वानरोत्तम

देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते । तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते

सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्च शृणोति मुनिसत्तम !।

मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् ।

वंशांश्च श्रुत्वा सर्वेभ्यः पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥ ४२ ॥

देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः ।
ते प्रीयन्ते तथा प्रीताःप्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥ ४३ ॥
ततः शुभांमतिंप्राप्यकृत्वाकर्मतथाशुभम् । शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश
सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः ।
भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्दशमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनंनाम शततमोऽध्यायः ॥ १००

एकाधिकशततमोऽध्यायः

वंशानुकीर्त्तनवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् !कथिता सम्यक् त्वया मन्वन्तरस्थितिः ।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता ॥ १ ॥
ब्रह्माद्यमखिलं वंशंभूभुजांद्विजसत्तम !। श्रोतुम्ममेच्छतः सम्यक् भगवन्प्रब्रवीहिमे

मार्कण्डेय उवाच

शृणु वत्स! नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् ।
चरितंच जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ॥ ३ ॥
अयं हि वंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः । सङ्ग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैःशतसङ्ख्यैरलङ्कृतः
श्रुत्वा चैषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् ।
उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरयोभगीरथः । अन्ये च शतशोभूपाः सम्यक् पालितभूमयः
धर्मज्ञा यज्विनः शूराः सम्यक् परमवेदिनः ।
श्रुते तस्मिन् पुमान् वंशे पापौघाद्विप्रमुच्यते ॥ ७ ॥

तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाःसहस्रशः। भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामवरोहायथावदात्

ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम !॥ ९ ॥
वामाङ्गुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुः।
ससर्ज भगवान् ब्रह्मा जगतां कारणं परम् ॥ १० ॥
अदितिस्तस्य दक्षस्य कन्याजायत शोभना।
तस्याञ्च कश्यपो देवं मार्त्तण्डं समजीजनत् ॥ ११ ॥

ब्रह्मा स्वरूपं जगतामशेषाणां वरप्रदम्। आदिमध्यान्तभूतञ्चसर्गस्थित्यन्तकर्मसु
यतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषञ्चस्थितं द्विज !। यत्स्वरूपंजगच्चेदंसदेवासुरमानुषम्

यः सर्वभूतः सर्वात्मा परमात्मा सनातनः।
अदित्यामभवद्भास्वान् पूर्वमाराधितस्तया ॥ १४ ॥

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् !श्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विवस्वतः।
यत्कारणञ्चादिदेवः सोऽभवत् कश्यपात्मजः ॥ १५ ॥
यथा चाराधितो देव्या सोऽदित्या कश्यपेन च।
आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता ॥ १६ ॥
प्रभावश्चावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम !।
भवता कथितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा।
कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च ॥ १८ ॥

बोधश्चावगतिश्चैवस्मृतिर्विज्ञानमेव च। इत्येतानीह रूपाणितस्यरूपस्यभास्वतः
श्रूयताञ्चमहाभाग! विस्तराद्गदतो मम। यत् पृष्टवानसि रवेराविर्भावोयथाभवत्
निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते। बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् ॥

तद्बिभेद तदन्तःस्थो भगवान्प्रपितामहः । पद्मयोनिःस्वयंब्रह्मायःस्रष्टाजगतांप्रभुः

तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दो महामुने !।
ततो भूस्तुभुवस्तस्मात् ततश्च स्वरनन्तरम् ॥ २३ ॥
एता व्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः ।
ओमित्यस्मात् स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ॥ २४ ॥

ततो महरितिस्थूलं जनं स्थूलतरं ततः । ततस्तपस्ततः सत्यमितिमूर्त्तानिसप्तधा

स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च ।
स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ॥ २६ ॥

आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् । ओमित्युक्तं मयाविप्रतत्परं ब्रह्म तद्वपुः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुकीर्त्तनं नामैकाधिशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

———

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्मादण्डाद्विभिन्नातुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । ऋचो बभूवुः प्रथमंप्रथमाद्वदनान्मुने

जपापुष्पनिभाःसद्यस्तेजोरूपान्तसंहताः । पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्ततः

यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानि काञ्चनम् ।
यादृग्वर्णन्तथावर्णन्यसंहतिधराणि च ॥ ३ ॥
पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
आविर्भूतानिःसामानि ततश्छन्दांसि तान्यथ ॥ ४ ॥

अथर्वाणमशेषञ्च भृङ्गाञ्जनचयप्रभम् । यावद्घोरस्वरूपन्तदाभिचारिकशान्तिकम्

उत्तरात् प्रकटीभूतंवदनात्तस्यवेधसः । सुखसत्त्वतमःप्रायंसौम्यासौम्यस्वरूपवत्

ऋचो रजोगुणाः सत्त्वं यजुषाञ्च गुणा मुने !।
तमोगुणानि सामानि तमः सत्त्वमथर्वसु ॥ ७ ॥
एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै ।
पृथक् पृथगवस्थानं भाञ्जि पूर्वमिवाभवन् ॥ ८ ॥
ततस्तदाद्यं यत् तेज ओमित्युक्त्वाभिशब्द्यते ।
तस्य स्वभावाद्यत्तेजस्तत् समावृत्य संस्थितम् ॥ ९ ॥
यथा यजुर्मयंतेजस्तद्वत् साम्नां महामुने !। एकत्वमुपयातानि परे तेजांसि संश्रये
शान्तिकं पौष्टिकञ्चैव तथा चैवाभिचारिकम् ।
ऋगादिषु लयं ब्रह्मं स्त्रितयं त्रिष्वथागमत् ॥ ११ ॥
ततोविश्वमिदंसद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् विभावनीयंविप्रर्षेतिर्यगूर्ध्वमधस्तथा
ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम् । परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपयाति तत्
आदित्यसञ्ज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत् ।
विश्वस्यास्य महाभाग! कारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥ १४ ॥
प्रातर्मध्यन्दिनेचैव तथाचैवापराह्णिके । त्रयीतपति साकालेऋग्यजुःसामसञ्ज्ञिता
ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्ने च यजूंषि वै ।
सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम !॥ १६ ॥
शान्तिकं ऋक्षु पूर्वाह्णे यजुःष्वन्तरपौष्टिकम् ।
विन्यस्तं साम्नि सायाह्नेआभिचारिकमन्ततः ॥ १७ ॥
मध्यन्दिनेऽपराह्णे च समे चैवाभिचारिकम् ।
अपराह्णे पितॄणान्तु साम्ना कार्य्याणि तानि वै ॥ १८ ॥
विसृष्टौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितो विष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्रः साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ १९ ॥
तदेवं भगवान् भास्वान् वेदात्मावेदसंस्थितः । वेदविद्यात्मकश्चैवपरः पुरुषउच्यते
स्वर्गस्थित्यन्तहेतुश्च रजः सत्त्वादिकान् गुणान् ।

आश्रित्य ब्रह्मविष्णवादिसञ्ज्ञामभ्येति शाश्वतः ॥ २१ ॥
देवैः सदेड्यः स तु वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ।
विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्यधर्म्मा वेदान्तगम्यः परमः परेभ्यः (परेशः) ॥ २२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्द्धमधस्तथा ।
सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः ॥ १ ॥
सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यभितेजसः ।
भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥ २ ॥
अप्राणाःप्राणिनः सर्वे आपः शुष्यन्ति तेजसा ।
न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्याऽस्य भविष्यति ॥ ३ ॥
इतिसञ्चिन्त्यभगवान् स्तोत्रंभगवतोरवेः । चकारतन्मयोभूत्वाब्रह्मालोकपितामहः

ब्रह्मोवाच

नमस्ये यन्मयं सर्वमेतत्सर्वमयश्च यः । विश्वमूर्तिः परंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्तियोगिनः
य ऋङ्मयो यो यजुषान्निधानं साम्नाञ्चयो योनिरचिन्त्यशक्तिः ।
त्रयीमयो स्थूलतयार्द्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥
त्वां सर्वहेतुं परमञ्चवेद्यमाद्यं परंज्योतिरवह्निरूपम् (रवेद्य) ।
स्थूलञ्च देवात्मतया नमस्ये भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ॥ ७ ॥

सृष्टिंकरोमि यदहं तव शक्तिराद्या तत्प्रेरितो जलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्दैवतादिविपयां प्रणवाद्यशेषां नात्ममेच्छया स्थितिलयावपितद्वदेव ॥ ८ ॥
वह्निस्त्वमेव जलशोषणतः पृथिव्याः सृष्टिंकरोमि जगताञ्च तथाद्यपाकम् ।
व्यापी त्वमेव भगवन्! गगनस्वरूपं त्वं पञ्चधाजगदिदं परिपासि विश्वम् ॥९
यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्तं विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन् ! ।
ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ताः सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामाः॥१०
नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः । परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः

उपसंहर तेजो यत् तेजसः संहतिस्तव ।
सृष्टेर्विघाताय विभो ! सृष्टौ चाहं समुद्यतः ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं संस्तुतो भास्वान् ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा ।
उपसंहृतवांस्तेजः परं स्वल्पमधारयत् ॥ १३ ॥
चकार च ततः सृष्टिंजगतः पद्मसम्भवः । तथातेषु महाभागः पूर्वकल्पान्तरेषु वै
देवासुरादीन् मर्त्यांश्च पश्वादीन् वृक्षवीरुधः ।
ससर्ज पूर्ववद् ब्रह्मा नरकांश्च महामुने ! ॥ १५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आदित्यस्तववर्णनं नामत्र्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

———

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

दिवाकरस्तुतिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत्। वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानां पूर्ववद्यथा॥
देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत्। देवेभ्य एव भगवानकरोत् कमलोद्भवः
ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः।
कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् काश्यपो नाम नामतः॥ ३॥
दक्षस्य तनया ब्रह्मन्तस्यभार्यास्त्रयोदश। वहवस्तत्सुताश्चासन् देवदैत्योरगादयः
अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्।
दैत्यान् दितिर्दनुश्चोग्रान् दानवानुरुविक्रमान्॥ ५॥
गरुड़ारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वै।खसा।
कद्रुः सुषाव नागांश्च गन्धर्वान्सुषुवे मुनिः॥ ६ ॥
क्रोधाया जज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः।
ऐरावतादीन्मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज!॥ ७॥
ताम्रा च सुषुवे श्येनी प्रमुखाः कन्यका द्विज!।
यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः॥ ८॥
इलायाः पादपा जाताः प्रधाया यादसां गणाः।
अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः॥ ६॥
तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः।
व्याप्तमेतज्जगत् सूत्या तेषां तासाञ्च वै मुने!॥ १०॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः।
सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने! गणाः॥ ११॥

देवान् यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान्। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठीप्रजोपतिः

तानबाधन्त सहिताः सपत्ना दैत्यदानवाः।
राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत् सुदारुणम्॥ १३॥

दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पराजीयन्तदेवताः। जयिनश्चाऽभवन् विप्र बलिनोदैत्यदानवाः
ततो निराकृतान् पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा। हृतत्रिभुवनान् दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तम

आच्छिन्नयज्ञभागांश्च शुचा सम्पीड़िता भृशम्।
आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे॥ १६॥

एकाग्रानियताहारापरं नियममास्थिता। तुष्टावतेजसांराशिंगगनस्थंदिवाकरम्

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्मां सौवर्णीं विभ्रते तनुम्।
धाम धांमवतामीश धाम्नामाधार शाश्वत॥ १८॥
जगतामुपकाराय तथापस्तप गोपते।
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम्॥ १६॥

ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम्। विभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत्
तमेव मुञ्चतःसर्वं रसं वै वर्षणाय यत्। रूपमाप्यायकंभास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः
वायुत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौषधीगणम्। पाकायतवयद्रूपं भास्करं तं नमाम्यहम्
यच्च रूपं तवातीव हिमोत्सर्गादिशीतलम्। तत्कालशस्यपोषाय तरणे तस्यतेनमः
नास्तितीव्रञ्च यद्रूपं नातिशीतञ्चयत्तव। वसन्तर्तौ रवेसौम्यं तस्मैदेव! नमोनमः

आप्यायनमशेषाणां देवानाञ्च तथा परम्।
पितृणाञ्च नमस्तस्मै शस्यानां पाकहेतवे॥ २१॥

यद्रूपंजीवनायैकं वीरूधाममृतात्मकम्। पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः
आभ्यांयदर्करूपाभ्यांरूपं विश्वमयन्तव। समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मैगणात्मने
यद्रूपं ऋग्यजुःसाम्नामैक्येनतपते तव। विश्वमेतत् त्रयीसञ्ज्ञं नमस्तस्मैविभावसो!

यत्त तस्मात्परं रूपं ओमित्युक्त्वाभिशब्दितम्।

अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ! ॥ ३० ॥

ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे । प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम!

सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।
भूमौ च संस्थितं भास्वत् ज्वालामालातिदुर्द्दशम् ॥ ३२ ॥
तं दृष्ट्वा सा तदा देवी साध्वसं परमं गता ।
जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ! ॥ ३३ ॥

यथा दृष्टवती पूर्वमम्बरस्थंसुदुर्द्दशम् । निराहाराविवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ॥
सङ्घातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले । प्रसादंकुरुपश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ! ॥
भक्तानुकम्पक विभो ! भक्ताऽहं पाहि मे सुतान् ॥ ३५ ॥

त्वं धाताविसृजसि विश्वमेतत् त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः ।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्वलोके॥३६
त्वं ब्रह्मा हरिरजसञ्ज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशःपितृपतिरम्बपतिः समीरः ।
सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किं स्तव्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ॥
यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति ।
ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं योगस्थाःपरमपदं प्रयान्ति योगमूर्त्त्या॥३८
तपसि पचसिविश्वं पासि भस्मीकरोषि प्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ।
सृजसि पुनरपि त्वं भावनास्वच्युतासु-
प्रणमितसरमर्त्यैः पापकृद्भिस्त्वगम्यः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दिवाकरस्तुतिर्नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

मार्त्तण्डोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वतेजसस्तस्मादादिर्भूतो विभावसुः ।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः ॥ १ ॥
अथ तां प्रणतां देवीं तस्य सन्दर्शनान्मुने ! ॥
प्राह भास्वान् वृणुष्वेष्टं वरं मत्तोयमिच्छसि ॥ २ ॥
प्रणता शिरसा साचजानुपीडितमेदिनी । प्रत्युवाचविवस्वन्तंवरदंसमुपस्थितम्
देव ! प्रसीदपुत्राणां कृतंत्रिभुवनं मम । यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः
तन्निमित्तप्रसादं त्वं कुरुष्व ममगोपते !। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशयतद्रिपून्
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो ! ।
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ! ॥ ६ ॥
तथानुकम्पा पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे ! मम । कुरुप्रपन्नार्त्तिहरस्थितिकर्त्तात्वमुच्यते

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करोवारितस्करः ।
प्रणतामदितिं विप्र ! प्रसादसुमुखो विभुः ॥ ८ ॥
सहस्रांशेनते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः । त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृताः ॥
इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् ।
निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता ॥ १० ॥
ततो रश्मिसहस्राच्चु सौसुम्नाख्यो रवेःकरः । विप्रावतारं सञ्चक्रे देवमातुरथोदरे
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता ।
शुचिः सन्धारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज ! ॥ १२ ॥

ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ।
किम्मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ॥ १३ ॥
सा च तंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्यसिकोपन ।न मारितंविपक्षाणांमृत्यवेतद्भविष्यति
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज्ज सुरारनिः (सुरारणिः) ।
जाज्वल्यमानन्तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥ १५ ॥
तं दृष्ट्वा कश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् । तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात्
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥ १७ ॥
अथान्तरीक्षादाभास्यकश्यपंमुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी
मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने !।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ १६ ॥
सूर्याधिकारञ्च विभुर्जगत्येष करिष्यति । हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्
देवा निशम्येति वचो गगनात्समुपागमन् । प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हृतौजसः
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः । सह देवैर्मुदा युक्ता दानवाश्च समभ्ययुः
तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह । शस्त्रास्त्रदीप्तिसन्दीप्तंसमस्तभुवनान्तरम्
तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ।
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ॥ २४ ॥
ततः प्रहर्षमतुलंप्राप्ताःसर्वे दिवौकसः । तुष्टुवुस्तेजसां योनिंमार्त्तण्डमदितिं तथा
स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ।
भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥ २६ ॥
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्द्ध्वञ्चरश्मिभिः।वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदध्रेनातिस्फुरद्वपुः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डोत्पत्तिर्नामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

———

षडधिकशततमोऽध्यायः

भानुतनुलिखनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्मैददौकन्यां संज्ञां नामविवस्वते। प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्माप्रजापतिः

वैवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्तस्यां विवस्वतः।
पूर्वमेव तथा ख्यातं तत्स्वरूपं विशेषतः॥ २ ॥

(क्रौष्टुकिरुवाच

भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि मार्तण्डस्य महात्मनः।
चरितं हन्ति;यत्पापं कलौ संश्रृण्वतां नृणाम्॥)

मार्कण्डेय उवाच

त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः।
द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां मुने!॥ ३ ॥

मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः। ततो यमो यमी चैव यमलौ सम्बभूवतुः

यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्तण्डस्य विवस्वतः।
तेनाति तापयामास त्रीन् लोकान् सचराचरान्॥ ५ ॥

गोलाकारन्तु तं दृष्ट्वा सञ्ज्ञारूपं विवस्वतः।
असहन्ती महत्तेजः स्वच्छायां प्रेक्ष्य साऽब्रवीत्॥ ६ ॥

सञ्ज्ञोवाच

अहंयास्यामिभद्रन्तेस्त्रमेवभवनंपितुः। निर्विकारत्वयाप्यत्रस्थेयंमच्छासनाच्छुमे

इमौ च बालकौमह्यं कन्याचवरवर्णिनी। सम्भाव्यौनैवचाख्येयमिदम्भगवतेत्वया

छायोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित्।

आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ॥ ६ ॥

इत्युक्ताछायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् । तत्रावसत् पितुर्गेहे कश्चित्कालं शुभेक्षणा

भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः ।

अगच्छद्वडवा भूत्वा कुरून् विप्रोत्तरांस्ततः ॥ ११ ॥

तत्र तेपे तपःसाध्वीनिराहारामहामुने । पितुःसमीपंयातायाःसंज्ञायावाक्यतत्परा

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता ।

तस्याञ्च भगवान् सूर्यः सञ्ज्ञेयामिति चिन्तयन् ॥ १३ ॥

तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यकां तथा ।

पूर्वजस्यमनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् ॥ १४ ॥

यस्तयोःप्रथमंजातःपुत्रयोर्द्विजसत्तम । द्वितीयो योऽभवच्चान्यःसग्रहोऽभूच्छनैश्चरः

कन्यरभूत्तपतीयातांवव्रेसंवरणोनृपः । संज्ञातुपार्थिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत्

स्नेहान्न पूर्वजातानां तथा कृतवती सती ।

मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ॥ १७ ॥

बहुशो याच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः ।

स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ १८ ॥

पदासन्तर्जयामास छायासञ्ज्ञां यमो मुने! ।

ततः शशाप च यमं सञ्ज्ञा सामर्षिणी भृशम् ॥ १६ ॥

छायोवाच

पदा तर्जयसेयस्मात् पितृभार्यांगरीयसीम् । तस्मात्तवैव चरणःपतिष्यतिनसंशयः

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सहधर्मात्मा सर्वं पित्रेन्यवेदयत्

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव! न वर्तते ।

विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान् कनीयांसौ बुभूर्षति ॥ २२ ॥

तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ।

बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ २३॥

शप्तोऽहं तात! कोपेन जनन्या तनयो यतः। ततो नमस्ये जननीमिमां वै तपताम्वर

विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः !।

पादस्ते पततां पुत्र! कथमेतत् प्रवक्ष्यति ॥ २५ ॥

तव प्रसादाच्चरणो न पतेद्भगवान् यथा। मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते

रविरुवाच

असंशयमिदं पुत्र! भविष्यत्यत्र कारणम्।

येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ २७ ॥

सर्वेषामेवशापानां प्रतिघातोहि विद्यते। नतुमात्राभिशप्तानांक्वचिच्छापनिवर्तनम्

न शक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुंमातुर्वचस्तव। किञ्चित्तवविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम्

कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्।

कृतं तस्या वचः सत्यं त्वञ्च त्रातो भविष्यसि ॥ ३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायांकिमर्थंतनयेषुवै। तुल्येष्वप्यधिकःस्नेह एकत्रक्रियतेत्वया

नूनंनैषां त्वंजननीसञ्ज्ञाकापित्वमागता। विगुणेष्वप्यपत्येषुकथंमाताशपेत्सुतम्

मार्कण्डेय उवाच

सा तत्परिहरन्तीच नाचचक्षेविवस्वतः। सचात्मानंसमाधायमुक्तस्तत्त्वमपश्यत

तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा छायासञ्ज्ञा दिवस्पतिम्।

भयेन कम्पती ब्रह्मन्! यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

विवस्वांस्तु ततःक्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात्।

स चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम्।

निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास सुव्रतः ॥ ३५ ॥

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदंरूपं सुदुःसहम्। असहन्ती ततः सञ्ज्ञा वनेचरति वै तपः

द्रक्ष्यतेतां भवानद्यस्वांभार्यांशुभचारिणीम् । रूपार्थंभवतोऽरण्येचरन्तींसुमहत्तपः
स्मृतंमेब्रह्मणोवाक्यं यदि ते देव! रोचते । रूपं निवर्तयाम्यद्यतवकान्तं दिवस्पते!

मार्कण्डेय उवाच

यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत् परिमण्डलम् ।
ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः ॥ ३९ ॥

विश्वकर्मात्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः । भ्रमिमारोप्यतत्तेजःशातनायोपचक्रमे
भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता । समुद्रादिवनोपेता सारुरोह मही नभः
गगनञ्चाखिलंब्रह्मन् !सचन्द्रग्रहतारकम् । अधोगतं महाभाग! बभूवाक्षिप्तमाकुलम्

विक्षिप्तसलिलाःसर्वे बभूवुश्च तथार्णवाः ।
व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥ ४३ ॥
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम !।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानि अधोजग्मुः सहस्रशः ॥ ४४ ॥

वेगभ्रमणसञ्जातवायुक्षिप्ताः सहस्रशः । व्यशीर्य्यन्तमहामेघाघोररावविराविणः

भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम् ।
जगादाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ! ॥ ४६ ॥

त्रैलोक्ये सकले विप्र! भ्रममागेसुरर्षयः । देवाश्चब्रह्मणासार्द्धंभास्वन्तमभितुष्टुवुः

आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत् स्वरूपतः (स्वयन्तव) ।
सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधाभेदेन तिष्ठसि ॥ ४८ ॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ ! घर्मवर्षाहिमाकर ! ।
जुषस्व शान्ति लोकानां देवदेव ! दिवाकर ! ॥ ४९ ॥
इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् ।
जय देव ! जगद्व्यापिन् ! जयाशेष जगत्पते ! ॥ ५० ॥
ऋषयश्च ततः सप्त वशिष्ठात्रिपुरोगमाः ।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥ ५१ ॥

वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्बालखिल्याश्च तुष्टुवुः ।
भास्वन्तं ऋग्भिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदा युताः ॥ ५२ ॥
त्वं नाथ ! मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डेऽपि वर्तताम् (ण्डोपवर्त्तिनाम्)॥ ५३
शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश ! शन्नोऽस्तु जगताम्पते ! ।
शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे ॥ ५४ ॥

ततोविद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः । कृताञ्जलिपुटाःसर्वे शिरोभिःप्रणता रविम्
ऊचुरेवम्विधावाचोमनःश्रोत्रसुखावहाः । सह्यम्भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन!
ततोहाहाहुहुश्चैव(?)नारदस्तुम्बुरुस्तथा । उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम्
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः । मूर्च्छनाभिश्चतालैश्च सप्रयोगैःसुखप्रदम्

विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा ।
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वराः (वरा) ॥ ५९ ॥
ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ ।
हावभावविलासाढ्यान् कुर्वन्तोऽभिनयान् बहून् ॥ ६० ॥
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वेणुवीणादिदर्दुराः ।
पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः ॥ ६१ ॥

देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्भिश्चैवगन्धर्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः
तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततःकृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः
लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे

तेजसः शातनञ्चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥ ६४ ॥

इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुतनुलेखनवर्णनंनाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६

———

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

लिख्यमाने ततोभानौ विश्वकर्मा प्रजापतिः । उद्भूतपुलकस्तोत्रमिदञ्चक्रे विवस्वतः

विवश्वते प्रणतहितानुकम्पिने महात्मने समजवसप्तसप्तये ।
सुतेजसे कमलकुलावबोधिने नमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥ २ ॥
पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने ।
भास्वरानलमयूखशायिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ॥ ३ ॥
अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय ।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय चक्षुःप्रभवालयाय ॥ ४ ॥
विवस्वते ज्ञानभूतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥ ५ ॥
क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगणमहितहितो जगतः (गीतगरिष्ठगुणः)।
त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन् ॥ ६ ॥
भव तिमिरासवपानमदात् भवति विलोहितविग्रहात् ।
मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥ ७ ॥
रथमधिरुह्य समावयवं चारु विकम्पितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिलहयैर्भगवन् !चरसि जगद्धिताय विततम् ॥ ८ ॥
अमृतसुधांशुरसेन समं विबुध! पितॄनपि तर्पयसे ।
अरिगणसूदन ! तेन तव प्रणिपत्य लिखामि जगद्धिताय ॥ ९ ॥
शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पदपांशुपवित्रतलम् ।
नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन! पाहि रवे !॥ १० ॥

इति सकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवनभावनधाम हेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं देवं प्रणतोऽस्मि विश्वकर्माणम् ॥ ११ ॥
(त्रिदशवर प्रणतोऽस्मि सर्वदात्वाम्)

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसूर्यस्तवनंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

रवेर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं सूर्यस्तवंकुर्वन् विश्वकर्मादिवस्पतेः । तेजसः षोडशं भागंमण्डलस्थमधारयत्
शातितैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा ।
अतीव कान्तिमच्चारु भानोरासीत्तदा वपुः ॥ २ ॥
शातितश्चास्ययत्तेजस्तेनचक्रंविनिर्मितम् । विष्णोःशूलञ्चशर्वस्यशिविकाधनदस्यच
दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा । अन्येषाञ्चैव देवानामायुधानिसविश्वकृत्
चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये ।
इति शातिततेजाः स शुशुभे नातितेजसा ॥ ५ ॥
वपुर्दधार मार्त्तण्डः सर्वावयवशोभनम् ।
स ददर्श समाधिस्थः स्वां भार्यां वडवाकृतिम् ॥ ६ ॥
अधृष्यां सर्वभूतानां तपसा नियमेन च ।
उत्तरांश्च कुरून् गत्वा भूत्वाऽश्वो भानुरागमत् ॥ ७ ॥
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया । जगाम सम्मुखे तस्यपृष्ठरक्षणतत्परा
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्रसमेतयोः ।
वडवायाञ्च तत्तेजो नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥ ९ ॥
देवौ तत्रसमुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ । नासत्यदस्रौतनयावश्ववक्त्राद्विनिर्गतौ

मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि।
रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी धन्वी तनुत्रधृक् ॥ ११ ॥
अश्वारूढः समुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः। ततः स्वरूपममलं दर्शयामासभानुमान्
तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे।
स्वरूपधारिणीश्चेमां स निनाय निजालयम् ॥ १३ ॥
सञ्ज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः।
ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः ॥ १४ ॥
द्वितीयश्च यमः शापात् धर्मदृष्टिरनुग्रहात्। यमस्तुतेन शापेन भृशं पीडितमानसः
धर्मोऽभिरोचते यस्मात् धर्मराजस्ततः स्मृतः।
कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम् ॥ १६ ॥
पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम्।
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते ॥ १७ ॥
ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः।
तस्मै ददौ पिता विप्र! भगवान् लोकपालताम् ॥ १८ ॥
पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः। यमुनाञ्चनदीञ्चक्रेकलिन्दान्तरवाहिनीम्
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना।
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः॥ २० ॥
एवमप्याहचततोभगवांल्लोकभावितः। त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्योवत्सभविष्यसि
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च। त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः
क्षेमम्बुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्त्तिमुन्नतिम्।
नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः सम्प्रदास्यसि ॥ २३ ॥
छायासञ्ज्ञासुतश्चापि सावर्णः सुमहायशाः।
भाव्यः सोऽनागते काले मनुःसावर्णकोऽष्टमः ॥ २४ ॥
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरते प्रभुः। भ्राताशनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः

यवीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद् द्विजोत्तम! ।
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ॥ २६ ॥
यस्तु ज्येष्ठो महाभागः सर्गो यस्येह साम्प्रतम् ।
विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ २७ ॥
इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा । विवस्वतस्तनूजानांरवेर्माहात्म्यमेवच
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः । अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयते श्रुतम्
माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥ २८ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रवेर्माहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८

नवाधिकशततमोऽध्याय

भानुस्तववर्णनक्रमेसूर्यमाहात्म्यवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्! कथितः सम्यक् भानोः सन्ततिसम्भवः ।
माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपञ्चातिविस्तरात् ॥ १ ॥
भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम !।
श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यंकथयामि ते । विवस्वतोयच्चकारपूर्वमाराधितोजनैः
दमस्य पुत्रो विख्यातो राजाऽभूद्राज्यवर्द्धनः ।
स सम्यक् पालनञ्चक्रे पृथिव्याः पृथिवीपतिः ॥ ४ ॥
धर्मतः पाल्यमानन्तु तेन राष्ट्रं महात्मना । ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च
हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन् राजन्यशेषतः । राजकं सकलञ्चोर्व्यां पौरजानपदो जनः

नोपसर्गो न च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम् ।
न चावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ॥ ७ ॥

स इयाज महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम् । सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजेविषयानपि
तस्यैवं कुर्वतोराज्यंसम्यक् पालयतःप्रजाः । सप्तवर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहो यथा
विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृतः । तस्य पत्नीबभूवाथ मानिनीनाममानिनी

कदाचित्तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनाद्धृते ।
पश्यतो राजलोकस्य मुमोचाऽश्रूणि मानिनी ॥ ११ ॥

तदश्रुविन्दवो गात्रेयदातस्यमहीपतेः । तदावीक्ष्याश्रुवदनांतामपृच्छतमानिनीम्

निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य वै ।
किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्धनः ॥ १३ ॥
पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी ।
न किञ्चिदिति तां भूपः पप्रच्छ स महीपतिः ॥ १४ ॥

बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतःसासुमध्यमा । दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम्

एतत्पश्येति भूपाल! किमिदं मन्युकारणम् ।
ममातिमन्दभाग्याया जहासाऽथ नृपस्ततः ॥ १६ ॥
स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्वभूभृताम् ।
पौराणाञ्च महीपाला ये तत्रासन् समागताः ॥ १७ ॥

शोकेनालंविशालाक्षिरोदितव्यंनतेशुभे । जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकाराःसर्वजन्तुषु
अधीताः सकला वेदाइष्टायज्ञाःसहस्रशः । दत्तं द्विजानां पुत्राश्चसमुत्पन्ना वरानने

भुक्ता भोगास्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक् च पालिता पृथ्वी साधु युद्धेष्वनुष्ठितम् ॥ २० ॥

मित्रैः सहेष्टैर्हसितं विहृतं च वनान्तरे । किमन्यन्नकृतं भद्रे! पलितेभ्योबिभेषि यत्

भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे !।
शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि !॥ २२ ॥

मूर्ध्नि यद्दर्शितं भद्रे भवत्या पलितं मम। चिकित्सामेष तस्याहं करोमि वनसंश्रयात्

बाल्ये बालक्रिया पूर्वं तद्वत् कौमारके च या।

यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया॥ २४॥

एवं मत्पूर्वकैर्भद्रे कृतन्तत्पूर्वकैश्चयत्। अतो नतेऽश्रुपातस्य किञ्चित्पश्यामि कारणम्

अलन्ते मन्युना भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे। दर्शनं पलितस्यास्य मा रोदीर्निष्प्रयोजनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रणम्य तं भूपाः पौराश्चैव समीपगाः। सान्त्वा प्रोचुर्महीपालां महर्षे राज्यवर्द्धनम्

न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप!।

रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्वजन्तुभिः॥ २८॥

त्वं ब्रवीषि यथा नाथ! वनवासाश्रितं वचः।

पतन्ति तेन नः प्राणा लालितानां त्वया नृप॥ २६॥

सर्वे यास्यामहे भूप! यदि याति भवान् वनम्।

ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम्॥ ३०॥

भविष्यति न सन्देहस्त्वयि नाथ वनाश्रये। सा च धर्मोपघाताय यदि तत्प्रविमुच्यताम्

सप्तवर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही। तत्समुत्थं महापुण्यमालोकय नराधिप

वने वसन्महाराज! यां करिष्यसि यत्तपः।

तन्महीपालनस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ३३॥

राजोवाच

सप्तवर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही। इदानीं वनवासस्य ममकालोऽयमागतः

ममापत्यानि जातानि दृष्टा मेऽपत्यसन्ततीः।

स्वल्पैरेव महाहोभिरन्तको न सहिष्यति॥ ३५॥

यदेतत्पलितं मूर्ध्नि तद्विजानीत नागराः। दूतभूतमनार्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्मणः॥

सोऽहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रयः।

तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिकाः॥ ३७॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो यियासुः स वनं दैवज्ञानवनीपतिः । पुत्रराज्याभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छतः

श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतसः ।

दिनं लग्नञ्च होराञ्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ॥ ३६ ॥

ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञा वाष्पगद्गदम् । ज्ञानानि नःप्रणष्टानिश्रुत्वैतत्तेवचोनृप!

ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यराष्ट्रेभ्य एव च ।

ततस्तस्माच्च नगरात् प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥ ४१ ॥

समुत्पत्यमहीपालं तं यियासुं मुनेर्वनम् । प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः

प्रसीद पाहि नो राजन्! पालिताः स्म यथा पुरा ।

सीदिष्यत्यखिलो लोकस्त्वयि भूप! वनाश्रये ॥ ४३ ॥

स कुरुष्व तथा राजन्! यथा नोसीदते जगत् ।

यावज्जीवामहे वीर! स्वल्पकालमिमे वयम् ।

नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो! ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरैः । भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च प्रोक्तः प्रोक्तःपुनःपुनः

वनवासविनिर्बन्धं नोपसंहरते यदा । क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददाति च तथोत्तरम्

ततोऽमात्याश्च भृत्याश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः ।

समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥ ४७ ॥

तेषां मन्त्रयतां विप्र! निश्चयोऽयमजायत । अनुरागवतां तत्र महीपालेतिधार्मिके

सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः ।

तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपतेः ॥ ४६ ॥

तत्रैकनिश्चयाः कार्ये केचिद्गेहे च भास्करम् । सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन्

अपरे मौनिनोभूत्वा ऋग्जापेनतथाऽपरे । यजुषामथसाम्नाञ्चतोषयाञ्चक्रिरेरविम्

अपरेच निराहारानदीपुलिनशायिनः । तपसा चक्रुरायस्ताभास्कराराधनंद्विजाः

अग्निहोत्रपराश्चान्ये रविसूक्तान्यहर्निशम्। जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टयः
इत्येवमतिनिर्बन्धं भास्कराराधनं प्रति।
बहुप्रकारं चक्रुस्ते तं तं विधिमुपाश्रिताः ॥ ५४ ॥
तथा तु यततां तेषां भास्कराराधनं प्रति। सुदामा नामगन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत्
यद्याराधनमिष्टंवो भास्करस्य द्विजातयः। तदेतत् क्रियतांयेनभानुःप्रीतिमुपैष्यतिं
तस्माद् गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम्।
कामरूपे महाशैले गम्यतां तत्र वै लघु ॥ ५७ ॥
तस्मिन्नाराधनं भानोः क्रियतां सुसमाहितैः।
सिद्धक्षेत्रं हितं तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥ ५८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इतितेतद्वचःश्रुत्वा गत्वा तत्काननं द्विजाः। ददृशुर्भास्वतस्तत्रपुण्यमायतनंशुभम्
तत्रते नियताहारा वर्णाविप्रादयोद्विज !। धूपपुष्पोपहाराद्यांपूजाञ्चक्रुरतन्द्रिताः
पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा। जपहोमान्नदीपाद्यैः पूजनन्ते समाहिताः
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्! विवस्वन्तं द्विजातयः ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

देवदानवयक्षाणां ग्रहाणांज्योतिषामपि। तेजसाभ्यधिकं देवंव्रजाम शरणंरविम्
दिविस्थितञ्च देवेशंद्योतयन्तंसमन्ततः। वसुधामन्तरीक्षञ्चव्याप्नुवन्तंमरीचिभिः
आदित्यं भास्करं भानुं सवितारं दिवाकरम्।
पूषाणमार्यमाणं च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥ ६४ ॥
चतुर्युगान्तकालाग्निं दुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तगम्।
योगीश्वरमनन्तं च रक्तं पीतं सितासितम् ॥ ६५ ॥
ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम्। अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥
छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युक्तैर्विहङ्गमम्। उदयास्तमने युक्तं सदा मेरोः प्रदक्षिणे ॥
अनृतञ्च ऋतञ्चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम्।

विश्वस्थितिमचिन्त्यञ्च प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम् ॥ ६८ ॥
यो ब्रह्मा यो महादेवो योविष्णुर्यः प्रजापतिः ।
वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ॥ ६९ ॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम् । व्यक्ताव्यक्तेषुभूतेषुधर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ।
त्रिधा तस्य स्वरूपन्तु भानोर्भास्वान् प्रसीदतु ॥ ७१ ॥
यस्य सर्वमजस्येदमङ्गभूतं जगत् प्रभोः ।
सनः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवनम् ॥ ७२ ॥
यस्यैकभास्वररूपंप्रभामण्डलदुर्द्दशम् । द्वितीयमैन्दवंसौम्यंसनोभास्वान्प्रसीदतु
ताभ्याञ्च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम् ।
अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्यक् पूजयतां तथा ।
तुतोष भगवान् भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ! ॥ ७५ ॥
ततः स मण्डलादुद्यन्निजविश्वसमप्रभः । अवतीर्य ददौ तेभ्यो दुर्द्दशो दर्शनं रविः
ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः । पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणेमिरे
नमोनमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे! सर्वस्य हेतुस्त्वमशेषकेतुः ।
पातात्वमीड्योऽखिलयज्ञधाम! ध्येयस्तथा योगविदां प्रसीद !॥ ७८ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे भानुस्तववर्णनंनाम-
नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

———

दशाधिकशततमोऽध्यायः

भानोर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रसन्नो भगवन् भानुराहाखिलंजनम् । व्रियतांयदभिप्रेतं मत्तःप्राप्तुंद्विजादयः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्र ! विप्राद्यो जनाः ।
ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्य पुरः स्थितम् ॥ २ ॥

प्रजा ऊचुः

ततस्तंप्रणिपत्योचुर्वरदंजगदीश्वरम् । भगवन् ! यदिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह!
दशवर्षसहस्राणिततोनोजीवतांनृपः । निरामयोजितारातिः सुकोषःस्थिरयौवनः
दशवर्षसहस्राणि जीवतां राज्यवर्द्धनः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा जनान् भास्वान् दुर्दृशोऽभून्महामुने ! ।
तेऽपि लब्धवरा हृष्टाः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥ ५ ॥
यथावृत्तश्चतेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् । वरं लब्ध्वा सहस्रांशोःसकाशादखिलंद्विज!
तच्छ्रुत्वा जहृषे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज ! ।
स च राजा चिरं दध्यौ नाह किञ्चिच्च तं जनम् ॥ ७ ॥
ततः सा मानिनी भूपं हर्षापूरितमानसा ।
दिष्ट्याऽऽयुषा महीपाल ! वर्द्धस्वेत्याह तं पतिम् ॥ ८ ॥
तथा तया मुदा भर्त्ता मानिन्याथ सभाजितः ।
नाह किञ्चिन्महीपालश्चिन्ताजडमना द्विज ! ॥ ९ ॥
सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम् । कस्मान्नहर्षमभ्येषिपरमाभ्युदयेनृप !

दशवर्षसहस्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः । भावीत्वमद्यप्रभृति किं तथापिनहृष्यसे
किन्तुतत्कारणंब्रूहियच्चिन्ताक्रुष्टमानसः । परमाभ्युदयेऽपि त्वं सम्प्राप्तेपृथिवीपते!

राजोवाच

कथमभ्युदयो भद्रे ! किं सभाजयसे च माम् ।
प्राप्तौ दुःखसहस्राणां किं सभाजनयिष्यते ॥ १३ ॥

दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः । न त्वंतवविपत्तौमे किन्न दुःखंभविष्यति

पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तथान्यानिष्टबान्धवान् ।
पश्यतो मे मृतान् दुःखं किमल्पं हि भविष्यति ॥ १५ ॥

भृत्येषुचातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते । भद्रे! दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम्
यैर्मदर्थं तपस्तप्तंक्लशैर्धर्मनिसन्ततैः । ते मरिष्यन्त्यहं भोगीजीविष्यामीतिधिक्करम्

सेयमापद्वरारोहे ! प्राप्ता नाभ्युदयो मम ।
कथं वा मन्यसे न त्वं यत्सभाजयसेऽद्य माम् ॥ १८ ॥

मानिन्युवाच

महाराज! यथात्थत्वंतथैवंनात्रसंशयः । मयापौरैश्चदोषोऽयंप्रीत्यानालोकितस्तक

एवं गतेऽत्र किं कार्य्यं नरनाथ ! विचिन्त्यताम् ।
नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नो भगवान्रविः ॥ २० ॥

राजोवाच

उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम ।
कथं भोक्ष्याम्यहं भोगान् गत्वा तेषामनिष्कृतिम् ॥ २१ ॥

सोऽहमद्यप्रभृत्याद्रिंगत्वानियतमानसः । तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः
दशवर्षसहस्राणियथाहंस्थिरयौवनः । तस्य प्रसादाद्देवस्यजीविष्यामिनिरामयः
तथायदिप्रजाःसर्वाःभृत्यास्त्वञ्चसुताश्चमे । पुत्राःपौत्राःप्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने!

जीवन्त्येतं प्रसादं न करोति भगवान्रविः ।
ततोऽहं भविता राज्ये भक्ष्ये भोगांस्तथा मुदा ॥ २५ ॥

नचेदेवंकरोत्यर्कस्तदद्रौतत्रमानिनि !। तपस्तप्स्येनिराहारोयावज्जीवितसङ्क्षयः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ता सा तदातेन तथेत्याहनराधिपम् । जगामतेनचसमं साऽपितं धरणीधरम्

स तदायतनंगत्वा भार्यया सह पार्थिवः । भानोराराधनञ्चक्रे शुश्रूषानिरतो द्विज!

निराहारकृशः सा च यथासौ पृथिवीपतिः ॥ तेपे तपस्तथैवोग्रंशीतवातातपक्षमा

तस्यपूजयतो भानुं तप्यतश्चतपो महत् । साग्रे सम्वत्सरेयाते ततःप्रीतोदिवाकरः

समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणाञ्च कृते द्विज !। ददौयथाभिलषितं वरंद्विजवरोत्तम !

लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम् ।
चकार मुदितो राज्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३२ ॥

ईजे यज्ञान् स च बह्वन् ददौ दानान्यहर्निशम् ।
मानिन्या सहितो भोगान् बुभुजे च स धर्मवित् ॥ ३३ ॥

दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिः सह । भृत्यैःपौत्रैःसमुदितःसोऽभवत्स्थिरयौवनः

तस्येतिचरितं दृष्ट्वा प्रमतिर्नाम भार्गवः । विस्मयाकृष्टहृदयो गाथामेतामगायत ॥

भानुभक्तेरहो!शक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः । आयुषो वर्द्धनेजातः स्वजनस्यतथात्मनः

इति ते कथितं विप्र ! यत्पृष्टोऽहं त्वया विभो ! ।
आदिदेवस्य माहात्म्यादित्यस्य विवस्वतः ॥ ३७ ॥

विप्रैस्तदखिलं श्रुत्वा भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पठंश्च मुच्यते पापैः सप्तरात्रकृतं नरः ॥ ३८ ॥

अरोगी धनवानाढ्यःकुले महतिधीमताम् । जायते च महाप्राज्ञोयश्चैतद्धारयेद्बुधः

मन्द्राश्च येऽत्राभिहिता भास्वतो मुनिसत्तम ! ।
जापः प्रत्येकमेतेषां त्रिसन्ध्यं पातकापहः ॥ ४० ॥

समस्तमेतन्माहात्म्यं यत्र चायतने रवेः । पठ्यतेतत्रभगवान् सान्निध्यंनविमुञ्चति

तस्मादेतत् त्वया ब्रह्मन् ! भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
धार्य्यं मनसि जाप्यञ्च महत्पुण्यमभीप्सता ॥ ४२ ॥

सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीं पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ।
शृणोति चैतत् त्र्यहमात्मवान्नरः समंतयोः पुण्यफलं द्विजाग्रय ! ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानोर्माहात्म्यवर्णनं नाम दशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

वंशानुक्रमे मित्रावरुणेष्ट्यामपचारादिलाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवम्प्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः ।
यस्य त्वं कौष्टुके! भक्त्या माहात्म्यं मयि पृच्छसि ॥ १ ॥
परमात्मा स योगीनां युञ्जतां चेतसां लयम् ।
क्षेत्रज्ञः साङ्ख्योगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥ २ ॥
सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः ।
मनुस्तस्याऽभवत् पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥ ३ ॥

मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् । इक्ष्वाकुर्नाभगो रिष्टोमहाबलपराक्रमाः
नरिष्यन्तोऽथनाभागःपूषध्रोधृष्टएव च । एते पुत्रामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः

विख्यातकीर्त्तयः सर्वे सर्वे शास्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमन्विच्छन् मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥ ६ ॥

मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनाम्वरः । यत्र चापहृते होतुरपचारान्महामुने ! ॥
इला नाम समुत्पन्नामनोःकन्यासुमध्यमा । तांदृष्ट्वाकन्यकांतत्रसमुत्पन्नां ततोमनुः
तुष्टाव मित्रावरुणौवाक्यञ्चेदमुवाचह । भवत्प्रसादात्तनयोविशिष्टो मे भवेदिति
कृते मखे समुत्पन्नातनया मम धीमतः । यदि प्रसन्नौवरदौतदियं तनया मम ॥ १० ॥

प्रसादाद्भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः ।
तथेति चाभ्यामुक्ते तु देवाभ्यां सैव कन्यका ॥ ११ ॥

इला समभवत् सद्यः सुद्युम्न इति विश्रुतः । पुनश्चेश्वरकोपेन मृगव्यामटता वने ॥
स्त्रीत्वमासादितं तेन मनुपुत्रेण श्रीमता । पुरुरवसनामानं चक्रवर्तिनमूर्जितम् ॥
जनयामास तनयं यत्रसोमसुतो बुधः । जाते सुतेपुनःकृत्वा सोऽश्वमेधं महाक्रतुम्
पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नः पार्थिवोऽभवत् ।
सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा उत्कलो विनयो गयः ॥ १५ ॥
पुरुषत्वेमहावीर्या यज्विनःपृथुलौजसः । पुरुषत्वे तु येजातास्तस्यराज्ञस्त्रयःसुताः
बुभुजुस्ते महीमेतां धर्मे नियतचेतसः । स्त्रीभूतस्य तुयो जातस्तस्य राज्ञःपुरूरवाः
न स लेभे महीभागं यतोबुधसुतो हि सः । ततोवशिष्ठवचनात् प्रतिष्ठानंपुरोत्तमम्
तस्मै दत्तं स राजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥ १८ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुक्रमोनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

पृषध्रोपाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्राख्यो मनोः पुत्रोमृगव्यामगमद्वनम् । तत्रचङ्क्रममाणोऽसौविपिने निर्जनेवने
नाससाद मृगं कश्चिद्भानुदीधितितापितः । क्षुत्तृट्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्च चङ्क्रमन्
स ददर्श तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् (वनोदरे) ।
स्वाध्यायिनोवनान्तस्य (लतान्तर्देहच्छिन्नार्धां) ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥
स मन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् । पपातसाऽपितद्बाणविभिन्नहृदया भुवि
ततोऽग्निहोत्रिणः पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः ।
शप्तवान् स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ॥ ५ ॥
गोपालःप्रेषितः पुत्रोवा बभ्रव्योनाम नामतः । कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततोमुने
चुकोप विगलत्स्वेदजललोलाविलेक्षणः । तं क्रुद्धं प्रेक्ष्य स नृपःपृषध्रो मुनिदारकम्
प्रसीदेति जगौ कस्मात् शूद्रवत् कुरुषे रुषम् ।

न क्षत्रियं न वा वैश्यमेवं क्रोधमुपैति वै ।
यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति निर्भर्त्सितस्तेन मा राज्ञा मौलिनः सुतः
शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यति ॥ ६ ॥
प्रयास्यति क्षयंब्रह्मयत् तेऽधीतंगुरोर्मुखात् । होमधेनुर्ममगुरोर्यदियंहिंसितात्वया
एवं शप्तो नृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः । प्रतिशापपरोविप्रतोयं जग्राह पाणिना
सोऽपि राज्ञो विनाशाय कोपञ्चक्रे द्विजोत्तमः ।
तमभ्येत्य त्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ॥ १२ ॥
वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनायातिवैरिणा । ऐहिकामुष्मिकहितःशमएवद्विजन्मनाम्
कोपस्तपो नाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः । क्रुद्धस्य गलतेज्ञानंक्रुद्धश्चार्थाच्चहीयते ॥
न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थञ्चाप्नोति रोषणः ।
नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥ १५ ॥
यदि राज्ञा हता धेनुरियंविज्ञानिनासता । युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनोहितवोधिना
अथवाऽजानता धेनुरियंव्यापादितामम । तत्कथंशापयोग्योऽयंदुष्टंनास्यमनोयतः
आत्मनो हितमन्विच्छन् वाधते योऽपरं नरः ।
कर्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥ १८ ॥
अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति वुधा यदि ।
वुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥ १६ ॥
नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक !।
स्वकर्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यानम्रकन्धरः । प्रसीदेतिजगादोच्चैरज्ञानाद्घातितेतिच
मया गवयवुद्ध्या गौरवध्या घातितामुने । अज्ञानाद्धोमधेनुस्ते प्रसीदत्वञ्चनोमुने

ऋषिपुत्र उवाच

आजन्मनो महीपालनमयाव्याहृतं मृषा । क्रोधश्चाद्य महाभागनान्यथामेकदाचन

तन्नाहमेनं शक्नोमिशापंकर्तुं नृपान्यथा । यस्तेसमुद्यतःशापोद्वितीयःस निवर्तितः

इत्युक्तवन्तं तं बालमादायसपितातततः । जगामस्वाश्रमंसोऽपिपृषध्रःशूद्रतामगात्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपृषध्रोपाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कारूषाः क्षत्रियाः शूराः करूषस्याभवन् सुताः ।

ते तु सप्तशता वीरास्तेभ्यश्चान्ये सहस्रशः ॥ १ ॥

दिष्टपुत्रस्तु नाभागः स्थितः प्रथमयौवने । ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम्

तस्यां स दृष्टमात्रायां मदनाक्षिप्तमानसः । बभूव भूपतनयो निःश्वासाक्षेपतत्परः

तस्याः स गत्वा जनकं वव्रे तां वैश्यकन्यकाम् ।

ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिं नृपात्मजम् ॥ ४ ॥

तञ्चाह सपिता तस्या राजपुत्रं कृताञ्जलिः । बिभ्यत्तस्य पितुर्विप्रप्रश्रयावनतंवचः

भवन्तो भूभुजोभृत्यावयंवःकरदायकाः । कथंसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि

राजपुत्र उवाच

साम्यं मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम् ।

तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपुः ॥ ७ ॥

तथैव चोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि ।

अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतां सताम् । ८ ॥

तथान्यानप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः ।
योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता ॥ ९ ॥
आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ।
कालं ज्ञात्वा तथा भुक्तं तदेव परिशिष्यते ॥ १० ॥

इत्थं ममैषाभिमतातनयादीयतां त्वया । अन्यथा मच्छरीरस्यविपत्तिरुपलक्ष्यते

वैश्य उवाच

परतन्त्रा वयं त्वञ्च परतन्त्रो महीभुजः । पित्रातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वंगृहाणददाम्यहम्

राजपुत्र उवाच

प्रष्टव्याः सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवर्तिभिः । नत्वीदृशेष्वकार्येषु गुरूणांवाक्यगोचरः
क्व मन्मथकथालापो गुरूणां श्रवणं कथम् । विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः

वैश्य उवाच

एवमेतत्स्मरालापस्तवायंपृच्छतोगुरुम् । अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत् । तत्पित्रे सर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम्
ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान् ।
प्रवेश्य राजपुत्रञ्च यथाख्यातं न्यवेदयत् ॥ १७ ॥

निवेद्यच ततःप्राह मुनीनेवं व्यवस्थितम् । यत्कर्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्तिद्विजसत्तमाः

ऋषय ऊचुः

राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ । तदस्तुधर्मएवैष किन्तु न्यायक्रमेण सः
मूर्द्धाभिषिक्ततनया पाणिग्राहोऽभवत्पुरा । भवत्वनन्तरञ्चेयं तवभार्याभविष्यति
एवं न दोषोभवतितथेमामुपभुञ्जतः । अन्यथाऽभ्येतितेजातिरुत्कृष्टावालिकां हरन्

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तदपास्यैव वचस्तेषां महात्मनाम् ।
विनिष्क्रम्य गृहीत्वा तामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥ २२ ॥

राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता । यस्य सामर्थ्यमत्रास्तिसएतांमोचयत्विति
ततः स वैश्यस्तां दृष्ट्वागृहीतांतनयां द्रुतम् । त्राहीतिपितरन्तस्यप्रययौशरणंद्विज!
ततस्तस्यपिताक्रुद्ध आदिदेश बलं महत् । हन्यतां हन्यतांदुष्टो नाभागोधर्मदूषकः
ततस्तद्युयुधे सैन्यंतेन भूभृत्सुतेन वै । कृतास्त्रेण तदास्त्रेण तत्प्राचुर्य्येण पातितम्
स श्रुत्वा निहतंसैन्यं राजपुत्रेणभूपतिः । स्वयमेवययौयोद्धं स्वसैन्यपरिवारितः
ततोयुद्धमभूत्तस्य भूभुजःस्वसुतेन यत् । राजपुत्रेणशस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता

ततोऽन्तरीक्षादागत्य परिव्राट् सहसा मुनिः ।
प्रत्युवाच महीपालं विरमस्वेति संयुगात् ॥ २९ ॥
त्वत्पुत्रस्य महाभाग ! विधर्मोऽयं महात्मनः ।
तवापि वैश्येन सह न युद्धं धर्मवन्नृप ! ॥ ३० ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणीपूर्वं कुर्वन्दारपरिग्रहम् । ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषु नहानिमुपगच्छति
तथैवक्षत्रियसुतां क्षत्रियः पूर्वमुद्वहन् । इतरे च ततो राजंश्च्यवन्ते न स्वधर्मतः ॥

पूर्वं वैश्यस्तथा वैश्यां पश्चात् शूद्रकुलोद्भवाम् ।
न हीयते वैश्यकुलादयं न्यायः क्रमोदितः ॥ ३३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः सवर्णाः पाणिसङ्ग्रहम् ।
अकृत्वान्यतरापाणेः पतन्ति नृप! सङ्ग्रहात् ॥ ३४ ॥
यस्या यस्या हि हीनायाः कुरुते पाणिसंग्रहम् ।
अकृत्वा वर्णसंयोगं नोऽपि तद्वस्तुभाग्भवेत् ॥ ३५ ॥
सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्रः स मन्दधीः ।
नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ॥ ३६ ॥

वयमेतन्नजानीमः कारणं नृपनन्दन !। यथाभविष्यतीदञ्च निवर्त्त रणकर्मतः ॥३७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरित्रवर्णनं नाम
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

———

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

निवृत्तोऽसौततोभूपःसंग्रामात्स्वसुतेनवै। उपयेमेच तां वैश्यतनयांसोऽपितत्सुतः

ततः स वैश्यतां प्राप्तः समुत्पत्याह पार्थिवम्।
भूपाल! यन्मया कार्य्यं तत् समादिश्यतां मम॥ २॥

राजोवाच

धर्माधिकरणेयुक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः। यदस्यकर्म धर्माय तद्वदन्तु तथा चर

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यंतथाकृषिम्। वाणिज्यश्चपरंधर्ममाचचक्षुःसभासदः
तथाचचक्रेससुतस्तस्य राज्ञो यथोदितम्। तैर्धर्मवादिभिर्धर्मं च्युतस्यनिजधर्मतः

तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्ना ख्यातो भलन्दनः।
स मात्रा प्रहितोऽगच्छद्गोपालो भव पुत्रक!॥ ६॥
मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम्।
राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत्पर्वताश्रयम्॥ ७॥

तं समेत्य स जग्राह तस्यपादौ यथाविधि। प्रणिपत्याहचैवैनंराजर्षिं सभलन्दनः

आदिष्टो भगवन्मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै।
मया च पालनीया क्ष्मा तस्या स्वीकरणं कथम्॥ ९॥
मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत्।
आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम॥ १०॥
तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो!।
तथाऽऽदिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते॥ ११॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सनीपो राजर्षिस्तस्मै निरवशेषतः । भलन्दाय ददौब्रह्मन्नस्त्रग्रामं महात्मने ॥

प्राप्तास्त्रविद्यः स ययौ पितृव्यतनयान् द्विज ! ।
वसुरातादिकान् पुत्रानादिष्टः स महात्मना ॥ १३ ॥
अयाचत स राज्यार्द्धं पितृपैतामहोचितम् ।
ते चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वं कथं भोक्ष्यसि मेदिनीम् ॥ १४ ॥

ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवंशजैः । वसुरातादिभिःक्रुद्धैःकृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः

स जित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतसैनिकान् ।
जहार पृथिवीं तेषां धर्मयुद्धेन धर्मवित् ॥ १६ ॥
स निर्जितारिःसकलां पृथ्वीं राज्यं तथा पितुः ।

निवेदयामासततस्तत्पिताजगृहेनच । प्रत्युवाच च तं पुत्रं भार्य्यायाः पुरतस्तदा

नाभाग उवाच

भलन्द! राज्यमेतत्ते क्रियतां पूर्वजैः कृतम् ॥ १८ ॥

राजोवाच

अहंनकृतवान्राज्यं नासामर्थ्ययुतःपुरा । वैश्यतां तुपुरस्कृत्य तथैवाज्ञाकरः पितुः

कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकन्यापरिग्रहात् ।
न पुण्यलोकभाग्राजा यावदाहूतसम्प्लवः ॥ २० ॥
उल्लङ्घ्याज्ञां पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि ।
नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कल्पशतैरपि ॥ २१ ॥

नचापियुक्तंत्वद्बाहुर्निर्जितंममानिनः । राज्यंभोक्तुमनीहस्यदुर्बलस्येहकस्यचित्

राज्यं कुरु स्वयं यावद्दायादेभ्यो विमुञ्च वा ।
ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्न क्षितिपालनम् ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहस्य तद्भार्य्या सुप्रभा नाम भामिनी ।

प्रत्युवाच पतिं भूप ! गृह्यतां राज्यमूर्ज्जितम् ॥ २४ ॥

नत्वंवैश्योनचैवाहंजातावैश्यकुलेनृप !। क्षत्रियस्त्वं तथैवाहंक्षत्रियाणां कुलोद्भवा

पूर्वमासीन्महीपालःसुदेव इतिविश्रुतः । तस्याभूच्चसखाराज्ञोधूम्राश्वस्य सुतोनलः

स तेन सख्या सहितो जगामाऽऽम्रवनं वनम् ।

पत्नीभिः स समं रन्तुं माधवे मासि पार्थिव ! ॥ २७ ॥

ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तथा ।

भार्य्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥ २८ ॥

ततःपुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम् । पत्नींच्यवनपुत्रस्य प्रमतेःपार्थिवात्मजाम्

सखातस्यनलोमत्तोजगृहेताञ्चदुर्मतिः । पश्यतस्तस्यराज्ञश्चत्रातत्रातेतिवादिनीम्

आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्याः प्रमतिः पतिः ।

आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ॥ ३१ ॥

ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् । गृहीताञ्चतथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना

ततःसुदेवंप्रमतिःप्राहायंशाम्यतामिति । त्वञ्चशास्ताभवान्राजादुष्टश्चायंनलोनृप !

मार्कण्डेय उवाच

तस्यार्त्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात् ।

प्राह वैश्योऽस्मि गच्छाऽन्यं क्षत्रियं त्राणकारणात् ॥ ३४ ॥

ततः स प्रमतिः क्रुद्धस्तेजसानिर्दहन्निव ।

प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥ ३५ ॥

प्रमतिरुवाच

एवमस्तुभवान् वैश्यक्षत्रियःक्षतरक्षणात् । क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रंनार्त्तशव्दोभवेदिति

स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाधमः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरितवर्णनंनाम

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागस्यवैश्यनिराकरणेकारणनिरूपणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्मै दत्त्वा ततः शापं नलं क्रुद्धोऽब्रवीद् द्विज ! ।
प्रमतिर्भार्गवः कोपात् त्रैलोक्यं निर्दहन्निव ॥ १ ॥
मदोन्मत्तो यदा भार्य्यां भवानत्र ममाश्रमे ।
बलाद्गृह्णासि भस्म त्वं तस्माद्व्रजतु मा चिरम् ॥ २ ॥
तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिन् तदा नलः ।
देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा प्रभावं तत्तस्य सुदेवो विमदस्ततः । प्रणामनम्रःप्राहेदं क्षम्यतांक्षम्यतामिति
यदुक्तवांस्त्वं भगवन् ! सुरापानमदाकुलम् ।
तत् क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ ५ ॥
एवंप्रसादितस्तेन प्रमतिः प्राह भार्गवः । गतकोपो नले दग्धे भावहीनेन चेतसा
नान्यथाभावि तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् ।
तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम् ॥ ७ ॥
भविता वैश्यजातीयो भवान्नास्त्यत्र संशयः ।
भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ॥ ८ ॥
ग्रहीष्यति बलात् कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः ।
तदा त्वं क्षत्रियो वैश्य ! स्वगृहीतो भविष्यति ॥ ९ ॥
एवं स वैश्यो भूपाल ! सुदेवोऽस्मत्पिताऽभवत् ।
अहञ्च या महाभाग ! त्वत्सर्वं श्रूयतां त्वया ॥ १० ॥
सुरथोनामराजर्षिःप्रागासीद्गन्धमादने । तपस्वीनियताहारस्त्यक्तसङ्गोवनाश्रयः

ततःश्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां शारिकाम्भुवि ।
कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

ततो मूर्च्छावसानेऽहं तस्योत्पन्नाशरीरतः । समांदृष्ट्वाचजग्राहक्लिद्यमानेनचेतसा

यस्मात्कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा ।
तस्मात्कृपावतीनाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो ! ॥ १४ ॥

ततोऽहमाश्रमेतस्य वर्धमाना दिवानिशम् ।
सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ॥ १५ ॥

ततोमुनेरगस्त्यस्य भ्राताऽगस्त्य इति श्रुतः ।
स चिन्वन् कानने वन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् ॥ १६ ॥

नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम !। अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि

ऋषिरुवाच

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपिगच्छति । सुराविन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटी यथा ॥१८

प्रणिपत्य न दुष्टास्मि यत्त्वयाहं प्रसादितः ।
तस्मादनुग्रहं बाले ! शृणुयात् ते करोम्यहम् ॥ १९ ॥

वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ।
राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥ २० ॥

ततो भूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह ।
दिव्यानवाप्स्यसे भोगान् गच्छ भीतिरपैतु ते ॥ २१ ॥

एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्वं महर्षिणा । पिताचमेपूर्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत्

एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम ।
न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागस्यवैश्यजातित्वनिराकरणवर्णनंनाम-
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

———

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

भलन्दनवत्सप्रीचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा पुत्रस्य स च पार्थिव !।
पुनः प्रोवाच धर्मज्ञस्तां पत्नीं तनयं तथा ॥ १ ॥
यन्मया पितुरादेशात् त्यक्तं राज्यं न तत् पुनः ।
ग्रहीष्यामि वृथोक्तेन किमात्माऽऽकृष्यते त्वया ॥ २ ॥
अहं ते सम्प्रदास्यामि करं वैश्यव्रते स्थितः ।
भुङ्क्ष्व राज्यमशेषं त्वमिच्छया वा परित्यज ॥ ३ ॥

इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भलन्दनः । चकार राज्यं धर्मेण तद्द्वारपरिग्रहम्
अव्याहतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद्द्विज! । नचाधर्ममनोभूपास्तस्यसर्वेऽभन्वशे

तेनेष्टो विधिवद्यज्ञः सम्यक् शास्ति वसुन्धराम् ।
स एवैकोऽभवद्भर्त्ता पृथिव्यां व्याप्तशासनः ॥ ६ ॥

अजायत सुतस्तस्यवत्सप्रीर्नाम नामतः । पितातिशयितोयेन गुणौघेन महात्मना

तस्यपि भार्य्या सौनन्दा विदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रता महाभागा सा प्राप्ता तेन वीर्य्यतः ।
हत्वा पुरन्दररिपुं कुजृम्भं दितिजेश्वरम् ॥ ८ ॥

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवंस्तेन संप्राप्ता कुजृ (ज) म्भनिधनात् कथम् ।
एतदाख्यानमाख्याहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

विदूरथो नामनृपःख्यातकीर्तिरभू द्भुवि । तस्यपुत्रद्वयं जातंसुनीतिःसुमतिस्तथा

एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः। ददर्श गर्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम्॥
तं दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदिति भैरवम्। पातालविवरंमन्ये नैतद्भूमेश्चिरन्तनम्
चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने। ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम्

स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः।
अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम्॥ १४॥

ऋषिरुवाच

किन्न वेत्सि महीपाल! वागर्थस्त्वं हि मे मतः।
ज्ञेयं सर्वं नरेन्द्रेण वर्तते यन्महीतले॥ १५॥
दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले।
स जृम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः॥ १६॥

क्रियते तेन यत्किञ्चिद्भूतं भूतं महीतले। त्रिदिवे वा नरपते तं कथं वेत्तिनोभवान्

सुनन्दं नाम मुषलं त्वष्ट्रा यन्निर्मितं पुरा।
तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून्॥ १८॥
पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम्।
ततोऽसुराणां सर्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः॥ १६॥

तेन भिन्नात्रवसुधासुनन्दमुषलायुधा। भोक्ष्यतेवसुधामेतां तमजित्वाकथंभवान्

यज्ञान् विध्वंसयत्युग्रो देवानामुपरोधकः।
आप्याययति दैतेयान् स बली मुषलायुधः॥ २१॥

यद्यरिं घातयस्येनं पातालान्तरगोचरम्। ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः
मुषलं तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यतेजनैः। तथाबलाबलञ्चैव तंवदन्तिविचक्षणाः

तत्तु निर्वीर्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृप!।
तस्मिन्दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्यवत्तदुदीर्यते॥ २४॥

न स वेत्ति दुराचारःप्रभावंमुषलस्यतत्। योषित्कराग्रसंस्पर्शदोषंवीर्यविशातनम्
एवंतस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः। मुषलस्य च ते प्रोक्तं यदुक्तं तत् समाचर

आसन्नमेतद्भवतः पुरस्य पृथिवीपतं । कृतन्तेन महीरन्ध्रंनिश्चिन्तः किं भवान्यथा

इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् पुरं गत्वा महीपतिः ।
मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः पुरमध्ये तु मन्त्रिभिः ॥ २८ ॥

यथाश्रुतमशेषं तत् कथयामास मन्त्रिणाम् । मुषलस्य प्रभावश्च वीर्यशातनमेवच
तंमन्त्रंक्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता । तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती

ततः कतिपयाहे तु तां कन्यां वयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्यः कुजृम्भः स सखीवृताम् ॥ ३१ ॥

तच्छ्रुत्वासमहीपालःक्रोधपर्याकुलेक्षणः । पुत्रावुवाच त्वरितं गच्छतंवनकोविदौ

निर्विन्ध्यायास्तटे गर्तस्तेन गत्वा रसातलम् ।
स हन्यतां योऽपहर्त्ता मुदावत्याः सुदुर्मतिः ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ तत्सुतौप्राप्यतंगर्त्तंतत्पदानुगौ । युयुधातेकुजृम्भेणस्वसैन्येनातिकोपितौ
ततः परिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः । वाणैश्चाविरतं युद्धंतेषामासीत् सुदारुणम्
ततो मायाबलवता तेन दैत्येन तावुभौ । राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ॥

तच्छ्रुत्वा स महीपालः प्राहेदं सर्वसैनिकान् ।
बद्धपुत्रः परामार्त्तिमुपेतो मुनिसत्तम !॥ ३७ ॥
यस्तां निहत्य दैतेयं मोचयिष्यति मे सुताम् ।
तस्याहं सम्प्रदास्यामि तामेवायतलोचनाम् ॥ ३८ ॥

इत्येवं घोषयाञ्चक्रे स राजा स्वपुरे तदा । निराशः पुत्रतनयाबन्धमोक्षाय वै मुने
ततःशुश्रावबत्सप्रीर्भलन्दनसुतोहितत् । आघोष्यमाणंबलवान्कृतास्त्रःशौर्यसंयुतः
स चागम्याभिवाद्यैनं प्राहपार्थिवसत्तमम् । विनयावनतोभूत्वा पितुर्मित्रमनुत्तमम्
आज्ञापयाशु मामेव तनयौ मोचयामि ते । तवैव तेजसा हत्वा तं दैत्यं तनयाञ्च ते

मार्कण्डेय उवाच

स तं मुदा परिष्वज्य प्रियसख्युरथात्मजम् ।

गम्यतामिति संसिद्ध्यै वत्सेत्याह स पार्थिवः ॥ ४३ ॥
स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यद्येवं कुरुते विधिम्
वत्सैतत्क्रियतामाशु यद्युत्साहि मनस्तव ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सखड्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् । जगामवीरः पातालं तेनगर्त्तेन सत्वरः
ततोज्यास्वनमत्युग्रंसचक्रेपार्थिवात्मजः । येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम्
ततो ज्यास्वनमाकर्ण्य कुजृम्भोदानवेश्वरः ।
आजगामाऽतिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ॥ ४७ ॥
ततो युद्धमभूत्तस्य तेन पार्थिवसूनुना । ससैन्यस्य ससैन्येन बलिनो बलशालिना
दिनानि त्रीणि स यदा योधितस्तेन दानवः ।
ततः कोपपरीतात्मा मुषलायाऽभ्यधावत ॥ ४६ ॥
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति ।
अन्तःपुरे महाभाग! प्रजापतिविनिर्मितः ॥ ५० ॥
ततो विज्ञातमुषलप्रभावा सा मुदावती । पस्पर्श मुषलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोऽधरा ॥
पुनर्यावत् स गृह्णातिमुषलंतंमहासुरः । तावत्सावन्दनव्याजात्पस्पर्शानेकशःशुभा
ततः स गत्वा युयुधे मुशलेनासुरेश्वरः । व्यर्थामुषलपातास्ते सञ्जग्मुस्तेषु शत्रुषु
परमास्त्रे तु निर्वीर्ये सौनन्दे मुषले मुने !।
अस्त्रैः शस्त्रैश्च दैत्येयः सोऽयुध्यत रणोऽरिणा ॥ ५४ ॥
शस्त्रास्त्रैर्नसमस्तस्यराजपुत्रस्यसोऽसुरः । मुषलेन बलन्तस्य तच्चबुद्ध्यानिराकृतम्
ततः पराजित्य स भूपसूरस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य ।
चकार सद्यो विरथं ततश्च सचर्मखड्गः पुनरप्यधावत् ॥ ५६ ॥
तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्रशत्रुम् ।
शस्त्रेण वह्नेर्भुवि राजपुत्रो जघान कालानलसप्रभेन ॥ ५७ ॥
स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मनः ।

बभूव सद्यश्च महोरगाणां रसातलान्तेषु महानथोत्सवः ॥ ५८ ॥

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि । जगुर्गन्धर्वपतयो देववाद्यानिसस्वनुः ॥

स चापि राजपुत्रस्तं हत्वा तौ नृपतेः सुतौ ।
मोचयामास तन्वङ्गीं ताञ्च कन्यां मुदावतीम् ॥ ६० ॥

तञ्चापि मुषलं तस्मिन् कुजृम्भे विनिपातिते ।
जग्राह नागाधिपतिरनन्तः शेषसञ्ज्ञितः ॥ ६१ ॥

तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेषः सर्वोरगेश्वरः ।
मुदावत्यामुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥ ६२ ॥

सुनन्दमुषलस्पर्शं यच्चकार पुनः पुनः । योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ॥

मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामितिसानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ! ॥ ६४ ॥

स चापि राजपुत्रस्तां भ्रातृभ्यां सहितां पितुः ।
समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ॥ ६५ ॥

आनीतौ तनयौ तात! तथैवेयं मुदावती ।
तवाज्ञया मयाऽन्यद्यत् कर्त्तव्यं तत् समादिश ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहर्षसंपूर्णहृदयः स महीपतिः ।
साधु साध्वित्यथाहोच्चैर्वत्स वत्सेति शोभनम् ॥ ६७ ॥

सभाजितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहं कारणैस्त्रिभिः ।
त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातितः ॥ ६८ ॥

आगतान्यक्षतान्यत्र यच्चापत्यानि मे पुनः ।
तद्गृहाणाऽद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ॥ ६९ ॥

त्वं राजपुत्र चार्वङ्ग्याः कन्याया दुहितुर्मम ।
मुदावत्या मुदा युक्तः सत्यवाक्यं कुरुष्व माम् ॥ ७० ॥

राजपुत्र उवाच

तातस्याज्ञामयाकार्यायद्ब्रवीषिकरोमि तत्।त्वमेवतातजानीषेनैवत्राविकृतावयम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम्। मुदावत्याश्च दुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै

ततः स ह तयारेमेवत्सप्रीर्नवयौवनः। रमणीयेषु देशेषुप्रासादशिखरेषु च ॥ ७३ ॥

कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भलन्दनः।
वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ॥ ७४ ॥

इयाज यज्ञान् सततंप्रजाधर्मेणपालयन्। पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना

ववृधुर्विषये तस्य न चाभूद्वर्णसङ्करः। न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित्

नोपसर्गभयञ्चैव तस्मिन् शासति भूपतौ ॥ ७६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेभलन्दवत्सप्रीचरित्रंनामषोडशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्राद्वादशजज्ञिरे। प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रो विक्रमःक्रमः

बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः।
स्वरूपश्च महाभागाः सर्वे सङ्ग्रामजित्तमाः ॥ २ ॥

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः । इतरेभृत्यवत्तस्यबभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥

तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः। न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा

सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाःपुत्रानिवौरसान्।

योऽभूद्धनचयः कोषे तेन निष्पादितास्तु ये ॥ ५ ॥

क्रतवः शतसाहस्रास्तेषां सङ्ख्यानविद्यते । अयुताद्येनकोटीभिर्नचपद्मादिभिर्मुने!

प्रजातिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्ययज्ञेशतक्रतुः । अवाप्यतृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह

दानवानां सुवीर्याणां जघान नवतीर्नव । बलश्च बलिनांश्रेष्ठो जम्भश्चासुरसत्तमम्

अन्यांश्च सुमहावीर्यानाजघानामरद्विषः । प्रजातेस्तनयाः पञ्च खनित्रप्रमुखामुने

तेषां खनित्रो राजाभूत् प्रख्यातो निजविक्रमैः ।

स शान्तः सत्यवाक् शूरः सर्वप्राणिहिते रतः ॥ १० ॥

स्वधर्माभिरतो नित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः ।

वाग्मी विनयसम्पन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ॥ ११ ॥

सर्वलोकप्रियो नित्यमुवाचैतदहर्निशम् । नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि

स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च ।

मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ॥ १३ ॥

मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने । शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तुपरस्परम्

समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम् ।

ते लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ॥ १५ ॥

यथात्मनि तथापुत्रे हितमिच्छथसर्वदा । तथा समस्तभूतेषुवर्त्तध्वं हितबुद्धयः ॥

एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते ।

यत् करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः ॥ १७ ॥

तं समभ्येति तन्न्यूनंकर्तृगामिफलं यतः । इतिमत्वासमस्तेषुभोलोकाःकृतबुद्धयः

सन्तु मा लौकिकं पापं लोकाः प्राप्स्यथ वै बुधाः ।

यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ॥ १६ ॥

यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु ।

एवं स्वरूपः पुत्रोऽभूत् खनित्रस्तस्य भूपतेः ॥ २० ॥

समस्तगुणसम्पन्नः श्रीमानब्जदलेक्षणः । तेन तेभ्रातरःप्रीत्या पृथग्राज्येषुयोजिताः

स्वयञ्चपृथिवीमेतांवुभुजेसागराम्बराम् । प्राच्यांतेनकृतःशौरिर्दक्षिणायामुदावसुः दिशि प्रतीच्यां मुनयउत्तरस्यांमहारथः । तेषांतस्यचभूपस्यपृथग्गोत्राःपुरोहिताः बभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः । शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजाः उदावसोः कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत् । काश्यपःप्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहितः

महारथस्य वाशिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः ।
वुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपाः ॥ २६ ॥

खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः । तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः

प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः ।
एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ॥ २८ ॥
विविक्ते पृथिवीपाल! किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति नः ।
यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपावशानुगाः ॥ २६ ॥

सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः । इतरेभ्रातरस्तस्यप्राकल्पविषयाधिपाः

तत्पुत्रश्चाल्पकस्तस्मात् तत् पौत्राश्चाल्पकल्पिकाः ।
कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात् पुरुषान्तरम् ॥ ३१ ॥

कृष्योपजीविनोभूप!भवन्तीति तदन्वयाः । नोद्धारं कुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहवलार्पणः स्नेहकः पृथिवीपाल! परयोर्भ्रातृपुत्रयोः । तत् पुत्रयोःपरतरा मतिर्भवति पार्थिव!

तत्पुत्रः केन कार्य्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति ।
अथवा येन तेनैव सन्तोषं कुरुते नृपः ॥ ३४ ॥

क्रियते तत्किमर्थन्तुभूपैर्मन्त्रपरिग्रहः । भुज्यतेसकलंराज्यंमया ते मन्त्रिणा सता तत् किंसुखाधारयसे सन्तोषं कुरुतेयदि । कार्यनिष्पादकंराज्यंकरणंकर्त्तु रिष्यते

राज्यलब्धुश्च ते कार्य्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम् ।

सोऽस्माभिः करणैराज्यं पितृपैतामहं कुरु । फलप्रदाभविष्यामःपरलोकेनतेवयम्

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा महीपाल! वयन्तस्यानुजा यतः ।

ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं वयश्चाल्पवसुन्धराम् ॥ ३८ ॥
वयन्तु भ्रातरःपञ्चपृथ्वीचैकामहामते !। अतोऽस्याःपृथगैश्वर्यंकथंकृत्स्नंभविष्यति

विश्ववेद्युवाच

एवमेतद्भवांस्तत्र यद्येका वसुधानृप! । तांत्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठःशास्तुमर्हींभवान्
सर्वाधिपत्यः सर्वेभ्यो भवत्वमखिलेश्वरः । यतन्तेचयथाऽहन्तेतेषामाहितमन्त्रिणः

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान् सुतानिव ।
कथं तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥ ४२ ॥

विश्ववेद्युवाच

राज्यस्थितःपूजयेथाज्ज्येष्ठोभूपार्हणैर्नवैः । कनिष्ठज्येष्ठताकेयंराज्यंप्रार्थयतांनृणाम्

मार्कण्डेय उवाच

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेनसत्तम! । विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातननयद्वशम् ॥
तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु ।
नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥ ४५ ॥
बिभेद तस्यनिभृतान् सामदानादिभिस्तथा । चक्रेचपरमोद्योगंनिजदण्डप्रभावने
आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनि कुर्वताम् । पुरोधसां चतुर्णाञ्च जज्ञेकृत्याचतुष्टयम्
विकरालं महावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् । समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥४८॥
ततस्तदागतन्तत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः । निरस्तञ्चाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनतत्
कृत्याचतुष्टयन्तेषु निपपात दुरात्मसु । पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि
ततो निहन्त्या निर्दग्धाः कृत्यया ते पुरोहिताः ।
विश्ववेदी तथा मन्त्री स शौरेर्दुष्टमन्त्रदः ॥ ५१ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरित्रवर्णनंनाम
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततःसमस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् ।
यदेककालं नेशुस्ते पृथक् पुरनिवासिनः ॥ १ ॥
ततः शुश्राव निधनं यातान् भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणश्च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् ॥ २ ॥
किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम !।
खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात् तच्च कारणम् ॥ ३ ॥

ततोवसिष्ठंपप्रच्छ सराजागृहमागतम् । यत्कारणंविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः
तेन पृष्टस्तदाप्राहयथावृत्तंमहामुनिः । यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तं यच्च शौरिरुवाचतत्
यथाचानुष्ठितन्तेन भ्रातृणां भेदकारिवै । मन्त्रिणातेनदुष्टेन यच्चक्रुश्चपुरोहिताः ॥

यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयापराः ॥ ७ ॥
सतच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थं वशिष्ठस्याग्रतो द्विज ! ॥ ८ ॥

राजोवाच

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् । दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम्

तन्निमित्तं विनष्टं यत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।
मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान् भुवि ॥ १० ॥

नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले । ततस्तेन विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥

धिग् राज्यं धिक् च मे जन्म भूभुजां महतां कुले ।

कारणत्वं गतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम् ॥ १२ ॥
कुर्वन्तः स्वामिनां तेऽर्थं भ्रातॄणां मम याजकाः ।
नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे ॥ १३ ॥
किं करोमि क गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत् ।
पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य यो गतः ॥ १४ ॥
इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः । वनंयियासुः पुत्रस्य कृतवानभिषेचनम्
अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसञ्ज्ञं महीपतिः ।
भार्य्याभिस्तिसृभिः सार्द्धं तपसे स वनं ययौ ॥ १६ ॥
तत्र गत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित् ।
शतानि त्रीणि वर्षाणां सार्द्धानि नृपसत्तमः ॥ १७ ॥
तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्य्यो द्विजोत्तम ! ।
निगृह्य सर्वस्रोतांसि तत्याजाऽसून् वनेचरः ॥ १८ ॥
ततः पुण्यान् ययौ लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्या ये नराधिपैः ॥ १९ ॥
भार्य्याश्च तस्य तास्तिस्रः समन्तेनैव तत्यजुः ।
प्राणानवापुः सालोक्यं तेनैव सुमहात्मना ॥ २० ॥
एतत् खनित्रचरितं श्रुतं कल्मषनाशनम् । पठताञ्च महाभाग! क्षुपस्यातोनिशामय

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरित्रवर्णनं नामाऽष्टादशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

क्षुपनृपतिचरित्रेणसहविविंशचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

क्षुपःखनित्रपुत्रस्तु प्राप्यराज्यंयथापिता । तथैवपालयामास प्रजा धर्मेण रञ्जयन्

स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः ।
समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २ ॥

एकदास महीपालो निजस्थानगतोमुने! । सूतैरुक्तोयथापूर्वं क्षुपोराजातथाऽभवत्

ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं क्षुपोऽभूत् पृथिवीपतिः ।
यादृक् चरितमस्यासीत्तादृक् तस्यैव चेष्टितम् ॥ ४ ॥

राजोवाच

श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः ।
यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥

सूता ऊचुः

स चकाराकरान् भूप! राजा गोब्राह्मणान् पुरा ।
षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ॥ ६ ॥

राजोवाच

तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्विधः ।
तस्याप्युत्कृष्टचेष्टानां चेष्टासूद्यमवान् भवेत् ॥ ७ ॥
तत् श्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया ।
क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ॥ ८ ॥
त्रींस्त्रीन् यज्ञान् करिष्यामि शस्यापाते गतागते ।
पृथिव्याञ्चतुरर्णायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ॥ ९ ॥

यश्च गोब्राह्मणाःपूर्वमददन् भूभृतेकरम् । तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम्

इति प्रतिज्ञाय वचः क्षुपस्तत् कृतवांस्तथा ।

शस्यापाते सयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतां वरः ॥ ११ ॥

गोब्राह्मणःपुराराज्ञामददद्यश्च वैकरम् । तावत् संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः

तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः प्रमथायामनिन्दितः ।

यस्य प्रतापशौर्य्याभ्यां कृता वश्या महीभृतः ॥ १३ ॥

तस्यापिनन्दिनी नामवैदर्भी दयिताऽभवत् । विविंशंतनयंतस्यांजनयामाससप्रभुः

विविंशेशासति महीं महीपाले महौजसि । महीतलमभूद्व्याप्तं निरन्तरतया नरैः

ववर्ष काले पर्जन्यो मही शस्यवती तथा ।

सुफलानि च शस्यानि रसवन्ति फलानि च ॥ १६ ॥

रसाःपुष्टिकराश्चासन् पुष्टिर्नोन्मादकारिणी । नवित्तनिचयानृणां प्रभूता मदहेतवः

तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने ! ।

स्वास्थ्यं जनः सुहृद्वर्गो मुदमिच्छन्ति पौरिकाः ॥ १८ ॥

इष्ट्वा स यज्ञान् सुबहून् सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।

सङ्ग्रामे निधनं प्राप्य शक्रलोकमितो गतः ॥ १६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विविंशचरित्रवर्णनं नामैकोन-
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नृपखनीनेत्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः । यस्य यज्ञेष्वगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः

खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति ।

तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी ससागरा ॥ २ ॥

दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।

तपसा द्रव्यमासाद्य मोचयेत् साधितेन यः ॥ ३ ॥

यतश्च प्राप्य वित्तर्द्धिमतुलां दातृसत्तमात् ।

जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र ! नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ॥ ४ ॥

सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च । सप्तषष्टिश्च यो यज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान्

अपुत्रः समहीपालो मृगयामुपचक्रमे । पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने! ॥

अश्वारूढो विना सैन्यमेक एवमहावने। बद्धगोधाङ्गुलित्राणो बाणखड्गधनुर्धरः

तं वाहयन्तं तुरगमन्यतोगहनाद्वनात्। विनिष्क्रम्य मृगः प्राह मां हत्वाभिमतंकुरु

राजोवाच

अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम् ।

कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्त्तुमिच्छसि ॥ ६ ॥

मृग उवाच

अपुत्रोऽहं महाराज ! वृथा जन्मप्रयोजनम् ।

विचारयन्न पश्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथाभ्येत्य मृगःप्राहतमन्योवसुधाधिपम् । मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव!

घातयस्वेति मां मांसैर्मम कर्म समाचर ।
यथा कृतार्थता ते स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ॥ १२ ॥
पुत्रार्थं त्वं महाराज! स्वपितॄन् यष्टुमिच्छसि ।
अपुत्रस्याऽस्य मांसेन लप्स्यसे वाञ्छितं कथम् ॥ १३ ॥
यादृक् कर्म विनिष्पाद्यं तादृक् द्रव्यमुपाहरेत् ।
दुर्गन्धैर्न सुगन्धानां गन्धज्ञानविनिर्णयः ॥ १४ ॥

राजोवाच

वैराग्यकारणं प्रोक्तमनेनापुत्रता मम । कथ्यतां प्राणसंत्यागे यत्ते वैराग्यकारणम्

मृग उवाच

वहवो मे सुता भूप! बह्व्योदुहितरस्तथा ।
यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् ॥ १६ ॥
सर्वसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजातिः सुकातरा ।
तेष्वपत्येषु मे चाति ममत्वं तेन दुःखितः ॥ १७ ॥
मनुष्य सिंहशार्दूल! वृकादिभ्योबिभेम्यहम् ।
न हीनात्सर्वसत्त्वेभ्यःश्वश्शृगालादपिप्रभो ! ॥ १८ ॥
सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां वसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात् सर्वामिच्छामि सुभृशं सकृत् ॥ १९ ॥
तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिकाः ।
तांस्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान् ॥ २० ॥
निष्क्रान्तेषुततस्तेषुममापत्येषु वै पृथक् । भवन्ति चिन्ताःशतशोममत्वावृतचेतसः
किं कूटपाशं किं वज्रं वागुरां किं सुतो मम ।
प्राप्तश्चरन् वने किं वा नृसिंहादिवशं गतः ॥ २२ ॥
प्राप्तोऽयमेकः संप्राप्तास्तेऽवस्थां कीदृशीं मम ।
साम्प्रतं विचरन्तो वै ये गताः सुमहावनम् ॥ २३ ॥

दृष्ट्वा प्राप्तसमाभ्यासमहंतानात्मजान्नृप । ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामिरजनींपुनः

प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेऽर्के निशामपि ।
वाञ्छाम्यहं कदा क्षेमं सर्वकालं भविष्यति ॥ २५ ॥

एतत्ते कथितं भूपममोद्वेगस्यकारणम् । अतः प्रसादं कुरु मे बाणोऽयंपात्यतांमयि

इति दुःखशताविष्टः प्राणानपि त्यजामि यत् ।
तत्कारणं निबोध त्वं ब्रुवतो मम पार्थिव !॥ २७ ॥
असूर्य्या नाम ते लोका यान् गच्छन्त्यात्मघातकाः ।
यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रितीः प्रभो ॥ २८ ॥

अग्निःपशुरभूत्पूर्वंपशुरासीज्जलाधिपः । भास्वानथोच्छ्रितीःप्राप्तोयज्ञेनिष्ठामुपागतः

तन्ममैतांकृपांकृत्वानय मामुच्छ्रितिंनृप ।आत्मनश्चेप्सितंकामंपुत्रलाभादवाप्स्यसि

पूर्वमृग उवाच

राजेन्द्र नैषहन्तव्योधन्योऽयंसुकृती मृगः । बहवस्तनयायस्यहन्तव्योऽहमसन्ततिः

उत्तरमृग उवाच

एकदेहभवं यस्य दुःखंधन्यःस वै भवान् । बहूनि यस्य देहानितस्यदुःखान्यनेकधा

एको यदाहमासन्तु प्राक् तदा देहजं मम ।
दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्य्यायास्तदभूद् द्विधा ॥ ३३ ॥
यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै ।
तावच्छरीरभूमीनि मम दुःखान्यथाभवन् ॥ ३४ ॥
न कृतार्थो भवान् यस्य नातिदुःखाय सम्भवः ।
इह दुःखाय मत् सूतिः परत्र च विरोधिनी ॥ ॥ ३५ ॥

यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानांकरोमि तत् । चिन्तयामि च सम्भूतिस्तेनमेनरकेध्रुवा

राजोवाच

न वेद्मि किं सन्ततिमान् धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग !।
पुत्रार्थश्चायमारम्भो मम दोलायते मनः ॥ ३७ ॥

दुःखाय सन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकाय तत्।
तथाप्यतनयान् यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ॥ ३८ ॥
सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृतेप्राणिवधंमृग ! । तपसैव प्रचण्डेन यथा पूर्वं महीपतिः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनीनेत्रचरितं नाम विंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् । तत्रतुष्टावनियतोभूत्वादेवंपुरन्दरम्
तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः। तुष्टाव प्रयतः शक्रमपत्यार्थं महीपतिः ॥
तस्य स्तोत्रेणतपसा भक्त्याचापिसुरेश्वरः। तुतोष भगवानिन्द्रःप्राहचैनंमहामुने
अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च ।
परितुष्टोऽस्मि ते भूप! व्रियतां भवता वरः ॥ ४ ॥

राजोवाच

अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतां वरः। सदा चाभ्याहतैश्वर्योधर्मकृद्धर्मवित् कृती

मार्कण्डेय उवाच

तथेति चोक्तः शक्रेण राजाप्राप्तमनोरथः। प्रजाःपालयितुं भूप आजगामनिजंपुरम्
तत्रास्य कुर्वतो यज्ञं सम्यक् पालयतः प्रजाः।
अजायत सुतो विप्र तदा शक्रप्रसादतः ॥ ७ ॥
तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्वइतिभूपतिः। अस्त्रग्राममशेषञ्च ग्राहयामासतंसुतम्
पितर्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः।

स बलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्वमहीक्षितः ॥ ६ ॥

करञ्चदापयामास सारग्रहणपूर्वकम् । स सर्वभूमिपान् राजा पालयामासचप्रजाः

अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदाः।नचाभ्युत्थायसततंतेचास्मैप्रददुःकरान्

व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः ।

भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ॥ १२ ॥

स गृहीत्वास्वकंराज्यंपृथिवीशेबलान्मुने !। तस्थौस्वनगरेभूपैर्विरोधोबहुभिःकृतः

समेत्य सुमहावीर्याः ससाधनधनास्ततः । रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ॥

पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः । स्वल्पकोषोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः

अपश्यमानः शरणं सबलोद्विजसत्तम !। करौ मुखाग्रतः कृत्वानिशश्वासार्तमानसः

ततोऽस्यहस्तविरवान्मुखानिलसमाहताः । निजग्मुः शतशोयोधारथनागतुरङ्गमाः

ततः क्षणेन तत् सर्वं नगरं तस्य भूपतेः । व्याप्तमासीद्बलौघेनसारेणातिबलान्मुने

अथ सोऽतिबलौघेनमहतातेनसम्वृतः । निर्गम्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः

जित्वा च वशमानीय चकार करदान् पुनः ।

यथा पूर्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ॥ २० ॥

धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् ।

बलं करन्धमस्तस्मात् स बलाश्वोऽभिधीयते ॥ २१ ॥

स धर्मात्मा महात्मा च स मैत्रः सर्वजन्तुषु ।

करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २२ ॥

सम्प्राप्तस्यपरामार्त्तिददावरिविनाशनम् । बलंधर्मेण चाक्षितमभ्युपेत्य स्वयंनृपः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे करन्धमचरितवर्णनंनामैकविंशत्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

———

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितनृपतिचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

वीर्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरा नाम शुभव्रता। स्वयम्वरे सा जगृहे महाराजं करन्धमम्
तस्यांपुत्रंसराजेन्द्रोजनयामास वीर्यवान्। अवीक्षितमितिख्यातिमुपेतंजगतीतले
जाते तस्मिन् सुते राजासदैवज्ञानपृच्छत। कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रेशस्तलग्नेसुतोमम
कच्चिच्चालोकितंजन्ममममपुत्रस्यशोभनैः। ग्रहैः कच्चिन्नदुष्टानांग्रहाणांदृक्पथंगतम्

इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिं ततः।
शस्ते मूहूर्त्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव॥ ५॥
समुत्पन्नो महावीर्यो महाभागो महाबलः।
भविष्यति महाराज! महाराजस्तवात्मजः॥ ६॥

अवैक्षतेमं देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः। सोमश्चतुर्थस्तनयं तवैनं समवैक्षत॥ ७॥
उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोऽप्यरक्षत। नावैक्षतेमं सविता न भौमो न शनैश्चरः

तव पुत्रं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव।
सर्वकल्याणसम्पत्ति समवेतो भविष्यति॥ ९॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः। हर्षपूर्णमनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा॥
अवैक्षतेमं देवानां गुरुः सोमसुतो बुधः। नावैक्षतैनमादित्योनार्कसूनुर्न भूमिजः॥

अवैक्षतेति यत् प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः।
अवीक्षितेति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति॥ १२॥

मार्कण्डेय उवाच

अवीक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः। अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत्

स रूपेणातिभिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः।
बुद्ध्या वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम्॥ १४॥
धैर्येणाब्धिं तथोर्वीञ्च सहिष्णुत्वेन वीर्यवान्।
शौर्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः॥ १५॥
स्वयम्वरे तं जगृहे हेमधर्मात्मजा वरा। सुदेवतनया गौरी सुभद्रा बलिनः सुता॥
लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुतानिभा।
भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती॥ १७॥
याश्चैवन्नाभिनन्दन्ति स्वयम्वरकृतक्षणाः।
ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः॥ १८॥
निराकृत्य नृपान् सर्वांस्तासां पितृकुलानि च।
स्वकं हि वीर्यमाश्रित्य बलवान् स बलोद्धतः॥ १९॥
एकदा तु विशालस्य वैदिशाधिपतेः सुताम्।
वैशालिनीं स सुदतीं स्वयम्वरकृतक्षणाम्॥ २०॥
परिभूयाखिलान् भूपान् स्वेच्छया न वृतस्तया।
बलाज्जग्राह विप्रर्षे! यथान्या बलगर्वितः॥ २१॥
ततस्ते भूभृतः सर्वे बहुशस्तेन मानिना।
निराकृताः सुनिर्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः॥ २२॥
क्षमतांललनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम्। बहूनामेकवर्णानांजन्मधिग्वोमहीभृताम्
क्षत्रियो यः क्षतत्राणंवध्यमानस्यदुर्मदैः। करोतितस्यतन्नामवृथैवान्येहिबिभ्रति
आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्वताम्।
भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः॥ २५॥
उच्चार्यते स्तुतिर्या च सूतमागधवन्दिभिः।
सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात्॥ २६॥
चरतां सा वृथैवैष भूपश्चारैर्दिगन्तरैः। पौरुषाश्रयिणः सर्वे विशिष्टकुलसम्भवाः॥

बिभेति को न मरणात् को युद्धेन विनाऽमरः ।
विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः ॥ २८ ॥
एतन्निशम्य ते भूपाविस्पष्टामर्षपूरिताः । ऊचुः परस्परं सर्वे समुत्तस्थुश्चसायुधाः
केचिद्रथानारुरुहुःकेचिन्नागांस्तथाहयान् । अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताःपदातयः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनंनाम द्वा-
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति संग्रामसज्ञास्ते भूपा भूपसुतास्तथा ।
निराकृताः सुबहुशस्तत्कालश्चाप्यवीक्षिताः ॥ १ ॥
ततो बभूव संग्रामस्तस्य तैः सह दारुणाः । एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ! ॥
तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तंसुदुर्मदाः । अभिघ्नन्तोयुयुधिरे तैः समस्तैरसावपि
स तान् शरशतैरुग्रै बिभेद नृपनन्दनः ।
कृतास्त्रो बलवान् बाणैस्ते च तं बिभिदुः शितैः ॥ ४ ॥
कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधरम् ।
हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ५ ॥
करश्चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः ।
तथान्येषां तथैवाश्वान्रथस्यान्यस्य सारथिम् ॥ ६ ॥
बाणांनापततश्चक्रे द्विधा बाणैस्तथा द्विषाम् ।
चिच्छेदान्यस्य खड्गञ्च धनुरन्यस्य लाघवात् ॥ ७ ॥

तनुत्रेऽपहृते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः। अवीक्षिताहतश्चान्यःपदातिःप्रजहौरणम्
इत्याकुलीकृते तस्मिन् समग्रेराजमण्डले। तस्थुःसप्तशता वीरा मरणेकृतनिश्चयाः
आभिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः।
निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ॥ १० ॥
तै समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः। युयुधे धर्मयुद्धेन तेन तेनातिकोपितः
विच्छिन्नयन्त्रकवचान् स तानपि महाबलः।
कर्त्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने! ॥ १२ ॥
धर्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्मतः। नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलक्लिन्नाननाः समम् ॥
विव्याध कश्चिद्वाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम्।
ध्वजमस्यापरो वाणैश्छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ १४ ॥
जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान् वभञ्जुश्चापरे रथम्।
गदापातेनाऽथ वान्ये वाणैः पृष्ठमताडयन् ॥ १५ ॥
छिन्नेधनुषिसक्रोधः स तदा नृपतेःसुतः। जग्राहासितथाचर्म तदप्यन्योन्वपातयत्
छिन्नासिचर्मा जग्राह स गदां गदिनां वरः।
तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १७ ॥
अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्येनराधिपाः। विभिदुःकोष्ठकीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखाः
स विह्वलः पपातोर्व्यामेकोवहुभिरर्दितः। राजपुत्रामहाभागा ववन्धुस्तेच तं ततः
तमधर्मेणतेसर्वे गृहीत्वा नृपतेःसुतम्। विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः पुरम्
हृष्टाः प्रमुदिता वद्धं तमादाय नृपात्मजम्।
स्वयम्वरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः पुरः ॥ २१ ॥
पुनः पुनश्च पित्रोक्तातथापिच पुरोधसा।
आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥ २२ ॥
यदासामानिनी कश्चिन्न जग्राह वरं मुने!। तदापप्रच्छदैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः ॥
विशिष्टतरमेतस्या विवाहाय दिनं वद। अद्यैतदीदृक् सञ्जातं युद्धंविघ्नोपपादकम्

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टो नरेन्द्रेण स दैवज्ञो विमृष्य तत् ।
दुर्मना प्राह विज्ञातपरमार्थो महीपतिम् ॥ २५ ॥

भविष्यन्त्यपराणीह दिनानिपृथिवीपते !। प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेणच करिष्यतिविवाहार्थं तेषु प्राप्तेषु मानद ! । अलमेतेन यत्रार्य महाविघ्न उपस्थितः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितवर्णनंनामत्रयो-
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितनृपतिचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः शुश्राव तं बद्धं तनयं स करन्धमः । तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापि महीभृतः तमधर्मेणतनयं बद्धं श्रुत्वा महीपतिः । समन्तैः पृथिवीपालैश्चिरंदध्यौ महामुने ! केचिदूचुर्महीपाला वध्याः सर्वे महीभृतः । यैरेकः संयुगे बद्धःसमस्तैस्तैरधर्मतः ॥

युज्यतां वाहिनी शीघ्रमूचुरन्यैः किमास्यते ।
विशालो वध्यतां दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागताः ॥ ४ ॥

अन्येतथोचुर्धर्मोऽत्र त्यक्तः पूर्वं महीक्षितैः । अन्यायेन बलाद्येनगृहीतातमवाञ्छती स्वयंवरेष्वशेषेषु तेनराजसुतास्तदा । खलीकृतास्ततः सर्वे समेत्य स वशीकृतः तेषामेतद्वचःश्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती । वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ॥ उवाच भर्त्तुः प्रत्यक्षमन्येषाञ्च महीक्षिताम् । भद्रंकृतंभद्रभुजा मम पुत्रेणपार्थिवाः

गृहीता यद्बलात् कन्या जित्वा सर्वमहीक्षितः ।
तदर्थं युध्यमानोऽयं युद्ध एको न धर्मतः ॥ ६ ॥

तदप्यस्मत् सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम्। एतदेव हि पौरुष्यं यदधर्मवशान्नरः
नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केशरी। स्वयम्वराय विन्यस्तामम पुत्रेणकन्यका

वह्नयो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम्।

क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याच्ञा हीनसेविता ॥ १२ ॥

वलादेव समादत्ते क्षत्रियो वलिनांपुरः। लोहश्रृङ्खलवद्धावा न वशंयान्तिकातराः

प्रसह्यकारिणी यान्ति राजानो धर्मशालिनः।

तदलं दौर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य वन्धनम्। ॥ १४ ॥

युष्माकमप्यायुधानामङ्गमूर्द्धसु पातनम्। हत्वैवपृथिवीशानां पृथ्वीपुत्रादिकंवसु

भार्य्या चार्य्यनिमित्तानि ततो यातानि गौरवम्।

तत् त्वर्य्यतां रणायाऽऽशु स्यन्दनान्यधिरोहत ॥ १६ ॥

सज्जीकुरुत नागाश्वमचिरेण सुसारथिम्।

मन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम् ॥ १७ ॥

प्रभूता एवतोषाय शूरस्यालरणे क्रियाः। कस्यनाल्पेषुसामर्थ्यंनरेन्द्रादिषुजायते

येभ्यो न विद्यते भीतिर्हन्तुं पुत्राहितान्मुने !।

व्याप्तलोकान् समस्तान् यो ह्यभिभूय यतो नरः ॥

व्यरोचतेति शूरः स तमांसीव दिवाकरः ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थमुद्धर्षितो राजाऽनया पत्न्या करन्धमः।

चकार सबलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान्मुने ! ॥ २० ॥

ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः। बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने ! ॥
दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञः समं तदा। करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्वताम्
यदा पराजयप्रायं तं सर्वं भूपमण्डलम्। तदाविशालोऽर्घ्यकरःकरन्धममुपास्थितः

करन्धमोऽपि सम्प्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः।

वियुक्ते तनये तत्र निशां तां सुखमावसत् ॥ २४ ॥

ताञ्च कन्यामुपादाय विशाले समुपस्थिते ।
अवीक्षित् प्राह विप्रर्षे ! विवाहार्थं पितुः पुरः ॥ २५ ॥
नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ! ।
परैर्यस्या निरीक्षन्त्या सङ्ग्रामेऽहं पराजितः ॥ २६ ॥
अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामियंञ्चान्यं वृणोतु तम् ।
अखण्डितयशो वीर्य्यो यः परैर्नापमानितः ॥ २७ ॥
परैः पराजितोऽहं यत् कातरेयं यथाऽबला ।
किमत्र मानुषत्वं मे न तस्या मम चान्तरम् ॥ २८ ॥
स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाऽबला ।
नरोऽपि परतन्त्रो यस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता ॥ २९ ॥
सोऽहमस्या मुखं भूयो द्रष्टुं दर्शयिता कथम् ।
योऽहमस्याः पुरो भूमौ परैर्भूपैः खिलीकृतः ॥ ३० ॥
इत्युक्ते तेन तनयामुवाच जगतीपतिः । श्रुतं ते वचनंवत्स! वदतोऽस्यमहात्मनः
वरयान्यंपतिं तत्र मनस्ते रमते शुभे ।
वयं वासं प्रयच्छामो यस्मिंस्तस्मिं स्तवादृताः ।
एतयोर्ह्येकमातिष्ठ मार्गयो रुचिरानने ! ॥ ३२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पराजितोऽयं बहुभिर्न सम्यक् सम्यगाचरन् ।
सङ्ग्रामे तद्यशो वीर्य्यहानिकारिणि पार्थिव ! ॥ ३३ ॥
एकोबहूनांयुद्धायगतानामिवकेशरी । यत्संस्थितः परंशौर्य्यं तेनास्य प्रकटीकृतम्
न केवलमयं तस्थौ युद्धे तेऽप्यखिला जिताः ।
बहुशोऽनेन यत्तेन विक्रमोऽपि प्रकाशितः ॥ ३५ ॥
शौर्य्यविक्रमसंयुक्तमिमं सर्वमहीक्षितः । धर्मयुद्धमधर्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रपा
न चापि रूपमात्रेऽहं लोभमस्यगता पितः !।

शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणि हरन्त्यस्य मनो मम ॥ ३७ ॥

तत्किमुक्तेनवहुनायाच्यतांमत्कृतेनृपः । त्वयामहानुभावोऽयंनान्योमेभवितापतिः

विशाल उवाच

राजपुत्र! सुताप्राह ममैतच्छोभनं वचः । एवञ्चैवत्वया तुल्यः कुमारो न महीतले

अविसम्वादि ते शौर्य्यमतीव च पराक्रमः ।

पावयाऽस्मत् कुलं वीर ! दुहितुर्मे परिग्रहात् ॥ ४० ॥

राजपुत्र उवाच

नाहमेतां ग्रहीष्यामि नचान्यां योषितं नृप ! ।

आत्मन्येव हि मे वुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ! ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमःप्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया । विशालतनयासुभ्रस्त्वयिहार्दवती दृढम्

राजपुत्र उवाच

नाज्ञाभङ्गः कदाचित्ते कृतपूर्व्वो मया प्रभो ! ।

तथाऽऽज्ञापय मां तात ! यथाज्ञां करवाणि ते ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन्राजसुते सताम् ।

तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ॥ ४४ ॥

निवर्त्यतां मनः पुत्रि ! एतस्माच्च प्रयोजनात् ।

अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ॥ ४५ ॥

कन्योवाच

वरं वृणोम्यहं तात ! मामेष यदि नेच्छति ।

तपसोऽन्यो न मे भर्त्ता जन्मान्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततःकरन्धमोराजा विशालेनसमंमुदा । स्थित्वादिनत्रयंतत्र निजमभ्याययौपुरम्

अवीक्षितोऽपि तेनैव पित्राऽन्यैश्च नराधिपैः ।
निदर्शनैः पुरावृत्तैः सान्त्वितोऽभ्यागमत् पुरम् ॥ ४८ ॥
सापि कन्या वनं गत्वा निसृष्टा निजबान्धवैः ।
तपस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ॥ ४९ ॥
निराहारा यदासा तु मासत्रयमवस्थिता । सम्प्रापपरमामार्त्तिंकृशाधमनिसन्तता
मन्दोत्साहातितन्वङ्गीमुमूर्षुरपि बालिका ।
देहत्यागाय सा चक्रे तदा वुद्धिं नृपात्मजा ॥ ५१ ॥
आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतवुद्धिं सुरास्ततः ।
समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतं तदन्तिकम् ॥ ५२ ॥
समुपेत्य स तां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे ! ।
प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्कार्य्यं तन्निशामय ॥ ५३ ॥
न भवत्या परित्याज्यं शरीरमतिदुर्लभम् ।
त्वं भविष्यसि कल्याणि ! जननी चक्रवर्त्तिनः ॥ ५४ ॥
पुत्रेण च महाभागे ! भोक्तव्या निहतारिणा ।
अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ॥ ५५ ॥
हन्तव्यस्तेन तरुजिद्देवानां पुरतो रिपुः ।
अयः शङ्कुस्तथा क्रूरो धर्मे स्थाप्यास्ततः प्रजाः ॥ ५६ ॥
परिपालनीयमखिलं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मतः ।
हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये चान्ये दुष्टचेष्टिताः ॥ ५७ ॥
यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । वाजिमेधादिभिर्भद्रेषट्सहस्रैश्च सङ्ख्यया

मार्कण्डेय उवाच

तं दृष्ट्वा साऽन्तरीक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् । देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदुः
सत्यं त्वमागतः स्वर्गाद्देवदूतो न संशयः ।
किन्तु भर्त्रा विना पुत्रः स कथं मे भविष्यति ॥ ६० ॥

अवीक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि।
भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत्सन्निधौ पितुः॥ ६१॥
स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च।
करन्धमेनाथ सम्यक् याचितश्च मया तथा॥ ६२॥

देवदूत उवाच

किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः।
समुत्पत्स्यति मा त्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मतः॥ ६३॥
अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणाञ्च पोषय। तपःप्रभावादेतत्ते सर्वं साधु भविष्यति

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वादेवदूतोऽसौयथागतमगच्छत। चकारानुदिनंसुभ्रूःसाप्यात्मतनुपोषणम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनंनाम-
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ साऽवीक्षितो माता वीरा वीरप्रजावती।
पुण्येऽहनि समाहूय प्राह पुत्रमवीक्षितम्॥ १॥
पुत्राहमभ्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना।उपवासंकरिष्यामिदुष्करोऽयंकिमिच्छकः
स चायत्तस्तव पितुस्त्वंया साध्यो मयापि च।
प्रतिज्ञाते त्वया पुत्र! ततस्तत्र यताम्यहम्॥ ३॥

द्रव्यस्यार्द्धं महाकोषात् तव दास्याम्यहं पितुः ।
धनन्ते पितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मि तेन च॥ ४ ॥
क्लेशसाध्योमदायत्तःसहिश्रेयोभविष्यति ।साध्योभवेद्वायदितेकश्चिद्बलपराक्रमे
स तेऽसाध्यो ह्यन्यथा वा दुःखसाध्यो भविष्यति ।
तत्त्वं प्रतिज्ञां कुरुषे यदि पुत्राऽत्र चैव ते ॥
तदेतदहमावाप्स्ये कथ्यतां यन्मतं तव ॥ ६ ॥

अवीक्षित उवाच

वित्तं मे पितुरायत्तं मत् स्वामित्वं न तत्र वै ।
यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७ ॥
किमिच्छकंव्रतंमातर्निश्चिन्ताभवनिर्व्यथा ।राज्ञापित्राऽभ्यनुज्ञातंयदिवित्तेश्वरेणमे

मार्कण्डेय उवाच

ततःसाराजमहिषीतद्व्रतंसमुपोषिता ।यथोक्तांसाऽकरोत्पूजांराजराजस्यसंयता
निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च ।
लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा ॥ १० ॥
विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धमः ।
आसीन उक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥

सचिवा ऊचुः

राजन् वयःपरिणतं तवैतच्छासतो महीम् । एकस्तेतनयोऽवीक्षित्त्यक्तदारपरिग्रहः
अपुत्रः स च तेनिष्ठांयदाभूप गमिष्यति । तदारिपक्षं पृथिवीनिश्चितंतवयास्यति
वंशक्षयस्ते भवितापितृपिण्डोदकक्षयः । एतन्महत्तेऽरिभयंक्रियाहान्याभविष्यति
तस्मात् कुरुत थाभूपयथा तेतनयःपुनः । करोतिसततंबुद्धिंपितृणामुपकारिणाम्

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शब्दं शुश्राव जगतीपतिः । पुरोहितस्य वीराया गदतोह्यर्थिनं प्रति
कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य किं साध्यतामिति ।

करन्धमस्य महिषी किमिच्छकमुपोषिता ॥ १७ ॥
राजपुत्रोऽप्यवीक्षित्तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः ।
प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान् राजद्वारमुपागतान् ॥ १८ ॥
मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ।
मम माता महाभागा किमिच्छकमुपोषिता ॥ १९ ॥
शृण्वन्तुमेऽर्थिनःसर्वेप्रतिज्ञातंमयातदा । किमिच्छथददाम्येषक्रियमाणेकिमिच्छके

मार्कण्डेय उवाच

ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यंपुत्रमुखाच्च्युतम् । समुत्पत्याब्रवीतपुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे

अवीक्षिदुवाच

दातव्यं यन्मया तात! भवते तद्ब्रवीहि माम् ।
कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यमेव वा ॥ २२ ॥

राजोवाच

यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम् ।
पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् ॥ २३ ॥

अवीक्षिदुवाच

अहन्तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्यञ्च मे नृप । नमेपुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथंमुखम्

राजोवाच

पापाय ब्रह्मचर्यन्तेयदिदंधार्यते त्वया । तस्मात् त्वं मोचयात्मानं ममपौत्रञ्चदर्शय

अवीक्षिदुवाच

विषमं स्यान्महाराज! यदन्यत्तत् समादिश ।
वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसम्भोगस्तथास्तु सः ॥ २६ ॥

राजोवाच

बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो वै वैरिणां जयः । तत्रापियदिवैराग्यमुपैषि तदपण्डितः
किं वा नो बहुनोक्तेनब्रह्मचर्यं;परित्यज । मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रंपौत्रस्यममदर्शय

मार्कण्डेय उवाच

यदा स बहुभिस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः ।
नान्यत् प्रार्थयते किञ्चित् तदा पुत्रोऽब्रवीत् पुनः ॥ २९ ॥
दत्त्वा किमिच्छकं तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात! सङ्कटम् ।
तत्करिष्यामि निर्लज्जो भूयो दारपरिग्रहम् ॥ ३० ॥
स्त्रियः समक्षंविजितःपतितोधरणीतले । स्त्रीपतिर्भविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम्
तथापि किङ्करोम्येष सत्यपाशवशंगतः ।
करिष्यामि यथाऽऽत्थ त्वं भुज्यतां निजशासनम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनंनामपञ्चविंशत्यधिक
शततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौमृगयामचरद्वने । मृगान्विध्यन्वराहांश्चशार्दूलादींश्चदंष्ट्रिणः
शुश्राव सहसा शब्दं त्राहि त्राहीति योषितः ।
विक्रोशन्त्याः सुबहुशो भयगद्गदमुच्चकैः ॥ २ ॥
मा भैर्माभैरिति वदन् राजपुत्रःस वेगितः । चोदयामास तुरगं यतःशब्दःसमागतः
ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने । गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥
करन्धमसुतस्याहं भार्या चाहमवीक्षितः । हरत्यनार्यो विपिनेपृथिवीशस्यधीमतः
यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यकाः ।
न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्या हृताऽस्म्यहम् ॥ ६ ॥

यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ।

करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्या हृताऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य महीपालतनयः सशरासनी । चिन्तयामासकिमिदं ममभार्याऽत्रकानने

मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम् ।

अथ वा गत एवाहं सर्वं वेत्स्यामि कारणम् ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वरितः सततोगत्वाददर्शातिमनोरमाम् । काननेकन्यकामेकांसर्वालङ्कारभूषिताम्

गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना । त्राहि त्राहीतिकरुणं विक्रोशन्तीं पुनःपुनः

मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन् ।

शासतीमां महीं दुष्टः को भूपेऽत्र (दूयेत) करन्धमे ॥ १२ ॥

यस्य प्रतापावनता भुवि सर्वे महीक्षितः । ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम्

मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हृतास्म्येषेति चासकृत् ।

राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्याप्यवीक्षितः ॥

हृताऽस्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवद्वने ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो विममृषे वाक्यमवीक्षित् स तथोदितम् ।

कथमेषा हि मे भार्या स्नुषा तातस्य वा कथम् ॥ १५ ॥

अथ वा मोचयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत् पुनः ।

क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् ॥ १६ ॥

ततःक्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवंतंसुदुर्मतिम् ।जीवन्गच्छविमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि

ततः सतां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः ।

तमप्यधावत्सोऽप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १८ ॥

सवार्यमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः । राजपुत्रायचिक्षेपदण्डंशङ्कुशतावृतम्

तमापतन्तं चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्ततः ।
सोऽप्यासन्नं गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौव्यवस्थितः ॥ २० ॥

सृजतः शरवर्षाणि तं चिक्षेपततो द्रुमम् । स चतंतिलशश्चक्रेभल्लैः कार्मुकमोचितैः

ततश्चिक्षेप च शिलां राजपुत्राय दानवः ।
सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् ॥ २२ ॥

राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानवः ।
तत्तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत्सूनुः स लीलया ॥ २३ ॥

ततो विच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नसकलायुधः ।
मुष्टिमुद्यम्य सक्रोधो राजपुत्रमधावत ॥ २४ ॥

तस्यापतत एवासौ करन्धमसुतः शिरः । छित्वा वेतसपत्रेणपातयामास वैभुवि

तस्मिन् विनिहते देवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते । करन्धमसुतःसर्वैःसाधुसाध्विवतिभाषितः

वर वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तो नृपात्मजः ।
वव्रे पुत्रं महावीर्यं पितुः प्रियचकीर्षया ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः

भविष्यति हितेपुत्रश्चक्रवर्त्तीमहाबलः । अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायांत्वयानघ

राजपुत्र उवाच

पित्राहंसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् । राजभिर्निर्जितेनाऽऽजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः

सा च मे यावता त्यक्ता विशालनृपतेः सुता ।
तया च मत्कृते त्यक्तो मामृते नरसङ्गमः ॥ ३० ॥

तत् कथं तामपास्याद्य विशालतनयामहम् ।
नृशंसानां (त्मा) करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ॥ ३१ ॥

देवा ऊचुः

इयमेवहि ते भार्या श्लाघ्यते या त्वया सदा ।
विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृते याऽऽश्रिता तपः ॥ ३२ ॥

तस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः । यष्टायज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्चार्य ययुर्देवाः करन्धमसुतं द्विज !।

सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीरु! किं त्विदम् ॥ ३४ ॥

सा चास्मै कथयामास त्यक्ताऽहं भवता यदा ।

त्यक्तवन्धुजनारण्यं निर्वेदात् समुपागता ॥ ३५ ॥

तत्राहं तपसा वीर! क्षीणप्रायंकलेवरम्। त्यक्तुकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता

भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः ।

प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ॥ ३७ ॥

इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता । न सन्त्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गमनोरथा ॥

परश्वश्च महाभाग! स्नातुंगङ्गाह्रदंगता । अवतीर्णाविकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित्

ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरम् ।

नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥ ४० ॥

तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा ।

ययाचिरे सविनयं नागा मामङ्गनास्तथा ॥ ४१ ॥

प्रसादं कुरुसर्वेषांत्वमस्माकं सुतस्त्वया । अपराधमुपेतानांसंनिवार्यो वधोन्मुखः

अपराधं करिष्यन्ति त्वत् पुत्रस्यानिलाशनाः ।

तन्निमित्तं निवार्य्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥ ४३ ॥

तथेतिचमया प्रोक्ते दिव्यैःपातालभूषणैः । भूषिताऽहंतथापुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः

समानीता तथालोकमिमन्ते नानिलाशिना ।

पुरा यथा कान्तिमती पूर्ववद्रूपशालिनी ॥ ४५ ॥

इतिरूपवतीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारभूषिताम् । जग्राह दृढकेशोऽयं हर्तुकामः सुदुर्मतिः

युष्मद्बाहुबलेनाहं राजपुत्र! विमोक्षिता ।

तत् प्रसीद महाबाहो ! मां प्रतीच्छ त्वया समः ।

भूलोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनं नाम
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रेभामिनीराजपुत्र्याःपूर्वजन्मवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् ।
किमिच्छकप्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ॥ १ ॥
प्रत्युवाच स तां कन्यामवीक्षिन्नृपतेः सुतः ।
सानुरागमनाः कन्यां त्यक्तभोगाश्च तत्कृते ॥ २ ॥
यदाहं त्यक्तवांस्तन्वीं त्वामरातिपराजितः ।
विजित्य शत्रून् सम्प्राप्तो (प्ता) त्वं मयाऽत्र करोमि किम् ॥ ३ ॥

कन्योवाच

ममपाणिंगृहाणत्वंरमणीयेऽत्रकानने । सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणवान् भवेत्

राजपुत्र उवाच

एवं भवतु भद्रन्ते विधिरेवात्रकारणम् । अन्यथाकथमन्यत्र त्वमहञ्च समागतः ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो गन्धर्वतनयो मुने !। वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्वैरपरैर्वृतः

गन्धर्व उवाच

राजपुत्र ! सुतेयम्मे भामिनी नाम मानिनी ।
अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥

बालभावेन योऽगस्त्यः कोपितः क्रीडमानया ।
ततस्तेन तदा शप्ता मानुषी त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥
प्रसादितः स चास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ।
तवाऽपराधाद्विप्रर्षे! प्रसादः क्रियतामिति ॥ ६ ॥
प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः ।
बालेति मत्वा शापोऽल्पो दत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ॥ १० ॥
इतिशापादगस्त्यस्य विशालभवनेशुभा । जातेयंमत्सुता सुभ्र्भामिनीनामनामतः
तदस्याऽहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम् ।
ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्त्ती भविष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वेति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मजः ।
जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्बुरुः ॥ १३ ॥
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । पुष्पाणिससृजुर्मेघा देववाद्यानि सस्वनुः
विवाहे राजपुत्रस्य तयातत्र समेयुषः । समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥
ततोगन्धर्वलोकं ते सह तेनमहात्मना । निःशेषेणययुः साचस च राजसुतो मुने !
भामिन्या मुमुदे सार्द्धमवीक्षिन्नृपनन्दनः । साचतेनसमंतत्र भोगसम्पत्समन्विता
कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तथा । चिक्रीडतिसमं तन्व्या कदाचिदुपपर्वते
कदाचित् पुलिने नद्या हंससारसशोभिते ।
कदाचिद्भवनस्याऽन्ते प्रासादे चातिशोभने ॥ १६ ॥
विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम् । सरेमेसहितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ॥
भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् । उपजह्रुस्तयोस्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः
तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे ।
गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥ २२ ॥
तस्मिन् जाते महावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः । बभूवमनुजव्याघ्रे तेनकार्यमवेक्षताम्

जगुः केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान्। अवादयन्तचैवान्येवेणुवीणादिकांस्तथा
ननृतुश्च तथा तत्र बहवोऽप्सरसां गणाः। पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगर्ज्जुर्दुन्दुनिस्वनाः
तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्त्तमानेऽथतुम्बुरुः। प्रणयेनस्मृतयातोजातकर्माकरोन्मुनिः
देवाःसमाययुःसर्वे तथादेवर्षयोऽमलाः। पातालात्पन्नगेन्द्राश्चशेषवासुकितक्षकाः

तथा देवासुराणाञ्च ये प्रधाना द्विजोत्तम!।
यक्षाणां गुह्यकानाञ्च वायवश्च तथाऽखिलाः ॥ २८ ॥
तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः।
मुनिभिश्चाकुलमभूत् गन्धर्वाणां महत्पुरम् ॥ २९ ॥
ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्मादिकां क्रियाम्।
चक्रे स्वस्त्ययनं यस्य बालस्य स्तुतिपूर्वकम् ॥ ३० ॥

चक्रवर्त्तीमहावीर्य्यो महाबाहुर्महाबलः। महान्तंकालमीशित्वमशेषायाःक्षितेःकुरुः

इमे शक्रादयः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः।
स्वस्ति कुर्वन्तु ते वीर! वीर्य्यञ्चारिविनाशनम् ॥ ३२ ॥
मरुत्तव शिवायास्तु वाति पूर्वेण योऽरजः।
मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तु दक्षिणः ॥ ३३ ॥

पश्चिमस्ते मरुद्वीर्य्यमुत्तमन्ते प्रयच्छतु। बलंयच्छतुचोत्कृष्टं मरुत्ते च तथोत्तरः॥
इतिस्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचाशरीरिणी। मरुत्तवेतिबहुशो यदिदं गुरुरब्रवीत्

मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति।
भुवि चास्य महीपाला यास्यन्त्याज्ञावशा यतः ॥ ३६ ॥
एष सर्वक्षितीशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि।
चक्रवर्त्ती महावीर्य्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ ३७ ॥
आक्रम्य पृथिवीपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः।
प्रधानः पृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम् ॥
आधिक्यं शौर्य्यवीर्य्येण भविष्यत्यस्य राजसु ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य वचः सर्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम् ।
तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्य माता तथा पिता ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रमाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमपौत्रप्राप्तौराज्येमहाहर्षवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् । पत्न्याश्चानुगतोविप्रगन्धर्वैरायथौपुरम्
स पितुर्भवनंप्राप्यववन्दे पितुरादरात् । चरणौसाच तन्वङ्गी ह्रीमती नृपतेः सुता

तथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
धर्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ॥ ३ ॥
मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया ।
किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गे तं कृत्वातनयंततः । यथावृत्तमशेषं स कथयामासतस्यतत्

स परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ।
सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६ ॥
ततः सोऽर्घ्यादिना सम्यक् गन्धर्वान् समुपागतान् ।
सम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥ ७ ॥

ततःपुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु । अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने।

हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन् गीतवाद्यैर्वराङ्गने ! ।

विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥ ६ ॥
राजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च ।
गावां वस्त्राण्यलङ्कारानददद्धृष्टमानसः ॥ १० ॥
ततः स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ।
पितॄणां प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ॥ ११ ॥
आचार्य्याणां सकाशात् सा प्राग्वेदान् जगृहे मुने ! ।
ततः शस्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥ १२ ॥
कृतोद्योगोयदासोऽभूत् खड्गकार्मुककर्मणि । अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रमः
ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद् भृगुसम्भवात् ।
विनयावनतो विप्र! गुरोः प्रीतिपरायणः ॥ १४ ॥
गृहीतास्त्रः कृतीवेदे धनुर्वेदस्य पारगः । निष्णातःसर्वविद्यासु न बभूव ततः परः
विशालोऽपि सुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्य च योग्यताम् ॥ १६ ॥
अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः ।
यज्ञाननेकान् निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ॥ १७ ॥
कृताशेषक्रियो युक्तः सवर्णैर्धर्मतो महीम् । परिपाल्यारिविजयीवलबुद्धिसमन्वितः
सयियासुर्वनं पुत्रमवीक्षितमभाषत । पुत्र!वृद्धोस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे
कृतकृत्योऽस्मि नास्त्यन्यत् किञ्चित् त्वदभिषेचनात् ।
सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयाऽर्पितम् ॥ २० ॥
इत्युक्तःपितरंप्राहसोऽवीक्षिन्नृपनन्दनः । प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुस्तपसेवनम्
नाऽहं तात ! करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम् ।
नापैति ह्रीर्मे मनसो राज्येऽन्यं त्वं नियोजय ॥ २२ ॥
तातेनमोक्षितो बद्धो न स्ववीर्यादहंयतः । ततः कियत्पौरुषं मे पुरुषैःपाल्यते मही
योऽहं न पालनायालमात्मनोऽपि वसुन्धराम् ।

स कथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ॥ २४ ॥

मन्त्री स धर्मः पुरुषोयश्चान्येनावकृष्यते ।

आत्माऽमोहाय भवतो बन्धनाद्येन मोक्षितः ॥

सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्मा महीपतिः ॥ २५ ॥

स्त्रियः पुमान्भवेद्भर्ता यः शूरः स महीपतिः ।

पितोवाच

न भिन्न एव पुत्रस्य पितापुत्रस्तथा पितुः ।

नान्येन मोक्षितो वीर ! यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ॥ २६ ॥

पुत्र उवाच

हृदयं नान्यथानेतुं मया शक्यं नरेश्वर!। हृदये ह्रीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया

पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात् समुद्धृतः ।

विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले ॥ २८ ॥

स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् ।

स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्तोऽप्यसौ मुने! । तदातस्यसुतंराज्येमरुत्तमकरोन्नृप

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।

चकार सम्यक् सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥ ३१ ॥

राजा करन्धमश्चापि वीरामादाय तां तथा ।

वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ॥ ३२ ॥

तत्र वर्षसहस्रं च स तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।

विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ॥ ३३ ॥

साऽस्य पत्नी तदावीराव्वर्षाणामपरंशतम् । तपश्चचार विप्रर्षे!जटिला मलपङ्किनी

सालोक्यमिच्छती भर्त्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः ।

फलमूलकृताहारा भार्गवाश्रमसंश्रया । द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणादृता

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णनंनामाऽ-
ष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तचरित्रवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्! विस्तरात् सर्वं ममैतत्कथितं त्वया ।
करन्धमस्य चरितमवीक्षिच्चरितञ्च यत् ॥ १ ॥
आवीक्षितस्यनृपतेर्मरुत्तस्यमहात्मनः । श्रोतुमिच्छामिचरितंश्रयतेसोऽतिचेष्टितः
चक्रवर्त्ती महाभागः शूरः कान्तो महामतिः ।
धर्मविद्धर्मकृच्चैव सम्यक् पालयिता भुवः ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।
धर्मतः पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ ४ ॥
इयाज सुबहून् यज्ञान् यथावत् स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेशरम्यचित्तो (ादनिर्विण्णो) महीपतिः ॥ ५ ॥
तस्याप्रतिहतंचक्रमासीत्द्वीपेषुसप्तसु ।गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्वःपातालजलादिषु
ततःप्राप्यधनंविप्र! यथावत्स्वक्रियापरः । अयजत् स महायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान्
इतरे च यथा वर्णाः स्वे स्वे कर्मण्यतन्द्रिताः ।
तदुपात्तधनाश्चक्रु रिष्टापूर्त्तादिकाः क्रियाः ॥ ८ ॥
पाल्यमाना महीतेन मरुत्तेन महात्मना । पस्पर्द्धत्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम!

तेनातिशायिताः सर्वे केवलं न समीक्षितः ।
यज्विना देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिभिः ॥ १० ॥
ऋत्विक् तस्य तु सम्वर्त्तो बभूवाङ्गिरसः सुतः ।
भ्राता बृहस्पतेर्विप्र ! महात्मा तपसां निधिः ॥ ११ ॥
सौवर्णोमुञ्जवान्नामपर्वतःसुरसेवितः । पातितंतेनतच्छृङ्गं हृतं (कृते)तस्यमहीपतेः
तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज ! ।
प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्वकाञ्चनाः ॥ १३ ॥
गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुत्तचरिताश्रयाः । सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनं यथा
मरुत्तेन समो नाभूद्यजमानो महीतले । सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दाक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥ १६ ॥
यथायज्ञे मरुत्तस्य तृप्तास्सर्वे महीपतेः । सुवर्णमखिलं [त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ॥
प्रासादादि समस्तञ्च सौवर्णन्तस्य यत्क्रतौ ।
त्रयो वर्णा ह्यलभ्यन्त तस्मात्केचित्तथा ददुः ॥ १८ ॥
[तेनत्यक्तेनशिष्टायेजनाःपूर्णमनोरथाः । तेऽपि यज्ञान् यजन्तेस्मदेशेदेशेपृथक्पृथक्
तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक् पालयतःप्रजाः । तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम!
पितुर्मातातवाहेदं दृष्ट्वातापसमण्डलम् । विषाभिभूतमुरगैर्म्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ! ॥२०
पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।
पिता तवतथाशक्तोहित्वाग्रामंवनंगतः । तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्वाश्रमे स्थिता
साऽहं पश्यामिवैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः । पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वंपाञ्चतेनृप!
नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः ।
चारान्धता यतस्तेषां दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ॥ २३ ॥
पातालादभ्युपेतैस्तुभुजगैर्दंशशालिभिः । दष्टामुनिसुता सप्त दूषिताश्चजलाशयाः
स्वेदमूत्रपूरीषेण दूषितञ्च हुतं हविः । अपराधं समुद्दिश्यदत्तो नागबलिश्चिरात् ॥

एते समर्थामुनयो भस्मीकर्त्तुं भुजङ्गमान् ।
किन्त्वेषां नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राऽधिकारवान् ॥ २६ ॥
तावत्सुखं भूपतिजैर्भोगजं प्राप्यते नृप !। अभिषेकजलं यावन्नमूर्ध्नि विनिपात्यते
कानि मित्राणि कः शत्रुर्मम शत्रोर्वलं कियत् ।
कोऽहं के मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयो मम ॥ २८ ॥
[कियान्कोषोवलंकिम्वा कोऽनुरक्तोजनोमम ।]
विरक्तो वा परैर्भिन्नः परेषामपि कीदृशः । कः सम्यगत्र नगरे विषये वा जनो मम
धर्मकर्माश्रयो मूढः कः सम्यगपि वर्त्तते ।
को दण्ड्यः परिपाल्यः कः के वो (चो) पेक्ष्या नरा मया ॥ ३० ॥
सङ्गभेदतया दम्यदेशकालमवेक्षता । चारांश्च चारयेदन्यैरज्ञातान् भूपतिश्चरैः ॥
सचिवादिषुसर्वेषु चरान्दद्यान्महीपतिः । इत्यादौभूपतिर्नित्यंकर्मण्यासक्तमानसः
नयेद्दिनं तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः । राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते !
क्लेशाय महते पृथ्वी स्वधर्मपरिपालने । सम्यक् पालयतःपृथ्वींस्वधर्मञ्चमहीपतेः
इहक्लेशोमहान्स्वर्गेपरमंसुखमक्षयम् । तदेतदवबुध्यत्वं (स्व) हित्वाभोगान्नरेश्वर!
पालनाय क्षितेः क्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ।
इति वृत्तमृषीणां यदुग्रसनं त्वयि शासति ॥ ३६ ॥
भुजङ्गहेतुकं भूप ! चारान्धो नापि वेत्सि तत् ।
वहुनात्र किमुक्तेन दुष्टे दण्डो निपात्यताम् ॥ ३७ ॥
शिष्टान् पालय राजंस्त्वं धर्मषड्भागमाप्स्यसि ।
अरक्षन् पापमखिलं दुष्टैरविनयात् कृतम् ॥ ३८ ॥
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धं यदिच्छसि कुरुष्व तत् ।
एतन्मयोक्तं सकलं यत्तवाहं पितामही ॥
कुरुष्वैवं स्थिते यत्ते रोचते वसुधाधिप ! ॥ ३९ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णनंनामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नागैर्मरुत्तमातुःपार्श्वेप्रार्थनकरणम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः ।
धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निःश्वस्य जगृहे धनुः ॥ १ ॥

ततः सत्वरितं गत्वा तमौर्वस्याश्रमंप्रति । ववन्देशिरसावीरां मातरं पितुरात्मनः

तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः ।
दृष्ट्वा च तापसान् सप्त नागैर्दष्टान् सुतान् भुवि ॥ ३ ॥

निनिन्दात्मानमसकृत् पुरस्तेषांमहीपतिः । उवाचचैतदद्याहं मद्वीर्यमवमन्यताम्

यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम् ।
तत्पश्यतु जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं सम्वर्तकं नृपः ।
नाशायाशेषनागानां पातालोर्व्वीविचारिणाम् ॥ ६ ॥

तेजज्वालसहसानागलोकःसमन्ततः । महांस्त्रतेजसाविप्र! दह्यमानोनिवारितःतत

हा हा ! तातेति हा ! मातर्हा हा ! वत्सेतिसम्भ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाऽभवन् ॥ ८ ॥

केचित् ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्यभुजङ्गमाः ।
गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ॥ ६ ॥

पातालमुत्सृज्य ययुःशरणंभामिनींतदा । मरुत्तमातरं पूर्वं यया दत्तं तदाऽभयम्

तामुपेत्योरगाः सर्वेसप्रणामंभयातुराः । सगद्गदमिदंप्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम्

प्रणम्याभ्यर्चितं पूर्वं यदस्माभीरसातले ।

तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि वीरप्रजायिनि !॥ १२ ॥
पुत्रो निवार्यतां राज्ञि ! प्राणैः सायोज्यमस्तु नः ।
दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥ १३ ॥
एवंसंदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते । त्वामृतेशरणं नान्यत् कृपांकुरु यशस्विनि!

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां संस्मृत्यादौ च भाषितम् ।
भर्त्तारमाह सा साध्वी ससंभ्रममिदं वचः ॥ १५ ॥
पूर्वमेव तवाख्यातं पातालेयद्भुजङ्गमैः । प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममासीत्तनयं प्रति ॥
तइमेऽभ्यागता भीता दह्यन्तेतस्यतेजसा । मामेतेशरणं पूर्वं दत्तमेभ्योमयाऽभयम्
येमांशरणमापन्नास्ते त्वांशरणमागताः । अपृथग्धर्मचरणा यातादहं शरणं तव ॥
तन्निवारय पुत्रंत्वं मरुत्तं वचनात्तव । मया चाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति

राजोवाच

महापराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः । दुर्निवर्त्यमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते

नागा ऊचुः

शरणागतास्तववयंप्रसादः क्रियतांनृप! । क्षतस्यार्तपरित्राणेनिमित्तंशस्त्रधारणम्

मार्कण्डेय उवाच

नागानां तद्वचः श्रुत्वा भूतानां शरणैषिणाम् ।
तया चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राहावीक्षिन्महायशाः ॥ २२ ॥
गत्वाब्रवीमितं भद्रे! तनयंत्वरयातव । परित्राणायनागानांनत्याज्याःशरणागताः
नोपसंहरते सोऽस्त्रं यदि मद्वचनान्नृपः । तदस्त्रैर्वारयिष्यामि तस्यास्त्रं तनयस्य ते

मार्कण्डेय उवाच

ततो गृहीत्वा स धनुरवीक्षित् क्षत्त्रियोत्तमः ।
भार्य्यया सहितः प्रायात्त्वरावान् भार्गवाश्रमम् ॥ २५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णनं नामत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३०

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तेनपितुःसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सतुतस्याः सुतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् । धनुःशस्त्रञ्चतस्योग्रंज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्
उद्गिरन्तं महावह्निं दीपिताखिलभूतलम् । पातालान्तर्गतं प्राप्तमसह्यं घोरभीषणम्
स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुटिलाननम् । माक्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति
प्रहासकृतत्वरालुप्तवर्णक्रमसुदारधीः । सनिशम्यगुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तञ्च पुनः पुनः ॥
गृहीतकार्मुकः पित्रोःप्रणिपत्यसगौरवम् । प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशं पन्नगाःपितः
शासतीमां मयि महीं परिभूय बलं मम । सप्ताश्रममुपागम्य दृष्टा मुनिकुमारकाः॥
ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते! । मयिशासतिदुर्वृत्तैर्दूषितानिहवींषि च
जलाशयास्तथाप्येतैःसर्व एवहिदूषिताः । तदेतत्कारणंकिञ्चिन्न वक्तव्यंत्वयापितः
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान् प्रति पन्नगान् ॥ ८ ॥

अवीक्षिदुवाच

यद्येभिर्निहताविप्रायास्यन्तिनरकंमृताः । ममैतत्क्रियतांवाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः

मरुत्त उवाच

नाहमेषांक्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । अहमेवगमिष्यामिनरकंयदिपापिनाम्
न निग्रहे यतास्येषां मां निवारय मा पितः !॥ १० ॥

अवीक्षिदुवाच

मामेते शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् ।
उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप !॥ ११ ॥

मरुत्त उवाच

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् । स्वधर्मंमुल्लङ्घ्यकथंकरिष्यामिवचस्तव

दण्ड्ये निपातयन् दण्डं भूपः शिष्टांश्च पालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षकः ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स बहुशःपित्रा वार्यमाणोऽम्बयासह । नोपसंहरतेसोऽस्त्रंततोऽसौपुनरब्रवीत्

हिंससे पन्नगान् भीतान् ममैतान् शरणं गतान् ।
वार्यमाणोऽपि तस्मात्ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥
मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानि न त्वमेकोऽस्त्रविद् भुवि ।
ममाग्रतः सुदुर्वृत्त! पौरुषञ्च कियत्तव ॥ १६ ॥

ततः कार्मुकमारोप्य कोपताम्रविलोचनः । अवीक्षिदस्त्रंजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः

ततो ज्वालापरीवारमरिसङ्घघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रन्तु महावीर्यं योजयामास कार्मुके ॥ १८ ॥
ततश्चुक्षोभ जगती सम्वर्त्तास्त्रप्रतापिता ।
साब्धिशैलाऽखिला विप्र! कालस्यास्त्रे समुद्यते ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कालास्त्रमुद्यतं पित्रा मरुत्तः सोऽपि वीक्ष्य तत् ।
प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मे दुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥ २० ॥
न त्वद्वधाय कालास्त्रं मयि मुञ्चति किं भवान् ।
सद्धर्मचारिणि सुते सदैवाज्ञाकरे तव ॥ २१ ॥
मया कार्यं महाभाग! प्रजानां परिपालनम् ।
त्वयैवं क्रियते कस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ॥ २२ ॥

अवीक्षिदुवाच

शरणागतसंत्राणंकर्तुंव्यवसितावयम् । तस्यत्वंघातकर्त्तात्वंनमेजीवन्विमोक्ष्यसे

मां वा हत्वाऽस्त्रवीर्येण जहि दुष्टानिहोरगान् ।
त्वां वा हत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान् ॥ २४ ॥
धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् ।

यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥ २५ ॥
क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः ।
अपकर्त्ता त्वमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान् ॥ २६ ॥

मरुत्त उवाच

मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः ।
प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता ॥ २७ ॥
सोऽहन्ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः !।
स्वधर्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति । समुत्पत्यान्तरेतस्थुर्मुनयो भार्गवादयः
ऊचुश्चैनंन मोक्तव्यं त्वयास्त्रंपितरं प्रति । त्वयाचनायंहन्तव्यःपुत्रःप्रख्यातचेष्टितः

मरुत्त उवाच

मया दुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता ।
इमे च दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः !॥ ३१ ॥

अवीक्षिदुवाच

शरणागतसन्त्राणं मयाकार्यमयञ्च मे । अपराध्यःसुतोविप्रायोहन्तिशरणागतान्

ऋषय ऊचुः

इमे वदन्ति भुजगास्त्राससलोलविलोचनाः ।
सञ्जीवयामस्तान् विप्रान् ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ॥ ३३ ॥
तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् । उभावपिविनिर्मूढप्रतिज्ञौ धर्मकोविदौ

मार्कण्डेय उवाच

सा तु वीरा समभ्येत्यपुत्रमेतदभाषत । मद्वाक्यादेव ते पुत्रो हन्तुंनागानकृतोद्यमः
तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः ।
सञ्जीवन्तश्च मुच्यन्ते यद् युष्मच्छरणं गताः ॥ ३६ ॥

भामिन्युवाच

अहमभ्यर्थिता पूर्वमेभिः पातालसंश्रयैः । तन्निमित्तमयं भर्त्ता मयात्रविनियोजितः

तदेतदार्यनिर्वृत्तमुभयोरपि शोभनम् । मम भर्तुश्च पुत्रस्यत्वत् पौत्रस्यात्मजस्यच

मार्कण्डेय उवाच

ततः सञ्जीवयामासुस्तान् विप्रांस्ते भुजङ्गमाः ।

दिव्यैरोषधिजातैश्च विषसंहरणेन च ॥ ३९ ॥

पित्रोर्ननाम चरणौ स ततो जगतीपतिः । मरुत्तश्चसतं प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत्

मानहा भव शत्रूणांचिरंपालयमेदिनीम् । पुत्रपौत्रैश्च मोदस्वमाचतेसन्तु विद्विषः

ततो द्विजैरनुज्ञातो वीरया च नरेश्वरौ । समारूढौरथंसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥

वीराऽपि कृत्वा सुमहत्तपो धर्मभृताम्वर !।

भर्तुः सलोकतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ॥ ४३ ॥

मरुत्तोऽपि चकारोर्व्यां धर्मतः परिपालनम् ।

विनिर्जितारिषड्वर्गोभोगांश्चबुभुजेनृपः ॥ ४४ ॥

तस्य पत्नी महाभागाविदर्भतनयातथा । प्रभावतीसुवीरस्यसौवीरीचाभवत्सुता

सुकेशी केतुवीर्यस्य मागधस्यात्मजाऽभवत् ।

सुता च सिन्धुवीर्यस्य मद्रराजस्य केकयी ॥ ४६ ॥

केकयस्य च सैवरन्ध्री सिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ।

चेदिराजसुता चाभूद्भार्या तस्य सुशोभना ॥ ४७ ॥

तासां पुत्रास्तस्य चासन् भूभृतोऽष्टादश द्विज !।

तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ॥ ४८ ॥

एवंवीर्यो मरुत्तोऽभून्महाराजो महाबलः । तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद् द्वीपेषुसप्तसु

यस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति ।

सत्त्वविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ॥ ५० ॥

तस्यैतच्चरितं श्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः ।

जन्म चाग्र्यं द्विजश्रेष्ठ! मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ५१ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरित्रसमाप्तिवर्णनंनामैकद्वात्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

————

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नरिष्यन्तचरित्रवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन् कथितं त्वया । तत्सन्ततिमशेषेण श्रोतुमिच्छाप्रवर्त्तते

तत् सन्ततौ क्षितीशा ये राज्यार्हा वीर्यशालिनः ।
तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया ख्यातान्महामुने !॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत् सुतः ।
अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥ ३ ॥

वर्षाणाञ्च सहस्राणि सप्तति दश पञ्च च । बुभुजेपृथिवींकृत्स्नां मरुत्तःक्षत्रियर्षभः
कृत्वा राज्यंस्वधर्मेणइष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् । नरिष्यन्तंसुतंज्येष्ठमभिषिच्ययौवनम्

एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् ।
आरुरोह दिवं विप्र यशसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ ६ ॥

नरिष्यन्तः सुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान् ।
पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषाञ्च भूभृताम् ॥ ७ ॥

अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः ।
यज्विनो धर्मतः पृथ्वीं पालयामासुरूर्जिताः ॥ ८ ॥

दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिवर्त्तिनः।
तेषां कश्चरितं शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥ ९ ॥
किन्तु तेन कृतं कर्म धर्म्यमाहवनादिभिः।
तदहं कर्तुमिच्छामि यच्च नास्ति करोमि किम् ॥ १० ॥
धर्मतः पाल्यते पृथ्वी को गुणोऽत्र महीपतेः।
असम्यक् पालनात् पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ॥ ११ ॥
सति वित्ते महायज्ञाः कर्त्तव्या एव भूभृता।
दातव्यश्चात्र किञ्चित्रं सीदतामीश्वरो गतिः ॥ १२ ॥
आभिजात्यं तथा लज्जा कोपश्चारिजनाश्रयः।
कारयन्ति स्वधर्माश्च सङ्ग्रामादपलायनम् ॥ १३ ॥

एतत् सर्वं यथा सम्यङ्मत्पूर्वैः पुरुषैः कृतम्। पित्राचमेमरुत्तेनतथा तत्केन शक्यते

तदहं किं करिष्यामि यन्न तैः पूर्वजैः कृतम्
ये यज्विनो वरा दान्ताः संग्रामाच्चानिवर्त्तिनः ॥ १५ ॥

महत्संग्रामसंसर्गाविसंवादितपौरुषाः कर्मणाहंयतिष्यामिकस्मैत्यानभिसन्धितुम्

अथ वा तैः स्वयं यज्ञाः कृताः पूर्वजनेश्वरैः।
अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति सञ्चिन्त्ययज्ञं सचकारैकंनरेश्वरः। यादृशंनचकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम्
द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम्। ततः शतगुणंतेषांयज्ञार्थमददन्नृपः

गावो वस्त्राण्यलङ्कारं धान्यागारादिकं तथा।
तथा प्रत्येकमददत्तेषां पृथ्वीनिवासिनाम् ॥ २० ॥

ततस्तेन यदा यज्ञः प्रारब्धोभूभुजापुनः। प्रारब्धेसमखेयष्टुं ततोनालभतद्विजान्

यान् यान् वृणोति स नृपो विप्रानार्त्तिज्यकर्मणि।
ते ते तमूचुर्यज्ञाय वयमन्यत्र दीक्षिताः ॥ २२ ॥

अन्यं वरय यद्वित्तं त्वयाऽस्माकं विवर्जितम् ।
तस्यान्तो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते ! धनम् (कथम्) ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ननाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ! बहिर्वेद्यांतदा दानं स दातुमुपचक्रमे
तथापि जगृहुर्नैवधनसम्पूर्णमन्दिराः । द्विजायदातुं भूयोऽसौनिर्विण्ण इदमब्रवीत्

अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनःक्वचित् ।
अशोभनश्च यत्कोषो विफलोऽयमयज्विनः ॥ २६ ॥

नार्त्विज्यं कुरुतेकश्चिद्यजमानोऽखिलोजनः । द्विजानांनधनोदानंददतांसम्प्रतीच्छते

मार्कण्डेय उवाच

ततः कांश्चिद् द्विजान् भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् ॥ २८ ॥
अत्यद्भुतमिदञ्चासीद्यदा तस्य महीपतेः ।
सयज्ञोऽभूत्तदा पृथ्व्यां यजमानोऽखिलो जनः ॥ २९ ॥
द्विजन्मनामभून्नासीत् सदस्यस्तत्र कश्चन ।
यजमाना द्विजा केचित् केचित् तेषान्तु याजकाः ॥ ३० ॥

नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदातदा । तत्प्रदातुर्द्धनैर्यागं कुर्युः पृथ्व्यामशेषतः

प्राच्यां कोट्यस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः ।
प्रतीच्यां सप्त वै कोट्यो दक्षिणायां चतुर्दश ॥ ३२ ॥
उत्तरस्याञ्च पञ्चाशदेककालं तदाऽभवन् ।
मुने ! ब्राह्मण ! यज्ञानां नरिष्यन्तो यदाऽयजत् ॥ ३३ ॥

एवंसराजाधर्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत्पुरा । मरुत्तत्तनयोविप्र! विख्यातबलपौरुषः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नरिष्यन्तचरित्रवर्णनं नाम
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

———

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्तस्य तनयो दुष्टारिदमनोदमः । शक्रस्येवबलं तस्य दयाशीलं मुनेरिव ॥

बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः ।
नव वर्षाणि जठरे स्थित्वा मातुर्महायशाः ॥ २ ॥

यद्ग्राहयामास दमं मातरं जठरे स्थितः । दमशीलश्चभविता यतश्चायंनृपात्मजः

ततस्त्रिकालविज्ञानः सहि तस्य पुरोहितः । दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यन्तसुतस्यतु

स दमो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमशेषतः । जगृहे नरराजस्य सकाशाद्वृषपर्वणः ॥ ५ ॥

दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्य तपोवननिवासिनः । सकाशाज्जगृहे कृत्स्नमस्त्रग्रामश्च तत्त्वतः

शक्तेःसकाशाद्वेदांश्च वेदाङ्गान्यखिलानिच ।
तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ॥ ७ ॥

तं स्वरूपमहात्मानं गृहीतास्त्रं महाबलम् ।
स्वयम्वरे कृता पित्रा जगृहे सुमना पतिम् ॥ ८ ॥

सुता दशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुकर्मणः । पश्यतां सर्वभूतानां ये तदर्थमुपागताः ॥

तस्याश्च सानुरागोऽभून्मद्रराजस्यवैसुतः । सुमनायां महानादो महाबलपराक्रमः

तथाविदर्भाधिपतेः पुत्रःसङ्क्रन्दनस्य च । वपुष्मान् राजपुत्रश्च महाधनुरुदारधीः

तेऽथतयावृतं दृष्ट्वा दुष्टारिदमनंदमम् । मन्त्रयामासुरन्योऽन्यं तत्रानङ्गविमोहिताः

एतामस्य बलात्कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम् ।
गृहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं ग्रहीष्यति ॥ १३ ॥

भर्तृबुद्धया वरारोहा स्वयम्वरविधानतः ।
तस्येच्छया नो भवित्री भार्य्या धर्मोपपादिता ॥ १४

अथनेच्छतिसाकश्चिदस्माकंमदिरेक्षणा। ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंघातयिष्यति

मार्कण्डेय उवाच

इतिते निश्चयंकृत्वात्रयःपार्थिवनन्दनाः। जगृहुस्तांसुचार्वङ्गींदमपार्श्वानुवर्त्तिनीम्

ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः।
चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥ १७ ॥

ततो दमस्तान् भूपालानवलोक्य समन्ततः। अनाकुलमनावाक्यमिदमाह महामुने

दम उवाच

भो भूपा धर्मकृत्येषुयद्वदन्तिस्वयंवरम्। अधर्मो वाऽथवाधर्मो यद्देभिर्गृह्यतेबलात्
यद्यधर्मो न मे कार्यमन्यभार्याभविष्यति। धर्मोवा तदलंप्राणैर्यैः रक्ष्यन्तेऽरिलङ्घने
ततो दशार्णाधिपतिश्चारुधर्मानराधिपः। निःशब्दंकारयित्वाततसदःप्राहमहामुने

दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः।
तद्वदध्वं यथा धर्मो ममास्य च न लुप्यते ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम्।
परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥ २३ ॥
क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्रद्विजन्मनाम्।
दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥ २४ ॥
इति धर्माद्दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव !।
योऽन्यथा वर्त्तते मोहात् कामात्मा सम्प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥

तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानोहि भूभृताम्। पक्षेयेभूभृतोविप्र! दशार्णाधिपतेर्वचः

मोहात् किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वः क्षत्रजन्मनः।
न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥ २७ ॥

बलादि मां योहरतिहत्वा तुपरिपन्थिनः। तस्यैवाप्तौराक्षसेनविवाहेनावनीश्वराः
प्रधानतर एषोऽत्र विवाहद्वितये मतः। क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभिः कृतः

मार्कण्डेय उवाच

अथ प्रोचुः पुनर्भूपा यैःपूर्वमुदिता नृपाः । परस्परानुरागेण जातिधर्माश्रितं वचः

सत्यं शस्तो राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः ।
किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्यानुमतो वरः ॥ ३१ ॥
हत्वा तु पितृसम्बन्धं बलेन ह्रियते हि या ।
स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नान्य (त्र) भर्तृकरे स्थिता ॥ ३२ ॥

पश्यतांसर्वभूपानामनयायद्वृतोदमः । गान्धर्वस्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽत्रकः

विवाहितायाः कन्यायाः कन्यात्वं नैव विद्यते ।
कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्धः पृथिवीश्वराः ॥ ३४ ॥
त इमे ये बलादेनां दमादादातुमुद्यताः ।
बलिनस्ते यदि ततः कुर्वन्तु न तु साधु तत् ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वाऽसौदमः कोपकषायीकृतलोचनः । आरोपयामासधनुर्वचनञ्चेदमब्रवीत्

ममाऽपि भार्या बलिभिः पश्यतो ह्रियते यदि ।
तत्कुलेन भुजाभ्यां वा कोऽगुणः क्लीबजन्मनः ॥ ३७ ॥
धिङ्ममास्त्राणि धिक् शौर्यं धिक् शरान् धिक् शरासनम् ।
धिग् व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
यदि भार्यामिमे मूढाः समादाय बलान्विताः ।
प्रयान्ति जीवती धिक् तां मम व्यर्थधनुष्मताम् ॥ ३६ ॥
इत्युक्त्वा तान्महीपालान् महानन्दमुखान् बली ।
अथाब्रवीत्तदा सर्वान् महारिदमनो दमः ॥ ४० ॥
एषातिशोभना बाला चार्वङ्गी मदिरेक्षणा ।
किन्तस्य जन्मना भार्या न यस्येयं कुलोद्भवा ॥ ४१ ॥

इति संचिन्त्यभूपालास्तथायततसंयुगे । यथानिर्जित्य मामेतां पत्नींकुरुतमानिनः

इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवर्षममुञ्चत । छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ॥

तेऽपि वीरा महीपालाः शरशक्त्यृष्टिमुद्गरान् ।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ॥ ४४ ॥

तेऽपि तत्प्रहितान् बाणान् तेषाञ्चासौ शरोत्करान् ।
चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने !॥ ४५ ॥

वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्यक्षितिपात्मजैः । प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतोदमः

तमाथान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे । मुमोचशरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः

तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात् ।
महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवञ्चयत् ॥ ४८ ॥

ततो रोषात् समारुह्य तं दमस्य तदा रथम् ।
महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ॥ ४६ ॥

बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात् । दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥

तं लग्नमात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदि ।
दमं प्रति चिचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥

पतन्तञ्चैनमुल्काभंशक्त्याचिक्षेप तं दमः । शिरोवेतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत्

तस्मिन् हते महानन्दे प्राचुर्येण पराङ्मुखाः ।
बभूवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान् कुण्डिनाधिपः ॥ ५३ ॥

दमेन युयुधे चासौ बलगर्वमदान्वितः । दाक्षिणात्यमहीपालतनयो रणगोचरः ॥

युध्यमानस्य तस्योग्रंकरवालंसवैलघु । चिच्छेद सारथेश्चैवशिरःसंख्येतथाध्वजम्

छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ॥ ५६ ॥

यावदन्यत् समादत्ते स वपुष्मान् वरायुधम् ।
तावच्छरेण तं विद्ध्वा दमोभूमावपातयत् ॥ ५७ ॥

स प्रात्तितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः ।

चिनिर्वृत्तमतिर्युद्धाद्बभूवक्षितिपात्मजः ॥ ५८ ॥
तमालोक्य तथाभूतमयुद्धमतिमात्मवान् ।
उत्सृज्याऽऽदाय सुमनां सुमनाः प्रययौ दमः ॥ ५९ ॥
ततो दशार्णाधिपतिः प्रीतिमानकरोत्तयोः ।
दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ६० ॥
कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे ।
स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्य्यो निजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥
दशार्णाधिपतेश्चासौ दत्त्वा नागांस्तुरङ्गमान् ।
रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ॥ ६२ ॥
वस्त्रालङ्कारचापादि वरोपस्करमात्मनः ।
अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरित्रवर्णनंनाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रवर्णनेदमस्यपितुर्वधानन्तरंतेनसहतन्मातुरग्निप्रवेशः

मार्कण्डेय उवाच

सतांलब्ध्वातथापत्नींसुमनांसुमहामुने । प्रणम्यसपितुःपादौमातुश्चक्षितिपात्मजः
सा चतौश्वशुरौसुभ्रूर्ननामसुमनातदा । ताभ्यांतौचतदाविप्रआशीर्भिरभिनन्दितौ
महोत्सवश्च सञ्जज्ञे नरिष्यन्तस्य वै पुरे । कृतदारे च संप्राप्तेदशार्णाधिपतेः पुरात्
सम्बन्धिनं दशार्णेशं जितांश्चपृथिवीश्वरान् । श्रुत्वापुत्रेणसुमुदेनरिष्यन्तोमहीपतिः
सोऽपि रेमे सुमनया महाराजसुतो दमः । वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥

अथ कालेन महता रममाणा दमेन सा। अवाप गर्भंसुमनादशार्णाधिपतेः सुता ॥

सोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः।
वयः परिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥ ७ ॥

वनं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी। वानप्रस्थविधानेन स तत्रसमतिष्ठत

दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तःसंक्रन्दनसुनो वने। वपुष्मान्सम्मृगान्हन्तुंययावल्पघनानुगः

स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तंतापसंमलपङ्किनम्। इन्द्रसेनाञ्च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम्

पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः।
वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥ ११ ॥

ततो मौनव्रती भूपो न हितस्योत्तरंददौ। इन्द्रसेनाचततत्सर्वंमाचख्यास्मैयथातथम्

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञात्वा तञ्च नरिष्यन्तं वपुष्मान् पितरं रिपोः।
प्राप्तोऽस्मीति वदन् कोपात् जटासु परिगृह्य च ॥ १३ ॥

हा हेति चेन्द्रसेनायां रुदन्त्यां वाष्पगद्गदम्।
चकर्ष कोपात् खड्गञ्च वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥ १४ ॥

निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता। दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः

येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः। अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः

योधनेषु स्वरूपेण दमो यस्य दुरात्मनः। सदमोवारयत्वेषहन्मितस्य रिपोर्गुरुम्

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः।
क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ॥ १८ ॥

ततो धिग्धिङ् मुनिजनाअन्येचवनवासिनः। तमूचुःसचतंहत्वाजगामस्वपुरंवनात्

गते तस्मिन् विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति। प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम्

गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम।
अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्तृवृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् ॥ २१ ॥

तथापि वाच्यः पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ।
लङ्घनामीदृशीं प्राप्तां विलोक्यैतां महीपतः ॥ २२ ॥
मद्भर्त्राऽधिकृतो राजा चतुर्णां परिपालकः ।
त्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान् यन्नरीक्षसि ॥ २३ ॥
भर्त्ता मम नरिष्यन्तस्तापसस्तपसि स्थितः ।
विलपन्त्यास्तथा नाथो यथा नास्ति तथा त्वयि ॥ २४ ॥

आकृष्य केशेषु बलादपराधंविनाततः । हतोवपुष्मतायस्मात्तिमिति ते भूपतिर्गतः ॥
एवं स्थितेतत्क्रियतांयथाधर्मोनलुप्यते । तथाचनैवचक्तव्यमतोऽहमत्तापसीह्यहम्

पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः ।
निहतो येन यत्तस्य कर्तव्यन्तद्विचिन्त्यताम् ॥ २७ ॥
सन्ति ते मन्त्रिणो वीराः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ।
तैः सहालोच्य यत्कार्यमेवम्भूते कुरुष्व तत् ॥ २८ ॥
नास्माकमधिकारोऽत्र तापसानां नराधिप !।
कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमेवं भूपतिभाषितम् ॥ २९ ॥

विदूरथस्य जनको यवनेन यथा हतः । तथायं तव पुत्रस्य कुलं तेन विनाशितम्

जम्भस्यासुरराजस्य पिता दष्टो भुजङ्गमैः ।
तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगा हताः ॥ ३१ ॥
पराशरेण पितरि शक्तौ च रक्षसाऽऽहतम् ।
श्रुत्वाऽग्नौ पातितं कृत्स्नं रक्षसामभवत् कुलम् ॥ ३२ ॥
अन्यस्यापि स्ववंशस्य लङ्घना क्रियते हि या ।
तां नालं क्षत्त्रियः सोढुं किं पुनः पितृमारणम् ॥ ३३ ॥
नायं पिता ते निहतो नास्मिन् शस्त्रं निपातितम् ।
त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ॥ ३४ ॥

विभेत्यस्यहिकः शस्त्रंन्यस्तंयेनवनौकसाम् । तवभूपस्यविप्रस्यमाबिभेतुविभेतुवा

तवेयं लङ्घनायुक्तायदस्मिस्तत्समाचर। वपुष्मतिमहाराज! स भृत्यज्ञातिवान्धवे

मार्कण्डेय उवाच

इति सङ्क्रान्तसन्देशमिन्द्रसेना विसृज्य तम्।
पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरित्रवर्णनंनामचतुस्त्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमस्यपितृघातिनेदण्डंदातुंप्रतिज्ञावर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इन्द्रसेनासमाज्ञप्तः स गत्वा शूद्रतापसः। समाचष्ट यथा पूर्वं दमायनिधनं पितुः
तापसेन समाख्यातं दमस्तेन पितुर्वधम्। क्रोधेनातीवजज्वालहविषेवाग्निरुद्धतः
स तुक्रोधाग्निना धीरो दह्यमानो महामुने। करंकरेणनिष्पिष्यवाक्यमेतदुवाचह
अनाथ इव मे तातोमयिपुत्रे तुजीवति। घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलं मम ॥४
न्यायवादो जनेतस्या (तापंकरोम्यहंकिम्वा) प्येवक्लैवात् क्षमाम्यहम्।
दुर्वृत्तशान्तौ शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ॥ ५ ॥
पितातस्यापि (तश्चाऽपि निहतं) निहतो दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः।
तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किं पुनः ॥ ६ ॥
विलापेनात्र यत् कृत्यं तदेषोऽत्र करोम्यहम्। यदाहंतस्यरक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः
न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत् प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रोणितेनोदककर्म तस्य तातस्य सङ्ख्ये विनिपातितस्य।
मांसेन सम्यग्द्विजभोजनञ्च नचेत् प्रवेक्ष्यामि हुताशनन्तत् ॥ ८ ॥

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसङ्घाः ।
कुर्वन्तिचेत्तानपिचास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येष रुषासमेतः ॥ ९ ॥
निःशूरमाधार्मिकमप्रशस्तं तं दाक्षिणात्यं समरे निहत्य ।
भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीञ्च कृत्स्नां वह्निं प्रवेक्ष्याम्यनिहत्य तं वा ॥ १० ॥
सुदुर्मतिं तापसवृद्धमौनिनं वनस्थितं शान्तवचोविविग्नम् ।
हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्र पदातिहस्त्यश्वबलैःसमेतम् ॥ ११ ॥
एषोऽहमादाय धनुः सखड्गो रथीतथैवारिवलं समेत्य ।
करोमि वै यत् कदनं समस्ताः पश्यन्तु मे देवगणाः समेताः ॥ १२ ॥
यो यः सहायो भविताऽद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूयः ।
तथैव निःशेषकुलक्षयाय समुद्यतोऽहं निजबाहुसैन्यः ॥ १३ ॥
यदि कुलिशकरोऽस्मिन् संयुगेदेवराजःपितृपतिरथ चोग्रं दण्डमुद्यम्य कोपात्
धनपतिवरुणार्का रक्षितुं तं यतन्ते निशितशरवरौघैर्घातयिष्ये तथापि ॥ १४
नियतमतिरदोषः काननाखण्डलकोनिपतितफलभक्षः सर्वभूतेषु मैत्रः ।
प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तातःपिशितरुधिरतृप्तास्तस्यसन्त्वद्यगृध्राः ॥*
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितेस्वप्रतिज्ञावर्णनंनामपञ्चत्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ *

---

* कलिकातास्थ पण्डितप्रवरजीवानन्द विद्यासागरमुद्रितमार्कण्डेयपुराणे-

मार्कण्डेय उवाच

दमेन राज्ञाइत्युक्तेपितुःशत्रुःपलायितः । मत्पिताताापसोऽन्यश्चतप्यतांनिर्भयंमहत्
पलायनपरान् दृष्ट्वा किञ्चिन्नोक्तं दमेन तान् ॥ १ ॥
इति सार्धैक श्लोकं दत्त्वा पुनर्ग्रन्थोपसंहरणे "एतत् ⋯⋯ महीयते"

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रेवपुष्मद्वधवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इतिप्रतिज्ञायतदानरिष्यन्तसुतोदमः। कोपामर्षविवृत्ताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना

हा हतोऽस्मीतिपितरं ध्यात्वा दैवं विनिन्द्य च।

प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम् ॥ २ ॥

दम उवाच

यदत्रकृत्यंतद्ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम्। श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना

वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः। मौनव्रतधरोऽशस्त्रो मन्मात्राचेन्द्रसेनया

प्रोक्तं संसृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते।

तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना ॥ ५ ॥

धृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत्।

माता च सन्दिश्य हि मां धिक् शब्दं ब्रुवती सती ॥ ६ ॥

मन्दभाग्यं च निःश्रीकं प्रविष्टा हव्यवाहनम्।

तमालिङ्ग्य नरिष्यन्तं प्रयातात्रिदशालयम् ॥ ७ ॥

सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम्।

हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यं च परिकल्प्यताम् ॥ ८ ॥

अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितृघातकम्। अकृत्वा च वचोमातुर्जीवितं किमिहोत्सहे

इतिश्लोकसतकेन अध्यायसमाप्तिपूर्वकं पुराणसमापनं कृतम्। परन्तु मोहमयीस्थ श्रीवेङ्कटेश्वरमुद्रणयन्त्रे मुद्रितपुस्तके एतत्प्रसङ्गो यथाख्यानं सुष्ठुनिर्वर्ण्याष्टादशपुराणपरिगणनं विधाय पुनरुपसंहारः कृतस्तदेव वर्णनमस्माकं पार्श्वे श्री-

मार्कण्डेय उवाच

मन्त्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा तथा च तत् ।
कृतवन्तो विमनसः सभृत्यबलवाहनाः ॥ १० ॥
निर्ययुः सपरीवाराः पुरस्कृत्य दमं नृपम् ।
गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात्पुरोधसः ॥ ११ ॥
अहिराडिव निःश्वस्य दमः प्रायाद्वपुष्मतम् ।
सीमापालादिसामन्तान्निघ्नन्याम्यां दिशं त्वरा ॥ १२ ॥

निरीक्ष्यतं समायान्तं वपुष्मान्मर्षपूरितः । सङ्क्रन्दनसुतेनापिदमोज्ञातोवपुष्मता
आयातः स परीवारः सामात्यः सपरिच्छदः ॥ १३ ॥
अकम्पितेनमनसा ससैन्यानिदिदेशह । दूतं च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहिः ॥
त्वंशीघ्रतरमागच्छनरिष्यन्तःप्रतीक्षते । सभार्यक्षत्रवन्धोत्वंसमायाहिममान्तिकम्
इमे मद्बाहुनिर्मुक्ताः शिताबाणाः पिपासिताः ।
भित्वा शरीरं सङ्ग्रामे पास्यन्ति रुधिरं तव ॥ १६ ॥
श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वंदूतप्रोक्तंययौत्वरन् । स्मृत्वाप्रतिज्ञांपूर्वोक्तांनिःश्वसन्नुरगोयथा
आहूतः समरेचैववपुमान्सेनाविकत्थनः । ततो युद्धमतीवासीद्दमस्य च वपुष्मतः ॥
रथी चरथिनानागीनागिनाहहिनाहयी । अयुध्यन्त च विप्रर्षे !तद्युद्धंतुमुलंह्यभूत्
पश्यतां सर्वदेवानां सिद्धगन्धर्वरक्षसाम् । चकम्पे वसुंधाब्रह्मन्युध्यमाने दमे युधि
नगजोनरथीनाश्वस्तस्यबाणसहस्तुयः । ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मतः
हृदिविव्याधचदमःइषुणागाद्यमान्तिकम् । तस्मिन्निपतितेसैन्यं पलायनपरंह्यभूत्

मन्माहेश्वरस्थानसंस्थितानां शिवचैतन्यचर्णि महोदयानां कृपया प्राप्तस्य हस्तलिखितमार्कण्डेयपुराणस्य पाठे समुचितं मिलितम् । अतः सर्व-जनसम्मतः सुतराम्पन्थाः विद्वज्जनानुमोदितः ।

[सम्पादकौ]

स स्वामिनंततःप्राहदमःशत्रुं दमस्तथा । क यासिदुष्टपितरंघातयित्वातपस्विनम्
अशस्त्रंचतपस्यन्तंक्षत्रियोऽसिनिवर्तताम् । ततोनिवृत्यसदमंयोधयामाससानुजः
सपुत्रसहसम्बन्धिबान्धवैर्युयुधेरथी । ततः शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततोदिशः
दमं च सरथंचाशुशरजालैरपूरयत् । ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा ॥

चिच्छेद तांश्छरांस्तेषां विव्याधाऽन्यैश्च तानपि ।
एकैकेनैकेनबाणेन सप्तपुत्रांस्तथा द्विज !॥ २७ ॥
सम्बन्धिबान्धवान्मित्रान्निनाय यमसादनम् ।
वपुष्मान्सरथीक्रोधान्निहतात्मजबान्धवः ॥ २८ ॥

युयुधे च सतेनाजौशरैराशीविषोपमैः । चिच्छेदतस्यतान्बाणान्सदमश्च महामुने!
युयुधाते च संरब्धौपरस्परजयैषिणौ ।। परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषी त्वरा ॥
गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातेमहाबलौ । दमः क्षणंनृपं ध्यात्वा पितरं निहतं वने
केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले । शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्यचाब्रवीत्
पश्यन्तु देवताःसर्वामानुषाः पन्नगाः खगाः । पाट्यमानंच हृदयंक्षत्रबन्धोर्वपुष्मतः
एवमुक्त्वाच सदमोहृदयं च व्यदारयत् । पातुकामश्चससुरैः क्षतजेन निवारितः

ततश्चकार तातस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम् ।
आनृण्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात्स्वमन्दिरम् ॥ ३१ ॥

वपुष्मतश्च मांसेन पिण्डदानं चकार ह । ब्राह्मणान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान्

एवम्विधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः ।
अन्येपि सुधियः शूरा यज्विनो धर्मकोविदाः ॥ ३७ ॥
वेदान्तपारगास्तांश्च न सङ्ख्यातुमिहोत्सहे ।
एतेषां चरितं श्रुत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरित्रेवपुष्मद्वधवर्णनंनाम षट्त्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

उपसंहारेपुराणमाहात्म्यवर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा जैमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनिः ।
विसृज्य क्रौष्टुकिमुनिं चक्रे माध्याह्निकक्रियाम् ॥ १ ॥
अस्माभिश्च श्रुतंतस्माद्यत्तेप्रोक्तंमहामुने !। अनादिसिद्धमेतद्धिपुराप्रोक्तंस्वयम्भुवा
मार्कण्डेयाय मुनये यत्तेऽस्माभिरुदाहृतम् ।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं धर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३ ॥
पठतां श्रृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रमोचनम् । आदावेवकृता येचप्रश्नाश्चत्वार एव हि
पितुः पुत्रस्य सम्वादस्तथा सृष्टिः स्वयम्भुवः ।
तथा मनूनां स्थितयो राज्ञां च चरितं मुने !॥ ५ ॥
अस्माभिरेतत्तेप्रोक्तंकिमद्यश्रोतुमिच्छसि । एतान्सर्वान्नरःश्रुत्वापठनेवासभासु च
विधूयसर्वपापानिब्रह्मणोऽन्तेलयंव्रजेत् । अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः
तेषां तु सप्तमं ज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम् ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥ ८ ॥
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् । आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् । वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दमत्रत्रयोदशम्
चतुर्दशं वामनं च कौर्मंपञ्चदशं तथा । मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततःपरम्
अष्टादशपुराणानां नामधेयानियःपठेत् । त्रिसन्ध्यं जपेन्नित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत्
सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्
चतुःप्रश्नसमोपेतंपुराणंह्येतदुत्तमम् । श्रुत्वा पुनश्च ते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम्
ब्रह्महत्यादि पापानि यान्यन्यान्यशुभानि च ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणं वातहतं यथा ॥ १५ ॥
पुष्करे दानजंपुण्यं श्रवणादस्यजायते । सर्ववेदाधिकफलंसमाप्त्याचाधिगच्छति
यः श्रावयेत्पूजयेत्तं यथादेवपितामहम् । गन्धपुष्पैस्तथावस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः
यथा शक्त्या च दातव्यंनृपैर्ग्रामादिवाहनम् । एतत्पुराणमखिलंवेदार्थैरुपबृंहितम्
धर्मशास्त्रैकनिलयं श्रुत्वा सर्वार्थमाप्नुयात् ॥ १८ ॥
श्रुत्वापुराणमखिलं व्यासं सम्पूजयेद्बुधः । धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे
दद्याद्गां गुरवे स्वर्णवस्त्रालङ्कारसंयुताम् ।
श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः सन्तोषयेद् गुरुम् ॥ २० ॥
अपूज्य पाठकर्त्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः ।
नासौपुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥ २१ ॥
नतस्यदेवाः प्रीणन्ति पितरौ नैवपुत्रकान् । दत्तंश्राद्धंतथेच्छन्तितीर्थस्नानफलंनच
लभते शास्त्रचोरस्यनिन्दांसज्जनसंसदि । अवज्ञया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः
पठ्यमानेत्ववज्ञाते साधुभिःशास्त्रउत्तमे । मूकोभवति जन्मानि सप्तमूर्खः प्रजायते
श्रुत्वाततपूजयेद्यस्तु पुराणं सप्तमं पुनः । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम्
पूतोयाति न सन्देहो विष्णुलोकंसनातनम् । च्युतस्ततःपुनर्नैवसभविष्यतिमानवः
पुराणश्रवणादेवपरंयोगमवाप्नुयात् । नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ॥
गुरुद्विजातिनिन्दायतथाभग्नव्रतायच । मातापित्रोर्निन्दकायवेदशास्त्रादिनिन्दिने
भिन्नमर्यादिने चैव तथा वैज्ञातिकोपिने । एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि
लोभाद्वायदिवामोहाद्भयाद्वापि विशेषतः । पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकं ध्रुवम्

मार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वमुपाख्यानं धर्म्यंस्वर्गापवर्गदम् । यःशृणोतिपठेद्वापि सिद्धंतस्यसमीहितम्
आधिव्याधिजदुःखेन कदाचिन्नाभियुज्यते ।
ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥
सन्तः स्वजनमित्राणि भवन्ति हितबुद्धयः ।

नाऽरयः सम्भविष्यन्ति दस्यवो वा कदाचन ॥ ३३ ॥

सद्धर्मोमिष्टभोगी च दुर्भिक्षैर्नावसीदति । परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बषैः

मुच्यतेऽनेकदुःखेभ्यो नित्यं चैव द्विजोत्तम !।

ऋद्धिर्वृद्धिः स्मृतिः शान्तिः श्रीः पुष्टिस्तुष्टिरेव च ॥

नित्यं तस्य भवेद्विप्र! यः श्रृणोति कथामिमाम् ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलं श्रृण्वन्नशोच्यः पुमान्,

यो वा सम्यगुदीरयेद्रसमयं शोच्यो नसोऽपि द्विज !।

योगज्ञान विशुद्धसिद्धिसहितः स्वर्गादिलोकेऽप्यसौ,

शक्राद्यैश्च सुरादिभिः परिवृतः स्वर्गे सदा पूज्यते ॥ ३६ ॥

पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसंयुतम् । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोके महीयते

पुराणाक्षरसङ्ख्या च प्रख्याता तत्त्ववुद्धिना ।

श्लोकानां षट्सहस्राणि तथाचाष्टशतानि च ॥ ३८ ॥

श्लोकास्तत्र नवाशीति एकादश समाहिताः ।

कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता ॥ ३९ ॥

जैमिनिरुवाच

भारतेनाभवद्यन्मे संशयस्फोटनं द्विजाः । तद्भवद्भिः कृतं यन्नकश्चिदद्य करिष्यति

यूयं दीर्घायुषः सन्तु प्रज्ञाबुद्धिविशारदाः ।

साङ्ख्येयोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी ॥ ४१ ॥

पितृशापकृताद्दुःखाद्दौर्मनस्यं व्यपैतुवः । एतावदुक्त्वावचनंजगामस्वाश्रमं मुनिः

चिन्तयन्परमोदारं पक्षिणांवाक्यमीरितम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे एतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणपठनफलवर्णनंनाम

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

शुभमस्तु सताम्

॥ श्रीः ॥

* परिशिष्टम्

—:*:—

प्राधानिकरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदंसम्यक् प्रोक्तंमन्वन्तरं तव । तथैवदेवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम्

उत्पत्तयश्च या देव्या मातणां च महामृधे ।

तथैव संस्तवो देव्याश्चामुण्डाया महाहवे ॥ २ ॥

शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधं शुम्भनिशुम्भयोः ।

रक्तबीजवधश्चैव सर्वं मे तत्र वोदितम् ॥ ३ ॥

श्रूयतांमुनिशार्दूल! रहस्याण्यपराणिते । इदं रहस्यंपरमंनाऽऽख्येयं कस्यचिन्मुने

भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं मुनीश्वर !।

सर्वस्याद्यामहालक्ष्मी स्त्रिगुणा परमेश्वरी ॥ ५ ॥

लक्ष्यालक्षस्वरूपासाव्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ॥ ६ ॥

नागंलिङ्गंचयोगं(नि)चबिभ्रतीनिजमूर्द्धनि । तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा अन्यं तदखिलंस्वेन पूरयामास तेजसा । शून्यं तदखिलंलोकं तमसा केवलेन हि साभिन्नाञ्जनसङ्काशादंष्ट्राञ्चितवरानना । विशाललोचनानारी बभूवतनुमध्यमा खड्गपाशशिरःखेटैरलङ्कृतचतुर्भुजा । कवन्धहारंशिरसा बिभ्राणहि शिरःस्रजम्

---

* अस्माभिः सर्वप्रकाशितेऽस्मिन्पुराणे हस्तलिखितपुस्तकोपलम्भादेषपाठः परिशिष्टेदीयते । एतद्रहस्यत्रयस्यपाठोऽस्मत्प्रकाशितमार्कण्डेयपुराणेनोपलभ्यते । माहेश्वरतः शिवचैतन्यवर्णिमहोदयानां प्रेषितेऽतीवपुरातने हस्तलिखितेऽस्मिन् ग्रन्थे रहस्यत्रयी सप्तशतीमनुसन्निवेशिता अतस्तत्रपाठेयोजनायाऽधुनापरिशिष्टरूपेण विदुषांप्रीत्यै दीयते । अस्माभिस्तत्रनोपादानं कृतं प्रस्तुतहस्तलिखित

सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसीं प्रमदोत्तमा ।
नामकर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ १२ ॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १३ ॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि तामसि ।
एभिःकर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ १४ ॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपं परमं मुने ।
सत्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं ददौ ॥ १५ ॥
अक्षमालाङ्कुशधरावीणापुस्तकधारिणी । सावभूववरानारीनामान्यस्यैचसाददौ
महाविद्या महावाणी भारती वाक्सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी महा (काम) धेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ १७ ॥
अथोवाचमहालक्ष्मीमहाकालींसरस्वतीम् । युवाञ्जनयतांदेव्यौमिथुनंस्वानुरूपतः
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ १६ ॥
ब्रह्मन्विधे विरञ्चेति धातरित्याह तं नरम् ।
स्त्रियम्मे कमलेलक्ष्मीत्याह माता श्रियं च माम् ॥ २० ॥
महाकाली भारतीच मिथुने सृजतःस्मह । एतयोरपिनामानि रूपाणिचवदामिते
नीलकण्ठंरक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् । जनयामासपुरुषंमहाकालीप्सितांस्त्रियम्
स रुद्रः शङ्करःस्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषा स्वराक्षरा ॥ २३ ॥

पुराणस्य ग्रन्थसमाप्तावुपलम्भात् ।

सरस्वतीस्त्रियंगौरीं कृष्णं च पुरुषं मुने। जनयामासनामानि तयोरपिवदामिते

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः।

उमागौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगासुखा (शिवा) ॥ २५ ॥

एवं युगतयः सर्वाः पुरुषत्वं प्रपेदिरे। चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्ति नेतरेतद्विदोजनाः॥

ब्रह्मणेप्रददौपत्नीं महालक्ष्मीर्मुनेस्त्रियम्। रुद्रायगौरीं वरदां वासुदेवायच श्रियम्

स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत्।

बिभेद भगवान् रुद्रस्तद्गौर्या सहवीर्यवान् ॥ २८ ॥

अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्मुने। महाभूतात्मकंसर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्

पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः। सञ्जहारेद्धशंसर्वं सहगौर्या महेश्वरः॥

महालक्ष्मीर्महाभाग सर्वदेवमयीश्वरी।

साकारा च निराकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३१ ॥

नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्नाऽनेकेन कुत्रचित्।

नामानि च त्वयाब्रह्मन्नाख्येयानि न कस्यचित् ॥ ३२ ॥

इति मार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये प्राधानिकरहस्यवर्णनंनाम

नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

वैकृतिकरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

त्रिगुणा तामसी देवी सात्विकी या त्रिधोदिता।

सा सर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीति च ॥ १ ॥

योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।

मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाऽम्बुजासनः ॥ २ ॥

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा। विशालयाराजमानात्रिंशल्लोचनमालया

स्फुरद्दशनदंष्ट्रासाभीमरूपामहामुने। रूपसौभाग्यकान्तीनां साप्रतिष्ठामहाश्रया
खड्गबाणगदाशूलशङ्खचक्रभुसुण्डभृत्। परिघंकार्मुकंशीर्षंनिश्च्योतद्रुधिरंददौ(धौ)
एषा सा वैष्णवीं माया कालरात्रिर्दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम्॥ ६॥
सर्वदेवशरीरेभ्योयाविर्भूतामितप्रभा।त्रिगुणासामहालक्ष्मीःसाक्षान्महिषमर्दिनी
श्वेताननाऽनीलभुजासुश्वेतस्तनमण्डला। रक्तमध्या रक्तपादा रक्तजङ्घोरुरुन्मदा
सुचित्रजघनाचित्रमल्याम्बरविभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्तिः रूपसौभाग्यमालिनी (शालिनी)॥ ९॥
अष्टादशभुजा पूज्या स सहस्राम्बुजासना।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात्॥ १०॥
अक्षमालाचकमलं बाणोऽसिकुलिशंगदा। चक्रंत्रिशूलंपरशुः शङ्खोघण्टाचपाशकाः
शक्तिर्दण्डश्चर्मचापं पानपात्रं कमण्डलुः। अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैःकमलासनाम्
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमांमुने!। पूजयेत्सर्वलोकानां सदेवानांप्रभुर्भवेत्॥
गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्वैकगुणाश्रया।
साक्षात्सरस्वतीप्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हणा॥ १४॥
दधौचाष्टभुजाबाणमुशले शूलचक्रभृत्। शङ्खंघण्टांलाङ्गलञ्चकार्मुकंचमहामुने!
एषा सम्पूजिताभक्त्यासर्वज्ञत्वंप्रयच्छति। निशुम्भमथनादेवी शुम्भासुरनिबर्हणी
इत्युक्तानि स्वरूपाणिमूर्तीनां तवभागुरे। उपासनं जगन्मातुः पृथगासांनिशामय
महालक्ष्मीर्यदापूज्या महाकालीसरस्वती। दक्षिणोत्तरयोःपूज्येपृष्ठतोमिथुनत्रयम्
विरिञ्चिः सु (स्व) रयामध्ये रुद्रोगौर्या च दक्षिणे।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम्॥ १९॥
अष्टादशभुजामध्येवामेचास्यादशानना। दक्षिणेष्टभुजालक्ष्मीर्ब्रह्माण्याद्यायथ
पूर्वादिदलतः पूज्या असिताङ्गादिभैरवा।
अष्टादशभुजा चैषा यदापूज्या महामुने। दशाननाचाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्

कालमृत्यूचसम्पूज्यौसर्वारिष्टप्रशान्तये । यदाचाष्टभुजापूज्याशुम्भासुरनिवर्हिणी

नचास्याः शक्तयः पूज्यास्तथारुद्रविनायकौ ।

नमोदेव्याइतिस्तोत्रैर्महादेवीं समर्चयेत् ॥ २३ ॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः । अष्टादशभुजाचैषापूज्यामहिषमर्दिनी

महालक्ष्मीर्महाकाली सैवप्रोक्तासरस्वती । ईश्वरीपुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी

महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।

पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥ २६ ॥

अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा । धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैर्नानाभक्ष्य समन्वितैः ॥

रुधिराक्तेन वलिना मांसेन सुरयामुने । प्रणामाचनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥

सकर्पूरैश्चताम्वलैर्भक्तिभावसमन्वितैः । वामभागेऽग्रतोदेव्याश्छिन्नशीर्षंमहासुरम्

पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।

दक्षिणे पुरतः सिहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३०

वाहनम्पूजयेद्देव्या धृतंयेनचराचरम् । लिखित्वाऽष्टदलंपद्मं चन्दनागुरुकुङ्कमैः ॥

षट्कोणं तद्गतं कृत्वा देवीं तन्मध्यतो न्यसेत् ।

ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ॥ ३२ ॥

कुर्यात्तुस्तवनंधीमांस्तस्यामेकाग्रमानसः । एकेन वा मध्यमेन नैकेनैतरयोरिह ॥

चरितार्द्धं तु न जपेज्जपँश्छिद्रमवाप्नुयात् ।

स्तोत्रमन्त्रैः स्तुवीतेमां यदि वा जगदम्बिकाम् ॥ ३४ ॥

प्रदक्षिणां नमस्कारं कृत्वा मूर्द्धिन कृताञ्जलिः ।

क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ॥ ३५ ॥

श्लोकंचजुहुयात्पायसंतिलसर्पिषा । जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वाचण्डिकायैशुभंहविः

नमः पदं देवीं पूजयेत्सुसमाहितः । प्रयतःप्राञ्जलि प्रह्वः प्राणःनारोप्यचात्मनि

(शुचिस्तां) सुचिरं भावयेद्देवी चण्डिकां तन्मनाभवेत् ।

एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ॥ ३८ ॥

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्तमपीश्वरी (त्परमेश्वरी)॥ २६ ॥
तस्मात्पूजयधर्मज्ञसर्वलोकमहेश्वरीम् । यथोक्तेनविधानेन चण्डिकांसमवाप्स्यसि
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये वैकृतिकरहस्यवर्णनंनाम
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

मूर्तिरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नन्दा भगवती माया याऽवभन्नन्दजा शुभा ।
सा स्तुता पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिः कनकाम्वरा ।
देवी कनकवर्णा सा कनकोत्तमभूषणा ॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलङ्कृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमलालक्ष्मीःसा स्त्री (श्री) रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥
यारक्तदन्तिकानामदेवीप्रोक्तामयानघ ।। तस्याःस्वरूपंवक्ष्यामिश्रृणुपापभयापहम्
रक्ताम्वरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा । रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥
रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशनारक्तदन्तिका । पतिंनारींचानुरक्तां देवींभक्तं भजेज्जनम् ॥
वसुधेवविशालासासुमेरुयुगलस्तनी । दीर्घौलम्बावतिस्थूलौ तावतीवमनोहरौ
कर्कशावतिकान्तौ च सर्वानन्दपयोनिधी ।
भक्तान्सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥
खड्गं पात्रं च मुशलं लांगूलञ्च बिभर्ति सा ।

आख्याता रक्तचामुण्डा देवीयोगेश्वरीति च ॥ ६ ॥
अनयाव्याप्तमखिलंजगत्स्थावरजङ्गमम् । इमांयःपूजयेद्भक्त्यासव्याप्नोतिचराचरम्
अधीते यः इमंनित्यं रक्तदन्त्यावपुःस्तवं । तंसापरिचरेद्देवी पुत्रंप्रियमिवाङ्गना ॥
शाकम्भरीनीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना । गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी । मुष्टौशिलीमुखान्पूर्णां कमलं कमलालया ॥
पुष्पपल्लवमूलादि फलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृट् (ण्) मृत्युज्वरापहम् ॥ १४ ॥
कार्मुकञ्चस्फुरत्कान्तिबिभ्रतीपरमेश्वरी । शाकम्भरीशताक्षीसासैवदुर्गाप्रकीर्तिता
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ।
शाकम्भरींस्तुवन् ध्यायन् जयन्सम्पूयन्नमन् ॥ १६ ॥
अक्षय्यमश्नुतेशीघ्रमन्नपानामृतं फलम् । भीमापिनीलवर्णासादंष्ट्रादशनभास्वरा
विशाललोचनादेवी वृत्तपीनपयोधरा । चण्डहासंचडमरुं शिरःपात्रं च बिभ्रती
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ताकामदा स्तुता ।
तेजोमण्डलदुर्द्धर्षाभ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ॥ १६ ॥
चित्राभरणपाणिः सा महागौरीतिगीयते ।
इत्येता मूर्त्तयो देव्याः ख्यातास्ते भागुरे ! मया ॥ २० ॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं यस्य कस्यचित् ।
व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामधीष्वाऽवहितः स्वयम् ॥ २१ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्ये मूर्त्तिरहस्यवर्णनंनामैक-
नवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

सत्य सत्यम् सुखम् शिवम्

